

॥ सत्यनाम ॥

सद्गुरु कबीर साहेब का साखी-ग्रंथ ।

(उत्तम अवतरणिका तथा विरल टीका-टिप्पणी सहित)

अवतरणिकाकार :—

श्रीमान् पूज्य सा० वनमाली गुरुश्री अरविंद ।

बी. ए. एल्ल., बी.

शान्ति-कुटीर, नर्मदातट ।

विरल टीका-टिप्पणीकार :—

श्रीमान् १०८ पं. भू. महंतश्री विचारदासजी साहेब शास्त्री ।

प्रकाशक :—

श्रीमान् १०८ महंतश्री बालकदासजी साहेब ।

कबीर धर्मवर्धक कार्यालय, सीयावाग ।

बड़ौदा ।

आवृत्ति पहली] संस्कार सं० ५३८ [प्रत १०००
वि० सं० १९९१] [३० सं० १९३५

सजिल्द मूल्य ३) तीन रुपैया ।

पोष्टेज पेकींग खर्च ॥) आठ आना अलग ।

प्रकाशक:-

श्रीमान् १०८ महंतश्री बालकदासजी गुरुश्री बल्लभदासजी साहेब
कबीर धर्मवर्धक कार्यालय, सीयाबाग ।
बड़ौदा ।

स्वत्वाधिकार प्रकाशक के स्वर्धीन है ।

स्वत्वाधिकार प्रकाशक के स्वर्धीन है ।

मुद्रक :-

मुद्रक :-

रणछोडभाई किशोरभाई पटेल ।

मुद्रण स्थान :-

श्री “ प्रतापविजय प्रिन्टींग प्रेस, मौदीखाना-बड़ौदा,

तारीख १८४८-१९३५ः

विषयानुक्रमिका ।

विषय.	संख्या.	पृष्ठ.
साखी क्या है ?		९
अवतरणिका ।		१-७२
१ गुरुदेव को अंग ।	९१	३
२ सतगुरु को अंग ।	१०६	१७
३ गुरु पारख को अंग ।	६७	३१
४ गुरुशिष्यहेरा को अंग ।	६०	३९
५ निगुरा को अंग ।	६०	४६
६ साधु को अंग ।	२२१	६३
७ भेष को अंग ।	८१	७९
८ भीख को अंग ।	१५	८७
९ संगति को अंग ।	८९	८९
१० सेवक को अंग ।	३९	९९
११ दासासन को अंग ।	२७	१०३
१२ भक्ति को अंग ।	७३	१०७
१३ सुमिरन को अंग ।	१७९	११५
१४ परिचय को अंग ।	१३२	१३५
१५ प्रेम को अंग ।	९०	१५०
१६ विरह को अंग ।	१११	१५९

१७ चितावनी को अंग ।	२०१	१७२-
१८ उपदेश को अंग ।	२४	१९३
१९ शब्द को अंग ।	७४	२०२
२० विश्वास को अंग ।	४०	२१०
२१ सती को अंग ।	२७	२१४
२२ पतिव्रता को अंग ।	५४	२१७-
२३ विभिचारिन को अंग ।	२६	२२३
२४ मूरमा को अंग ।	१५६	२२६
२५ स्वारथ को अंग ।	६	२४१
२६ परमारथ को अंग ।	८	२४३
२७ विपर्यय को अंग ।	६७	२४४
२८ रस को अंग ।	१९	२६२
२९ मन को अंग ।	१२२	२६४
३० माया को अंग ।	७८	२७७
३१ कनक कामिनी को अंग ।	६४	२८५
३२ काल को अंग ।	७९	२९१
३३ समरथ को अंग ।	५१	३०१
३४ चानक को अंग ।	२९	३०६
३५ आत्म अनुभव को अंग ।	२९	३०९
३६ सहज को अंग ।	८	३१३
३७ मध्य को अंग ।	२९	३१४-
३८ भेद को अंग ।	४४	३१७-

३९	साक्षीभूत को अंग ।	६	३२२
४०	एकता को अंग ।	१८	३२३
४१	व्यापक को अंग ।	५१	३२५
४२	जीवतमृतक को अंग ।	४९	३३०
४३	सजीवन को अंग ।	१६	३३६
४४	बेहद को अंग ।	३६	३३७
४५	अविहद को अंग ।	६	३४१
४६	भ्रमविध्वंस को अंग ।	६८	३४२
४७	सारग्राही को अंग ।	११	३४९
४८	असारग्राही को अंग ।	१०	३५०
४९	पारख को अंग ।	६९	३५१
५०	बेली को अंग ।	१३	३५९
५१	कथनी को अंग ।	१८	३६०
५२	करनी को अंग ।	३३	३६२
५३	लगनी को अंग ।	७२	३६६
५४	निजकर्ता को अंग ।	४१	३६९
५५	कमौटी को अंग ।	९	३७३
५६	सूक्ष्ममार्ग को अंग ।	४१	३७४
५७	भाषा को अंग ।	७	३७९
५८	पंडित को अंग ।	३६	३८०
५९	निंदा को अंग ।	२७	३८४
६०	आनंदेश को अंग ।	६	३८७

६१	प्रकृतिगुण को	अंग ।	११	३८७
६२	काम को	अंग ।	२१	३८९
६३	क्रोध को	अंग ।	६	३९१
६४	लोभ को	अंग ।	५	३९२
६५	मोह को	अंग ।	१६	३९३
६६	मद को	अंग ।	१०	३९४
६७	मान को	अंग ।	३६	३९६
६८	आशातृष्णा को	अंग ।	२५	३९९
६९	कष्ट को	अंग ।	२३	४०२
७०	दुख को	अंग ।	१९	४०५
७१	कर्म को	अंग ।	३१	४०७
७२	स्वाद को	अंग ।	१३	४१०
७३	मांसाहार को	अंग ।	४७	४१२
७४	नशा को	अंग ।	३२	४१७
७५	विवेक को	अंग ।	१०	४२०
७६	विचार को	अंग ।	२४	४२१
७७	धीरन को	अंग ।	११	४२४
७८	क्षमा को	अंग ।	९	४२५
७९	शील को	अंग ।	११	४२६
८०	सन्नोष को	अंग ।	१२	४२८
८१	साँच को	अंग ।	२२	४२९

८२	दया	को	अंग ।	२२	४३१
८३	दीनता	को	अंग ।	१६	४३४
८४	विनती	को	अंग ।	२५	४३६
	प्रश्नोत्तर	को	अंग ।	७४	४४०
	अनुक्रमणिका । (अकारादिक्रमसे)				१-१६३
	शुद्धिपत्र ।	१६४
	शुभनामावली	१६६

आत्मज्ञान में सहायक उत्तम ग्रंथ ।

नाम.

मूल्य.

साखी ग्रंथ (विस्तृत महत्वपूर्ण भूमिका, विरलटीका टिप्पणों सहित)	३—०—०
ब्रह्मनिरूपण सटीक ।	३—०—०
सत्यकवीर शब्दामृत (गुजराती दूसरी आवृत्ति)				१—६—०
कवीर साहेब का जीवन चरित्र	०—६—०
गुरु महिमा पूर्णो माहात्म्य (आ. तीसरी)	...			०—६—०
ज्ञान स्वरोदय ।	०—२—६
पन्न स्वरोदय ।	०—१—६
दुर्लभ योग—(तीसा जंत्र, तत्त्व स्वरोदय)		...		०—१—६
मोक्षसोपान (स० कवीर सा० सच्चे उपदेश भा० १)				१—८—०
निर्पक्षज्ञान प्रश्नोत्तर	२—८—०
गृहस्थाश्रम धर्म वर्णन	०—६—०
कवीर साहेबका बीजक (गुजराती रमैनी विभाग)				१—८—०
संन्यापाठ सटीक (गुजराती तथा हिंदी)	...			०—५—०
कवीर कल्पतरु भजनमाला (गुजराती)		...		०—८—०
कवीर सुधा (रेखता—झूलना) गुजराती टाइपमें...				०—१२—०
साखियो (गुजराती टीका साथे)		०—०—६
शंका—समाधान—मयंक सटीक		१—०—०
कवीरब्रह्महिमा ~), वंदगी विचार ~), सत्यनाम =)				
सद्गुरु कवीर साहेब का बड़ा फोटू साखी के सहित =); छोटा ~)				
पं. श्रीहजूर साहेब, कवीरब्रह्म, धर्मदासजी, प्राकट्य; कवीरसाहेब और राजा वीरमिह । व्यवस्थापक—कवीर धर्मवर्धक कार्यालय				
सीयाबाग, बड़ौदा.				

साखी ग्रन्थ क्या है ?

‘ साखीग्रन्थ ’ इस शब्द के सुनते ही बहुतों के मन में तो यही आयगा कि क्या इस पुस्तक में गवाहों के वयान हैं ? । सचमुच उनकी यह धारणा किसी अंश में ठीक है; क्योंकि सहृदय कबीरने भी स्वयं गवाह बनकर जनता-जनार्दन के सामने बड़ी ही निर्भीकता से अनेकवार खुले वयान दिये हैं । उनके वयानों का संग्रह होने के कारण इसका नाम साखी ग्रन्थ है ।

साखी यह शब्द साक्षी का अपभ्रंश है । “ व्रानृत्वे सति तटस्थत्वं साक्षित्वम् ” अर्थात् झगड़े के मूल को जानते हुए भी वादी और प्रतिवादियों के पक्षपात से जो ग्रहित हो उसे साक्षी (साखी, गवाह) कहते हैं । सहृदय कबीर साम्प्रदायिक कलह के मूल (परस्पर की अज्ञानता) को जानते हुए भी साम्प्रदायिक पक्षपात की छत से कोसों दूर थे । एक सर्वहितैषी तटस्थ व्यक्ति की तरह वे सर्वों को हितोपदेश दिया करते थे , यही कारण था कि वे हिन्दुओं के गुरु और मुसलमानों के पीर बन सके थे । अपनी इस तटस्थता और सर्वहितैषिणा का वर्णन उन्होंने कई जगह किया है ।

कविरा खड़ा बजार में, सबकी चाहै खैर ।

• ना काहू से दोसती, ना काहू से बैर ॥

(बीजक)

जो पक्षपात से रहित होता है वही साक्षी बनकर अनेक उलझनों को सुलझाने में समर्थ होता है । बिना साक्षी बने उलझनों का निपटारा कदापि नहीं हो सकता । सद्गुरु ने भी तात्कालिक साम्प्रदायिक कलह को मिटाने के लिये ठीक साक्षी का काम किया था । इसका प्रभाव भी उस समय अपने २ दोन के दीवानों पर बहुत अच्छा पड़ा था । आइने अकबरी में इस बात का उल्लेख है कि 'कबीर साहेबके उपदेशों से प्रभावित होकर शाह अकबर ने सर्व धर्मों और मजहबों की एकता का मार्ग पकड़ा था । ऐतिहासिक लोग अकबर की इस प्रवृत्ति को चाहे जिस दृष्टि कोण से देखते हों; परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि सद्गुरु के उपदेशों से उस समय साम्प्रदायिक कलह मिट गया था । कवि जायसी के समय तक—जो कि सद्गुरु के पश्चात् एक शताब्दी बीतने पर हुए थे—हिन्दू और मुसलमानों का अपूर्व हृदय-मिलन बना हुआ था । इन पूर्व और पश्चिम के यात्रियों को एक रास्ते पर लानेवाले सद्गुरु के ये साक्षी वचन ही थे—

हिन्दू ध्यावै देहरा, मुसलमान मसीत ।

दास कबीर तहां ध्यावही, जहां दोनों की परतीत ।

(सा० पृ० ३१६-१९)

जो खुदाय महजीद बसतु है, और मुलक केहि केरा ।

तीरथ मूरति राम निवासी, दुइमें किनहुं न हेरा ॥'

पूरव दिसा हरी को वासा, पश्चिम अछह मुकामा ।

दिल मँह खोजु, दिलहि में खोजो, यही करीपा रामा ॥

(बीजक)

ऐसे साक्षिवचनों के बिना वह पुराना झगडा कडापि नहीं मिट सकता था ।

सद्गुरु कबीर की साखियाँ (गवाहियाँ) साम्प्रदायिक कलहों की तरह आध्यात्मिक झगडों को भी पिटाती हैं । साखी का अर्थ करने हुए सद्गुरुने इस विषय को स्वयं स्पष्ट कर दिया है ।

साखी आंखी ज्ञान की, समुझ देखु मन मांदि ।

बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नाहि ॥

(बीजक)

श्लेष के कारण साखी का अर्थ साक्षीचेतन और गवाह दोनों होते हैं, इसी प्रकार संसार के झगडे छुटने का अर्थ भी मुक्ति और कलहशान्ति दोनों हैं । संसार के बाहरी झगडों की तरह आध्यात्मिक (भीतरी, घरेलू) झगडों की शान्ति भी साक्षीस्वरूप की प्राप्ति के बिना नहीं हो सकती । जिस प्रकार जुवारियों की हार और जीत से अलग रहनेवाला दीपक उनको केवल प्रकाश देता है; इसी प्रकार साक्षी-कूटस्थ असंग चेतन . संघात (देह और इन्द्रियादिक) के धर्मों से असंग रहकर उनको प्रकाश मात्र देता है । जैसा कि पंचदशी के कूटस्थ दीप में लिखा है—

जो पक्षपात से रहित होता है वही साक्षी बनकर अनेक उलझनों को सुलझाने में समर्थ होता है । बिना साक्षी बने उलझनों का निपटारा कदापि नहीं हो सकता । सहुरु ने भी तात्कालिक साम्प्रदायिक कलह को मिटाने के लिये ठीक साक्षी का काम किया था । इसका प्रभाव भी उस समय अपने २ दोन के दीवानों पर बहुत अच्छा पड़ा था । आइने अकबरी में इस बात का उल्लेख है कि ' कबीर साहेबके उपदेशों से प्रभावित होकर शाह अकबर ने सर्व धर्मों और मजहबों की एकता का मार्ग पकड़ा था । ऐतिहासिक लोग अकबर की इस प्रवृत्ति को चाहे जिस दृष्टि कोण से देखने हों; परन्तु यह बात तो निर्विवाद है कि सहुरु के उपदेशों से उस समय साम्प्रदायिक कलह मिट गया था । कवि जायसी के समय तक—जो कि सहुरु के पश्चात् एक शताब्दी बीतने पर हुए थे—हिन्दू और मुसलमानों का अपूर्व हृदय-मिलन बना हुआ था । इन पूर्व और पश्चिम के यात्रियों को एक रास्ते पर लानेवाले सहुरु के ये साक्षी वचन ही थे—

हिन्दू ध्यावैं देहरा, मुसलमान मसीत ।

दास कबीर तहां ध्यावही, जहां दोनों की परतीत ।

(सा० पृ० ३१६-१९)

जो खुदाय मदजीद बसतु है, और मुलक केहि बेरा ।

तीगथ मूरति राम निवासी, दुइमें किनहुं न देरा ॥

पूरव दिसा हरी को वासा, पश्चिम अलह मुकामा ।

दिल मँह खोजु, दिलहि में खोजो, यहीं करीपा रामा ॥

(बीजक)

ऐसे साक्षिवचनों के बिना वह पुराना झगडा कदापि नहीं मिट सकता था ।

सद्गुरु कबीर की साखियां (गवाडियां) साम्प्रदायिक कलहों की तरह आध्यात्मिक झगडों को भी पिटाती है । साखी का अर्थ करने हुए सद्गुरुने इस विषय को स्वयं स्पष्ट कर दिया है ।

साखी आंखी ज्ञान की, समुझ देखु मन मांदि ।

बिनु साखी संसार का, झगरा छूटत नांदि ॥

(बीजक)

श्लेष के कारण साखी का अर्थ साक्षीचेतन और गवाह दोनों होते हैं, इसी प्रकार संसार के झगडे छूटने का अर्थ भी मुक्ति और कलहशान्ति दोनों हैं । संसार के बाहरी झगडों की तरह आध्यात्मिक (भीतरी, घरेलू) झगडों की शान्ति भी साक्षीस्वरूप की प्राप्ति के बिना नहीं हो सकती । जिस प्रकार जुवारियों की हार और जीत से अलग रहनेवाला दीपक उनको केवल प्रकाश देता है; इसी प्रकार साक्षी-कूटस्थ असंग चेतन . संघात (देह और इन्द्रियादिक) के धर्मों से असंग रहकर उनको प्रकाश मात्र देता है । जैसा कि पंचदशी के कूटस्थ दीप में लिखा है—

सन्धयोऽखिलवृत्तीना ममावाश्वावभासिताः ।

निर्विकारेण येनासौ कूटस्थ इति चोच्यते ॥

सम्पूर्ण वृत्तियों की सन्धि, और सुषुप्ति में उनका अभाव ये सब जिस निर्विकार चेतन से प्रकाशित होते हैं, उसको कूटस्थ कहते हैं । कूटस्थ की असंगता का विचार करनेवाला स्वयं उस पद को प्राप्त हो जाता है; इस लिये उसका विचार सदैव करना चाहिये ।

असद्ग एव कूटस्थः सर्वदा नास्य किञ्चन ।

भवत्यतिशय स्तेन मनस्येवं विचार्यताम् ॥

(पं० कृ० ७०)

कूटस्थ चेतन सदैव असंग है, इसके जन्मादिक अतिशय कुछ भी नहीं होते; अतः सुषुप्त को सदैव ऐसा ही विचार करना चाहिये ।

इसी कूटस्थ का नाम अन्तर्यामी है; क्यों कि वह सबों के भीतर रह कर सत्ता स्फूर्ति देता है । जैसा कि बृहदारण्यक के अन्तर्यामी ब्राह्मण में लिखा है ।

“अदृष्टो दृष्टाऽश्रुतः श्रोताऽमृतो मन्ताऽविज्ञातो विज्ञाता, नान्योऽतोऽस्ति द्रष्टा नान्योऽतोऽस्ति श्रोता नान्योऽतोऽस्ति मन्ता नान्योऽतोऽस्ति विज्ञातैष त आत्माऽन्तर्याम्यमृतोऽनोन्यदार्तम्” ।

जो किसीके देखने में नहीं आता हुआ भी स्वयं देखता है, किसी के सुनने में नहीं आता हुआ भी स्वयं

सुनता है, तथा मन और बुद्धि का विषय नहीं होता हुआ म्रयं उनको विषय करता है। इसके अतिरिक्त देखनेवाला सुननेवाला संकल्प करनेवाला और जाननेवाला कोई दूसरा नहीं है। यही अविनाशी आत्मा तुम्हारा अन्तर्यामी है।

“असद्गो नहि सज्जते” इत्यादिक श्रुतियों के अनुसार सबों से भिन्न होने के कारण साक्षीचेतन किसी में सक्त नहीं होता। साक्षी की भिन्नता का वर्णन सद्गुरु ने भी कई स्थलों पर किया है।

सबका साखी मेरा साँई।

ब्रह्मा विष्णु रुद्र ईश्वर लों औ अव्याकृत नाहीं।
सुमति पचीस पांच से करले यह सब जग भरमाया।

अकार उकार मकार मात्रा इनके परे बताया ॥
जाग्रत सुपन सुषोपत तुरिया इनते न्यारा होई।

रासज तामस सात्त्विक निर्गुन इनते आगे सोई।
सुष्ठम थूल कारन महाकारन इन मिलि भोग बखाना ॥

नेजस विश्व पराग आत्मा इनमें सार न जाना।
परा पसन्तो मधमा बैखरि चौबानी ना मानी।

पांच कोप नीचे कर देखो इनमें सार न जानी ॥
पांच ज्ञान औ पांच कर्म की यह दश इन्द्री जानो।

चित्र सोइ अन्तःकरण बखानों इनमें सार न मानों ॥
कुरम सेस किरकिळा धनंजय, देवदत्त, कहँ देखो।

चौदह इंद्री चौदह इंद्रा, इनमें अलख न पेखो ॥

तत् पद त्वंपद और असीपद, वाच लच्छ पहिचाने ।

जहदलच्छना अजहद कहते, अजहद जहद बखाने ॥

सद्गुरु मिल सत शब्द लखानै, सार शब्द विलगावै ।

कहै कबीर सोई जन पूरा जो न्यारा करि गावै ॥

साक्षीपद प्राप्त होने पर ही मनुष्य संसार पर विजय प्राप्त कर सकता है; क्योंकि यह संसार काजल की कोठरी और काटों की बाढ़ है, जरासा चूका और गया ।

काजल केरी कोठरी, ऐसा यह संसार ।

बलिहारी वा दासकी, पैठिके निकसन द्वार ॥

काजर ही की कोठरी, काजर ही का कोट ।

तोटी कारी ना भई, रहा जो ओट हि ओट ॥

(साखी ग्रंथ पृ० १०४)

असंग ही का नाम साक्षी है; अतः साक्षीपद की प्राप्ति के बिना किसी प्रकार झगड़ों का अन्त नहीं हो सकता, और झगड़ों के निपटारे बिना निर्वाणपद भी नहीं मिल सकता, इस बात का भी सद्गुरु ने विशद रूप से वर्णन किया है ।

झगगा एरु बडो राजाराम, जो निरुवारै सो निरवान ।

ब्रह्म बड़ा की जहां से आया, वेद बड़ा की जिन्हि उपजाया ।

ई मन बड़ा कि जेहि मन माना, राम बड़ा की रामहि जाना ।

भ्रमि भ्रमि कबिरा फिरै उदास, तीरथ बड़ा कि तीरथ-दास

(बीजक)

सद्गुरु ने अपनी वाणी में साक्षी के लिये वहीं २ गवी शब्द का भी प्रयोग किया है

हिन्दू कहू तो हूँ नहीं, मुसलमान भी नाहिं ।

पाँच तत्व का पूतला, गैबी खेलै पाहिं ।

गैबी आया गैब से, यहाँ लगाया ऐब ।

उलटि समाना गैब में, छटि गया सब ऐब ॥

(साखी प्र० पृ० ३१६)

स्वरूप (साक्षी) को प्राप्त होना ही गैब में उलट के समाना है ।

निजरूप की विशेषता ।

साक्षी का निजरूप इसमें भी आगे है; क्योंकि साक्षी तो किसी साक्ष्य की अपेक्षा से है, इस लिये साक्ष्य (संसार) के अभाव में साक्षीपन भी नहीं रहता । साक्ष्य (संसार) हृद है और साक्षी (द्रष्टा, चेतन) बेहृद है; परन्तु परमतत्त्व कुछ और ही है, जिसका सद्गुरु ने इस प्रकार वर्णन किया है ।

हृद बेहृद दोनों तर्जी, अवरन किया मिलान ।

कहँहि कवीर ता दास पर, वारों सकल जहान ॥

(मा० पृ० ३३७)

हृद और बेहृद से परे होने पर परमपद की प्राप्ति से अवर्णनीय आनन्द और प्रकाश का मिलन इस साखी से बोधित होता है । इसी भाव-सुधाशु को पकड़ने के लिये

उर्दू के एक कवि ने भी बड़ी लम्बी उड़ान मारी थी; परन्तु अन्त में विफल होकर आप अन्धेरे के खन्दक में गिरे गये । धुनिये—

“ न तो मैं रहा न तो तू रहा, रही सो बेखबरी रही ”

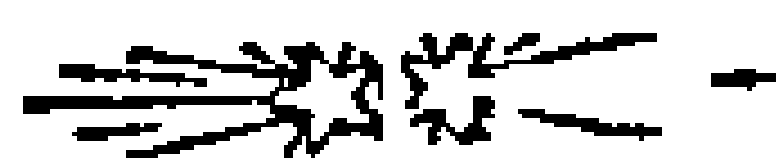
सत्यतः वह जीव और ईश्वर से परे का पद है; किन्तु प्रज्ञानघन होने के कारण अन्धकार नहीं प्रकाश है ।

उसी अवर्णनीय निजरूप को प्राप्त करनेवाले महात्मा भी दयालु होने के कारण साक्षी बनकर अपने निर्णायक वचनों के द्वारा अनेक जटिल समस्याओं को सुरझाया करते हैं । स्वरूप साक्षी के बोधक और निर्णायक होने के कारण सद्गुरु के वचन भी साक्षीवचन हैं । ऐस ही साखी वचनों का संग्रह होने के कारण इसका नाम साखीग्रन्थ है ।

साक्षी सुचेताश्चितिमात्ररूपः संवर्णितो येन निजात्मदेवः ।
अन्वर्थसंज्ञा गुणतस्ततोऽभूत् ‘साखी’ति विद्वानिगुहं भजे तम् ।

महन्त विचारदास शास्त्री ।

॥ सत्-कवीर ॥
साहेब कवीर
के
साखी-ग्रंथ
की
अवतरणिका ।



लेखक —

श्रीमान् पूज्य सा० बनमाली गुरुश्री अरविंद ।
बी ए. एल्ल., बी.

शान्ति-कुटीर, नर्मदातट.

। सत्-नाम ॥

॥ अवतरणिका ॥

॥ खंड-पहला ॥

साधकी की इस अवस्था में ऐसा महत्व तथा सत्वपूर्ण विशाल-
काय साखी—ग्रन्थ की अवतरणिका अंकित करना मेरे लिये एक
अत्यन्त कठिन तथा सुदुस्तर समस्या है । पर श्रीमान् पंडित मोती-
दासजी साहेब, सम्पादक वो दीवान, कगीर मंदिर, सियावाग, बडोदा
की ऐसी प्रेम-प्रेरणा है कि बिना कुछ लिखे छुटका भी नहीं प्रतीत
होता । उक्त पंडित साहेब को उचित था कि किसी सुयोग्य तथा
प्रशिष्ट व्यक्ति को खोज ढूंढकर और उन पर इसका भार सौंप कर सर्वांग-
सुन्दर तथा पूर्ण भर्मभेदी अवतरणिका तैयार कराते । परन्तु जो
ढूंढने का कष्ट न उठावें, घर बैठे बैठे खाना खाना चाहें, तो उनको
तथा उनके पाठकगण को सहज में जो कुछ रुखा सूखा मिल जाय,
उसी पर निर्वाह तथा संतोष कर लेने के लिये, भी सदा तैयार रहना
चाहिये । क्योंकि,

“ जब आवें मंतोष-धन, सत्र धन धूलि समान । ”

(देखो साखी-ग्रन्थ, पृष्ठ ४२५)

“ प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवाभ्यात्ममायया ”

संसार में जितने पदार्थ—चेतन अथवा जड (The conscious or the unconscious), जंगम वा स्थाय (The movables or the immovables),—विराजमान हैं, उनमें से प्रत्येक के बहिरंग की अपेक्षा अन्तरंग कई गुणा अधिक है । उसका प्रकटरूप, उसके गुणरूपों का केवल अंशमात्र है । उसका अव्यक्त, उसके व्यक्त से असंख्यगुणा भी कहा जाय, तो अतिशयोक्ति नहीं । क्योंकि, व्यक्त सदा सान्त होता है और अव्यक्त सदा से अनन्त होता आया है । उदाहरणार्थ, सिनेमा (Cinematograph) के चित्र-पट (Screen) और फिल्म (Film) को ले लो । पट के ऊपर फिल्म का जितना भाग एक समय में दृष्टि-गोचर होता है, उसका अनेकगुणा भाग रील (Reel) में अदृश्यरूप से लिपटा पड़ा है, जो क्रम से उघड़ कर, पट पर अपना चित्र फेंकता जाता है । मानो, अव्यक्त क्रमशः व्यक्त होता हुआ भूतकाल के गाल में समाता जाता है । इसी प्रकार आत्मारूपी अनन्त रील (The infinite reel of the soul) में चोटरूपी अपरिमित फिल्म (The infinite film of the surface personalities) लपेटा पड़ा है, जो अपने समयानुकूल समार पट पर अवतरण होता रहता है । यही बात कबीर साहेब की वाणी में इस प्रकार कही जा सकती है कि आत्मारूपी अनन्त फिरकी (The infinite shuttle of the soul) में भर्तीरूपी अनन्त सूत (The infinite thread of the wool) लिपटा है, जो समय पाकर संसार रूपी तानी (Warp) पर अवतरण करता हुआ नाना प्रकार के शरीर रूपी वस्त्र बुनता रहता है । इसी बात का भगवान् कृष्ण ने गीता में इस प्रकार से गाया है:—

“वासांसि जीर्णानि यथा विहाय, नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि संयाति नवानि देही ।”

(गी० अ० २ श्लो० २२)

‘ जैसे मनुष्य पुराने वस्त्रों को त्याग कर दूसरे नये वस्त्रों को ग्रहण करता है । वैसे जीवात्मा पुराने शरीरों को त्याग कर दूसरे नये शरीरों को प्राप्त करता है । ’

जिसको अपना पेहरन (Coat etc.) अपनी इच्छा के अनुसार बनाने की युक्ति नहीं मालूम है, उसको दर्जों के फेरे में जाने की आवश्यकता बराबर बनी रहती है । पर जिसको स्वयं ज्ञान हो गया है, वह अपना कार्य आपसे ही करके स्वावलम्बन (Self-reliance) का पाठ संसार को सिखाता है । इसी प्रकार जिसको आत्म-अनुभव सम्यक् रीति से हो गया है, वह जिस प्रकार का शरीर जिस समय जिस रीति से ग्रहण करना चाहता है, कर लेता है । यथा,

“आत्मानं सृजामि अहम् ” (गीता अ० ४ श्लो० ७)

“ अपने रूप को रचना हूँ अर्थात् प्रकट करता हूँ । ” अन्यथा दर्जों रूपा काल वा कर्म, भाग्य (Fate) वा प्रारब्ध के चक्र में पड़कर, उसके बनाये शरीर को विग्रह होकर धारण करना पड़ता है । अज्ञानी मदा अशक्त रहता है और सज्जानी अनुभवों से सशक्त है । वह काल के वश में रहता है और यह काल से ऊपर हो जाता है, जिसको कालातीत के नाम से पुकारते हैं । वह कर्म जन्म प्रारब्ध, संचित अथवा भाग्य को ठोकरें खाता रहता है और यह कर्मों के बीच में रह कर भी इन सभी से छु तक नहीं जान

—“ पद्मपत्रमिवाम्भसा ” (गी० अ० ५ श्लो० १०)

“ जल से कमल के पत्ते की सृष्टि ” । वह जन्म और मरण के फन्दे में पुनः पुनः आता रहता है, “ पुनः पुनः वशमापद्यते मे ” (कठोपनिषद्), और यह फन्दे से एकदम बाहर हो जाता है । इसको नहीं इच्छा हो तो, नहीं शरीर धारण करे और यदि इच्छा हो तो, वर्तमान शरीर को कायाकल्प कर दे अथवा जैसा शरीर जिस रीति से धारण करना चाहे, कर सके । गर्भ में प्रवेश करके भी जन्म ले सके, यथा, राम, कृष्ण आदि और गर्भ में बिना प्रवेश किये भी, जैमे, ब्रह्मा, महादेव आदि । यह दोनों प्रकार में, योनिज औ अयो-निज, (Sexual & Asexual) जन्म लेने में समर्थ हो जाता है । जो प्राणी-विद्या (Biology) से अभिज्ञ हैं, वे जानते हैं कि ससार में मैथुनी तथा अमैथुनी, दोनों तरह की सृष्टि नित्यप्रति हो रही है । वर्षाकाल में असंख्य छोटे २ मेढकों (Toads, amphibian) की उत्पत्ति, जमे हुये जल में अगणित कीटिया, अन्नफलादि में नाना-प्रकार के कोटानुकोटि प्राणिया प्रतिक्षिप्त जन्म धारण करती हैं । अंडज, पिंडज, ऊष्मज, जलज, अन्नज प्राणियों की उत्पत्ति अहर्निश हो रही है । यह युक्तियुक्त नहीं कि अयोनिज स्र के स्र मुक्त होते हैं और योनिज स्र के स्र बद्ध होते हैं । अन्तर इतना ही है कि आम-अनुभवी जिस प्रकार चाहे उन्ही प्रकार से ससार में व्यक्त अर्थात् प्रकट रूप ले सकता है और अज्ञानी को प्रिय होकर प्रेरित प्रकार में संसार में जन्म लेना पड़ना है । भगवान् विष्णु क्षीर-मन्द में अश्वत्थरूप में पड़े हैं, उनकी नाभि से कमल निकलना है और कमल में ब्रह्मर्षी प्रकट होते हैं, और उनसे सृष्टि की रचना आरम्भ हो जाती है । जब यह सभव है, तो साहेब कर्मीर को क्षीर समुद्रग्न्य रत्न तागव के कमनीय कमल में प्रकट होने तथा पत्तों का सृष्टि करने में कौन सी बड़ी प्रियशास्त्र तथा त्रिपादास्त्र की बात है ? जब महादेवनी

बिना मा-बाप के संसार में व्यक्तरूप ले सकते हैं तो, यदि कबीर साहेब ने भी बिना मा-बाप के संसार में प्रकट होकर, उनका अनुसरण कर, गांता के नीचे लिखे वचन को प्रमाणित कर दिखाया, तो इसमें आश्चर्य ही क्या है ? —

“ प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय संभवामि आत्ममायया । ”

(गी० अ० ४ श्लो० ६)

“अपना प्रकृति को आधीन करके योगमाया से प्रकट होता हूँ।”

“ Brooding over nature, which is mine own, yet I am born through My own Power, *Maya*, the power of thought that produces form ” (The Bhagwad-Gita by Annie Besant & Bhagwandis. P. 74)

माया का अर्थ यहाँ पर वह विचार-शक्ति वा तपो-बल है जो रूप प्रकट करती है। जब अयोनिज जन्म-घटनायें भूतकाल में हुई और निर्यप्रति होती रहती हैं, तो ऐसी घटना यदि साहेब कबीर ने भी स्वसामर्थ्य से (By the form-producing power of thought or meditation) संसार में उपस्थित करी तो, इससे चकित होकर, असंभव ! असंभव !! महा असंभव !!! कहकर चिल्लाने से क्या मतलब ?

पक्षपात-रहित सनातनी भाइयों को तो स्पष्ट हो ही गया होगा, पर दलील की खोज निकालनेवाले आर्य भाई हास्यपूर्ण कटाक्ष करते ही जायेंगे कि, ‘ क्या कबीर साहेब मुत्तुगा (Insect) या जो फलों में उत्पन्न हुआ ? ’ कबीर साहेब क्या थे वह तो आगे माझम होगा, पर अपने यहाँ की मनुष्य बर्ण देखो है ? उठानों नयार्थ प्रकाश, निकालो सृष्टि प्रकरण. खोलो पत्र ४३ और पद्य प्रश्नोत्तरों को:—

“ (प्रश्न) सृष्टि की आदि में एक वा अनेक मनुष्य उत्पन्न किये ये वा क्या ? (उत्तर) अनेक; क्योंकि जिन जीवों के कर्म ईश्वरीय सृष्टि में उत्पन्न होने के थे उनका जन्म सृष्टि की आदि में ईश्वर देता, क्योंकि

“ मनुष्या ऋषयश्च ये । ततो मनुष्या अजायन्त । ”

यह यजुर्वेद (और उसके ब्राह्मण) में लिखा है । इस प्रमाण से यही निश्चय है कि आदि में अनेक अर्थात् सैकड़ों सहस्रों मनुष्य उत्पन्न हुए और सृष्टि में देखने से भी निश्चित होता है कि मनुष्य अनेक मात्रा के सन्तान है । (प्रश्न) आदि सृष्टि में मनुष्य आदि की बाल्य, युवा वा वृद्धावस्था में सृष्टि हुई थी अथवा तीनों में ? (उत्तर) युवा-वस्था में, क्योंकि जो बालक उत्पन्न करता तो उनके पालन के लिये दूसरे मनुष्य आवश्यक होते और जो वृद्धावस्था में बनाता तो मैथुनी सृष्टि न होती, इस लिये युवावस्था में सृष्टि की है । (प्रश्न) कभी सृष्टि का प्रारम्भ हैवा नहीं ? (उत्तर) नहीं । ” (मतार्थ-प्रकाश पत्र १४३)

देखा न, एक ही बार सैकड़ों सहस्रों मनुष्य, युवा और युवतियाँ धड़ाधड़ आकाश से वर्षा-विन्दु की सदृश गिरे और फिर उन लोगों ने मैथुनी सृष्टि की । एक पुरुष को कमल में व्यक्त होने में कटाक्षपूर्ण हंसी उड़ाते हैं और अपने यहाँ के निराधार सहस्रों मनुष्यों की अमैथुनी उत्पत्ति को युक्तियुक्त बताते हैं ! प्रकाशवादियों तथा मानवसृष्टिवादियों (Evolutionists & Anthropologists) में पूछ कर देखो कि वे युक्तियुक्त बताते हैं वा हंसी उड़ाते हैं । दूसरों की छोटी-छोटी निहारनी और अपनी मोटी ढेवर की बात तक नहीं कहना, कदा तक न्यायमंगल है ! चरन दूमे बढ़नी को निम्न वहनर छेद ।

इनके अतिरिक्त, ईश ई, मुसलमान आदि अन्य धर्म-बन्धु ऐसे चमत्कारों को तो, अपने यहा अवश्य मानते हैं । यदि दूसरों के यहा न माने तो, कोरा दुराग्रह के सिन्नाय और कुल नहीं कहा जा सकता है । भाइ, सम्यक् आत्म-अनुभवी तो, इसी शरीर को ऐसी काया-कल्प कर सकता है कि पूर्ण ओर पर शरीर के रूप, वर्ण, आकृति आदि सब के सब में ऐसी भिन्नता आ जाती है कि पहचान तक में न आवे । दोनों समय के फोटो (चित्र) तक न मिले । और एक शरीर छोड़ कर दूसरा नया वाञ्छित शरीर लेना या अलग से खड़ा कर देना उनके लिये सरल वो सहज है । पुराने कोट (Coat) को नया बनाना, उसके प्रत्येक सूत्र को केवल स्वच्छ नहीं, बल्कि नये सूत्रगत दृढ बनाना अधिक कठिन है । दूसरा नया कपड़ा लेकर नया कोट बनाना आसान है । पर ये सब बातें मन से ऊपर की हैं । कैसे कहा जाय और कौन समझे ! यथा,

“क्या कहिये और नज़ीर आगे अब कौन समझनेवाला है ?”
 स्वयं अनुभव करने की वस्तु को प्रतीति दूसरों की कथनी से क्यों कर हो सकती है ? हा, उसकी धुधली झलक (Shadowy reflection) कराने को चेष्टा की जा सकती है । इसमें सफलता की बात दूर रहती है । यह विषय इतना सूक्ष्म तथा गहन है कि, लिखने पढ़ने से यदि दूरस्थ झांकि (Distint flash) का भी अनुमान हो जाय, तो बहुत समझना चाहिये । क्योंकि, इसका कहना सुनना, समझना समझाना, दोनों ही अत्यन्त कठिन तथा अति दुःसाध्य हैं । कहने सुनने में थोड़ा भी फेर पड़ा कि, कुछ का कुछ परिणाम निश्चल पड़ता है । माखन ऐसा सरल पदार्थ मगला (वक Crane) जैसा टेढ़ा बन जाता है । सुनो,

एक था भिखमंगा (Beggar) जो जन्म का अंधा था । उस बेचारे ने अपनी जीवनी भर में कभी भी माखन (Butter) नहीं खाया था । मांगता मांगता किसी ऐसे सद्-गृहस्थ के द्वार पर पहुँचा जो दयालू तथा उदारहृदय का था । जिस समय भिखमंगे ने उसके द्वार पर आयाज मारी उस समय उस गृहस्थ ने माखन खाने को हाथ में लिया ही था । उसने समझा कि अपने खाने के पहिले यदि इसमें से थोड़ा अपने अतिथि को खिला देरें, तो बहुत अच्छा हो । चओ, जरा उससे पूछ तो सही । वस, झट से घर के बाहर निकल कर, द्वार पर खड़े भूखे भिखमंगे को पूछा—भाइ, माखन खाओगे ? भिखमंगा—माखन कैसा होता है, दयालौ ? मैंने तो निन्दगी भर में कभी भी माखन नहीं खाया है ।

गृहस्थ—एकदम सुफेद, वक्र जैसा ।

भिखमंगा—वक्र कैसा होता है ?

गृहस्थ—ऐसा, हाथ को टेढ़ा करके बताया ।

भिखमंगा—(चोंक कर) मैं ऐसी टेढ़ी मेढ़ी चीज़ कदापि नहीं खाऊंगा ।

यह तो मेरे गले में अटक कर मेरे प्राणों को अक्य ले लेगी ।

आपकी चीज़ आप को ही सुगारक हो । मैं अपना रास्ता लेता हूँ । ऐसा कहता हुआ और उस गृहस्थ को उल्टा पुलठा सुनाता हुआ आगे चरता बना । गृहस्थ व बारम्बार पुकारने पर भी उनकी तरफ मुँह तक न फेरा ।

देखो, ज़रासा सुनने समझाने में परक पडा और माखन ऐसा कोमल, प्रिय, सुन्दर तथा प्राणनर्धक पदार्थ कठिन, कर्कश, भयकर तथा प्राणनाशक प्रतीत होने लगा । जब ऐसे साधारण विषय में इस प्रकार का अडचन समझने-समझाने में आ पड़ती है तो, जो सूक्ष्म विषय केवल स्वयं अनुभव-सिद्ध है, उसका क्या पूछना ? क्योंकि,

“ आश्रयो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धः ” (वटोपनिषद्)

चेतना की साधारण स्थिति (Ordinary consciousness) में मनुष्य अपने आपको बहिष्करण तथा अन्तर्करण में लीन और आत्मसात् (Involved and identified) किये हुये इन्हीं पर निर्भर करता है । शरीर तथा इस छोटे बाहरी व्यक्तित्व (This external bit of his personality or this outer little self) को ही सब कुछ समझे हुये हैं । उसको ऐसी मान्यता सदा बनी रहती है कि, “ शरीर से वह जीता है, आँख से वह देखता है, कान से वह सुनता है, मन से वह विचारता है, इत्यादि इत्यादि । ” परन्तु यह भावना तथा अनुभव कि, “ उस से शरीर जीवन धारण करता है, उससे आँख देखता है (येन चक्षुषि पश्यति केन-उपनिषद्), उससे कान सुनता है (येन श्रोत्रमिदं श्रुतम्-के० उ०), उससे मन विचारता है (येन आहु. मनो मतम्-के० उ०) इत्यादि इत्यादि ” कठिन साधना करने के उपरान्त साधक को कुछ कुछ प्रतीत होने लगते हैं । अभी तो साहेब कबीर की बानी में ‘ ओरी के पानी बरेड़िये जाय ’ की दशा हो रही है । पर्पाकालमें खपडेपोश (नडियावाले tiled) मकान पर जब पानी बरसता है तो ढालें छान्नी के नीचले भाग से, जहाँ टोटी सी लगी रहती है, ऊपर का सब पानी सिमट सिमट कर निकलता है । छान्नी के इस निचले भाग को “ ओरी ” (Eaves) कहते हैं और छान्नी के सत्र से ऊपरवाले भाग को ‘ बरेडी ’ कहते हैं । नियम तो यह है कि, बरेडी का पानी ओरी द्वारा निकला करे, नकि ओरी का पानी बरेडी के ऊपर चढ़ा करे । पर साहेब कबीर उक्त सरल पर सम्यक्, ग्रामीण पर सारगर्भा वाणी द्वारा जन साधारण की चेतना-स्थिति का कैसा समुचित चित्र (Photo) खींच कर बताते हैं ! पर्पा को सत्-ज्ञान सत्-आदेश अथवा ब्रह्म-ज्ञान ब्रह्म-आदेश समझो, बरेडी को आत्मा अथवा ब्रह्म समझो, ओरी को करण (अन्त-

तथा बहिः) ममज्ञो । पानी पड़ने को जगह संसार ममज्ञो । समुचिन तो यह था कि, आत्मा स्वच्छ जलरूप सत्-ज्ञान वा सत्-आदेशों को ओररूप इन्द्रियों द्वारा संसार पट पर चरितार्थ करके इसको निर्मल करता । पर ऐसा न करके सासारिक विषय-वासना रूपा दुर्गेन्ध जल को इन्द्रियों द्वारा ग्रहण करके, ऊपर को चढ़ाकर आत्मा को कलुषित तथा मलिन आवरणों में आच्छादित कर रहा है । यही जनसमुदाय को विपरीत-करणों है, जिसको सद्गुरु साहेब देख कर बौल उठे “ ओरिया के पानी बरेड़िये जाय । ” सीधी और शुद्ध स्थिति का सरस तथा मर्मभेदी वर्णन तो, नीचे लिखी साखी में है, जो मननीय और माननीय भी है—

“ कबीर सीप समुद्र का, खारा जल नहि लेय ।

पानी पीवै स्वाति का, शोभा सागर देय ॥ ”

सा० प्र० पृ० २१८

जैसे सीप समुद्र में वास करते हुये भी समुद्र के खारे जल को न लेका, स्वाति नक्षत्र के वर्षा-झूंद को अपने भीतर धारण कर, मोना तैयार करके सागर को शोभायुक्त करता है । वैसे ही सत्-पुरुष संसार में रहते हुये भी संसार के विषय वासना में लिप्त न होकर, अपने सत्-ज्ञान से संसार को शोभायमान करते हैं । कहा गये सिंह उपाध्याय जी, पोथाधारी शास्त्री जी, अभिमानी दलीलराज जी जो साहेब कबीर को उटपटांग बोलनेवाले, भुनुगा आदि घृणित नामों से पुकारते हैं ? ऐसे सत्-गुरु, मम-उपदेष्टा वो दिव्य-द्रष्टा को जो उटपटांग बोले उनको जो कुछ कहा जाय वही थोड़ा है । क्या, बूझ-उल्टे चोर कोतवाल को दंडे !

साधारण मानव-स्थिति में कर्ता-पुरुष (Creative soul) सोआ (Sleep-bound) रहता है, अथवा घर के झगड़ों के शान्त होने की बात देखता रहता है, अथवा प्रकृति के मोहिनीरूप में चकाचौंध होकर अपने आपको भूला हुआ रहता है । प्रकृति के स्वामी बनने के बदले इसीका दास बना हुआ रहता है । स्वामी होकर दासी का दास बना ! कैसा भृगुपतन है ! ! इस पतित अवस्था में पड़ा हुआ जीव यदि वेदव्यास, मुनि वाल्मीकि, योगेश्वर कृष्ण, आचार्य्य शंकर, स्वामी रामानन्द, साहेब कबीर आदि स्वराटों (Self-masters) और सम्राटों (World-masters) की शक्तियों तथा चमत्कारों पर आशंका करे तो, इसमें कोई आश्चर्य की बात ही नहीं । जो गीदड़ सूखे पत्तों की खरखराहट में भयभीत होता रहता है, वह बनराय केसरी के सामर्थ्य का अन्दाज़ा कैसे लगा सकता है ? भारतवर्ष के नामी पहिल्यान गामा की ताकत का पता संसार के नामी योद्धा (World-champion) जयिस्को को लगा, क्षयी-पीड़ित कंकालशेषों को क्या लगना है ? सिंह के बल को भूधराकार वृक्ष उखाड़नेहार मदमस्त हस्ति ही जानता है, चूहा (Under Mouse) नहीं । वसन्त के गुण को कोकिल जानकर मस्त हो जाता है, काक क्या समझे ? " करी च सिंहस्य बल न मूपकः, पिको वसन्तस्य गुणं न वायसः । " इसी प्रकार साहेब कबीर की सचोट आध्यात्मिक कविता को (Where more is meant than meets the ear-Milton) जग-विख्यात कमीन्ड रवीन्द्रनाथ टागोर ने Kabin's Poem (कबीर साहेब की कविता) अंगरेजी भाषा में प्रकाशित कर साहेब के मूल्यों तथा प्रशंसक Underman । में सर्वमंश्री भूमिका लिगाकर समुचित मान दिया । परन्तु चुनकर जो चपल

लेखक, पश्चिमीय साहित्य-सैन्य माला (Men of Letters Series) के लकीर के फकीर लेखक, कविता के चोर वो कोर के रगड़नेवाले, पैमे पैमे पर कलम बसनेवाले (Penny-a-liner) कवीर माहंथ की सहज कवि-शक्ति तथा रहस्यमय उक्तियों को क्या जाने, पहचानें और मान करें ! " गुणी गुण वेत्ति न च वेत्ति निर्गुणी " माहंथ की सिद्धियों को बादशाह शिकंदर शाह लोटा और उनके गुरु शंखनकी आह जाने । उनके आत्मबल का परिचय बलब बुखारे के बादशाह सुल्तान अहमद शाहको मिला, जो " बन्दीछोड " का पद उन्हें दिया । जड़-मूर्तियों पर उनके प्रभाव के बारे में धर्मदासजी तथा गोलकाण्डा के बादशाह, यानाशाह के मन्त्री के जमाई गोयाना, भद्र-चालम के राममन्दिर के पुजारा को पता चला । कर्तापुरुष की बातें कर्तापुरुष ही जानें या जिनको वो जनावे वे जानें ।

“ यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः । ”

ऐसे कर्ता-पुरुषों (creative souls) के मनोमय कोष में भी कर्तृत्व-शक्ति (creative mind) भरी रहती है । ये महापुरुष संकल्पमात्र में कठिन में कठिन कार्य सम्पादन किये हैं और कर सकते हैं, जो निम्नस्थों के मस्तिष्क में समा नहीं सकते । इसमें इन विचारों का भी कुछ दोष नहीं । जैसी स्थिति, वैसा ज्ञान । जैसी समझ, वैसी वार्ता । आग्रा के ताजमहल की बूजियों (towers) पर से जो जमुना का विस्तृत और साहसना दृश्य दिखाई देता है वो नीचे के कमरों में से बैठ बैठ कैसे मालूम पड़ेगा ! कुछ ऊपर चढ़े तो ऊपर चढ़े की बात समझे । कुछ " गगन-मंडल " में उडे तो उडेहुओं का तमाशा देखे । कुछ, उन्नत कार्य करे तो, उन्नतों का कार्य समझ में आवे । ध्यान धर के सुनो जो एक महान तत्त्ववेत्ता (जिन्होंने अपने

जोर्गे, जॉर्ज, काले कुचैले, शरीर के अंग प्रत्यंग को तपोबल द्वारा परिवर्तन कर—transforming the minutest cells of his body by tapas Shakti हटपुष्ट, स्वस्थ रोगमुक्त—immune from disease—सर्वांग—सुन्दर, काया-कल्प वो काया-कंदन बना चुके हैं) बल पूर्वक आत्म-अनुभव की बात कहते हैं :-

“ All these things we observe and reason of in terms of this embodiment of mind in matter; for these sheaths or koshas (कोष) are formations in a more and more subtle substance reposing on gross matter as their base. Let us imagine that there is a mental world in which mind and not matter is the base. There sense would be a quite different thing in its operation. It would feel mentally an image in mind and throw it out into form in more and more gross substance; and whatever physical formations there might already be in that world, would respond rapidly to the mind and obey its modifying suggestions. Mind would be masterful, creative, originative, not as either obedient to matter and merely reproductive or else in struggle with it.”

(Arya by Sri Aurobindo)

“ In more detail, particular forces, movements, powers, beings of a higher world can throw themselves on the lower to establish appropriate and corresponding forms which will connect them with the material domain and, as it were, reproduce or project their action here.”

(The Riddle of this world by Sri Aurobindo).

महान् तत्त्वज्ञा श्री अरविन्द के उक्त कथन का सारांश यह निकलता कि, साधारण मानव-स्थिति में मनोमय-कोष का आधारभूत

जड़ प्रकृति है । उच्च चेतना के मसर्ग से तब यह मन शुद्ध तथा

(Spiritualised) हो जाता है, तब यह जिस कल्पित रूप

का अपन में गड़ा कर जड़ जगत में फँसता है उस रूप को नष्ट प्रकृति स्थूल रूप में धारण कर जगत में चरितार्थ करती है। इस स्थिति के मनोमय कोष में व्यापित, कर्तृत्व तथा मूलकत्व मड़ा विगलित हैं ।

अन्यथा यह प्रकृति का दाम बना रहता है । सिंह हाकर, अज्ञान में गोंदड़ को अपना बराबर समझ कर, उमा में लड़ना भीन्ता रहता है । इस रहस्य को सब कोड़े कमें जान ना समझे । यथा—

“ नित लट सिंह सियार (Jaekal) में जूझे ।

कबीर के पद जन विरला जूझे ॥ ”

(साहेब कबीर)

आगे चलकर उक्त तन्त्रवेत्तानी और भी स्पष्ट कर दत है कि, उच्च आत्मा या कर्तापुरुष अपने मूल्य या सत्-लाभ से अपन तन का इस प्रकार से स्थूल जगत अथवा भूलोक पर फँस सकता है कि उसका एक प्रतिरूप जगत में मादूम पड़ जो उसका कार्य्य वहा पर किया करे । ऐसी अवस्था में यह अपन तेना, व्यक्त तथा अव्यक्त, क्षर तथा अक्षर, (Mutable and immutable personal impersonal selves) म्यों में मचेत विरानमान रहता है । एक दूसरे में सम्बन्ध नेतार के तार (Radio Transmitter and Radio Receiver) की तरह अदृश्यरूप में मड़ा खड़ा रहता है, जैसा के साहेब कबीर ने अपन गोंग में मधुररूप में सकेल किया है —

•रइता (Immutable), पुरुष कबीर है,

चलता (Projected mutable personality) हैमो मेख ।

कहाँ कहाँ खोलकर स्पष्ट कर दिया है । यथा—

“अब हम अविगतसे चलि आये, काहू भेद मरम नहीं पायें ।
ना हम जन्मे गर्भ वसेरा, बालक होय दिखलाये ।
काशी शहर जंगल विच हेरा, तहाँ जुलाहा पाये ।
ये विदेह देह धरि आये, काया कवीर कढ़ाये ।”

माहेब कवीर के इसी विलक्षण अवतरण तथा उनकी अनादि योग—
माया को कबीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोर इस प्रकार अंगरेजी में लिखते हैं:—

“Brahma did not hold the crown; the God Vishnu was not anointed as king; the power of Shiva was still unborn; when I was instructed in yoga. I became suddenly revealed in Benares.”

(Kabir's Poem by Ravindranath Tagore).

इस विषय को और विस्तार रूप दिया जा सकता है । पर
समझदार के लिये काफी है । नासमझ को कहा तक समझाना !
अन्त में, गरीब साहेब के सत्य वचन को सामने रख कर, इस प्रकरण
को यहाँ छोड़कर, आगे बढ़ना ही उचित प्रतीत होता है :—

“गगन मंडल से उतरे, सतगुरु, पुरुष कवीर ।

जलज मांहि पोदन किये, सब पीरन के पीर ॥”

[मंत्र साहेब]

अर्थात् सत्-गुरु, सत्-पुरुष, सब पीरों के पीर, माहेब कवीर,
(मन्वत् १४५५ के जेठ की पूर्णिमा के ब्राह्म मुहूर्त में) गगन
मंडल से उतर कर, (काशी के लहर तालाब में) कमल पुष्प पर
प्रकट हुये ।

॥ खंड-दूसरा ॥

“ गुणाः पूजाम्थान न च लिंगं न च वयः । ”

(भवभूति)

“ गुण पूज्य है, नकि, वर्ण, आश्रम अथवा उमर । ”

जो कोई अपने को कुलीन मान कर, दूसरों को कुट्टीन समझ कर, गुणा को दृष्टि से देखता है, और जो कोई अपने को कुट्टीन मानकर, दूसरों को कुलमान समझकर, आदर की दृष्टि में देखता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ (Deluded) हैं। एवं जो कोई अपने को उच्च वर्ण का समझ कर दूसरों को नीचा देखता है, और जो नीचा वर्ण का अपने को नीच वर्ण का समझकर दूसरों को उचा देखता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। तथा जो कोई गेरुआ वा भगवा वस्त्र धारण करने में अथवा घौला कपडा वा तिलक छाप (Trade-mark व्यापार-चिन्ह) केवल लगाने से अपने आपको ब्रह्मनिष्ठ अथवा भक्तराज समझ कर, दूसरों को विषय-लित अथवा समझता है, और जो कोई गृहस्थ माता शरीर पर सादा कपडे रखने में अपने को रोगे ब्राह्म की अपेक्षा निश्चिष्ट मानता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। इसी प्रकार जो कोई अपने को केवल बड़ी उमरवाला (Older in age) समझ कर, दूसरों को अपने से कमअक समझता है, और जो कोई अपने को फक्त छोटी उमरवाला समझ कर, दूसरों को अपने से अकमंड समझता है, वे दोनों के दोनों मूढ़ हैं। क्योंकि,

“ यत् भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः । ” (श्रुति)

“ जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् भवेत् द्विजः । ” (स्मृति)

“ जन्माद्यस्य यतः । ” (वेदान्त)

“ ममैवांशो जीवल्लोके जीवभूतः सनातनः । ” (गीता)

माराश यह निकला कि धीर, स्थिर बुद्धिवाले धीमान लोग उस ऋतु निम्न विभु के गर्भ से निकले हुये सभी को जानते हैं। जन्म से सब कोई गूढ़ पैदा होता है, संस्कार से श्रेष्ठ बनता है। इस जीवलोच में यह जीवात्मा उसी भगवान का ही सनातन अग्र है। पुराण कुरान अथवा बाइबिल (Bible) के अनुसार भी सब मनुष्य व आदमी एक मनु अथवा आदम से पैदा हुये हैं। सब के कुल वे मूल पुरुष तो, वही एक ही निकलना है। फिर कुलीन कौन और कुलहीन कौन, ऊंचा कौन और नीचा कौन ? ऐसे गम्भीर ज्ञान माननीय प्रमाण तथा सार्वभौम इतिहास के सामने रहते हुये भी किसी के गुण की तरफ न देख कर, केवल “ जौलाहा ” “ जौलाहा ” पुकार कर, अपमानित करते जाना, कहा तक न्याय-संगत है ? पूजा गुण की करनी चाहिये, न कि, कुल और कपड़ों की। पिछले खंड में बताया जा चुका है कि साहेब कबीर कहा से आये। उनका कुल वो मूल अक्षर पुरुष है। वह गीता की भाषा में साक्षात् ऊर्ध्वमूलः अधःशास्त्रः थे। परन्तु थोड़ी देर के लिये यदि मान भी लिया जाय कि साहेब कबीर जौलाहे के घर में हुये वा पले तो इसमें घृणा से नाक निकारने की कोनसी बात है ? सिलमिले बार बार बाहर दोनों की सुनो, —

वाल्मीकि किरात के घर पैदा होकर, राहगीर, बटमार और हथियार के जीवन व्यतीत कर, पीछे सत्-संग से मुनि-पद को पाये। वशिष्ठ जी वेण्या के पुत्र होकर, अपने तपोबल से भगवान रामचन्द्र के गुरु बने। नारद दासी-पुत्र होकर, भक्ति के प्रभाव से देवर्षि कहाये। हजरत ईशा (Christ) बिना बाप के पैदा होकर भी एक महान धर्म (Christianity) का प्रवर्तक बने। अगस्त्य बिना मा

के घट से उत्पन्न होकर भी ऋषि पद को पाये । कृष्ण अहार (जिस को सामाजिक स्थिति जोलाहे को ऐसी है) के घर में होकर अथवा पल कर जगत्-गुरु बने । फिर साहेब कबीर के प्रति इतना रगडा झगडा क्यों ? उन पर आश्चर्य से आख फारने से क्या मतलब ? सत् सुलसी दासजी ने भी गुणग्राहकता को और ध्यान खींचते हुये, अपनी रामायण में इस प्रकार अंकित कर, प्रशमनीय उदारता का परिचय दिया है —

“मज्जन फल देखिय ततकाला । काक होहिं पिक बकड मराळा ॥
मुनि आचरज करइ जनि कोई । संत-संगति-महिमा नहिं कोई ।
बालपीकि नारद घटयोनि । निज निज मुखन कही निज होनी॥”

“सत्-सगरूपी तीर्थ में स्नान करने का फल तत्काल दिखाई देता है कि कौए कोयल और बगुले हस हो जाते हैं । यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे, क्यों कि सत्संग की महिमा छिपी नहीं है । माल्मीकि, नारद और अगस्त्य ने अपनी उत्पत्ति अपने मुखों से कही है ।”

जब नीच से नीच कुल में उत्पन्न होकर तथा घृणित से घृणित तरीके से जन्म लेकर भी सत् के सग से उच्च से उच्च पद तथा मान को मनुष्य प्राप्त कर लेता है, तो जा स्वयं सत् के अवतार साहेब कबीर थे उनका क्या पूछना ? विस्तार के भय से पुश्तली-पुत्र ऋषि जावाली, नियोग से उत्पन्न धर्मराज युधिष्ठिर आदि का उल्लेख करना ठीक नहीं प्रतीत होता । पर ऊपरी आडम्बर को छोड़कर सदा भीतरी गुण पर ध्यान देना चाहिये । व्यक्तित्व की कीमत होती है, न कि, जातीयता की । क्योंकि,

‘जातिमात्रेण न कश्चित् दन्यते पूज्यते कश्चित् ।’

राम क्षत्रिय वश अथवा जाति के थे और राम ब्राह्मण कुल अपना जाति का था । पर राम भगवान कहाये कि जिनका नाम आज

लम्बों वर्ष के बाद भी सब वर्णों के लोगों की जिह्वा से आदरपूर्वक निकलता है। और रावण राक्षस कहाया जो कि अब तक घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। फिर यही राम के कुत्र में लप कुत्र हुये। उनका कोन नाप करता है? फिर लप कुत्र के गड में जो जो हुये उनके नाम तक लोग नहीं जानते। सदा तब की तरफ दृष्टि रखनी चाहिये, नकि ऊपर के आचरण के ऊपर। सहैत्र ने कैसा सचोद उपमा—सहित सामी कही है।

“ जात न पूठा साध की, पूठ लीजिये ज्ञान ।

पोल करो तलवार की, पड़ी रहन टो म्यान ॥”

साधु की जाति पाति की कीमत नहीं, उसके ज्ञान की कामत है। तलवार क चमकिले म्यान (Sword-cuse) को बाहर हटा कर, तलवार की कीमत करनी चाहिये। भगवत—भक्त तथा तन्मयता प्राप्त हुये में जाति पाति का प्रश्न रहता ही नहा। वह भगवान का एक स्वरूप बन जाता अथवा बना रहता है। यथा,

“ वीतरागभयक्रोधा मन्यया मामुपाश्रिताः ।

बहुनो ज्ञानतपसा पूता मदभावम् आगताः ॥ ”

(गीता)

‘ राग, भय और क्रोध से रहित अनन्य भाव से मेरे में स्थितिवाले मेरे शरण हुए बहुत से पुरुष ज्ञानरूप तप से परिश्रु हुए मेरे स्वरूप को प्राप्त होचुके हैं।’ जब बल्लभ बुम्बारे के बादशाह सुल्तान अहमदशाह का साहज कबीर के आमंत्र का परिश्रय मिला तब बंधे माधुलोग साहज को ‘ मन्दीछोड ’ कह कर चिन्ता उठ और खुद ‘ सुल्तान, साहज के पैरों पर गिर कर कातर स्वर से व्रितति करने लगा —

“ हमारी जान बक़शो, आप तो खुद खुदा की जात, पाक वो साफ़ हो ”

कनाद रवींद्रनाथ टागोर ने भी इसी अभेद भाव को अंगरेजी में निम्न प्रकार दर्शाया है ।

“ It is needless to ask of a saint the caste to which he belongs

For the priest, the warrior, the tradesman, and all the thirty-six castes alike are seeking for God

It is but folly to ask what the caste of a saint may be.

The barber has sought God, the washerwoman, and the carpenter Even Ravidas was a seeker after God The Rishi Swamicha was a tanner by caste Hindus & Moslems alike have achieved that End where remains no mark of distinction

(Kabir's Poems by Ravindranath Tagore)

किसाने क्या ही सच कहा है ।

“ जान पान न पूछे कोई, हरि को भजै सो हर को होई । ”

॥ खंड-तीसरा ॥

“ ज्ञानाग्निदग्धकर्माणं तं आहुः पंडितं बुधा ”

(गीता)

“ उस ज्ञानरूप अग्नि-द्वारा भस्म हुये कर्मों वाले पुरुष को बुद्धिमान जन पंडित कहते हैं । ”

बुद्धिमानों के पंडित और मूर्खों के पंडित में भेद है । बुद्धिमानों की दृष्टि में वह पंडित है जिसने अपने ज्ञान के प्रभाव से कर्म के बन्धन को छिन्न भिन्न कर डाला है । और मूर्खों की नजर में वह पंडित है जो मोटी मोटी प्रख्यात पुस्तकों (वेद, कितेब—The Vedas, the Bible, the Koran, श्रुति, स्मृति, शास्त्र, पुराण, रामायण, भागवत, महाभागवत, गीता आदि) को पाठ तथा क्या मनोहर रूप से किया करे । पाठ तथा क्या के ज्ञान में परे रहने अथवा विपरीत आचरण करने से भी पंडित नाम ज्यों का त्यों बना रहता है । फोनोग्राफ के रेकर्ड (Phonographic Record) की तरह दूसरों के मन को खुश किया करे, पर अपने तो अशान्त होकर उक्त रेकर्ड की सदृश चक्र में फिरा करे । तोते (पोपट) की तरह मोठे स्वर से “ सोऽहं ” का जाप सिखाया तथा किया भी करे, पर अपने सत्य-रूप से सदा भिन्न रह कर, विपरीत करनी करता हुआ, कर्म के बन्धन-रूप पंजरे में उक्त तोते की तरह ज़क़रा भी रहे । ज्ञानी पंडित स्वर्गीय संकल्पों को फिनारे करता हुआ, प्रभुप्रेरित कर्मों को निष्काम तथा निःस्पृह भाव से संपादन करता हुआ भी कर्मों के फन्दे से सदैव अलग रहता है । पर मूर्ख-पंडित शास्त्र तथा ज्ञान

की बात चिन्ता चिन्ता कर पढ़ता अथवा सुनाता हुआ भी अपने को उससे सदैव वंचित रखता है । यथा,

“शास्त्राण्यधित्यापि भवन्ति मूर्खाः ।

यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान् ॥ ” (नीति)

“शास्त्रों को पढ़कर भी मूर्ख होते हैं । जो शास्त्रज्ञान के अनुकूल आचरण करता है वही विद्वान् है । ”

एक-शास्त्री हो अथवा पद्मशास्त्री हो, द्विवेदी हो वा चतुर्वेदी, पर यदि जो वेदों, शास्त्रों के ज्ञान को आत्मसात् नहीं किया, जो ज्ञान को धूर्त दुकानदार की तरह केवल दूसरों के मन को आकर्षण कर, पैसा आदि ब्याचने के निमित्त दिखावा-गृह (Show-room) में रखे रहता है, जो शास्त्र-ज्ञान से तन्मयता न प्राप्त कर, अपने आचरण से उसको स्पष्ट नहीं करता है, वह शास्त्रा-मूर्ख है । और जो वेदान्त आदि शास्त्रों की मारा-मारी (Intellectual fights disputes and quarrels) से विचकुक अनभिज्ञ रहकर भी, यदि अपने रूप में स्थित होकर अपना वर्तान तथा आचरण को शुद्ध रूप में प्रगट करता रहता है, वह अपठित-विद्वान् है । नीति के उक्त भाग को साहेब कबीर ने सरल ग्रामीण उपमा के साथ निम्न शास्त्री में कैसा सचोट स्पष्ट किया है !

“ करनी बिन कथनो कथै, अज्ञानी दिनरात ।

कूकर ज्यों भूकत फिरे, सुनी सुनाई बात ॥ ”

(सा० प्र० पृ० ३६१ सं. ४)

उक्त अर्थ में हम कहा करते हैं कि साहेब कबीर “ अपठित विद्वान् ” थे, और गीता के अनुसार “ बुद्धिमानों के पंडित ”

थे, अक्षर रूप में “ ऊर्ध्वमूळ ” थे और शरीर रूप में “ अवः-शाख ” थे । यह बात बिल्कुल ठीक है कि साहेब व्याकरण, वेदान्त आदि ग्रन्थों के मूल, भाष्य अथवा महाभाष्य को रटे हुये नहीं थे, और न उनको ये सब रटने की जरूरत ही थी ! वह न्याय के “ अन्वय ” “ व्यतिरेक ” आदि के प्रपञ्च की रगड़ से अलग थे, और न उनको ये सब रगड़ में पड़ने की कुछ आवश्यकता ही थी । द्रव्य में गुण है कि गुण में द्रव्य है ऐसे निरर्थक शास्त्रार्थों अथवा वाद-विवादों से परे थे, और न उनको ये सब वादविवादों की आवश्यकता ही थी । उनको तो “ एके अनेके अनेके सौ एके ” (Unity in diversity) का प्रत्यक्ष ज्ञान (Direct perception) था । फिर उनको बेकार झगड़ा से क्या मतलब ? व्याकरण पढ़ा जाता है लौकिक तथा वैदिक साहित्यों को समझने के लिये, और साहित्य पढ़े जाते हैं प्रकृति वो पुरुष के ज्ञान के लिये । परन्तु पुस्तकों से सदा परोक्ष (indirect) ज्ञान हुआ करता है । फिर जिस साहेब कबीर को प्रकृति वो पुरुष का सहज तथा प्रत्यक्ष ज्ञान था, उनको उक्त पगथियों (stanzas) पर माथापची करके परोक्ष ज्ञान लेने से क्या मतलब ? डंगर (mountain) खोद कर ऊँदर (mouse) निकालने से क्या प्रयोजन ? मुनी और समझोः—

एक था राजा जो पठित था । उसके कोष में कोटानुकोट रुपये, बहुत सोने वो बहुमूल्य रत्न आदि पड़े रहते थे । उसकी आल्मारियों (Book-Shelves, almirahs) में वेद वेदान्त, इतिहास पुराण आदि अनेक ग्रन्थ भी प्रिजमान थे । राजकीय कार्य से अवकाश मिलने पर ग्रन्थों को रस्य अवलोकन भी लिया करता था तथा कबको से इनकी कथा भी सुना करता था । उसकी रानी कुछ भी पढ़ी लिखी

नहीं थी। पर सांसारिक घटनाओं को विचार-पूर्वक देखा करती थी और आप ही आप कुछ मन्तव्य निकाल कर मनोमय कोष में एकत्रित किया करती थी। संसार के सब पदार्थों का एकमात्र स्वामी, भगवान को, दिल से समझती थी। राजा के पुरोहित तो खूब पड़े लिखे थे और अच्छे कथक्कड़ भी थे। मोटी मोटी पोथियां वो थैलियां घर में तयार साथ भी रखा करते थे। कथा का पूर्णाहृतियों के समय पर पोथियां फुटों से तर हो जातीं और छिद्रुड़ी हुई थैलियां रुपयों से भर कर फूट जातीं। कथा के आरम्भ करते ही पूर्णाहृति के दिन वो तिथि उनके ध्यान में उपस्थित होजाती थी। भायी (Coming) पूर्णाहृति की आमदनों का हिसाब दिनरात में कई बार जोड़ लिया करते थे। अभिष्ट से काम की आशंका सदैव लगी रहती थी। फिर दूसरी जगह कथा करने का प्रोग्राम (Programme) आपही आप रचकर मन को समझाते बुझाते। इसी उधेड़-धुन में जीवन का अधिका समय बीता करता था। निनावे का फेरा ही ऐसा है। उमर तो साठ तक पहुंच कर शरीर को कुछ झुका चुकी थी पर तृष्णा तो वर्षाकाल के तरुण तरुण के ऐसा दिन दूना वो रात चौगुना सीधी ही बढ़ती जाती थी। जैसे राजा को दो तिन लड़के लड़कियां थीं वैसे पुरोहित जी को भी। एक दिन पुरोहित जी अपने घर के निकटवर्ती राजमहल में पधारे। राजा ने पुरोहित से कहा कि गीता का कुछ ज्ञान सुनाओ। पुरोहित ने एवमस्तु कहकर :-

अन्तवन्त इमे देश नित्यस्योक्ताः शरीरिणः—

के आधार पर शरीर को मरणशील, अन्तवाला तथा आत्मा को नित्य और अनन्त, अनेक प्रमाणों तथा रोचक उदाहरणों से सिद्ध कर दिखलाया। वार्ता के बीच बीच में राजा रानी को (जो कौंसी

दूसरे विचार में मग्न थी) पुकारा करते थे कि जिनमें वह भी इस गान को ग्रहण करें । वह एक बार आई और थोड़ी देर सुन कर चली गई । थोड़ी देर के बाद पुरोहित भी अपनी वक्तृता समाप्त कर राजा को खुश कर, दक्षिणा रूप नगद नारायण (Cash) पर हाथ रखते हुये अपने घर को सिधारे । दैन्ययोग से दो ही दिन के बाद राजा तथा पुरोहित के बच्चे लड्डके महामारी (Cholera) रोग से ग्रस्त हुये ओ लाख दवादाख् करने पर भी दोनों ही के शरीर का अंत होही गया । इधर राजा आर्तनाद से रोते थे और उधर पुरोहित भी छाती पीट पीट कर चिल्ला रहे थे । रानी शान्त तथा प्रसन्न चित्त में बैठ रही थी । लोग विस्मय में आकर रानी से पूछने लगे । उसने यही कहा कि शरीर नाशमान है, ऐसा तो मुझे अनेक मृत्यु-घटनाओं में प्रत्यक्ष ही था, पर आत्मा नित्य है वह पुरोहित के परसों के प्रवचन से सिद्ध ही होगया है । फिर रुदन करके शोर मचाने की कीन सी जगह है ' इसके अतिरिक्त सारा ससार का एकमात्र स्वामी भगवान है । वही न्यायानुसार सब को देता है और ले भी लेता है । वह देवे, न देवे, दिया हुआ भी ले लेवे, इसमें किसी का क्या चारा है ? थोड़े ही सरल और सच्चे शब्दों में ज्ञान, वैराग्य, भक्ति, समर्पण आदि के मूल मंत्र बता दो और उन पर रत कर दिखादी । विचारो, तीनों के सामने एक ही घटना समानरूप से उपस्थित है । अपठित अवला शान्त है और पठित राजा तथा पोथाधारी पुरोहित व्याकुल है । साहय ने कैसा ठोक कहा है —

नजर नहीं आवत आत्म-ज्योति ।

कहत कवीर सुनो भाइ साधो, घर घर बांचत पोथी । न०

भाइ, आत्म-ज्योतिवाले को पोथा पोथी की आवश्यकता नहीं है । परम-हंस रामकृष्ण जी क्या पढ़े थे ? उन्होंने कौन सा पोथा लिखा

हे ! परन्तु उच्च से उच्च कोटि के विद्वान् स्वामी विवेकानन्द जी ऐसे भी उनको अपने गुरु के नाम से पुकारने में फखर (Pride) समझते थे । उनके नाम पर सेवा-आश्रम आदि खोलने में कल्याण समझते थे । जगत में विख्यात फ्रेन्च लेखक रोमा रोलाण्ड (Roman Rolland) ने उनका विस्मय-जनक जीवन लिखा है । हज़रत ईशा (Christ) अपना हस्ताक्षर (Signature) भी करना नहीं जानते थे । पर आज करीब दो हज़ार वर्ष के बाद भी उनकी उक्तिया प्रमाणरूप से कही जाती हैं । लोगों में उनकी प्रतिष्ठा ऐसी बढ़ी कि उनकी जन्मतियि से ईगवी सन् वा सम्बत का आर्विभाव हुआ, जो आजन्म चाह है और आगे भी चाह रहेगा । पोथा पोथियो को बहुत पढ़ने से तो किसी को सत्य-ज्ञान न होकर उल्टा भ्रम बढ़ जाता है और कभी कभी धुंवरारा भी बन जाता है । अनेकों को तो मिथ्या अभिमान का ऐसा गाढा रंग चढ़ जाता है जो जीवन के अन्त तक साफ होता ही नहीं । बलके दिन प्रति दिन बढ़ता ही जाता है । “ पयःपानं भुजंगाना केवलं त्रिष-वर्धनम् ” की दशा होती जाती है । अप्रुतरूप दूधपान साप में त्रिष ही उत्पन्न करने का निमित्त बनता जाता है । मन में पांडित्य का अहंकाररूप मल ऐसा भर जाता है कि सत्-ज्ञानरूप ब्रह्म (सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म-उपनिषद्) में लीन होने की जगह भ्रम में चकर मारते रहते हैं । अभी थोड़े ही दिन की बात है कि गुजरात में एक प्रख्यात ब्रह्मनिष्ठ, गीता के ज्ञान के मन्दिर को रचानेवाले, अपने को विद्या के पंडित माननेवाले, भ्रमनिष्ठ सबूत हुये और इस प्रदेश से बाहर भुस छिपा कर भागे फिरते हैं । पहले बहुत दिन तक गुप्त रही । पर अब तो सर्व साधारण (Public) में एकदम प्रकट होगई । ननु नच अगर मगर की जगह भी नहीं रही । यथा:—

अविद्यायां अन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पंडितं मन्यमानाः ।
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढा अन्येनैव नीयमाना यथान्धाः ॥

(उपनिषद्)

आत्मा असंग है (असंगोऽयं आत्मा) का उलटा पाठ पढ़ कर घर कुर्कर्म में रत होते हुये भी अपने को पंडित वो ब्रह्मनिष्ठ कहते ही जाते हैं । असत् पदार्थ वो विषयों से गला जोड़ते हैं और सत् ब्रह्म को अपना प्रीतम (Beloved) बनाना छोड़ बैठते हैं । कबीन्द्र रवीन्द्र ने साहेब के इसी भाव को अंग्रेजी में इस प्रकार व्यक्त किया है—

I have learned the Sanskrit language, so let all men call me wise; but where is the use of this, when I am floating adrift, and parched with thirst, and burning with the heat of desire ?

Kabir says : " To no purpose do you bear on your head this load of pride and vanity. Lay it down in the dust and go forth to meet the Beloved. Address Him as your Lord."

(Ravindranath Tagore).

केवल वेद कितेव के पठन पाठन से, शाल्प पुराण की कथा करने कराने से, अहं ब्रह्म वो शिवोऽहं अथवा राम राम और श्याम श्याम के चिल्लाने से, तिलक छाप करने कराने से, साहेब की साखी शब्दों को ढोल मंजीरा पर गाने बजाने से भी (जैसा के साहेब स्वयं कहते हैं—

माला पहिरें टोपी पहिरें, छाप तिलक अनुमाना ।

साखी-शब्द गायत, भूले, आत्म खबरि न जाना ॥

कबीर साहेब का बीजक, शब्द नं. ४

आत्मा को खबर नहीं पड़ती और कर्म के फास में नहा छूटत । हा, इनसे परोक्ष ज्ञान मिल सकता है । छिपी हुई अग्नि कुछ ऊपर खुली हो सकती है । उत्सुकता उत्पन्न हो सकती है । परन्तु ये सब प्रत्येक को हो, यह निश्चय नहीं । और अभ्यासी को कुछ अधिक सहारा मिलता है । अनुभव मिलाने को जगह मिलती है (to compare spiritual experiences), दृढ़ता आती है । पर मचमुच में है यह गुरुगम्य बात । जब बाहरी अथवा भीतरी सत्-गुरु (External or internal true guide) से भेंट हो जाता है । तब इस सूक्ष्म आत्मज्ञान में कुछ गति भी होने लगती है और ज्ञानोदय से कर्म का पन्दा भी कट जाता है । यथा,

“कर्म फास छूटै नहीं, बँतो करो उपाय ।

सत्-गुरु मिलै तो ऊबै, नहि तो धक्को खाय ॥”

(सा० प्र० पृ० ४०)

न नरेण अवरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधाः चिन्तयमानः ।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति, अणोयान् हि अतर्क्य अणुप्रमाणतः

(कठ-उपनिषद्)

॥ खंड-चौथा ॥

• निवृत्त—रागम्य गृहं तपोवनं । ”

• बीतरागवाले का घर ही तपोवन है । ”

स्थान की विशेषता उसके वामी की विशेषता पर निर्भर है । इसमें कोई संदेह नहीं कि कृत्रिम अथवा स्वाभाविक दृश्य (Artificial or natural scenes) का प्रभाव मरल चित्त के ऊपर अवश्य पड़ता है । पर्यदि चित्त की कोई भी वृत्ति वेग से जाग उठी हो तो, इन दोनों के प्रभाव को दूर फेंक कर अपनी ही स्थापित रखना है । कभी कभी तो उनके माने हुये परिणाम से विलकुल विपरीत फल देखाता है । जैसे, लोगों में ऐसी मान्यता है कि एकान्त स्थल में मन शान्त होजाता है और शुद्धता को भी प्राप्त करता है । ठीक है, कितने मनुष्यों को एकान्त मेान से उक्त दोनों तरह के लाभ मिले हैं और दूसरों को भी मिल सकते हैं । पर प्रत्येक को एकान्त से ऐसे लाभ मिले, यह कोई निश्चित नियम नहीं । क्योंकि घोर से घोर पाप की नींव एकान्त में ही डाली जाती है । हत्या भी निर्जन और नीरव स्थान में की जाती है । कामों को विषय-तृष्णा भी अकेले ही में अधिक सताती है । उठायो कवि कालीदास के मेघदूत को । विचार के साथ अध्ययन करो एकान्त स्थित यक्ष की भीतरी दशा को और उसके कामातुर उद्गार को । किसीने कैसा ठीक कहा है !

“ स्थानं विरिक्तं यतिनाम् विमुक्तये,

कामातुराणां अति कामकारणं । ”

यतियों के लिये एकान्त स्थान मुक्ति का साधन होता है और कामातुरों के लिये काम के वेग को अत्यन्त बढ़ानेवाला बन जाता है ।

अतः सब कुल अपने व्यक्तित्व पर अत्यन्त निर्भर रखता है । दूसरी चीज वा स्थिति एक प्रकार का शामिल-बाजा है । राजा जनक अपने राजमहल में रहते हुये, राजकीय कार्यों को करते हुये, वा के साथ गृहस्थ आश्रम में स्थित होते हुये भी, इन सभी के दृषणों में एकलम-परे रहे । जीवन-मुक्त के पद को पाये । ऋषियां मुनियों से उनका इतनी प्रतिष्ठा बढ़ी कि वे लोग अपने पुत्रों को उनके पास अन्तिम आत्म-शिक्षा अथवा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेजा करते थे । परन्तु तपोवन में रहते हुये, कन्द मूल फल फल पर जीवन निर्वाह करते हुये, जप तप आचरते हुये त्रिश्वामित्रजी कामातुर हो फसे और अकुन्तला की उत्पत्ति करी । फिर युवती होने पर उसी अकुन्तला को कन्व-ऋषि के एकान्त तपोवन में राजा दुष्यन्त के साथ सहसा गर्भ भी ठहर गया । विचार कर देखो आजकाल के तीर्थ-स्थानों को और तपो-भूमियों को । महात्माओं के प्रभाव से जल खल आदि जड़ पदार्थ भी तीर्थ बन गये । उनके वातावरण की धारा (Current of their personal magnetism) ऐसी चञ्ची है कि सरल चित्त-वाले मनुष्य को उस स्थान पर पहुँचते ही शान्ति मिलने लगती है । फिर वही स्थान अधम तथा लम्पट मनुष्यों के अधिकार तथा निरास में चले आने से पापरूप प्लेग-स्थान बन जाता है । हनुमान गढ़ी की रोमाञ्चकारी घटनायें सब पर विदित हैं और महाराजा लायबल केस (Maharaja Libel case) पुस्तक-रूप में प्रकाश होकर धर्म की आड़ में शिकार करनेवाले का भंडा फोर डाला है । चन्द दिनों की बात है कि बल्लभ सम्प्रदाय के एक महान् धर्मगुरु गणिका का पञ्चा गुलाम बन गये । जहा पर रामरनेही रहा करते थे वहा पर गड्ढरनेही रहने लगे । जहा पर विरागी रहा करते थे वहा पर रागी तथा विध्वो

अतः सब कुछ अपने व्यक्तित्व पर अत्यन्त निर्भर रखता है । दूसरी चीज वा स्थिति एक प्रकार का शामिल-बाजा है । राजा जनक अपने राजमहल में रहते हुये, राजकीय कार्यों को करते हुये, छा व साथ गृहस्थ आश्रम में स्थित होते हुये भी, इन सभी के दृषणों में एकदम परे रहे । जीवन-मुक्त के पद को पाये । ऋषियों मुनियों में उनकी इतनी प्रतिष्ठा बढ़ी कि वे लोग अपने पुत्रों को उनके पास अनिम आत्म-शिक्षा अथवा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये भेना करते थे । परन्तु तपोवन में रहते हुये, कन्द मूल फल फल पर जीवन निर्वाह करते हुये, जप तप आचरते हुये विश्वामित्रजी कामातुर हो पसे और शकुन्तला की उत्पत्ति करी । फिर युवती होने पर उसी शकुन्तला को कन्व-ऋषि के एकान्त तपोवन में राजा दुष्यन्त के साथ सहसा गर्भ भी ठहर गया । विचार कर देखो आजकाल के तीर्थ-स्थानों को और तपो-भूमियों को । महात्माओं के प्रभाव से जल स्थल आदि जड पदार्थ भी तीर्थ बन गये । उनके वातावरण की धारा (Current of their personal magnetism) ऐसी चलती है कि सरल चित्त-वाले मनुष्य को उस स्थान पर पहुचते ही शान्ति मिलने लगती है । फिर वही स्थान अधम तथा लम्पट मनुष्यों के अधिकार तथा निग्रह में चले आने से पापपूर्ण प्लेग-स्थान बन जाता है । हनुमान गढी की रोमाञ्चकारी घटनायें सब पर प्रिदित हैं और महाराजा लायपट केस (Maharaja Label case) पुस्तक-रूप में प्रकट होकर धर्म की आड में शिकार करनेवाले का भंडा फोर डाला है । चन्द दिनों की बात है कि बल्लभ सम्प्रदाय के एक महान् धर्मगुरु गणिका का पक्का गुलाब बन गये । जहा पर रामस्नेही रहा करते थे वहां पर राडस्नेही रहने लगे । जहां पर विरागी रहा करते थे वहां पर रागी तथा विषया

जना का जहा बना । जहाँ धारणा, ध्यान का अभ्यास चलता था वहाँ गुरु शिष्य राग रग में मस्त हैं । व्यक्ति-गत आचरण से तपोभूमि रगभूमि बन जाती है और रगभूमि तपोभूमि बन जाती है, वैराग्य-आश्रम (Penance-house) रागभवन (pleasure-house) बन जाता है और गृहस्थों का घर तपस्यास्थल बन जाता है । इसमें घर बाहर की, मकान मंदिर की कोई बात नहीं । कितने वैरागी ब्रह्मचारी वास्तव में घरवारी हैं । और कितने गृहस्थ घरवारी असल में ब्रह्मचारी हैं । वन, इसी प्रकार के घरवारी-ब्रह्मचारी, त्यागी-गृही, जीवन-मुक्त साहेब कबीर, राजा जनक के ऐसा विदेही-देही थे । उन्होंने आत्म-परिचय में उद्घाटन भी किया है -

“ थे विदेह देह धरि आये, काया कबीर कहाये । ”

मान भी लिया जाय कि उनके घर में लोई और धोई नाम की दो लड़कियाँ रहती थीं और कमाल वो कमाली नाम के लड़का वो लड़की भी रहा करती थी, तौभी साहेब के महत्व में कुछ अन्तर नहीं पड़ता, यदि राजा जनक रानी सहित घर में रहते हुये भी विदेही कहला सकते हैं, रामजी सती सीता के साथ सहवास करते हुये, लय कुश लड़कों को उत्पन्न करते हुये भी भगवान का अवतार बन सकते हैं, कृष्णजी अपनी प्रेमस्वरूपा स्वकीया महिला तथा भक्ति-परायणा परकीया गोपा-गनाओं के मध्य में निराजते हुये भी योगारूढ और योगेश्वर बने रह सकते हैं तो, साहेब कबीर को सत्-पुरुष कहने और मानने में कौन सा अड़चन आ पड़ती है ? यहाँ पर साहेब की जीवन-घटनाओं से कुछ उल्लेख करना आवश्यक प्रतीत होता है । इनको विचार-पूर्वक पढ़ कर अपनी राय कायम करनी चाहिये । हठ वश न मानने से साहेब की सत्-पुरुषता में जरि भी कमी कदापि नहीं आने पावेगी ।

कुछ लोगों का ऐसा ज्वाले है कि, कपाल तथा कपारी माहव कपार के निज पुत्र तथा पुत्री था । पर नोची लिली घटनाओं में, कुछ अन्यथा ही बोध होता है । सुन लो, आगे जैसा मन में आवे वसा समझा करना और कहा करना । कोई किसी का मुह चोटे ही गेक सकता है । किसीने ठीक कहा है—ससार का मुह भमार । तथा—जना निचिना अदसुठभारभाज्जी । अर्थात् गोपडी खोपडी को धनि न्यारी ।

शाहनशाह सिकन्दर लोदी (Emperor Sikander Lodi) १५ वीं शताब्दी में दिल्ली के सम्राट्-सिंहासन पर आभाषमान थे । उनके पीर अथवा गुरु शेखतस्ली शाह थे । यह राजगुरु जम्बजी का स्थान झुसी में इलाहाबाद (प्रयाग) के पास गया-जमुना के संगम पर था । अभी भी गायद उनकी कज मौजूद है । उक्त जम्बजी कपार माहव के ज्वलन्त प्रभाव को देख सुन कर मन ही मन गूँघ जलाभूना करते थे । कभी कभी यह भीतरी अग्नि हाल में बड़ोदा राजमहल के घेरे (Compound) में फूटे भूगडे के समान ऊपर आ जाया करती थी । समय समय पर ऐसी द्वेषाग्नि से पीड़ित होकर जम्बजी अपने शक्ति (सैयक) उक्त सिकन्दर बादशाह का उत्तेजित कर साहेब कपार को अनेक प्रकार की ऐसी क्रूर यातनायें डिलाया करते थे कि जिनको सुनकर कलेजा काप उठता है । पर चन्दन ज्यों ज्यों घिसा जाता है त्यों त्यों उसका सुगन्ध जो सुवास, फूटता जो फैलता जाता है, हेना (मेहदी) ज्यों ज्यों पोसी जाती है त्यों त्यों सूखी लाली) निकलती आती है, सोना ज्यों ज्यों तपाया जाता है त्यों त्यों उसका रंग चडता जाता है । अन्त में एक घटना ऐसी आ बनी कि जम्बजी को साहेब कपार के सामने सर झुकाना पडा और हमारे के डिये

मुक्तकूट से ' पारों क पीर ' तथा ' गुरुओं के गुरु ' कहना यो मानना पडा ।

निष्पक्षभास से मुनो नो Rev I E Key, D Litt of London (लन्दन के साहियाचार्य माननीय एफ० ई० का य साहेब अपन Kabir & His Followers (कबीर एन्ड हिज फालोअर्स) नामक पुस्तक में लिखते हैं —

One day, when Kabir was walking on the banks of the Ganges with a certain Shukh Taqqi the corpse of a child was seen floating by, Shukh Taqqi challenged Kabir to raise it to life. This he did, and taking it home he adopted it as his own son. The Shukh said, ' you have indeed shown great perfection (Kamal) ' So the boy was named Kamal. The story of the coming of Kamal is similar. According to some accounts she was a child who had died in the house of a neighbour and Kabir raised her to life according to others, the daughter of Shukh Taqqi, who had already been eight days in the grave.

अथात् एक दिन जब गंगा की तट पर साहेब कबीर जखतका क साज टहल रहे थे एक बच्चे की लाश पानी में टहलता हुई नजदीक नजर आई । जेखतकी न साहेब कबीर को मुर्द को निन्दा कर देने को ग्लकारा । यह साहेब न कर दिखाया, और बच्चे का घर पर ले जाकर अपना पुत्र बना लिया । इस पर शेख ने कहा, “ आपन मजसुच म बड़ा कमाल (चमकार) दिवाई । ” तस, उस बच्चे का नाम 'कमाल' रखा गया । इसा प्रकार 'कमाली' की भी कहा है ।

काई कोई कहते हैं कि साहेब कबीर ने अपने किसी पड़ोसी की मरी लड़की को जिन्दा कर अपनी पुत्री बना ली और किसी के मतानुसार वह शखतकी हा की लड़की थी जा आठ दिन तक कनर में मरी पड़ी रही थी । और साहेब ने उसको जिन्दा कर अपनी पुत्री बना ली । ”

सम्भव है कि पिछली ही बात ठीक हो । वह शखतकी ही को लकड़ी होगी । क्योंकि, इन घटनाओं के पश्चात्, शखतकी शाह साहेब कबीर का परम प्रशसक तथा भावुक मक्त बन गया । ठीक है—

“सच्चाई का हर एक आत्म में जाहरा हो ही जाता है ।

जो इसको देख पाता है वा शोदा हो ही जाता है ॥ ”

मुर्दे को जिन्दा होना अथवा करना कोई अत्यन्त असम्भव बात नहीं है । जिसने इस सम्बन्ध में मृत्यु-घटनाओं को विचार-पूर्वक अनलोकन किया है या प्रमाणिक पुरुषों से सुना है, अथवा जिसने शरीर-रचना-शास्त्र (Anatomy and Physiology) को ध्यान-पूर्वक अध्ययन किया है, अथवा जिसने प्रत्याहार (Self-attraction or self withdrawal) का थोड़ा भी अभ्यास किया है, उसको सम्भव अथवा असम्भव की बातें समय में आ सकती हैं । विचार-शून्य निरक्षर भट्टाचार्य, त्राग्रही, मूढ़ अथवा अनम्यासी कल्पित नहीं समझ सकता । अभी थोड़े ही दिन की बात है कि बंगाल के एक वैद्यराज की लड़की पन्द्रह सोलह घंटा (Fifteen or Sixteen hours) तक मरी रही डाक्टर वैद्य सभी ने मृत उतार लिया । लोग स्मशान भूमि पर ले गये । उसके मृत शरीर पर जलाने के लिये जल लकड़ी रखा गई तब उसने आँखें खोलीं । कुछ लोग भयमात होकर भाग गये । उसका पतिने डाक्टर को बोलाया । वह औषध आदि के प्रयोग से जा उठा और

अभी तक जीवित है। मेरे जानते में भी नौरंगों लाल पार्टीदार को भी इसी प्रकार की दशा हुई थी। ऐसी अनेक घटनायें (Cases) होती हैं। जो विचारता है उसको कुछ पता चलता है। शरीर-शास्त्र (Physiology) के अनुसार मृत्यु की दो अवस्थाएँ (stages) हैं। एक का नाम व्यापारिक-मृत्यु (Somatic or Constitutional death) और दूसरे का नाम आणविक-मृत्यु (molecular or cellular death) है। पहली अवस्था में प्राणी के बाहरी व्यापार नष्ट-प्रायः हो जाते हैं और वह सर्वथा निश्चेष्ट बन जाता है। फेफड़े तथा हृदय (Lungs and heart) की गति यन्त्रो (Stethoscope and pulsometer) से भी नहीं माप्यमान पड़ती। पर पारदर्शी-प्रकाश (x rays) आदि के प्रयोग से हाल में एक हठयोगी पर अनुभव किया गया है कि इनमें अत्यन्त सूक्ष्म कंपन (Very slight vibrations) बने रहते हैं। दूसरी अवस्था में शरीर के अंग-प्रत्यंग के छोटे से छोटे अंश (Cells) जीवन-हीन हो जाते हैं और उनसे दुर्गन्ध (Putrefaction) निकलना आरम्भ हो जाता है। पहली अवस्था में कोई प्राणी अथवा मनुष्य चाहे कितने ही दिन पड़ा रहे फिर से जीवित हो सकता है। दूसरी अवस्था में कदापि नहीं। पहली अवस्था कभी कभी रोग के प्रभाव से अथवा साप आदि विषैले जन्तु के काटने से भी उपस्थित हो जाती है। इस अवस्था में पड़े मनुष्य को औषध अथवा आत्म-विद्युत् (Personal Magnetism) के प्रभाव से पुनः जीवित किया जा सकता है। इसी अवस्था में पड़े कमाल तथा कमाली को साहेब कबीर ने अपने आत्म-विद्युत् की धारा देकर, उनमें प्रसुप्त तथा प्रच्छन्न चेतना (Dormant and covered consciousness) को जागृत कर, पुनः जीवित किया। अपना पुत्र तथा पुत्री बनाई। इसमें शंका का संदेह

करने का कोई जगह नहीं है। साहेब में उच्च से उच्च कौटि का आत्म-
 चक्षु विद्यमान था, इसका परिचय तो अनेकानेक स्थानों में मिल चुका
 है। साधारण मनुष्यों के लिये ऐसा करना असम्भव है। साहेब के लिये
 यह सहज था। पर अम्यार्थ इस मृत-प्राय अवस्था में अपने आपको
 स्वेच्छापूर्वक (Voluntarily bringing the state of human
 hybernation or yogic trance) ला सकता है और आपही आप
 पुन जीवित हो सकता है। जिसको इस विषय में अधिक जानने का
 इच्छा हो उसको उचित है कि जाव्यात्मिक-अन्वेषण (Psycho-
 logical Reseanches) असमय-अन्त्येष्टि (Premature Burial)
 नाडी विचार (Pulsation), हठ-याग (yog of self-abstrac-
 tion or withdrawal) सम्बन्धी प्रमाणिकग्रन्थों को अभ्ययन कर
 अथवा अनुभवी का संग करें। निस्तार क मय म केवल दो प्रमाणिक
 उदाहरण एक माननीय वैज्ञानिक ग्रन्थ से दिये जाते हैं।

‘ In Delhi 1889, Dr H E Sen and his brother,
 Mr Chandra Sen Municipal Secretary, examined a
 well-known yogi devotee in a self-induced trance
 in which he appears to have been sealed cross-legged
 in Buddha fashion. They found that the pulse had
 ceased to beat altogether nor could the slightest
 heart-beat be detected by the stethoscope. The
 yogi was placed in a small sub-terraneous masonry
 cell and the door locked and sealed by the City-
 Magistrate. At the expiration of thirteen-three days
 the cell was opened and the devotee found just where
 he was placed but with a death like appearance,

the limbs having become stiff as in rigor mortis. He was brought from the vault and the mouth rubbed with honey and milk and the body massaged with oil. In the evening manifestations of life returned. He was fed with a spoonful of milk, and in three days was able to eat his normal diet, and was alive seven years after."

(Lyon's Medical Jurisprudence for India, by L. A. Waddell, C. B., C. I. E. LL. D., M. B., F. L. S., Seventh Edition 1921, page 79).

" We all three felt the pulse of colonel Townshend first; it was distinct though small and thready, and his heart had its usual beating. He composed himself on his back, and lay in a still posture some time; which I held his right hand, Dr. Baynard laid his hand on his heart, and Mr. Skrine, held a clean looking-glass to his mouth. I found his pulse sink gradually, till at last I could not feel any by the most exact and nice touch. Dr Baynard could not feel the least motion in his heart, nor Mr. Skrine discern the least soil of breath on the bright mirror he held to his mouth. Then each of us by turns examined his arm, heart and breath, but could not by the nicest scrutiny discover the least symptom of life in him. This continued about half an hour. As we were going away (thinking him dead),

we observed some motion about the body, and upon examination found his pulse and the motion of his heart gradually returning; he began to breath gently and speak softly."

(The said Medical Jurisprudence for India, page 81).

“ दिल्ली में डाक्टर एच. सी. मेन और उनके भाई, महाशय चन्द्रसेन, म्यूनीसीपल (सुधार) मंत्री ने एक पद्मासन लगाये ममाधिरय योगी की परीक्षा १८८९ ई. में की। उन लोगों ने देखा कि नाई चलनी विन्कल बन्द हो गई और फेफसे तथा दिल की चाल जानने के यंत्र से भी दिल का जरासा भी धड़कना नहीं मालूम पडने लगा। योगी को एक पक्के तहखाने में रख दिया गया और नगर के मेजिस्ट्रेट साहेब ने दरवाजे बन्द करा दिये और ताल में मोहर लगा दिये। तेतीस (३३) दिन के व्यतीत होने के उपरान्त वह तहखाना खोला गया और वह योगी वहीं पर विराजमान था जहां पर रखा गया था, परन्तु मुख पर मुर्दनी छाई हुई थी और हाथ पेर मृत पुरुष की भांति कड़े होगये थे। उसको तहखाने से बाहर लाया गया, मुख में दूध—और भव मले गये, और शरीर में तेल मालिश किया गया। सायंकाल में जीवन के चिन्ह छोटने दीख पडे। उसको खाने के लिये एक चमचा दूध दिया गया, और वह तीन दिन में अपना नैयिक भोजन करने के योग्य हो गया। तदुपरान्त वह सात वर्ष तक जीवित रहा। ”

(लीयन-कृत मेडिकल जुरिस्पुडेन्स १९२१, पृ. ७९)

“ हम लोग तीनों ने कर्नल टैनशेन्ट की नाटी देखी; लघु और क्षीण होने पर भी, वह प्रकट थी, और उनका हृदय यथारोति

धड़क रहा था । वह अपने पीठ के बल पड़ गये, और थोड़ी देर तक विलकुल चुपचाप लेटे रहे; मैंने उनका दहना हांथ धरा, डाक्टर वेनार्ड ने उनके हृदय-स्थल पर हांथ धरा, और महाशय स्क्राइन ने उनके मुख के पास एक स्वच्छ दर्पण (आरसी) रखा । मुझे उनकी नाड़ी शनैः शनैः द्रवती मालूम पड़ी, अन्त में बहुत यत्न करने पर भी, उनकी नाड़ी विलकुल ही नहीं मालूम पडने लगी । डा० वेनर्ड को उनके दिल की धड़कन जरी भी नहीं मालूम पडने लगी, और न म० स्क्राइन ही को उनके मुख के पास रखे निर्मल दर्पण पर श्वास का दूषित धब्बा ही मालूम पडा । तब हम लोगों ने बाराबारी उनके बांह, दिल और श्वास की परीक्षा की, परन्तु सूक्ष्म से सूक्ष्म परीक्षा करने पर भी, उनमें जीवन का जरा सा भी चिन्ह नहीं पाया । यह अवस्था आधे घंटे तक वर्तमान रही । ज्योंहि हम लोग उठे (यह जानकर कि वह मर गये), उनके शरीर पर कुछ गति दीख पड़ी, और परीक्षा करने पर पता चला कि उनकी नाड़ी तथा दिल की धड़कन आहिस्ते आहिस्ते लौट रही हैं; वह धीरे धीरे श्वास लेने लगे और बोलने भी लगे ।

(उक्त पुस्तक, पृष्ठ ८१)

उक्त कथनों का सारांश यह निकला कि मनुष्य रोग वा विष के प्रभाव से तथा आत्म-संकोचन-प्रक्रिया (Process of self-withdrawal) से मृतवत् बन जा सकता है । पहले दोनों का प्रभाव समय पाकर आपही आप, अथवा औषध के प्रयोग से नष्ट हो सकता है । अथवा जैसा के साहेब कबीर ने कमाल कमाली को आत्म-प्रियुत (Personal magnetism) द्वारा पुनः जीवित किया, वैसा किया जा सकता है । यह कोई असंभव बात नहीं है । पर ऐसा

आत्म-निष्ठ अपने में उपस्थित चाहिये । अन्यथा केवल ढोंग से काम नहीं चलेगा । अच्छा, अब लोई घोई की बात बाकी रही ।

कुल लोगों की ऐसी मति है कि लोई नाम की एक साधु-सेनी तथा घोई नाम की एक वेश्या दोनों की दोनों साहेब कबीर की लिया थी और लोई से कमाल वो कमाली नामी सन्तान पैदा हुई । पर विचार कर देखने से मालूम होगा कि जैसे साहेब कबीर, कमाल जो कमाली के धर्मपिता (Foster-father) थे, वैसे ही उक्त दोनों लियों के धर्म-गुरु तथा धर्मोद्धारक थे । पर जो लोग द्वेषाग्नि से पीड़ित हैं, अथवा विषय-राग के झरोखे से क्षण क्षण में क्षत वो क्षुब्ध, नष्ट वो भ्रष्ट होते रहते हैं, जो ऊपर में रामस्नेहों और भीतर में राडस्नेहों के मिश्रमचर (Mixture) बने हैं, वे क्या समझें कि साहेब कबीर किस पद पर आरुढ़ थे, किस देश के वासी थे, किस धाम में उनका मोक्षाम रहता था । किमीने सच कहा है “ किसी वसन्तस्य गुणं न चायसः । ” साहेब को समझने के लिये साधना की आवश्यकता है, कोरे किताबों से तथा दन्तकथाओं से काम नहीं चलेगा । सुनो, जो एक माननीय अंगरेज ग्रन्थकार (An Englishman writer) लिखते हैं:—

“ When Kabir was about thirty years of age, he was once wandering in the forest and reached the hut of a certain sadhu (Saint), where he rested. He found there a girl of about twenty years of age who asked him who he was. He replied, ‘ Kabir ’. She then asked his caste, to which question again he replied ‘ Kabir ’. She asked his order, and again

received the answer, ' Kabir '. She then asked his name, and was told it was, ' Kabir '. The girl was much surprised and said she had seen many sadhus but never one who answered in this fashion, Kabir replied that all others had name and caste and order, but he had none. Meanwhile six sadhus had arrived, and the girl brought seven cups of milk and set one before each. Kabir did not drink his milk, but said he was keeping it for another sadhu who was on the further bank of the Ganges. Before long, to the astonishment of all, this sadhu appeared. In further conversation, it came out that once a sadhu had lived in this hut, who one day saw something in the middle of the Ganges wrapped in a woollen cloth and carried along by the stream, on getting hold of it he found a girl-child, whom he brought to his hut and reared with milk. Because he had found her wrapped in woollen cloth (Loi) he named her Loi. On his death-bed he had told her that one day a saint would come and be her guide. The end of it was that Loi became a disciple of Kabir and followed him to Benares (Kashi)."

अर्थात् "जब साहेब कबीर की आयु लगभग तीस (३०) वर्ष की थी, वह जंगलों में घूमते हुए एक साधु की कुटि पर पहुँचे और वहाँ विश्राम किया। वहाँ पर प्रायः बीस (२०) वर्ष की एक लड़की रहती थी, जिसने पूछा, "आप कौन हैं ? उन्होंने उत्तर दिया, "कबीर" उसने

तब उनकी जाति पूछी, जिसके उत्तर में उन्होंने पुनः वही कहा “कवीर” उसने उनका सम्प्रदाय पूछा और उसको फिर वही जवाब मिला “कवीर” तब उसने उनका नाम पूछा, जिसका उत्तर भी वही मिला, “कवीर” । वह लड़की अत्यन्त चकित हुई और बोल उठी, “मैंने अनेक साधु देखे, परन्तु किसीने इस प्रकार से उत्तर नहीं दिये ।” इस पर साहेब कवीर ने कहा, ‘अन्य साधुओं के नाम, जाति तथा सम्प्रदाय होते हैं, परन्तु मुझको ये सब कुछ नहीं ।’ इसी बीच में छे (६) साधु और पहुंचे और उस लड़की ने सात दूध के प्याले लाकर प्रत्येक के सामने एक एक रख दिया । साहेब कवीर ने अपने भाग का दूध नहीं पिया और कहा कि, इसे दूसरे साधु (जो गंगा की परली तट पर से इधर को आ रहा है) के लिये रख छोड़ा है । थोड़ी ही देर में वह साधु आ पहुंचा और सब के सब विस्मित हो गये । आगे बात चलने पर मालूम हुआ कि उक्त कुटि में पहले एक साधु रहा करते थे, जिन्होंने एक दिन गंगा की बीच धारा में बहती हुई तथा उनके कपड़े में लपेटी हुई किसी चीज़ को देखा । जब उन्होंने उसको बाहर निकाला, तो, देखा कि एक बच्ची है । उसको अपनी कुटि पर ले आये और दूध से पालन किया । क्यों कि वह ऊनी बाल (लोई) में लपेटी हुई पाई गई थी, अतः उन्होंने उसका नाम लोई धरा । जब वह मृत्यु-शय्या पर हुए तब उन्होंने लड़की (लोई) को कहा, ‘किसी दिन एक संत यहाँ आँगे और वही तुम्हारा मार्ग-दर्शक (गुरु) होंगे ’ निदान वह लोई साहेब कवीर की शिष्या बनी और उनके साथ बनारस (काशी) चली आई ।”

साहेब कवीर की नीची लिखी जीवन-घटना को लेकर जगत्-विख्यात कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ टागोर ने बंगला भाषा में ‘ मालिक का

दान' नाम की एक कविता करी है। उसका भावानुवाद 'कल्याण' मासिक-पत्र के भक्तांक में प्रकाशित हुआ है। कहीं कहीं मूल को उद्धृत करते हुए उसीके आधार पर लिखा जाता है कि:—

जब साहेब कबीर का प्रभाव लोगों पर पूरे तौर से पडने लगा। उनकी ख्याति दूर दूर तक फैलने लगी। लोगों में उनकी पूजा चलने लगी और नामस्मरण भी होने लगा, जैसा कि कबीन्द्र रवीन्द्र ने लिखा है—

फैल गई यह ख्याति देश में, सिद्ध पुरुष हैं भक्त कबीर ।
नर नारी लाखोंने आकर, घेरी उनकी वन्य-कुटीर ॥
कोई कहता, 'मंत्र फूंक कर मेरा रोग दूर कर दो' ।
वांछ पुत्र के लिये बिलखती कहती 'संत गोद भर दो ॥'
कोई कहता 'इन आंखों से देव-शक्ति कुछ दिखलाओ ।
जग में जग निर्माता की सत्ता प्रमाण कर समझाओ ॥

जब छोटे बड़े सभी में उनका मान-सत्कार बढ़ने लगा इनके दर्शन के लिये लोग तरसने लगे। उनकी चरण-धूलि लोग अपने मस्तक पर धरने लगे, तब द्वेषाग्नि से वंचक ब्राह्मण, गुन्डे पन्डे, पाखंडी पुजारी, धर्मध्वजी मठधारी, नाथ टीकाधारी, ब्रह्मचारी बेपधारी, अभिमानी पोथाधारी आदि लोग, साहेब कबीर की फैलता ख्याति को सहन न कर, टिल ही टिल सूब जलने लगे और अंत में एक ऐसा घटयन्त्र रचा कि जिससे लोगों का ध्यान उनसे खिंच जाय, उनका प्रभाव का तारतम्य टूट जाय और दुनिया में उनकी नेकनामी की जगह बदनामी फैल जाय, जैसा कि कबीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुरने उक्त कविता में लिखा है:—

“ कहने लगे क्रोध भारी से भर नगरी के ब्राह्मण सत्त ।
पूरे चारों चरण हुये कलियुग के पाप छा गया अर ॥

चरण-धूलि के लिये. जुलाहे की सारी दुनिया मगती ।

अन प्रतिहार नहीं होगा तो डूब जायगो सब धरती ॥

कर सबने पडयत्र एक कुलटा स्रो को तैयार किया ।

रूपयो मे राजी कर उसको गुाचुप सब सिखलाय दिया ॥’

मगर मनुष्य धारता है कुछ और होता है कुछ । क्योंकि,

“ Man proposes and God disposes ”

“ हानि लाभ जीवन मरण, यश अपयश विधि हाथ ” ।

अब कपट-मन्थ की बात सुनो । धूर्त तथा द्वेषाग्नि मे पीडित उक्त लोगों ने एक नाजारी वेश्या (जो लोक परलोक के भय को निलाभलि देकर खुलमखुला व्यभिचारवृत्ति में रत थी) को कुछ रुपये का लोभ देकर साहेब कबीर की प्रतिष्ठा भग करने पर उत्तान्न किया । उसको मिला पडा कर ठीक किया कि जब साहेब कबीर कुछ कार्ययश बाजार मे आवें तो उनका पट्टा पकडकर, अपना पुराना सम्बन्ध का ढोंग रचकर, ग्लून रोना धोना, गाली गलौज करना और ग्याना-ज्वोराक (Maintenance) के लिये दावा करना । फिर तो, हमलोग थपडिया लगायेंगे, ढोंगी कहकर उनको पुकारेंगे, उनको पाखडी कहकर धुत्कारेंगे और भडतपस्त्री की बात फैला फैला कर लोगों में मान-हानि करायेंगे । वेश्या को तो पैसा चाहिये, फिर तो जो चाहो करो या कराओ । वस, उस वेश्या ने एक दिन बीच बाजार में साहेब कबीर को पकड हो लिया । और वेशी ही वेदजर्ता करन लगी जैसा कि उसको द्वेषी कपटी ब्राह्मणों ने सिखलाया पढ़ाया था । पर साहेब ये सब को दृढ समता के साथ सहर्ष सहते रहे और अन्त में,

“कवीर बोले, दोषी हूँ मैं, मेरे साथ चलो घर पर ।

घर में अनाज रहते क्यों, भूखों मरती, फिरती दर दर ॥”

उनकी धर्मपरायणता, सहनशीलता, समभाव, क्षमाभाव, नेक
वर्तन, प्रेमपुञ्जता, करुणाकुञ्जता आदि को देख परेख कर वेदिया

“गोकर बोल उठी वह, मनमें उपजा भय-लज्जा-प रताप ।

मैंने पाप किया लालचयश, होगा मरण साधु के शाप ॥”

पर साहज ने उसको आन्वना दी और

“कहने लगे कवीर, जननि ! मत डर, कुछ दोष नहीं नेग ।

तू निन्दा-अपमान रूप मन्त्र-भूषण लाई मेरा ॥”

फिर तो साहेब ने उन अरणागत कुलटा को अपनी ज्ञानाग्नि में
उलटा पुन्टा (सेक) कर, पाप-पंक में मग्न गणिका को साफ सुथरा
शुद्ध “घोड़े” (Whed) रूप में परिवर्तन कर कामपरायण से
रामपरायण, हरिद्रोही में हरिदासी बना दी, जैसा कि उक्त
जगत्-प्रियाण कविमम्राट् रत्नान्द्रनाथ ढागौर ने अपनी निम्न कविता
में स्पष्टतया दर्शाया है—

“दूर किया विकार मनका सब, उसको दिया ज्ञान का दान ।

मधुर बंट में भरा मनोहर उसके हरीनाम गुण-गान ॥”

सत् गुरु को नीयन सौपने का फट देखा न ? पापपंक को
सत्गुरु साहज कर्पूर ने धो धो कर स्वच्छ धर्मगुरन्वर बना दिया,
मनमयीन को ब्रह्मलीन बना दिया, पिष्टारूपी विषय में लग्न काक
को हरिनाम के गुणगान में मग्न कटकोफिल बना दिया । द्वापर-
प्रेता की रात-विगत्य, जीवन्ती की-दूर रही, कल्युग में मत्स्युग
ला दिया ।
क्योंकि,

सोद्वेग से सब होत हैं, बूढ़े में कटु नांदि ।

गई सौ परवत करे, परवत राई माहि ॥

उक्त दोनों घटनाओं ने साफ विदित होता है कि साहेब कर्मार ने एक को जननी कह कर पुकारी और दूसरे को पुत्रीवन ' गिप्पा ' । फिर तीसरी तरह के सम्बन्ध जोड़ने की जगह कहा रखी । स्वामी विवेकानन्दजी के गुरु परमहंस रामकृष्णजी ने अपनी ब्याही ली को मा (जननी) कह कर पुकारी और यही सम्बन्ध आर्जवन निवाहते रहे । पर जो स्वयं पवित्र नहीं हैं, और न किसी पवित्र महान्मा के दर्शन ही किये है, जो विषयवासनाओं से कभी थोड़ा भी ऊपर नहीं उठे है, जो घर में रहते हुये बीतराग बनने की सृष्टा तक नहीं करते, जो संसर्गज भोग ही को सब कुछ जानते तथा मानते है, जो कलक और कामिनी पर दिन-रात मूढ़-दृष्टि किये रहते है, जो कैन्य आनन्द (Unconditional Delight) की श्रृङ्ख भी नहीं देखे है, जो गीता के इस वचन " आत्मनि एव आत्मना तुष्ट " अथवा साहेब की इस वाणी " योगी आप आप में बृजे " (Self-existent bliss) को विचार-पूर्वक न पढ़ते हो है और न अनुभव में उतारने का प्रयास अथवा साधन ही करते हैं, जो कभी भी आत्मप्रसाद नहीं चखे और मदैव दूसरों के जूट खाते रहे हैं । जो सब से सुन्दर आत्मस्वरूप (The most beautiful unconditional soul) तथा आत्म-आनन्द (Self-existent delight) से अनभिज्ञ रह कर दूसरी जगह सुन्दरताई तथा आनन्द के लिये मांगे मारे फिरते हैं, वे साहेब कर्मार को उक्त नियों के साज रहते हुए भी माता तथा पुत्री के सम्बन्ध रखने की बात " पद्मपत्रं इनाम्भसा " (कमलपत्र की तरह) समझ नहीं सकते और न उनके तथा अन्य द्वेषी को दुराग्रहियों के लिये उक्त प्रमाणिक घटनायें उपस्थित ही की गई हैं । क्योंकि,

“न वेत्ति यो यस्य गुणप्रकर्षम् । न न तथा निन्दति नास्ति संशयः ।

“ जो दूसरे के प्रकर्ष तथा उच्च गुण को नहीं जानता है, वह उसकी निन्दा ही करता है, इसमें कुछ संदेह की बात नहीं है । ”

॥ खंड-पांचवां ॥

“ यथोर्णनाभि स ततै गृह्णेच । ” (श्रुति) .

“ As the spider produces the thread and absorbs it again

“ जैस मकरा तन्तु को अपने भीतर से बाहर निकालता है और फिर अपने भीतर समेट लेता है

ना मनुष्य, प्रकृति तथा पुरुष को पूरी पूरी पहचान चुका है, जो दोनों के सम्बन्ध का केवल किताबी ज्ञान नहीं, पर अपने अनुभव में उतार चुका है, जो अपने अक्षर रूप को क्षर रूप में सचेतन (Consciously) लाता रहता है, जो अपने अचल सत् स्वरूप (I remain self) में प्रतिष्ठित रहता हुआ भा असत् अथवा चल रूपों को (Mutable surface personalities) जान बूझ कर धारण करता रहता है; जो सत्-लोक से भूलोक पर स्वेच्छा से आता जाना रहता है; जो कुकर्म, अकर्म अथवा सुकर्म के बन्वनों से घसीटा जाकर भूलोक में जगंधार में पड़ा तृण के ऐसा मारा मारा फिरता (Like helpless straw drifting in the current) नहीं है; जो ज्ञानाग्नि में कर्म-कासों को भस्माभूत कर चुका है, जो शरीर रूपी गाड़ों को निकलना समेटना, बनाना बिगाड़ना, चलाना ठहराना आदि सब कुछ मनी भांति जानता है; जो अदृश्य वायवीय या वाष्प (In visible gaseous or 'ethereal stage) स्थिति से दृश्य तरल अथवा स्थूल (Visible Liquid or solid stage) में घन-त्रिया से (By Process of condensation) और दृश्य तरल अथवा स्थूल को अदृश्य वायवीय स्थिति में (By Process of evaporation

etc) लाना रहता है, वह कारण और सूक्ष्म शरीर का स्थूल में तथा स्थूल शरीर को सूक्ष्म और कारण शरीर में ले जान को अग्रय समर्थ है । जैसा मक्करा (Spider करोडिया) अपने भीतर से तन्तुओं को बाहर निकाल कर नाना प्रकार की रचनाओं को रचना है, वह मक्करा उन तन्तुओं की भीतर समेट कर मग्न रचनाओं का समाप्त कर देने में भी समर्थ है । यम, इसी प्रकार साहेब कृष्ण ने अपने स्थूल शरीर का फूल द्वारा प्रकट कर फिर फूल हो द्वारा सूक्ष्म में गुप्त भी कर दिया, इसमें कोई सन्देह की बात ही नहीं है ।

इसके अतिरिक्त साहेब कबीर के दोनों प्रकार के शिष्य-वर्ग और सेनक-जन हिन्दू तथा मुसलमान-य । एक उनको सत्गुरु मानत थे, तो दूसरा पीरन को पीर । दोनों ही को पूजा के अन्तिम चिह्न कुछ न कुछ मिलना चाहिये था । यही उन्होंने अपना स्थूल शरीर १५७५ सम्प्रत के मार्गसर मास के शुक्र पक्ष को ११ यी तिथि को सप्रलन करने का विचार प्रकट किया और उस निमित्त गोरखपुर के पास प्रताप जिला में मगहर गाम की ओर 'काशा-मरण स्वर्गआरोहण' की अव-परम्परा झूठी रूढ़ी को भगवत्कारणार्थ

“ का कासी का मगहर ऊपर, हृदय राम बस मोरा ।

जो कासी तन नज्द कबोरा, राखि कवन निहोरा ॥ ”

(सा० क० राजक शब्द १०३०)

प्रस्थान किया तो ही दोनों दलों के शिष्य-सेनक-वर्ग हजारों की सख्या में इकट्ठा होने लगे । उनमें राजा गीरसिंह गधेला और नवान प्रिन्सीपल पठान प्रमुख थे । राजा जो हिन्दू-रीति के अनुसार दाह-क्रिया करने का और नवान राजा मुसलमान रीति से दफन करन का आग्रह साहेब से प्रत्येक रूप में करने लगे । दोनों में झगडने की

नेवारी सी भी माट्टम पडने लगी । फिर ताहेब ने झगडा मिटाने के लिये दोनों बगों के शिष्य-सेवकों को बाहर खड़े रहने को कहा और आप स्वयं एक कमरे में जाकर, चादर बिछान कर सो गये, जैसा के एक साहित्याचार्य अंगरेज (An Englishman) लिखता है —

“ After this, Kabir lay down and spread the sheets over himself. He then told the people to close the door and leave him inside, which they did. When the door was closed, a sound came from the room; on hearing which all who were present were deeply moved, and shouted Jayjaykar (a cry of rejoicing and victory) ! because their guru had gone to the Satya-Loka ”

“ When the room was opened, nothing was to be seen except two sheets and some flowers in them. One sheet and half the flowers, Raja Bir Sinha took, and the other sheet and the remainder of the flowers, were taken by Nawab Bijli Khan. The body of Kabir was not seen. In fact, his followers say he never had a body but was only a manifestation of glory. Raja Bir Sinha took his portion to Benares, where he cremated it and buried the ashes at what is now the Kabir Chaura. Nawab Bijli Khan buried his portion at Maghar. Both Hindus and Muhammadians afterwards built a shrine at Maghar ”

“ तत् पश्चात् साहज कर्त्तार लेट गये और अपन ऊपर चादरों को तान लिये । तब उन्होंने अपने शिष्य-सेवक माँ को द्वार बन्द करने तथा उनको भीतर पकड़ा रहने देने को आज्ञा करी । उन लोगोंने वैसा ही किया । जब द्वार बन्द हो गया, कमरे में से एक आवाज़ आई, जिसको सुनकर उसस्थित जनता अत्यन्त विचलित हुई और जयजयकार का ध्वनि उठाई, क्योंकि उनके गुरु मलयलोक को पधार गये । ”

“ जब द्वार खोला गया, सिपाय दो चादरों तथा उनमें कुछ फर्में के और कुछ न मिश्र । राजा गीरसिंह ने एक चादर और फर्में का आधा भाग ले लिये और नयात्र विनलीखा ने दूसरी चादर तथा बचे फर्में को ले लिया । माहेत्र कुमार का शरीर अदृश्य हो गया । सबभुच में, उनको जरीर न था, केवल एक ज्योति-का प्राकृत्य था जैसा व उनके अनुयायी कहते हैं । राजा गीरसिंह ने अपने भाग को बनारस ले जाकर दहन-क्रिया करी और उसकी राख एक जगह गाड़ी जो कनार चौरा के नाम से आजकाल प्रसिद्ध है । नयात्र विनलीखा ने अपने भाग को मगहर में गाड़ दिया । तदुपरान्त हिन्दू और मुसलमान दोनों के दोनों, मगहर में मंदिर बनाये । ”

जिनके आदि में पुष्प उसके अन्त में पुष्प, जिसके अरोहण में फूल उसके आरोहण में फूल, जिसके आभिर्भाव में सुगन्ध उसके तिरोभाव में सुगन्ध, जिसके आगमन में सुवास उसके अन्तर्धान में सुवास क्यों न हो ? भक्ता मीरा ने मैले तन को भगवत् प्रेम में मग्न करके शुद्ध किया और अंत में सदेह भगवान में लीन होगई, राजा परिक्षित तथा सुखदे-

ज्ञानाग्नि से अरोर का निमल कर सदेह स्वर्गारोहण किये, पर साहेब कबीर तो ज्योतिमय उतरे ओ ज्योति में लीन हो गये, उसमें शका तथा अकचक्राने को कौन सी बात है ? कैसा ठीक कहा है !

झीनी झीनी चढ़रिया बोनी ।

साहेब कबीर जतन से भोढो, जमके तस धरदानी चढ़रिया । झी०

कैसा निर्मल, पूर्ण तथा सचेतन देहाग्रसान (Pure, perfect and conscious withdrawal) है ! ज्योतिमय शरीर (Spiritualised body) का गुण महान है ! ! अन्त अन्त तक सद् शिक्षण का विधान है ! ! !

“ All is well that ends well. ”

“ अन्त भले का भला । ”

॥ खंड-छड़ा ॥

“ नहि सत्यात् परो धर्मः । ”

“ सत्य से बढ़कर कोई धर्म नहीं । ”

साहेब करार के जन्म-जाति-जीवन के थोड़ा कुछ वृत्तान्त के उपरान्त उनके सत्-उपदर्शों का दिग्दर्शन कराना अब समुचित प्रतीत होता है, क्यों कि, किसी व्यक्ति के आचार पर उसका विचार निर्भर रहता है। करनी और कथनी (Theory and practice) में धनिष्ठ सम्मन्व है। महात्माओं में दोनों में एकता रहती है। और दुरात्माओं में दोनों में विपरीतता रहता है। एक जो बन्गा मो करगा। दूसरा कहेगा कुछ और करेगा कुछ दूसरा ही। सदाचारी के वचन हृदय से निकलते हैं, जब सुननेवाले के हृदय तक पहुंचते हैं, और झोंगी वा मिथ्याचारी (Hypocrites) के वचन केवल मुख से निकलते हैं जब सुननेवाले के कान ही तक पहुंच कर रह जाते हैं। जो राणी रूप राण (Arrow, हृदयकी तार (Cord) पर खींच कर उड़ा जाना है, यही दूसरे के हृदय तक को खींच लेता है। मीरा के हृदय से निकल हुआ अनन्य प्रेम तथा समर्पण के भजन—“ नैग तो गिरधर गापाल दूसरा न कोई—का प्रभाव हृदय पट पर विलम्बण हा पड़ता है। और उसी भजन को दूसरे के मुख से अधरा नाटक वा सिनेमा (Drama or Cinema) के जरूरी मीरा के मुख में सुनने से कुछ प्रभाव ही नहीं होता। जो अपनी राणी में आप नहीं पसीजता, वह दूसरे को कैसे पसीना सकता है? जिसकी राणी भावान्वित होकर नहीं निकलती, वह दूसरों में उचित भाव कैसे उत्पन्न कर सकेगी? जो अपना

कहा आप ही नहीं मानता, जो अपना उपदेश आप ही नहीं सुनता तथा आचरता, वह दूसरे को क्या कहे और क्या सुनावे ? उसको अधिकार ही क्या है कि दूसरे को उपदेश करे ? नो सत्य को आचरता नहीं, उसको अधिकार ही नहीं है कि वह सत्य का उपदेश करे । सत्पुरुष ही सत्य के उपदेश करने की योग्यता तथा अधिकार रखते हैं, अन्यो के लिये केवल अनविकार-चष्टा है तथा मिडम्बना-मात्र है । सत्-पुरुष ही को सत्य सदैव प्यारी रहती है । यही कारण है कि साहेब कबीर को जितना सत् शब्द सत् तत्व प्यारा है उतना कोई पद-पदार्थ नहीं ।

सत्-नाम, सत्-धाम, सत्-पुरुष, सत्य-लोक, सत्-गुरु, सत्-सुन्दर, सत्-शब्द, सत्-सग, सत्-विचार आदि उनकी वाणी में बहुधा पाये जाते हैं । सत् पर ही उनका सब कुछ आधार रखता है । सत्-नाम ही उनका बीज-मंत्र है । यथा,

“ सत् मंत्रन का बीज है, सत्-नाम ततमार ।
जो को जन धिरदै धैर, सो जन उतरे पार ॥
कबीर मन निश्चल करो, सत्-नाम गुण गाय ।
निश्चल बिना न पाईये, कोटिन करो उपाय ॥ ”

(देवी साखा-ग्रन्थ पृष्ठ १३२-१३३ संख्या १६०-१६६)

आत्मा अथवा परम-आत्मा के जितने सार्थक अथवा सगुण नाम हैं, उनमें सब से श्रेष्ठ ‘ सच्चिदानन्द ’ समझा गया है । यह बात ठीक है कि,

‘अविगति की गति काहु न जानी । एऊ जीभ किन कर्षे बखानी ॥
जो मुख होय जीभ दस-लाखा । तो कोई आय महन्तो भाखा ॥
(बीजक-रमैनी नम्बर १)

क्योंकि, जो आत्म-तत्त्व अथवा ब्रह्म-तत्त्व अनन्त है, उसके गुण भी अनन्त है, उसके नाम भी अनन्त अथवा असंख्य हैं, उसके वर्णन भी अनन्त है — ' नास्ति अंशो मित्रस्व मे । ' (गीता) अनन्त मान्त शब्दों के घेर में कदापि नहीं आ सक्ता । तथापि सत्, चित् और आनन्द मिलकर ' सच्चिदानन्द ' नाम उत्तम बोलका है, जैसा के ' सच्चिदानन्दरूपोऽहं ' तेजोविन्दु उपनिषद् में आता है । इसमें भी सत् पहले आया है । अतः सत्-नाम सब से श्रेष्ठ है । वेदोपनिषद् में भी " सत् सत् " " सत्यं ज्ञानं अनन्तं ब्रह्म " आते हैं ।

सत्-नाम की श्रेष्ठता मानते हुये भी यह लिखना अनुचित वा अयुक्त नहीं होगा कि सत्, चित्, और आनन्द एकही सत्ता (Existence) के तीन पहलू वा नज़र (Aspects) हैं । एक ही त्रिकोण के तीन भुजायें (Three sides of the one in the same triangle) हैं । एक ही प्रिज़्म (Prism काच का त्रिपहलू टुकड़ा) के तीन सतह (Surfaces) हैं । एक ही होरा के तीन मुख (Three facets of the same diamond) हैं । एक ही सागर के तीन तरंगें (Three waves of the same ocean) हैं, जो ऊपर भिन्न भिन्न दिखाते पर भीतर मिले हैं । एक ही देव के तीन मस्तक हैं । इनमें किमको छोटा और किमको बड़ा, किमको श्रेष्ठ और किमको निकृष्ट कहा जाय । पर विचार कर देखने से मादम होगा कि जहां सत् है वहाँ पर शुद्ध चेतना (Pure consciousness) है, और वहाँ पर पवित्र आनन्द (Unmixed or unadulterated bliss) है । चेतना से सत् को हटा दो, मूढ़ा अस्वस्थ आ जायगी । बूढ़ वृद्ध, पशु पक्षी, अनेक नर नारियों में चेतना तो विराजमान है, पर वे मल्य चेतना से विहीन होने ही से मूढ़ा (Sub-conscious or deluded)

अवस्था में पड़े हैं । इसी प्रकार आनन्द से सत्य को अलग कर दो, फिर मिथ्या-आनन्द, आनन्द-आभास, क्षणिक सुख, दुःखान्वित-सुख (Stress of transitory satisfaction besieged with physical pain and emotional suffering and sometimes mental derangement) आन उपस्थित होंगे । जो सत्-पुरुष है वही सम्पूर्ण चेतन है और वही सच्चा वही सहज सुखी है । इसलिये साहेब ने सत्-नाम को तत्त्व का भी सार बताया, सब मंत्रों का बीज फरमाया । इसीके गुण-गान तथा जाप से मन को निश्चल तथा शान्त करके मग्न-सागर से पार उतरने की शिक्षा प्रदान की । जाप से अभिप्राय केवल सत्-नाम सत्-नाम बहुत चिन्ता चिन्ता कर अथवा धीरे धीरे अथवा मन हो मन उच्चारण करने अथवा लेने का नहीं है । जैसा के पातञ्जल योग-पूत्र-तज्जपः तदर्थभावनम्—में बताया है कि नाम लेने के साथ साथ उत्तरी प्राप्ति की भावना लगी रहनी चाहिये । उक्त साखी में साहेब ने भी हृदय में धारण करने की शिक्षा दी है । सत्-नाम के जाप के साथ साथ सत्-प्राप्ति की भावना बनी रहनी चाहिये । सत्य को हृदय में धारण करने का ध्यान बंधा रहना चाहिये । सत्य को आत्म-सात् करने का लक्ष्य सदैव सामने रहना चाहिये । तब अंत में ध्याता, ध्यान और ध्येय की एकता हो जाने से पुरुष सत्-पुरुष में परिवर्तन हो जाता है । हरदम सत्य चेतना में प्रतिष्ठित (Established in truth consciousness) सत्य-लोक का वास बन जाता है । सत्-धाम में पहुँच जाता है ।

सत्-धाम अथवा सत्-लोक कोई स्थान विशेष का नाम नहीं है । यह आत्म-चेतना की अन्तिम अथवा उच्चतम अवस्था (The last or the highest stage of the soul's consciousness or

enlightenment) है। वस्तुतः चेतना की दो ही अवस्थाएँ—सत् और असत्, अथवा शुद्ध और मिश्रित (Pure and mixed) —हैं। इसी मिश्रित अवस्था को भिन्न भिन्न भागों में और नामों में विभक्त किया गया है। कहीं पर छ (६) भाग है, तो कहीं पर नौ। यदि कोई चाहे तो सौ (१००) भागों में भी विभक्त हो सकता है। वेद-पुराण में —भूलोक, सुवलोक, स्वलोक, महालोक, जनगण तपलोक और मानवा शुद्ध-चेतन अवस्था का नाम सत्यलोक है। छ मिश्रित और एक शुद्ध-चेतन अवस्था मिलकर सप्तलोक (७ planes of consciousness) के नाम से प्रसिद्ध हैं। साहजिक ढंग से —नमूत, मलकृत, जीरस्त, लूत, अचिन्त्यद्वीप, मोहद्वीप, ईच्छाद्वीप, ओंकारद्वीप, सहनद्वीप और दसवा शुद्ध-चेतन अवस्था का नाम सत्-लोक धरे गये हैं। नौ मिश्रित और एक शुद्ध-चेतन-अवस्था मिलकर जात्र के दस अवस्थाएँ (Ten stages of the soul's Enlightenment) बनती हैं। यदि दूसरा चाहे तो इसी मिश्रित अवस्था को सौ भागों अथवा असंख्य भागों में विभक्त कर सकता है। घी, शुद्ध अवस्था में, एक ही तरह का है। अशुद्ध अवस्था (Adulterated condition) में अनन्त अथवा असंख्य तरह से रह सकता है। सौ भाग में ९९ भाग घा और एक भाग तेल अथवा वनितेनित घी (Vegetable ghee) का मिश्रण (99 per cent ghee and one per cent vegetable ghee) तैयार हो सकता है। इसी प्रकार ९८ भाग घा और २ भाग तेल, ९७ भाग घा और ३ भाग तेल इत्यादि इत्यादि अनन्तानन्त मिश्रण बन सकते हैं। फिर हजार भाग में ९९९ भाग घा और १ भाग तेल, ९९८ भाग घा और २ भाग तेल इत्यादि इत्यादि अनन्तानन्त अलग अलग मिश्रण बन सकते हैं। जो

बीज-गणित (Algebra) में Permutation and combination (साथ-सपात) के अध्याय का पढ़ चुके हैं, वे समझ सकते हैं कि भिन्न भिन्न प्रकार के मिश्रण असत्य (Innumerable varieties of different adulterations) रूप में तैयार किये जा सकते हैं । तापमान-यन्त्र (Thermometer) में किसीने बूढ़न औ जमन अरस्या Boiling and Freezing points) के अन्तराय को १०० भाग (Centigrade thermometer) में और किसीने १८० (Fahrenheit thermometer) भाग में इसा अन्तराय को विभक्त किया है । यदि कोई चाहे तो इसे १००० अथवा ११८० भागों में भी बांट सकता है । अतः मिश्रित चेतना के इन कल्पित विभागों के फेर में न पडना चाहिये । शुद्ध सत्य-चेतना को मटेय लक्ष्य में रखकर आगे बढ़ते जाना चाहिये ।

पर एक मन अथवा सम्प्रदाय (A sect) ऐसा निकाला गया है, जो सय-ग्रेड के भी ऊपर दो डिग्री (Degree) और-अनामी तथा राधा-सोआमी-ग्राम मानता है । भाड़, सय के ऊपर अथवा नीचे दोनों असत्य हैं । आठ दूना सोलह ($8 \times 2 = 16$) एक सत्य है । इससे कोई ऊपर आठ दूना १७, १८, १९ इत्यादि अथवा इससे नीचे १५, १४, १३ इत्यादि बनाव, तो वे सब के सब असत्य हैं । किसी फल की पका (Ripe) अरस्या एक होती है । उस अरस्या के नीचे कच्ची और ऊपर सड़ी (Raw or over-ripe) अरस्याएँ होती हैं । मनुष्य शरीर का नियमित ताप (Normal temperature) पौने निम्नांश डिग्री के करीब रहता है । उसके दो, तीन... डिग्री ऊपर अथवा दो, तीन..... डिग्री नीचे, सब के सब अशुद्ध तथा रोगा अरस्याएँ (Diseased states) समझी जाती हैं । जितने

इसमें ज्ञान का मार्ग है व सब इस मनमाले के प्रवर्तन से कबिर साहब की राशियों से ली हैं। गाँठे में राधा-माधामी धाम का डकोसरा मोड़कर लोगों में अपना प्रत्यक्ष दिखाने के लिये, कबीर साहब के मय-लारु की कुटिया अपने मनमाना धाम में नाच बतलाने का अनर्गल तथा अनुचित प्रयास कर रहे हैं। सुना, जो एक पक्षपात-रहित माननीय एफ़० टी० क्रिये, साहियाबाद, नन्दन-निवासी (Rev F E Key, D Litt, London) लिखते हैं —

“The Radha Swami Satsang is a modern sect which was founded about 1861 by Tulsī Rama (1818-1878), in Agra bazar, known as Siva Dival Sahib, and has its head-quarters at Agra. It seems to owe a great deal of its inspiration to Kabir. In the duly meetings of the sect, portions of their own sacred books or of the writings of Kabir and other Hindu devotees are read. A Hindu couplet of Kabir (though evidently a forgery) is quoted by them to show that Kabir called God by the name of Radha Swami.”

“राधास्वामी सत्-संग एक नवीन सम्प्रदाय है, जिसको १८६१ ई० सन् के लगभग आग्रा नगर का एक बनिया तुलसीराम (१८१८-७८) ने चलाया है। पीछे से शिष्यार्थ साहित्य कहाया और मुख्य स्थान आग्रा में बनाया। इसमें ज्ञान की राते बहुधा कबीर से ली गई हैं। दैनिक बैठक में अपने धर्म-पुस्तक के कुछ भाग अथवा कबीर तथा अन्य हिन्दू भक्तों की राशियाँ पाठ करते हैं। कबीर की

‘एक * हिन्दी साखी, जो एकदम बनावटी या साफ जालसाजी है, वे लोग उद्धृत करते हैं, इस बात को समर्थन करने के लिये कि कबीर ने परमात्मा को राधा-स्वामी नाम करके पुकारा है ।’

देखो, सत्-लोक, सत्-धाम अथवा सत्-नाम से एक ऊपर धाम अथवा पद गढ़ने के लिये निन्दनीय जाल वो झूठ प्रपञ्च रचना पड़ा । यह एक धार्मिक संस्था के लिये अत्यन्त घृणित कार्य है । जिसे नांव झूठ फरेव पर पड़ी, उसमें आगे चलकर दो हजार साहेब (दो वर्तमान धर्मगुरु जो उनके सम्प्रदाय के नियम से विरुद्ध ह) निकुठ पड़े, माल मिलकीयत के लिये कचहरियों (Law-Courts) में फरियाद दाखिल करें, लड़े झगड़ें, मोकदमेबाजी वो जालसाजी करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

हा, जहा कहीं गीतादि उपनिषदों में त्वं अक्षरं सदसद् तत्पर यत् (गी० ११-३७)-पारब्रह्म परमात्मा अथवा सत्-पुरुष पुरुषोत्तम को सत् तथा असत् से ऊपर अथवा परे बताया गया है, वहा पर ‘ सत् ’ का अर्थ वर्तमान (Being, present, होता हुआ) है और ‘ असत् ’ का अर्थ अनर्तमान (Non-being i. e., past and

करीर धारा अगम की, सतगुरु दई बताय ।

नाहि उलटि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥

कबीर-साहित्य के ग्रंथों में इसका कहीं नामोनिशान भी नहीं मिलता । साहेब ने ठीक ही कहा है—

साखी लाय बनाय के, इत उत अक्षर काट ।

कहैं कबीर कबनक जिये, झूठी पत्तल चाट ॥

future) अर्थात् भूत और भविष्य हे । अतः पारब्रह्म पुरुषोत्तम तीनों काला से परे कालातीत, अक्षर, अनन्त (Timeless, imperishable, Infinite) होने से सनातन सत्य (Eternal Truth) है । सत्य से ऊँचा या ऊपर उस परम सत्य परमात्मा का नाम ही नहीं हो सकता । और न चेतना को अवस्था ही बन सकती । अमेरिका के चिकागो (Chicago) नगर के १७ वीं अक्टूबर, १९३३ के द्वितीय विश्व-धर्म परिषद्में (At the Second World Parliament of the Religion at Chicago on the 17th October 1933) प्रमुख न कबीर साहब को मान्य दृष्टि से देखते हुये यही कहा—

‘ There is no God higher than Truth ’

“ सत् से बढ़कर कोई दूसरा परमात्मा है नहीं । ”

इसी सनातन सत्य तत्त्वसार सत्-नाम को हृदय में धारण करने के लिये साहब कबीर फरमाते हैं और प्रगट करने की शिक्षा प्रदान करते हैं, जैसा के स्वामी विवेकानन्दजी ने भी लिखा है —

“ Each soul is potentially divine

The goal is to manifest this divine within by controlling nature, external and internal

Do this either by work, or worship, or psychic control, or philosophy, by one or more, or all of these — and be free

This is the whole of religion. Doctrines or dogmas or rituals, or books, or temples or forms, are but secondary details ’

‘एक * हिन्दी साखी, जो एकदम बनावटी या साफ जालसाजी है, वे लोग उद्धृत करते हैं, इस बात का समर्थन करने के लिये कि कबीर ने परमात्मा को राधा-स्वामी नाम करके पुकारा है ।”

देखो, सत्-छोक, सत्-धाम अथवा सत्-नाम से एक ऊपर धाम अथवा पद गढ़ने के लिये निन्दनीय जाल वो झूठ प्रपञ्च रचना पड़ा । यह एक धार्मिक संस्था के लिये अत्यन्त घृणित कार्य है । जिसमें नींव झूठ फरेव पर पड़ी, उसमें आगे चलकर दो हजार साहेब (दो वर्तमान धर्मगुरु जो उनके सम्प्रदाय के नियम से विरुद्ध ह) निकल पड़ें, माल मिलकीयत के लिये कचहरियों (Law-Courts) में फरियाद दाखिल करें, लड़ें झगड़ें, मोकदमेवाजी वो जालसाजी करें, तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

हां, जहां कहीं गीतादि उपनिषदों में त्वं अक्षरं सदसद् तत्परं यत् (गी० ११-३७)—पारब्रह्म परमात्मा अथवा सत्-पुरुष पुरुषोत्तम को सत् तथा असत् से ऊपर अथवा परे बताया गया है, वहां पर ‘सत्’ का अर्थ वर्तमान (Being, present, होता हुआ) है और ‘असत्’ का अवर्तमान (Non-being i. e., past and

* कबीर धारा अगम की, सतगुरु दई बताय ।

ताहि उलटि सुमिरन करो, स्वामी संग मिलाय ॥

कबीर-साहित्य के ग्रंथों में इसका कहीं नामोनिशान भी नहीं मिलता । साहेब ने ठीक ही कहा है—

• मासी लाय बनाय के, इत उत अक्षर काट ।

कहैं कबीर फव्वतक जिये, झूठी पत्तल चाट ॥

—[पं० मोतीदास]

future) अर्थात् भूत और भविष्य हैं । अतः पाश्चात्य पुरुषोत्तम तीनों कालों में परे कालातीत, अक्षर, अनन्त, Timeless, Imperishable, Infinite) होने से सनातन सत्य (Eternal Truth) हैं । सत्य से ऊंचा या ऊपर उस परम तत्त्व परमात्मा का नाम ही नहीं हो सकता । और न चेतना की अवस्था हो बन सकती । अमेरिका के चिकागो (Chicago) नगर के १७ वीं अक्टूबर, १९३३ के द्वितीय विश्व-धर्म परिषद्में (At the Second World Parliament of the Religion at Chicago on the 17th October, 1933) प्रमुख ने कबीर साहेब की मान्य दृष्टि से देखते हुये यही कहा—

“ There is no God higher than Truth.”

“ सत् में बढ़कर कोई दूसरा परमात्मा है नहीं । ”

इसी सनातन सत्य तत्त्वसार सत्-नाम को हृदय में धारण करने से लिये साहेब कबीर फरमाते हैं और प्रगट करने की शिक्षा प्रदान करते हैं, जैसा के स्वामी विवेकानन्दजी ने भी लिखा है:—

“ Each soul is potentially divine.

The goal is to manifest this divine within, by controlling nature, external and internal.

Do this either by work, or worship, or psychic control, or philosophy, by one, or more, or all of these — and be free

This is the whole of religion. Doctrines, or dogmas, or rituals, or books, or temples, or forms, are but secondary details.”

is one of the 'most interesting' personalities in the history of Indian mysticism ' .

अर्थात् “ कवि कबीर, जिनके भजनों में से कुछ चुन कर यहाँ पर अंग्रेजी पाठकों के लिये रखे जाते हैं, भारतवर्ष के रहस्यवादियों की गणना (इतिहास) में एक अत्यंत चित्ताकर्षक व्यक्ति है । ”

साहेब की वाणियों के मर्म जानने के लिये उनके स्थल-विन्दु, लक्ष्य-विन्दु तथा इंगित-व्यक्ति (Stand-point, view point and the addressee) को सदैव ध्यान में रखना चाहिये । किस भूमि से वाणी निकल रही है, क्या उसका लक्ष्य है और किसकी प्रति प्रेरित हो रही है, इन सब बातों को जान कर ही पाठक वाणियों से पूरा लाभ तथा आनन्द उठा सकता है । अन्यथा, जहाँ पर विरोधाभास है वहाँ पर अत्यन्त विरोध मात्र में भड़कने लगेगा, जहाँ पर समता है वहाँ पर निष्पत्ति दृष्टिगोचर होने लगेगी । उक्त बातों पर न ध्यान देने ही से साहेब कबीर को कोई राम के माननेवाला कहने लगा तो कोई रहीम का, कोई अद्वैत तो कोई विशिष्टाद्वैत, कोई शुद्धाद्वैत तो कोई द्वैताद्वैतवादी समझने लगा । कोई कर्मयोग तो कोई भक्तयोग, कोई ज्ञानयोग तो कोई ध्यानयोग के माननेवाला उनको कहने लगा । विचार करने से मायूम होगा कि उक्त सब याद और सब योग अस्वस्थ-विशेष तथा अधिकारी-विशेष के लिये अपने अपने स्थान पर उत्तम और अनिवार्य (Indispensable) है ।

‘ Each thing in its place is best ’

अतः इन सबों के बोधन करनेवाले पृथक् पृथक् वाणियों को परस्पर विरोधी दल न समझ कर, फिर चित्त से विचार कर, अपनी अस्वस्था के अनुकूल शिक्षा तथा लाभ लेने चाहिये ।

पर सत्र ने अधिक लॉभ साधियों से उठाने की युक्ति सहेत्र ने स्वयं बना दी है। सरल या कठिन, विद्वन् या विस्तृन् टीका-टिप्पणी पढ़ो या न पढ़ो। पर जो साखी अथवा उनके मार्ग तुम्हारे दिग्न पर सचोट लगे, जो केवल तुम्हारे मन को तृप्त (Mental recognition) न कर बल्कि हृदय को छेद देवे, उनको आमसान करने (Spiritual Realisation) में प्रारम्भ दत्तचित रहो। फिर तो, उस साखी के पूर भाव के अनिरिक्त अनेक साधियों के भाव आपही आप, बिना अभिन्न प्रयास के, भीतर उतरने लगेंगे और मुक्तकृत् से साहेब का गुणगान करने लगेंगे। उदाहरण के लिये इस साखी —

ऊँची जाति पपीहरी, नैवे न नीची नीर ।

या पुरपति को जांचही, या दुख सहै सरीर ॥

साखोग्रन्थ गृ० २२१ स० ४६

को ले लो। इसमें चार चरण हैं। किसी एक चरण को आत्मसात् करने में लग जाओ, और देखो कि केषा गूढ़ और अपूर्व रिणाम पर पटुचर्त हो। पहिले चरण में, सत्य-अन्वेषी (Truth-seeker) की जाति, संसृज ही ऊँची (ऊँचेमूल) बताई गई है। दूसरे चरण में, विषय-प्रकार रूप दूषित-लह की तरफ झुकने तक को रूका किया गया है। तीसरे चरण में, परापर पारस्पर्य, देवों के देव को उपासना करने की बताई गई है। और चौथे चरण में, कलौष नेषद् के नचिकेता के ऐसा दृन् सकल्प होकर, अपने गच्छित 'परणाम' से विचलित न होकर प्रतीक्षा की तपस्या रूप दुख सहने को बताई गई है। पहिले चरण में आत्मज्ञान की बात, दूसरे में विषय अग्रहेटना की बात, तीसरे में भक्ति तथा समर्पण की बात और चौथे में सयाग्रह की बात साहेब ने बताई है। इनमें किसी एक को, पहिले, दूसरे, तीसरे अथवा चौथे को हृदयगम कर आत्मसात् (Realisations) करो। शेष तीनों के साक्षात्कार के अलावे सब

साखी शब्दों का मर्म शनै शनै समझ में आने लगेगा । और अनेक-
नेक ग्रंथ पढ़ने की भी आवश्यकता, दिल से जाती रहेगी । साहेब ने
स्वयं सुंदर वो सरल कुंजी बना दी है,

आयी साखी सिंग कट्टी, जो निरुवारो जाय ।

बया पड़ित की पोथियां, रात दिन मिलि गाय ॥३॥

लिखने पढ़ने से भी संभव है कभी चित्त स्थिर हो जाय, श्रवण-
मनन से भी कभी शान्ति मिल जाय; पर वातराग सत्पुरुषों के गुण-
गान से भी-चित्त स्थिर होकर एक प्रकार की शान्ति मिलनी है, जो
अकल्पनीय है । इसलिये पतंजलि भगवान ने चित्तनिरोध के अनेक
उपायों में एक-वातरागस्य चित्तस्य वा-ग्रह भी-बताया है । बस, आओ,
अब हम सब मिलकर सत्पुरुष साहेब का गुणगान कीर्तन कर उनके
रहस्यमय वाणी में अवतरण कर सन् और शान्ति की तरफ धुके !

सतनाम का झंडा आलम में, गड़वा दिया सतगुरु कबीरने ।
भ्रम भूत का भडा एकदम हि फडवा दिया, सतगुरु कबीरने ॥१॥
जो जड़ के पीछे पड़े हुये, चेतन से चित्त हटा करके ।
हो-परगट चेतन की महिमा, बनला दिया, सतगुरु कबीरने ॥२॥
धर्मदास को पत्थर पूजनमें, रे बीत गये बरसों बरसों ।
पर हाथ न आया कुछ उनको, दिखडा दिया सतगुरु कबीरने ॥३॥
फिये कैद हजारों स धुन को, चक्की पिसावे सुखताना ।
फिरवा कर चक्की चेतन बल, दिखला दिया सतगुरु कबीरने ॥४॥
अगनाथ का पडा अग्नि से, जलकर जत्र छटपट करता था ।
जल छाटा दूर से दे पीडा, हरना दिया सतगुरु कबीरने ॥५॥
अभिमानी पोथा-धारी को, करते थे पराजय पल भर में ।
धनमाली ज्ञान परम ज्योति, लाया है सतगुरु कबीरने ॥६॥

निवेदक,

सा० बनमाली गुरु श्री अरविन्द

शान्ति—कबीर नम्रदान

निवेदन ।

इस साखी ग्रन्थ को सांगोपाग सर्वोत्तम सुन्दर रीति से संपादन और सशायन कान का सारा श्रेष्ठ श्रीमान् पंडित मौतीदासजी साहेब, स्व-वद-संपादक, सहकृत विशारद को है । उन्होंने अपनी शारीरिक स्थिति अच्छी न रहते हुये भी यह महान् कार्य अति परिश्रम से किया है । सतगुरु उनकी अभियन्ताओं को पूर्ण करें ।

स्वसवद उन्होंने परिश्रम का फल है और स्वसवद में वा सुनरानो भाषा में कवीरमन्तूर निकटवा है सा उनका परिश्रम है । साखी ग्रन्थ में जितना सुन्दरता देखने में आती है सा सब उनका अति परिश्रम का फल है । कवीर धर्मार्थक कार्यालय से जितना पुस्तकें निकट चुकी हैं और निम्नलेगो सो सब के संपादक श्रीमान् पंडितजी हैं । हमारी अति अभियन्ता यह है कि सतगुरु उनका ऐसे शुभ कार्य करने को सदा सुखी रखें ।

साखी ग्रन्थ की टीका-टिप्पणा और अन्तरणिका जो की गई है सो उनका की प्रेरणा से उन उन महात्माओं ने किया है । बाड़े में सारा ग्रन्थ आदि से अंत तक सफल करने में निम्न जितने भाग लिया है उन सब के हम और सारा कवीरपथ कृतज्ञ है ।

२८ ३ ३५

महत बालकदासजी ।

श्री पूज्य स्वामाना का मैं अत्यंत श्रणी हू कि उन्होंने अनुग्रह कर यह उत्तम अन्तरणिका का अन्तरण करने की परम कृपा का है । एव श्रीमान् १०८ पं. भू. महंतश्री विचारदासजी साहेब शास्त्री का भी मैं अत्यंत श्रणी हू कि उन्होंने मिल टीका-टिप्पणी कर साखी ग्रन्थ को उपादेय और सुगम बना दिया है ।

—प० मौतीदास ।

श्रीमन्नाम्य अन्तरणिका में नाच का भूल रह गई ह । सो ५ न

सुधारकर पड़े ।

पृष्ठांक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२	२	bound	bound
"	१७	Mouse	Mouse
१४	८	कोष	कोष
"	२०	repro luctive	Repro luctive
"	२४	tower	lower
"	२५	corres ponding	Corresponding
"	२७	profect	project
१५	९	Jackal	Jackal
"	११		and
१७	८	अप का	अपने को
"	९	को	कोई
"	१६		मूढ़
२७	२२	मुख	मुख
"	२४	Public	Public
२८	८	अंगरेजी	अंगरेज़ी
२९	७	Exten	External
३०	६	Seens	Scenes

१ व्यवस्थापक, काशीर चंद्रोदय कार्यालय,

मु०, हरक, पो०, मतरिख जि०, बाराबंकी. (य. पी)

२ श्री. १०८ महंतश्री शातिदासजी साहेब

टि० काशीर साहेब का मंदिर, फलिया हनुमान के पास.

मु०, बामनगर (काठियावाड) •

३ श्रंखुत महादेव रामचंद्र जागुटे

बुकासेलम एंड मन्मोहन, खण्डराजा, अहमदाबाद.

॥ सत्यनाम ॥

सद्गुरु कबीर साहब

का

साखी-ग्रंथ ।

(टीका-टिप्पणी-सहित)

सपनाम सत्सुकुत, आदि अदली
अजर अचिन्त पुरुष गुनीन्द्र
वरुणामय — कर्मार
सुरतियोग-सतायन
धनी धर्मदास
साहय की
दया

गुरुदेव को अंग ।

गुरु को कीजै दंडवत, कोटि कोटि परनाम ।
 कीट न जानै भृंग को, गुरु करिले आप समान ॥१॥
 दंडवत गोविंद गुरु, वन्दौ अब जन सोय ।
 पहिले भये प्रनाम तिन, नमो जु आगे होय ॥२॥
 गुरु गोविंद करि जानिये, रहिये सद्ग समाय ।
 मिलै तो दंडवत बंदगी, नहिं पलपल ध्यान लगाय ॥३॥
 गुरु गोविंद दोऊ खड़े, किसके लागौ पाँय ।
 बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दिया बताय ॥४॥
 गुरु गोविंद दोउ एक हैं, दूजा सब आकार ।
 आपा मेंटै हरि भजै, तब पावै दीदार ॥५॥

१ दंडवत्—दंडकी तरह भूमि में पड़कर साष्टांग प्रणाम करना ।
 कीट न जान भृंगीको—भृंगी एक प्रकार की बर—मरखी होती है जो कि मिट्टी के घर में काड़े को लाकर रखती है और अपना शब्द सुनाकर उसे भृंगी बना लेती है । इसी प्रकार सद्गुरु अपने सत्योपदेश से शिष्य को अपने समान बना लेते हैं ।

२ अवजन—वर्तमान समय के सत । इस साखी में तीनों काल के सतों को प्रणाम किया गया है ।

५ दूजा सब आकार—गुरु और गोविंद में केवल आकार का भेद है ।

गुरु हैं बडे गोविंद ते, मन में देखु बिचार ।
 हरि सिरजे ते चार हैं, गुरु 'सिरजे ते पार ॥६॥
 गुरु तो गुरुआ मिला, ज्यों आटे में लौन ।
 जाति पाँति कुल मिटि गया, नाम धरेगा कौन ॥७॥
 गुरु सों ज्ञान जु लीजिये, सीस दीजिये दान ।
 बहुतक भौंदू 'बहि गये, राखि जीव अभिमान ॥८॥
 गुरु की आज्ञा आवई, गुरु की आज्ञा जाय ।
 कहै कबीर सो संत है, आवागवन नसाय ॥९॥
 गुरु पारस गुरु पुरुष है, (गुरु)चंदनवास सुवास ।
 सतगुरु पारस जीव को, दीन्हा मुक्ति निवास ॥१०॥
 गुरु पारस को अन्तरो, जानत है सब संत ।
 वह लोहा कंचन करै, ये करि लेय महंत ॥११॥
 कुपति कीच चेला भरा, गुरु ज्ञान जल होय ।
 जनम जनम का मोरचा, पल में डारे धोय ॥१२॥
 गुरु धोबी सिप कापडा, साबू सिरजनहार ।
 सुरति सिला पर धोइये, निकसै जोति अपार ॥१३॥

६. बार-इस तरफ, चौरास्ता में । पार-उस तरफ, भय से पार ।

८. भौंदू-अज्ञानी । जोय-अपने हृदय में । ११. महल-बडा, श्रेष्ठ ।

१२. ज्योति-तेज, प्रकाश ।

१. पा० सुमिरे । २. पा० मीर ।

गुरु कुम्हार सिप कुंभ है,	गढ़ि गढ़ि काढ़े खोष्ट ।
अन्तर हाथ सहार दे,	बाहिर ^१ बाहै चोट ॥१४॥
गुरु समान दाता नहीं,	याचक सीप समान ।
तीन लोक की संपदा,	सो गुरु दीन्ही दान ॥१५॥
भहिले दाता सिप भया,	तन मन अरपा सीस ।
पाछै दाता गुरु भये,	नाम दिया वख्सीस ॥१६॥
गुरु जो वसै बनारसी,	सीप समुंदर तीर ।
एक पलक विसरै नहीं,	जो गुन होय सरीर ॥१७॥
लच्छ कोस जो गुरु वसै,	दीनै सुरति पठाय ।
सद्ग तुरी असवार छै,	छिन भावै छिन जाय ॥१८॥
गुरु को सिर पर राखिये,	चलिये आज्ञा मांदि ।
कहै कबीर त्हा दास को,	तीन लोक भय नांदि ॥१९॥
गुरु को मानुष जो गिनै,	चरनामृत को पान ।
ते नर नरके जायंगे,	जनम जनम छै स्वान ॥२०॥
गुरु को मानुष जानते,	ते नर कहिये अंध ।
होय दुखी संसार में,	आगे जप का फंद ॥२१॥
गुरु बिन ज्ञान न ऊपजै,	गुरु बिन मिलै न भेव ।
गुरु बिन संसय ना मिटै,	जय जय जय गुरु देव ॥२२॥

१७. बनारसी-काशी में । १८. तुरी-घोड़ा । २०. स्वान-कुत्ता ।

१. पा० भौरे ।

गुरु विन ज्ञान न ऊपजै,	गुरु विन मिलै न मोष ।
गुरु विन लखै न सख को,	गुरु विन मिटे न दोष ॥२३॥
गुरु नारायन रूप है,	गुरु ज्ञान को घाट ।
सतगुरु वचन प्रताप सों,	मन के मिटे उचाट ॥२४॥
गुरु महिमा गावत सदा,	मन अनि राखे मोद ।
मो भव फिरि आवै नहीं,	बैठे प्रभु की मोद ॥२५॥
गुरु सेवा जन बंदगी,	हार सुमिरन बैराग ।
ये चारों तब ही मिले,	पूरन होवै भाग ॥२६॥
गुरु मुक्तावै जीव को,	चौरासी बंद छोर ।
मुक्त प्रवाना देहि गुरु,	जप सो तिनका तोर ॥२७॥

२३ मोष-मोक्ष । २४. उचाट-चञ्चलता ।

२७ तिनका तोर=तिनका तोटना, सबव विच्छेद करना (महाविरा) तिनका तुडाना कबीरपथ की एक विधि है । चौका आरती में शिष्य का तिनका अपेण कराया जाता है । उसका भाव यह है कि अब तुम्हारा यमराज से कोई संबंध न रहा ।

मुक्त प्रवाना=मुक्ति का बीड़ा । जिस प्रकार युद्ध में समिलित हाने के लिये प्राचीन काल में वीर लोग बीड़ा उठाया करते थे, इसी प्रकार चौका आरती में अधिकारी मुमुक्षु को मुक्ति का परवाना दिया जाता है । उसका यह भाव है कि मुमुक्षु को मुक्ति के बाधक कामादिक शत्रुओं से लड़ने के लिये तैयार हो जाना चाहिये ।

परवाना का दूसरा आशय यह भी है कि जिस प्रकार सरकारी परवाना (खास रुका, पास) पाये हुए को दरबार में आने के लिये कोई रोक नहीं सकता, इसी प्रकार मुक्ति परवाना पाये हुए पूर्वोक्त वीर को यमराज नहीं रोक सकता, अतएव वह सीधा सत्यलोक चला जाता है ।

गुरु सों प्रीति निवाहिये, जिहि तत निवहै संत ।
 प्रेम विना ढिग दूर है, प्रेम निकट गुरु कंत ॥२८॥
 गुरु मारै गुरु झटकरै, गुरु बोरै गुरु तार ।
 गुरु सों प्रीति निवाहिये, गुरु है भव कँडिहार ॥२९॥
 गुरु भक्ता मम भक्त हैं, साथ भक्त मम दास ।
 हरि भक्ता सो उत्तमा, कहैं कबीर हरि व्यास ॥३०॥
 गुरु की महिमा को कहै, सिव विरंचि नहि जान ।
 गुरु सतगुरु को चीन्हि के, पावे पद निरवान ॥३१॥
 गुरु मुख बानी ऊचरे, सीप साँच करि मान ।
 या विधि फंदा छूटहीं, और युक्ति नहि आन ॥३२॥

२८. निवाहिये-बना राखिये । जेहि तत निवहै-जिस तरह बनी रहे । ढिग-पास अर्थात् पासमें रहते हुए भी । कंत-स्वामी (म कन्त) ।

२९. झटकरै-फटकार बतावे । बोरै-डुबोवें । तार-संसार से पार करे ।

कँडिहार-(सं. कर्णधार) नाव चलानेवाला, संसार सागर से पार उतारनेवाला । कबीरपंथ में महंतों की 'कँडिहार' पदवी है । जिस प्रकार मछलह दरियों से पार उतारते हैं इस प्रकार ये लोग भी भवसागर से उतारने में मुमुक्षुओं की सहायता करते हैं ।

३०. हरिव्यास-हरि व्यासजी को कहते हैं । गुरु महिमा के प्रमाण रूप यह साखी कबीर साहेब न हरि और व्यास के संवाद रूप में कही है ।

३१. विरंचि-ब्रह्मा । निरवान-मुक्ति ।

१ पा० गुरु । २ पा० जान ।

गुरु मूरति गति चंद्रमा, सेवक नैन चकोर ।
 आठ पहर निरखत रहै, गुरु मूरति की ओर ॥३३॥
 गुरु समाना सीप में, सीप छिया करि नेह ।
 बिलगाये बिलगे नहीं, एक मान दुइ देह ॥३४॥
 गुरु सरनागत छाँडि के, करै भरोसा और ।
 सुख संपति की कह चली, नहीं नरक में ठौर ॥३५॥
 गुरु मूरति आगे खड़ी, दुतिय भेद कहु नाँहि ।
 उनही कं परनाम करि, सकल तिमिर मिटि जाँहि ॥३६॥
 ज्ञान प्रकासी गुरु मिला, सो जनि बिसरौ जाय ।
 जब गोविंद किरपा करी, तब गुरु मिलिया आय ॥३७॥
 ज्ञान समागम प्रेम सुख, दया भक्ति विस्वास ।
 गुरु सेवा ते पाइये, सतगुरु चरन निवास ॥३८॥
 कबीर ते नर अंध हैं, गुरु को कहते और ।
 हरि के रुठै ठौर है, गुरु रुठे नहि ठौर ॥३९॥
 कबीर हरि के रुठते, गुरु के सरनै जाय ।
 कहै कबीर गुरु रुठते, हरि नहि होत सहाय ॥४०॥

३३. ओर-तरफ । ३४. नेह-प्रेम । बिलगाये-अलग करने से ।

३५. कह चली-कहा धरी है । ३७. सो जनि बिसरौ जाय-उसे कभी

न भूलना । ३९. रुठे-रुठना, अप्रसन्न होना ।

हरि रुठै गति एक है, गुरु सरनागत जाय ।
 गुरु रुठे एको नही, हरि नहि करै सहाय ॥४१॥
 कबीर गुरु ने गम कही, भेद दिया अरथाय ।
 सुरति कंवल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥४२॥
 बलिहारी गुरु आपकी, घरी घरी सौ बार ।
 मानुष ते देवता किया, करत न लागी चार ॥४३॥
 सिप खाँडा गुरु मसकला, चहै सह्र खरसान ।
 सह्र सहै सनमुख रहै, निपजै सीप सुजान ॥४४॥
 भली भई जो गुरु मिले, नातर होती हानि ।
 दीपक जोति पतंग ज्यौ, पड़ता आय निदान ॥४५॥
 भली भई जो गुरु मिले, जाते पाया ज्ञान ।
 घट ही मॉहि चवूतरा, घट ही मॉहि दिवान ॥४६॥

४२ गम-ज्ञान । अरथाय समझा दिया । सुरति कंवल-यह सहस्रदल के आगे आठवाँ कमल है, जहा से सतमत का अभ्यास आरम्भ होता है । ' सुरति कंवल पर साहज प्रौलें ' । निराधार-निरालम्ब, सन्धपुरुष ।

४३ चार-देरी ।

४४ खाँडा-तरवार । मसकला-जग छुड़ाने का सिकलीगर का एक ओजार । खरसान-सान । निपजै-बने ।

४५. नातर-नहीं तो । निदान-अंत में ।

४६ चवूतरा-चौरा, बैठक । दिवान-न्यायकर्ता ।

सत्तनाम के पटतरै,	देवै को कटु नाँहि ।
कह ले गुरु सतोपिये,	ह्वस रही मन माँहि ॥४७॥
निज मन माना नाम सों,	नजरि न आवै दास ।
कहै कबीर सो क्यों करै,	राम मिलन की आस ॥४८॥
निज मन तो नीचा किया,	चरन कमल की ठौर ।
कहै कबीर गुरुदेव तिन,	नजरि न आवै और ॥४९॥
तन मन दीया(तो)मल किया,	<u>सिर क जासी भार ।</u>
जो कबहुँ कहै मैं दिया,	बहुत सहै सिर मार ॥५०॥
तन मन ताको दीजिये,	<u>जाको विषया नाँहि ।</u>
आपा सब ही डारि के,	राखै साहिव मोहि ॥५१॥
ऐसा कोई ना मिला.	सत्तनाम का मीत ।
तन मन सोंपै मिरग ज्यों,	सुनै अधिक का गीत ॥५२॥
जल परमानै माछली.	कुल परमानै सुद्धि ।
जाको जैसा गुरु मिला,	ताको तैसी बुद्धि ॥५३॥
जैसी प्रीति कुटुंब की,	तैसी गुरु सों होय ।
कहै कबीर ता दास का,	पला न पकड़ै कोय ॥५४॥

४७ पटतरै—अंग, बदला में । ह्वस—इच्छा (फा० ह्विश) ।

४८ जिसका अन्तर्हृदय नाम का अनुरागी हो ऐसा दास देखने में नहीं आता । ऐसे प्रेमी को तो राम मिला ही मिलाया है । अतः वह उसके मिलने की आशा क्यों करे ।

५२ मीत—मित्र । बधिक—पारधी । ५३ सुद्धि—आचार विचार ।

सब घरती कागद बरू, ^१लिखनी सब प्रनराय ।
 सात समुंद की मसि करूं, गुरु गुन लिखा न जाय ॥५५॥

✓धूँटा था पर ऊँरा, गुरु की लहरी चमक ।
^२वेड़ा देखा झाँझरा, बतरी मया फरक दिख ॥

अह अगनि निस दिन जरै, गुरु सों चाँद मान ।
 ताको जम न्यौता दिया, हो (उ) हमार मिहमान ॥५७॥

जम गरजै बल बाघ के, कहैं कबीर पुकार ।
 गुरु किरपा ना होत जो, तो जम खावा फार ॥५८॥

अमरन वरन अमूर्त जो, कहो ताहि किन पेख ।
 गुरु दया ते पावई, सुरति निरति करि देखा ॥५९॥

पढित पढि गुनि पचि मुये, गुरु भिन मिलै न ज्ञान ।
 ज्ञान बिना नहीं मुक्ति है, सत्त सद्द परमान ॥६०॥

५६ लहर-मौज, इच्छा । चमक-चमक गई, गुरुकी दया हो गई । वेड़ा-नाव । झाँझरा छेदवाला, पुराना । फरक-अलग ।

५८. बल बाघ के-सिंह के समान बली ।

५९ अमूर्त-आकार रहित । पेख-देखा ।

१ पा० लेखनि । २ पा० मेरा ।

मूल ध्यान गुरु रूप है, मूल पूजा गुरु पाँव ।

मूल नाम गुरु वचन है, मूल सत्य सत भाव ॥६१॥

६१ गुरु स्वरूप के ध्यान करने पर किसी ध्यान की आवश्यकता नहीं होती, और गुरु चरणों की पूजा के अनन्तर दूसरी पूजा की आवश्यकता नहीं होती । इसी प्रकार गुरुवचन को हृदय में धर लेने पर दूसरे नाम को उसमें धरने की जरूरत नहीं होती, और अपने भाव को सत्य बनाने पर सत्य को हृदय में धरने की जरूरत नहीं होती । “ यस्य देवे परा भक्ति र्यया देवे तथा गुरो तस्यैते कथिता ह्यर्था प्रकाशन्ते महात्मन ” श्वेताश्वतर के, इस वचन के अनुसार गुरुभक्ति से अन्य मुक्ति का अधिकारी कदापि नहीं हो सकता, क्यों कि मुक्ति के मंदिर की कुची मंदगुरु के पास है । बिना उनकी कृपा के उसका मिलना असंभव है । इसीलिये यह कहा गया है कि “ तद् विज्ञानार्थं गुरुमेवाभिगच्छेत् ” अर्थात् परमार्थ तत्त्व के जानने के लिये अधिकारी को गुरु के शरण में ही जाना चाहिये । गीता में भी यह स्पष्ट ही कहा गया है कि—“तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया । उपदेक्ष्यति ते ज्ञानं ज्ञानिन स्तत्त्वदर्शिनः ” ॥ उस तत्त्व को जानने के लिये गुरु को प्रणाम करो, उसकी सेवा करो और विनयपूर्वक उनसे पूछो, ऐसे आचरण से प्रसन्न होकर सद्गुरु तुमको मुक्ति तत्त्व का उपदेश देंगे । इत्यादि श्रुति और स्मृतियों के वचनों के आकलन से स्पष्ट है कि, गुरु की पूजा और ध्यान मुक्तिप्रद होने के कारण अथ देवताओं की पूजा और ध्यान से श्रेष्ठ है । इसी प्रकार गुरु का सत्योपदेश नामस्मरण से अधिक फलदायी होने के कारण आवश्यक प्राह्य है ।

कहें कबीर तजि भरम को, नन्हा हूँ करि पीव ।
 तजी अहं गुरु चरन गहू, जम सों वाचै जीव ॥६२॥
 तीन लोक नव खंड में, गुरु ते बड़ा न कोय ।
 करता करै न करि सकै, गुरु करै सो होय ॥६३॥
 कोटिन चंदा ऊगहीं, सूरज कोटि हजार ।
 तीमिर तो नासै नहीं, दिन गुरु घोर अंधार ॥६४॥
 पहिले घुरा कपाड़ के, बांधी विष की पोट ।
 कोटि करम पल में कटै, (जब) आया गुरु की ओट ॥६५॥
 जगत जनायो सकल जिहि, सो गुरु प्रगटे आय ।
 जिन गुरु आँखिन देखिया, सो गुरु दिया लखाय ॥६६॥
 हरि किरपा तब जानिये, दे मानव अवतार ।
 गुरु किरपा तब जानिये, छड़ावे संसार ॥६७॥
 जाके सिर गुरु ज्ञान है, सोइ तरत मव पाँहि ।
 गुरु धिन जानो जन्तु को, कष्टहुँ मुक्ति सुख नाँहि ॥६८॥
 देवी बड़ा न देवता, सूरज बड़ा न चंद ।
 आदि अंत दोनों बड़े, कै गुरु कै गोविंद ॥६९॥

६६. जिस मालिक ने सारे संसार का निर्माण किया है और जो स्वयं अलक्ष्य है उस मालिक के रूप में प्रकट होकर गुरु ने उसको लखा दिया ।

६७. बिना ईश्वर की कृपा के मनुष्य देह नहीं मिल सकती, और गुरु की कृपा के बिना भवसागर से पार नहीं हो सकता । एवं गुरु की कृपा के बिना ईश्वर की कृपा भी नहीं हो सकती ।

सब कुठ गुरु के पास है, पाइये अपने भाग ।
 सेवक मन सौपै रहे, निस दिन चरनों लगा ॥७०॥
 बहुत गुरु भै जगत में, कोई न लागे तीर ।
 सैव गुरु वहि जायंगे, जाग्रत गुरु कबीर ॥७१॥
 वेद पुराना साधु गुरु, सवन कहा निज बात ।
 गुरु तें अधिक न दूसरा, का हरि का पितुमात ॥७२॥
 ताते सद्र विवेक करि, कीजै ऐसो साज ।
 जिहि विधि गुरु सों प्रीति रह, कीजै सोई काज ॥७३॥
 सो (इ) सो(इ)नाच नचाइये, जिहि निबहै गुरु भेम ।
 कहै कबीर गुरु भेम विन, कितहुँ कुसल नहि ठेमा ॥७४॥
 तन मन सीस निछावरै, दीजै सरवस प्रान ।
 कहै कबीर दुख सुख सहै, सदा रहै गलतान ॥७५॥
 तब ही गुरु प्रिय बैन कहि, सीप षड़ी चिन प्रीत ।
 तो रहिये गुरु सनमुखौं, कबहुँ न दीजै पीठ ॥७६॥
 स्नेह भेम गुरु चरन सों, जिहि प्रकार सें होय ।
 क्या नियरै क्या दूर वस, भेम भक्त सुख सोय ॥७७॥
 जिहि विधि सिपको मन बसै, गुरु पद परम सनेह ।
 कहै कबीर क्या फरक दिग, क्या परबत बन गेह ॥७८॥

जो गुरु पूरा होय तो, सीप हिलेय निवाह ।
 सीप भाव सुत जानिये, सूत(ते)थेष्ट सिप आह ॥७९॥
 अयुध सुबुध सुत मातुपितु, सब हि करै प्रतिपाल ।
 अपनी ओर निवाहिये, सिख सुत गहि निजचाल ॥८०॥
 कहै कबीर गुरुसों मिले, होय नाम परकास ।
 गुरु मिलि सिप भवनिधि तरै, कहै कृष्ण मुनि व्यास ॥८१॥
 सुनिये संतो साधु मिलि, कहै कबीर बुझाय ।
 जिहि विधि गुरुसों प्रीति हू, कीजै सोइ उपाय ॥८२॥
 आध सद्ध गुरु देव का, ताका अनेत विचार ।
 धाके मुनि जन पंडिता, वेद न पावे पार ॥८३॥
 करै दूरि अज्ञानता, अंजन ज्ञान सु देय ।
 बलिहारी वे गुरुन की, हंस उबारि जु लेय ॥८४॥
 हरि सेवा युग चार है, गुरु सेवा पल एक ।
 ताके पटतर ना तुलै, संतन कियो विवेक ॥८५॥
 ते मन निरमल सत खरा, (जो)गुरुसों लगै हेत ।
 अंकुर सोई अगसी, (गुरु) सद्धै बोया खेत ॥८६॥
 भौसागर की त्रास ते, गुरु की पकड़ो बाँहि ।
 गुरु विन कौन उबारसी, भौजल धारा बाँहि ॥८७॥

७९. आह—है ।

८१. यह साखी भी व्यास और कृष्ण के संवाद रूप में कही गई है।

१. प्रा० एक ।

लौ लागी बिष भागिया, कालक(ख) डारी धोय ।
 कहैं कवीर गुरु साबु सों, कोइ इक ऊजल होय ॥८८॥
 साबु विचारा क्या करै, गोंठै राखै भोय ।
 जल सो अरसा परस नहि, क्यों करि ऊजल होय ॥८९॥
 नारद सरिखा सीप है, गुरु है पच्छीमार ।
 ता गुरु की निन्द करै, पहुँ चौरासी धार ॥९०॥
 राजा की चोरी करै, रहै रंक की ओट ।
 कहैं कवीर क्यों ऊवरै, काल कठिन की चोट ॥९१॥

८८. लौ-लग्न, प्रेम । बिष-विषयवासना । कालख-पाप ।

८९. जिस प्रकार मैले कपड़े में बाधा हुआ साबुन बिना पानी के कपड़े को सफा नहीं कर सकता, इसी प्रकार बिना सत्संग के ज्ञान पाप के मेल को दूर नहीं कर सकता ।

९०. शिष्य को उचित है कि वह गुरु की जाति का विचार न करे । शिष्य के पूछने पर नारदजी ने अपने धोमर गुरु की निंदा की थी। इस कारण उन्हें चौरासी भोगने की आज्ञा हो गई थी परन्तु अपने गुरु की कृपा से उनको इससे छुटकारा हो गया ।

९१. जो ईश्वर से विमुख होकर ससार का प्रेमी बनता है वह काल के फन्दे से नहीं बच सकता । उसको उचित है कि वह गुरु के शरण में जाय ।

सतगुरु को अंग ।



कबीर रामानंद को, सतगुरु भये सहाय ।
 जग में युक्ति अनूप है, सो सब दर्ई बताय ॥१॥
 सतगुरु के परताप तें, मिटी गयो सब दुंद ।
 कई कबीर दुविधा मिटी, (गुरु)मिलिया रामानंद ॥२॥
 सतगुरु सम को है सगा, साधू सम को दात ।
 हरि समान को है हितु, हरिजन सम को जात ॥३॥
 सतगुरु सम कोई नहीं, सात द्वीप नव खंड ।
 तीन लोक ना पाइये, अरु इकइस ब्रह्मंड ॥४॥
 सतगुरु की महिमा अनंत, अनंत किया उपकार ।
 लोचन अनंत उधारिया, अनंत दिखावनहार ॥५॥
 दिल ही में दीदार है, बादि झखै संसार ।
 सतगुरु सद्गुहि मसकला, मुझे दिखावनहार ॥६॥
 सतगुरु साँचा सूरमा, नख सिख मारा पूर ।
 बाहिर घाव न दीसई, अन्तर चकना चूर ॥७॥

३ दात-दाता । जात-जाति भाई ।

५ (१) अनन्त-अपार । (२) अनन्त-बहुत । लोचन-नेत्र । (३) अनन्त-अविनाशी । (४) अनन्त-अखंड पुरण ।

६ दीदार-दर्शन । बादि-व्यर्थ । झखै-पछताता है । मुझे-मुझको (अपना रूप) ।

७ दासई-दीखता है । चकनाचूर-बिल्कुल टूट गया ।

सतगुरु साँचा सूरमा, सद्ध जु बाह्या एक ।
लागत ही भय मिटि गया, पड़ा कलेजे छेक ॥८॥

सतगुरु मेरा सूरमा, वेधा सकल सरीर ।
सद्ध बान से भरि रहा, (क्यों)जीयेदास कबीर ॥९॥

सतगुरु मेरा सूरमा, तकि तकि मारै तीर ।
लागे पन भागे नहीं, ऐसा दास कबीर ॥१०॥

सतगुरु मारा बान भरि, निरखि निरखि निज ठौर ।
नाम अकेला रहि गया, चित्त न आवै और ॥११॥

सतगुरु मारा बान भरि, धरि करि धीरी मूठ ।
अंग उघाड़े लागिया, गया दुवाँ सौ फूट ॥१२॥

< बाह्या-चलाया, मारा । एक-एक मालिक का । शद्ध-उपदेश ।
छेक-छेद ।

९. वेधा छेद दिया ।

१०. तकि २-निशाना ताक कर । लागे पन . शिष्य को
चाहिये कि सतगुरु के उपदेश से अपने चित्त को कभी न हटावे ।

११. मेरे हृदय की आसक्ति को पहचान २ कर सतगुरु ने ऐसा
पूरा उपदेश दिया कि शिक्षा से हटके दूसरी ओर चित्त नहीं जाता ।

१२ धीरी मूठ-बाण को धीरे से खेंचकर । दुवाँसों-आपारा सतगुरु
के शत उपदेश को जो शिष्य कपट छोड़कर मानता है उसके हृदय से
लोक और परलोक के सुख की आशा निकल जाती है ।

१. पा० अलख नाम में रमि रहा, ।

सतगुरु मारा बान भरि, टूटि गई सत्र जेव ।
 कहूँ आपा कहूँ आपदा, तसबी कहूँ किनेव ॥१३॥
 सतगुरु मारा बान भरि, डोळा नाँहि मरीर ।
 कहूँ चुंवक क्या करि सकै, मुख लागै वहि तीर ॥१४॥
 सतगुरु मारा बान भरि, रहा कलेजे माल ।
 राखी काढ़ी तळ रहे, आज मरे की काल ॥१५॥
 गोसा ज्ञान कमान का, खैचा किनहु न जाय ।
 सतगुरु मारा बान भरि, रोम हि रहा समाय ॥१६॥
 सतगुरु मारा तान करि, सद्गुरंगी बान ।
 मेरा मारा फिर जिये, (तो)हाय न गहों कमान ॥१७॥
 सतगुरु मारी प्रेम की, रही कटारी हूट ।
 वैसी अनी न सालई, जैसी सालै मूठ ॥१८॥

१३. जेज सजाय, बनाय । शरीर की ममता । आप कह आशा..... गुरु के उपदेश स्वर्ण बाण से शिष्य ऐसा घायल हो गया कि उसको तसबी (माला) और कुरान का कुछ खयाल न रहा और सारी आशाएँ छोड़कर आप अपने में पहुच गया ।

१४. सद्गुरु के उपदेश के सुनते ही चित्त स्थिर हो गया । ससारी लोग उसे बहुत कुछ अपनी ओर खींचना चाहते हैं, परन्तु वह आनन्द के सागर को छोड़ना नहीं चाहता ।

१६. गोसा रोदा । रोमही-रोम २ में

१७. सुरंगी-सीधा, सत्यका उपदेश ।

१८. अनी-नोक । मूठ-पकड़ने की जगह । वैसी... मूठ-थोडा प्रेम मनुष्य को घायल नहीं कर सकता, किन्तु पूरे प्रेम से ही वह ससार से उदास हो सकता है ।

सतगुरु सद्ध कमान करि, वाहन लागे तीर ।
 एक हि वाहा प्रेप सों, भीतर विधा सरीर ॥१९॥
 सतगुरु सत का सद्ध है, (जिन)सत्त दिया वतलाय ।
 जो सत को पकड़े रहै, सत्त हि माँहि समाय ॥२०॥
 सतगुरु सद्ध सब घट वसै, कोई कोइ पावै भेद ।
 समुँद वुँद एकै भया, काहे करहु निपेद ॥२१॥
 सतगुरु दाता जीव के, जीव ब्रह्म करि लेह ।
 सरवन सद्ध सुनाय के, और रंग करि देह ॥२२॥
 सतगुरु सैं सुधा मया, सद्ध जु लागी अंग ।
 ऊठी लहरि समुँद की, भींजि गया सब अंग ॥२३॥
 सद्धै मारा खँचि करि, तब हम पाया ज्ञान ।
 लगी चोट जो सद्ध की, रही कलेजे छान ॥२४॥
 सतगुरु बड़े सराफ़ हैं, परखे खरा रु खोट ।
 भीसागर ते काढि के, राखे अपनी ओट ॥२५॥
 सतगुरु बड़े जहाज हैं, जो कोइ बैठे आय ।
 पार उतारै और को, अपनो पारस लाय ॥२६॥

२१. समुँद वुँद-ईश्वर और जीव । २३. सुधा-सन्मुख ।
 समुँद-प्रेम को समुद्र । २४. छान-वेध गई । २५. सराफ़-जौहरी ।
 ओट-सहारे । २६. पारस-पारसमणि, दाम ।

१. पा० सतगुरु सद्ध जहाज है, २. पा० किसका करुं निपेद ॥

सतगुरु बड़े सुनार हैं, परखे वस्तु भँडार ।
 सुरति हि निरति मिलाय के, मेटि डारे खुटकार ॥२७॥
 सतगुरु के सद्के किया, टिल अपने को सॉच ।
 कलियुग हय सौ लहि पडा, मुहकम मेरा वाच ॥२८॥
 सतगुरु मिलि निर्भय भया, रही न दूजी आस ।
 जाय समाना सब्द में, सत्तनाम विस्वास ॥२९॥
 सतगुरु मोहि निवाजिया, दीन्हा अंघर बोल ।
 सीतल छाया सुगम फल, हंसा करै किलोल ॥३०॥
 सतगुरु पारस के सिला, देखो सोचि विचार ।
 आइ परोसिन ले चली, दीयो दिया सम्हार ॥३१॥
 सतगुरु सरन न आवहौं, फिरि फिरि होय अकाज ।
 जीव खोय सब जायंगे, काल तिहु पुर राज ॥३२॥
 सतगुरु सो सत भाव है, जो अस भेद बताय ।
 धन्य सीप धन भाग तिहि, जो ऐसी सुधि पाय ॥३३॥

२७ सुरति-जीव । निरति-साहब । खुटकार-खटक ।

२८. सद्के न्योठावर । मोहकम-परवाना । कलियुग की अमलदारी के रहते हुए भी मैंने सतगुरु में चित्त लगाकर उसे सबहि स लिया ।

३० निवाजिया-दया की । अमर बोल-मुक्ति का उपदेश ।

३१. दीयो .. सम्हार-दीये से ढाये को जला लिया । अर्थात् सतगुरु का उपदेश शिष्य प्रशिष्य के द्वारा ससार में फैल गया ।

३३. भावों की सत्यता ही साहब का स्वरूप है, जो इस मत को मान लेता है वह बड़भागी है, क्यों कि उसकी मुक्ति में संदेह नहीं रहता ।

सतगुरु हम सौ रीझि कै, कह्यो एक परसंग ।
 बरपै बादल प्रेम को, भीजि गया सब अंग ॥३४॥
 सतगुरु बादल प्रेम के, — हम पर धरन्यौ आय ।
 अन्तर भीजी आत्मा, हरी भई बनराय ॥३५॥
 हरी भई सब आत्मा, सब्द उठै गहराय ।
 डोरी लागी सब्द की, ले निज घर कुं जाय ॥३६॥
 हरी भई सब आत्मा, सतगुरु सेव्या मूल ।
 चहुँदिस फूटी वासना, भया कली सौं फूल ॥३७॥
 सतगुरु के भुज दीय है, गोविंद के भुज चार ।
 गोविंद से कहु ना सरै, गुरु उतारै पार ॥३८॥
 सतगुरु की दाया भई, उपजा सहज सुभाव ।
 ब्रह्म अगनि परजालिया, अब कहु कहा न जाव ॥३९॥
 सतगुरु हम सौं मल कही, ऐसी करै न कोय ।
 तीन लोक जम फंद में, पला न पकडे कोय ॥४०॥

३४ रीझि कै-प्रसन्न होकर । एक परसंग-एक साहब से प्रेम का प्रसंग ।

३५. बनराय-सारा जगल । सब ओर आनंद छा गया ।

३७ जिस प्रकार मूल के सँचिने से पेड़ की डालिया हरी भरी हो जाता हैं और कलिया खिलकर चारों ओर सुगंध फैला देती हैं, इसी प्रकार पूरे सतगुरु के शरण से पूर्णपद मिल जाता है, जिससे श्रेय और प्रेम दोनों की प्राप्ति हो जाती है ।

१ पा० ऊठे ।

सतगुरु मिले जु सब मिले, ना तो मिळा न कोय ।
 मातु, पिता सुत बंधुवा, ये तो घर घर होय ॥४१॥
 सतगुरु मिला जु जानिये, ज्ञान उजाला होय ।
 भ्रम का माँडा तोड़ि करि, गढ़े भिराला होय ॥४२॥
 सतगुरु आत्म दृष्टि है, इन्दी टिकै न कोय ।
 सतगुरु विन सूझे नहीं, खरा दुहेला होय ॥४३॥
 सतगुरु किरपा फेरिया, मन का और हि रूप ।
 कवीर पाँचो पलटिया, भेले किया अनूप ॥४४॥
 सतगुरु को मानै नहीं, अपनी कहै बनाय ।
 कहै कवीर वया कीजिये, और मता मन पाँय ॥४५॥
 सतगुरु अम्रित बोझ्या, सिप खारा है आय ।
 नाप रसायन छाँडि कर, आक धरारा खाय ॥४६॥
 सतगुरु महल बनाइया, प्रेम गिलावा दीन्ह ।
 साहिब दरसन कारनै, सब्द शरोखा कीन्ह ॥४७॥
 सतगुरु को ऐसा मिला, ताते लोह लुहार ।
 कसनी दे कंचन किया, ताप छिया ततसार ॥४८॥

४३. सद्गुरु (साहब) स्वानुभवगम्य हैं । इन्द्रियों से वह जाना नहीं जाता । बिना सद्गुरु (गुरु) के मिले सत्य वस्तु भी झूठी मालूम पड़ती है ।

४४. भेले—मिला दिया । अनूप—मालिक ।

सतगुरु के उपदेस का, सुनिया एक विचार ।
 जो सतगुरु मिलता नहीं, जाता जम के द्वार ॥४९॥
 जम द्वारे में दूत सब, करते ऐंचातान ।
 उन ते कबहु न छटना, फिरता चारों खान ॥५०॥
 चारि खानि में भरमता, कबहु न लगता पार ।
 सो फेरा सब मिटि गया, सतगुरु के उपकार ॥५१॥
 पाछे लगा जाय था, लोक वेद के साथ ।
 पैडे में सतगुरु मिले, दीपक दीन्हा हाथ ॥५२॥
 दीपक दीन्हा बेल भरि, धाती दी अघट ।
 पूरा किया विसाहना, बहुरि न आवै हट ॥५३॥
 पूरा सतगुरु सेवतों, अंतर मगटे आप ।
 मनसा वाचा कर्मना, मिटे जनम के ताप ॥५४॥
 पूरा सतगुरु 'सेव तूं', धोखा सब दे द्वार ।
 साहिब भक्ति कहँ पाइये, अब मानुष औतार ॥५५॥
 पूरा सतगुरु सेवताँ, सरन पायो नाम ।
 मनसा वाचा कर्मना, सेवक सारा काम ॥५६॥
 मन हि दिया जिन सब दिया, मन के संग सरीर ।
 अब देवे को क्या रहा, यों कथि कहँ कबीर ॥५७॥

५२. पैडे में—रास्ते में ।

५३. अघट—पूरी । विसाहना—सौदा । हट—छाट, बाजार ।

तन मन दिया जु क्या हुआ,	निज मन दिया न जाय ।
कहै कबीर ता दास सों,	कैसे मन पतियाय ॥६८॥
तन मन दिया जु आपना,	निज मन नाके संग ।
कहै कबीर सटके किया,	सुनि सतगुरु परसंग ॥६९॥
पारस लोहा परसते,	पलटि गया सब अंग ।
अंसय सबही मिटि गया,	सतगुरु के परसंग ॥७०॥
मब जग भरमा यों फिरै,	ज्यों रामा का रोज ।
सतगुरु सों सुधि जब भई,	पाया हरि का खोज ॥७१॥
थापन पाई धिर भया,	सतगुरु दीन्ही धीर ।
कबीर हीरा बनिजिया,	मान सरोवर तीर ॥७२॥
कबीर हीरा बनिजिया,	हिरदै भगटी खान ।
पारग्रह किरपा करी,	सतगुरु पिले घुजान ॥७३॥
निश्चय निधी पिछाय तत,	सतगुरु साइस धीर ।
निपजी में साझी घना,	बाँटनहार कबीर ॥७४॥
यिति पाई मन धिर भया,	सतगुरु करी सहाय ।
अनन्य कथा जिव संचरी,	हिरदै रही समाय ॥७५॥
कर कमान सर साधि के,	खैचि जु मारा मॉहि ।
भीतर बाँधे सो मरै.	जिय पै जीवै नॉहि ॥७६॥

६१. रामा—भगन् । ६२ बनिजिया—खरीदा । ६५ अतिन
कथा—एक ध्यान ।

१. पा० लोहा पारस परसते । २. पा० भेष । ३. पा० ससा ।

चेतन चौकी बैठि के, सतगुरु दीन्ही धीर ।
 निर्भय होय निःसंक भजु, केवल कहैं कबीर ॥६७॥
 जब ही मारा खंचि के, तब मै मूआ जानि ।
 लागी चोट जु सज्द की, भई कलेजे छानि ॥६८॥
 हँसै न धौलै उनमुनी, चंचळ मेल्या मार ।
 कह कबीर अंतर विध्या, सतगुरु का हथियार ॥६९॥
 गुगा हुआ धावरा, बहरा हुआ कान ।
 पाँवन ते पंगुला भया, सतगुरु मारा वान ॥७०॥
 ज्ञान कमान रु लौ गुना, तन तरकस मन तीर ।
 भलक वडै तत सार का, मारा हृदफ कबीर ॥७१॥
 जो दीसै सो विनसि है, नाम धरा सो जाय ।
 कबीर सोई तत गहौ, सतगुरु दीन्ह बताय ॥७२॥
 कुदरत पाई ^१खबर सों, ^२सतगुरु दिया बताय ।
 भँवर विलंघा कपल रस, ^३अब छडि अंत न जाय ॥७३॥
 सच नाम छाडौ नहीं, सतगुरु सीख दई ।
 अविनासी सों परसि के, आत्म अमर भई ॥७४॥

६९. चंचळ—चंचल्ता । मेल्या मारे—मार हटाई ।

७१. हृदफ—निशाना ।

७३. सतगुरुने ससार का सच्चा भेद बना दिया, इस कारण चित्त उससे हटकर परमानन्द में लग गया ।

१. पा० खरी सों । २. पा० चित्त सों चित्त मिलाय । ३. पा० अब कैसे उडि जाय ।

चित चोखा मन निरमला,	बुधि उत्तम पति धीर ।
सो घोखा नहि धिरहही,	सतगुरु मिले कबीर ॥७५॥
बिन सतगुरु चाँचै नहीं,	फिर बूढ़े भव माँहि ।
मौसागर की प्रास सैं,	सतगुरु पकड़े बाँहि ॥७६॥
जीव अघम अति कुटिल हैं,	काहु नहीं पतियाय ।
ताका औगुन भेटि कर,	सतगुरु होत सहाय ॥७७॥
जेहि खोजत ब्रह्मा यकै,	सुर नर मुनि अरु देव ।
कहैं कबीर सुन साधवा,	करु सतगुरु की सेव ॥७८॥
काल के माये पाँव दे,	सतगुरु के उपदेस ।
साहिब अंक पसारिया,	ले चल अपने देस ॥७९॥
जाय पिल्यौ परिवार में,	सुख सागर के तीर ।
वरन पलटि हंसा किया,	सतगुरु सच कबीर ॥८०॥
जग मूआ विपधर ^१ धरै,	कहैं कबीर ^२ पुकार ।
जो सतगुरु को पाइया,	सो जन उत्तरै पार ॥८१॥
अंधा ऊरट जात है,	दोनों लोचन नाँहि ।
उपकारी सतगुरु मिले,	(लै) डारै वस्ती माँहि ॥८२॥
दौड़ आय सो दौड़सी,	पहुँचेगा उन देस ।
जाय मिले वा पुरुष कूँ,	सतगुरु के उपदेस ॥८३॥

७२. अक—अकनार । ८२. ऊरट—बेरस्ते, कुमार्ग ।

१. पा० विचलहो । २. पा० हसै । ३. पा० विचार ।

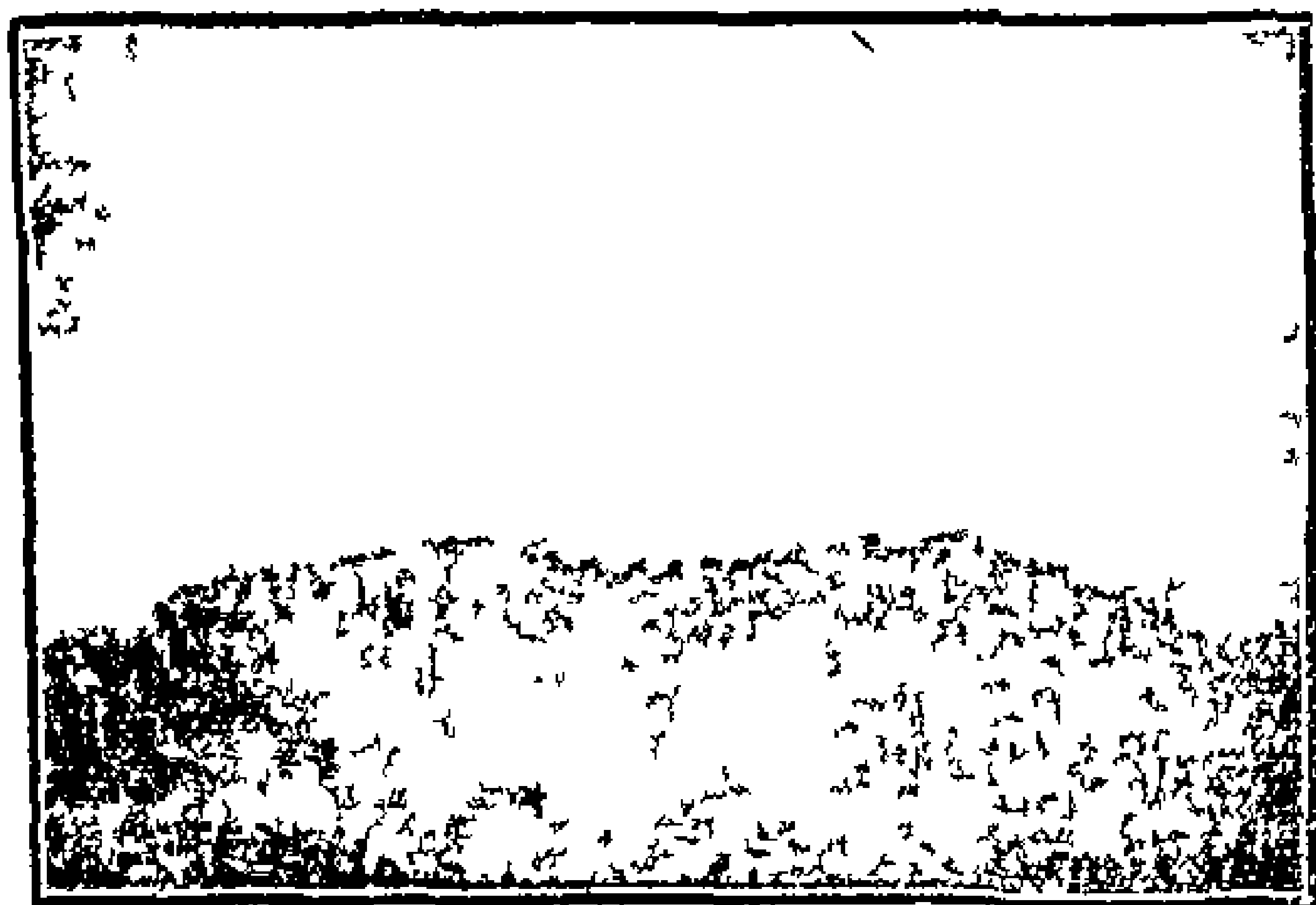
जग 'में युक्ति अनूप है, साध संग गुरु ज्ञान ।
 तामें निपट अनूप है, सतगुरु लागा कान ॥८४॥
 सीप हरन गुरु पारधी, सत्तनाम के वान ।
 लागा तब ही भय मिटा, तब ही निकसे पान ॥८५॥
 सब जग तो भरमत फिरै, ज्यों जंगल का रोज़ ।
 सतगुरु सों सूधि भई, जब देखा कछु मौज ॥८६॥
 तीन लोक है देह में, रोम रोम में धाम ।
 सतगुरु विन नहि पाइये, सत्त सार निज नाम ॥८७॥
 सकल जगत जानै नहीं, सो गुरु प्रगटे आय ।
 जिन आँखों देखा नहीं, सो गुरु दीन्ह लखाय ॥८८॥
 चलते चलते युग गया, को(इ) न बतावै धाम ।
 पैडे में सतगुरु मिले, पाव कोस पर गाम ॥८९॥
 खेल मचा खेलाडि सों, आनंद जीतै जाय ।
 सतगुरु के संग खेलतों, जीव ब्रह्म है जाय ॥९०॥
 सीप जु तब लग उतरती, जब लग खाली पेट ।
 चलति सीप पैडे गई, (जब) भई स्वाँति सों भेटा ॥९१॥
 सीप समुंदर में बसै, रत पियास पियास ।
 सकल समुंद तिनखा गिनै, (एक) स्वाँति बूंद की आस ॥९२॥
 कबीर समझा कहत है, पानी थाह बताय ।
 ताकूं सतगुरु कह करै, (जो) औघट दूँ जाय ॥९३॥

हुआ औघट ना तरै, मोहि अंदेसा होय ।
 लोम नदी की धार में, कहा पही नर सोय ॥९४॥
 सचु पाया मुख ऊपजा, दिछ दरिया भरपूर ।
 सकल पाप सहजे गया, सतगुरु मिले हजूर ॥९५॥
 बिन सतगुरु उपदेस, घुरनर मुनि नहि निस्तरे ।
 ब्रह्मा विस्तु महेस, और सकल जीव को गिनै ॥९६॥
 कैते पढ़ि गुनि पचि मुआ, योग यज्ञ तप लाय ।
 बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥९७॥
 करहु छोड़ कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है ।
 होय तब जिव काज, निश्चय करि परतीति करु ॥९८॥
 अच्छर आदि जगत में, जाका सर्व विस्तार ।
 सतगुरु दाया पाईये, सत्तनाम निज सार ॥९९॥
 सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहु ।
 मेटो भव को अंक, आवा गवन निवारहु ॥१००॥
 सत्तनाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करै ।
 और झूट सब होय, कोहे को भरमत फिरै ॥१०१॥
 जो सत्तनाम समाय, सतगुरु की परतीति कर ।
 जम के अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ ॥१०२॥
 ततदरसी जो होय, सो तत सार विचारई ।
 पावै तत्त बिलोय, सतगुरु के चेला सई ॥१०३॥

जग में युक्ति अनूप है, साध संग गुरु ज्ञान ।
 तामें निपट अनूप है, सतगुरु लागा कान ॥८४॥
 सीप हरन गुरु पारधी, सत्तनाम के वान ।
 लागा तब ही भय मिटा, तब ही निकसे प्रान ॥८५॥
 सब जग तो भरमत फिरै, ज्यों जंगल का रोज़ ।
 सतगुरु सों मूधि भई, जब देखा कलु मौज ॥८६॥
 तीन लोक है देह में, रोप रोप में धाम ।
 सतगुरु विन नहि पाइये, सत्त सार निज नाम ॥८७॥
 सकल जगत जानै नही, सो गुरु प्रगटे आय ।
 जिन आँखों देखा नही, सो गुरु दीन्ह लखाय ॥८८॥
 चलते चलते युग गया, को(इ) न बतावै धाम ।
 पैहे में सतगुरु मिले, पाव कोस पर गाव ॥८९॥
 खेल मचा खेलाहि सो, आनंद जीतै जाय ।
 सतगुरु के संग खेलताँ, जीव ब्रह्म है जाय ॥९०॥
 सीप जु तब लग उतरती, जब लग खाली पेट ।
 छलटि सीप पैडे गई, (जब) भई स्वाँति सों भेट ॥९१॥
 सीप समुंदर में बसै, रटत पियास पियास ।
 सकल समुंद तिनखा गिनै, (एक) स्वाँति बूंद की आस ॥९२॥
 कबीर समझा कहत है, पानी थाह बताय ।
 तार्कू सतगुरु कह करै, (जो) औघट दूवै जाय ॥९३॥

दूषा औघट ना तरै, मोहि अंदेसा होय ।
 लोम नदी की धार में, कहा पढ़ौ नर सोय ॥९४॥
 सचु पाया सुख ऊपजा, दिल ढरिया भरपूर ।
 सकल पाप सहजे गया, सतगुरु मिले हजूर ॥९५॥
 बिन सतगुरु उपदेस, मुरनर मुनि नहि निस्तरे ।
 ब्रह्मा विष्णु महेश, और सकल जीव को गिनै ॥९६॥
 केते पढ़ि गुनि पचि मुभा, योग यज्ञ तप लाघ ।
 बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥९७॥
 करहु छोड कुल लाज, जो सतगुरु उपदेस है ।
 होय तत्र निव्र काज, निश्चय करि परतीति कर ॥९८॥
 अच्छर आदि जगत में, जाका सब विस्तार ।
 सतगुरु दाया पाईये, सत्तनाम निज सार ॥९९॥
 सतगुरु खोजो संत, जीव काज जो चाहहु ।
 मेरो भव को अंक, आवा गवन निवारहु ॥१००॥
 सत्तनाम निज सोय, जो सतगुरु दाया करै ।
 और झूठ सब होय, कोह को भरमत फिरै ॥१०१॥
 जो सत्तनाम समाध, सतगुरु की परतीति कर ।
 जम के अमल मिटाय, हंस जाय सतलोक कहँ ॥१०२॥
 ततदरसी जो होय, सो तत सार विचारई ।
 पावै तत्त बिलोय, सतगुरु के चेला सई ॥१०३॥

जग ' भौसागर भाँहि, कहु कैसे बूडत तरै ।
 गहु सतगुरु की बाँहि, जो जल थल रक्षा करै ॥१०४॥
 निजमत सतगुरु पास, जाहि पाय सब सुधि मिले ।
 जगते रहै उदास, ता कहँ क्यों नहि खोजिये ॥१०५॥
 यह सतगुरु उपदेस है, जो मानै परतीत ।
 करम भरम सब त्यागि के, चलै सो भवजल जीत ॥१०६॥



गुरु पारख को अंग ।

गुरु लोभी सिध लालची, दोनों खेले दाव ।
 दोनों बूढ़े बापुरे, चढ़ि पाथर की नाव ॥ १ ॥
 गुरु मिला नहि सिध मिला, लालच खेला दाव ।
 दोनों बूढ़े धार में, चढ़ि पाथर की नाव ॥ २ ॥
 जाका गुरु है आंधरा, चेका खरा निरंध ।
 अंधे को अंधा मिला, पडा काल के फंद ॥ ३ ॥
 जानीता बूझा नहीं, बुझि किया नहि गौन ।
 अंधे को अंधा मिला, पंध घतावै कौन ॥ ४ ॥
 जानीता जब बुझिया, पैडा दिया वताय ।
 चलता चलता तहँ गया, जहाँ निरंजन राय ॥ ५ ॥
 अंधा गुरु अंधा जात, अंधे हैं सब दीन ।
 गगन मंडल में बज रही, अनइद बानी वीन ॥ ६ ॥
 सो गुरु नितदिन बन्दिये, नामों पाया नाम ।
 नाम बिना घट अंध है, ज्यों दीपक बिन धाम ॥ ७ ॥
 आगे अंधा कूप में, दूजा लिया बुलाय ।
 दोनों बूढ़े बापुरे, निकसे कौन उपाय ॥ ८ ॥

३. निरंध—विल्कुल अपात्र । ४. जानीता—जानकार से ।
 बूझा—पूछा ।

रात अंधेरी रैन में, अंधे अंधा साथ ।
 वो बहिरा वो मूंगिया, क्यौ करि पूछै बात ॥ ९ ॥
 अगम पंथ को चालताँ, (सब) अंधा मिलिया आय ।
 औघाट घाट मूझै नहीं कौन पंथ है जाय ॥ १० ॥
 जाका गुरु है लालची, दया नहीं सिप माँहि ।
 उन दोनों कू भेजिये, ऊजड़ कूआ माँहि ॥ ११ ॥
 जिसका गुरु है लालची, पीतल देखि भुलाय ।
 सिप पीछै लागा फिरै, (ज्यौ) बहुभा पीछै गाय ॥ १२ ॥
 कलि के गुरुवा लालची, लालच लोभै जाय ।
 सिप पीछै धाया फिरै, (ज्यौ) बहुभा पीछै गाय ॥ १३ ॥
 १ जाके हिय साहिव नहीं, सिप साखों की भूख ।
 ते जन २ ऊभा मूखसी, ३ (ज्यौ) दाहै दाशा रूख ॥ १४ ॥
 सिप साखा चीना भया, गुरु कूं आगम नाँहि ।
 जेता पेटै प्रीति मूं, तेता डूबै माँहि ॥ १५ ॥
 माई मूंड (उस) गुरु की, जाते मरम न जाय ।
 आपन बूढ़ा धार में, चेला दिया बहाय ॥ १६ ॥
 गुरु गुरु में भेद है, गुरु गुरु में भाव ।
 सोइ गुरु नित बाँदिये, सद्ग बतावै दाव ॥ १७ ॥

९ मूंगिया—गूगा । ११. ऊजड़ कूआ—अधाकूआ ।

१२. पीतल—पीतलकी मूर्ति ।

१ जाके हिरदै गुरु नहीं, । २ ऐसा । ३ ज्यौ बन दाशा रूख ।

पूरे सतगुरु के बिना, पूरा सीप न होय ।
 गुरु लोभी सिप लालची, धूनी दाशन सोय ॥१८॥
 पूरा सतगुरु ना मिलै, सुनी अधूरी सीख ।
 स्वाँग यती का पहिरि के, घर घर माँगी भीख ॥१९॥
 पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख ।
 निकसा था हरि मिलन को, बीच हि खाया बीख ॥२०॥
 पूरा सतगुरु ना मिला, सुनी अधूरी सीख ।
 मुँह मुँहावे मुक्ति कुं, चालि न सकई बीक ॥२१॥
 कवीर गुरु हैं घाट के, हाँटूँ वैठा . चेल ।
 मुँह मुँहाया सांझ कुं, गुरु सवेरे खेल ॥२२॥
 पूरा सहेजे गुन करै, गुन नहि आवै छेह ।
 सायर पोषे सर भरे, दान न माँगे मेह ॥२३॥
 गुरु किया है देह का, सतगुरु चीन्हा नाँहि ।
 भौसागर की जाल में, फिर फिर गोताँ खाँहि ॥२४॥
 जा गुरु ते भ्रम ना मिटै, भ्रान्ति न जिव को जाय ।
 सो गुरु झूठा जानिये, त्यागत देर न लाय ॥२५॥

२० बीख-विष. २१. बीक—विस्वा ।

२२. गुरु विरागी और चेला संसार का अनुरागी हो तो दोनों का मेल नहीं खाता ।

२३. छेह—अंत । सायर-समुद्र ।

१ पा० बड़े भौ निवि दोय ।

झूठे गुरु के पक्ष को, तजत न कीजै बार ।
 द्वार न पावै सद्व का, भटके वारं वार ॥२६॥
 सौंचे गुरु के पक्ष में, मन को दे ठहराय ।
 चंचल ने निश्चल भया, नहि आवै नहि जाय ॥२७॥
 कनफूका गुरु हृद का, बेहद का गुरु और ।
 बेहद का गुरु जब मिलै, लहै ठिकाना ठौर ॥२८॥
 जा गुरु को तो गम नहीं, पावन दिया बताय ।
 सिप सोधै दिन सेइया, पार न पहुँचा जाय ॥२९॥
 सतगुरु ने तो गप कही, भेद दिया अरथाय ।
 सुरति कमल के अंतरे, निराधार पद पाय ॥३०॥
 सतगुरु का सारा नहीं, सद्व न लाग अंग ।
 कोरा रहिगा सीदरा, सदा तेल के संग ॥३१॥
 सतगुरु मिले तो क्या भया, जो मन परिगा भोल ।
 कपास विनाँया कपड़ा, (क्या) करै विचारी चोल ॥३२॥
 सतगुरु ऐसा कीजिये, ज्यों मृगी मत होय ।
 पल पल दाव . बतावही, हंस न जाय विगोय ॥३३॥

२८. ससारी गुरु अगम पद को नहीं पहुँचा सकते, उस पद को पाने के लिये तो सद्गुरु ढूँढना चाहिये ।

३१. सारा—वश . सीदडा—तेल का कुप्पा (कुप्पी) ।

३२. सद्गुरु के मिलने पर भी मलिन हृदय उससे लाभ नहीं उठा सकता । कपास को कूटकर बनाया हुआ कपड़ा कभी साफ नहीं बन सकता । चोल खदर का लाल रंगा धान ।

सतगुरु ऐसा कीजिये, लोभ मोह भ्रम नाँहि ।
 दरिया सौ न्यारा रहे, दीसै दरिया माँहि ॥३४॥
 सतगुरु ऐसा कीजिये, जाका पुरन मन ।
 अनतोले ही देत है, नाम सरीखा धन ॥३५॥
 गुरु तो ऐसा कीजिये, (सब) वस्तु लायक होय ।
 यहाँ दिखावै सद्र में, वहाँ पहुँचावै लोय ॥३६॥
 गुरु तो ऐसा कीजिये, तत्व दिखावै सार ।
 पार उतारे पलक में, दरपन दे दातार ॥३७॥
 गुरु की सूनी आत्मा, चेष्ट चहै निज नाम ।
 कहै कबीर कैसे बसे, धनी बिहूना गाम ॥३८॥
 काचे गुरु के मिलन से, अगली भी बिगड़ी ।
 चाले ये हरि मिलन को, दूनी विपति पड़ी ॥३९॥
 कबीर बेढा सार का, ऊपर लादा सार ।
 पापी का पापी गुरु, यौं बूढ़ा संसार ॥४०॥
 ऐसा गुरु ना कीजिये, जैसी लटलटी राव ।
 माखी जामें फँसि रहे, वा गुरु कैसे खाव ॥४१॥
 गुरु नाम है गम्य का, सीप सीख ले सोय ।
 बिनु पद बिन मरजाद नर, गुरु सीप नहि कोय ॥४२॥

३४. लोभ और मोह से रहित होने के कारण ससार में रहते हुए भी जो उससे न्यारे हों ऐसे सद्गुरु को शरण में जाना चाहिये ।

गु अंधियारी जानिये, रु कहिये परकास ।
 मिटे अज्ञान तम ज्ञान ते, गुरु नाम है तास ॥४३॥
 भैरे चढ़िया झाँझै, भौसागर के माँहि ।
 जो छाँड़ै तो बाचि है, नातर बूढ़ै माँहि ॥४४॥
 जाका गुरु है गीरही, गिरही चेला होय ।
 कीच कीच के धोवते, दाग न छूटे कोय ॥४५॥
 गुरुवा तो सस्ता भया, पैसा केर पचास ।
 राम नाम धन बेचि के, करै सीप की आस ॥४६॥
 गुरुवा तो घर घर फिरे, दीक्षा हमरो लेहु ।
 कै बूढ़ी कै ऊँचरी, टका पर्दनी देहु ॥४७॥
 घर में घर दिखलाय दे, सो गुरु चतुर घुमान ।
 पाँच मद्ध धुनकार धुन, बाजै सद्ध निसान ॥४८॥
 छोपा रँगै सुरंग रँग, नीरस रस करि लेय ।
 पेसा गुरु पै जो मिले, सीप मोक्ष पुनि देय ॥४९॥

४३. गु-शब्दध्वान्वकारे हि, रु-शब्द स्तान्निवर्तकः ।

अज्ञाननाशको यस्तु, स गुरु सप्रकीर्तितः ॥

जिससे अज्ञान को निवृत्ति हो ऐसे ज्ञान ही का नाम गुरु है और उस ज्ञान को जो अपने हृदय में धरता है वही शिष्य है । बिना इस धारणा के गुरु और शिष्य दोनों ही केवल नाम मात्र के हैं ।

४७. परदनी-धोती ।

४८. जो अपने हृदय में परम तत्व का परिचय करा दे वही गुरु पूरा है । और ब्रह्मांड में पाँच अनन्द शब्द का परिचय करा दे ।

मैं उपकारी ठेठ का, सतगुरु दिया मुहाग ।
 दिल दरपन दिखलाय के, दूर किया सब दाग ॥५०॥
 ऐसा कोई ना मिला, जासों रहिये लाग ।
 सब जग जलना देखिषा, अपनी अपनी आग ॥५१॥
 ऐसे तो सतगुरु मिले, जिन सों रहिये लाग ।
 सब ही जग सीतल भया, (जब) मिटो अपनी आग ॥५२॥
 यह तन विप की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
 सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी समता जान ॥५३॥
 गुरु बतावै साध को, साध कहै गुरु पूज ।
 अरस परस के खेल में, भई अगम की सूझ ॥५४॥
 नादी बिंदी बहु मिले, करत कलेजे छेद ।
 (कोइ) तरुत तले का ना मिला, जासों पूर्ण भेद ॥५५॥
 तरुत तले की सो कहै, (जो) तरुत तले का होय ।
 माँझ महल की को कहै, पड़दा गाढ़ा सोय ॥५६॥
 माँझ महल की गुरु कहै, देखा जिन घरवार ।
 कुंजी दीन्ही हाथ कर, पड़दा दिया उधार ॥५७॥

५५. नादी—नाद की टपासना करनेवाले । बिंदी—बेदों के पारगत वादविवाद करनेवाले । तरुततले का—परम तत्त्व का ज्ञाता ।

५६. सत्य पुरुष का परिचय वही करा सकता है जो उसका भेद हो । अविनाशी के महल में दूसरा नहीं जा सकता; क्यों कि वह बड़े पड़दे में है ।

१. पा० अरस परस के खेल से २. पा० नादी ।

वस्तु कहि हूँ कहों,
 कहैं कवीर तब पाइये,
 भेदी लीया साथ करि,
 कोटि जनम का पंथ था,
 घट का पड़दा खोलि करि,
 बाल सनेही सांझा,
 गुरु मिला तब जानिये,
 हरष सोक व्यापै नहीं,
 सिप साखा बहुते किया,
 चाले थे सत लोक को,
 बंधे को बंधा मिला,
 कर सेवा निरबंध की,
 गुरु बेचारा क्या करै,
 नी नेजा पानी चढा,
 गुरु बेचारा क्या करै,
 कहैं कवीर मैली गज़ी,
 गुरु है पूरा; सिप है सूरा,
 सत सुकृत को चीन्हि के,
 कहता हूँ कहि जात हूँ,
 गुरु की करनी गुरु जानै,

त्रिहि विधि आवै हाथ ।
 (जब) भेदी लीजै साथ ॥५८॥
 दीन्हा वस्तु लखाय ।
 पल में पहुँचा जाय ॥५९॥
 सनमुख ले दीदार ।
 आदि अंत का यार ॥६०॥
 मिटे मोह तन ताप ।
 तब गुरु आपै आप ॥६१॥
 सतगुरु किया न मीत ।
 बीच हि अटका चीत ॥६२॥
 छूटे कौन सपाय ।
 पल में लेत लुटाय ॥६३॥
 (जो) हिरदा भया कठोर ।
 पथर न भीजी कोर ॥६४॥
 सद्ग न लागा अंग ।
 कैसे लागै रंग ॥६५॥
 बाग मोरि रन पैठ ।
 एक तरुत चढ़ि बैठ ॥६६॥
 देता हूँ हेली ।
 चेला की चेला ॥६७॥

६४. नेजा—६ (छे) हाथ का एक नाप । कोर—किनार ।

६६. बाग—लगाव । मनको रोक कर ध्यान में लगे । ६७. हेली—आवाज ।

गुरु शिष्य हेरा को अंग ।



ऐसा कोई ना मिला, हम को दे उपदेस ।
 भौसागर में डूबने, कर गहि काहे वेस ॥ १ ॥

* ऐसा कोई ना मिला, घर दे अपन जराय ।
 पाँचों लड़के पटकिके रहै नाम लौ लाय ॥ २ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, जासो कहूँ दुख रोय ।
 जासों कहिये भेद को, सो फिर बरी होय ॥ ३ ॥

ऐसा कोई ना मिला, सब विधि देय बताय ।
 सुन्न मंडल में पुरष है, ताहि रहं लौ लाय ॥ ४ ॥

ऐसा कोई ना मिला, समझै सैन सुजान ।
 ढोल दमामा ना सुनै, सुगति बिहूना कान ॥ ५ ॥

‡ इस सकेतवाली साखी 'गुरुहेरा' की है ।

‡ और इस सकेत की 'शिष्यहेरा' का है ।

गुरु शिष्य-हेरा का यह अर्थ है कि, उत्तम अधिकारी को गुरु दृढ़ते हैं और पूरे सद्गुरु को शिष्य दृढ़ता है । बिना दोनों के पूरा मिले कार्य की सिद्धि नहीं होती ।

२. पाँचों लड़के-काम, क्रोध, लोभ, मोह और मद ।

३. भेद की-सत्य उपदेश की । ५. दमामा-नकारा ।

१. पा-बूझते । २. पा० उठि ।

ऐसा कोई ना मिला, समझै सैन सुजान ।
 अपना करि किरपा करै, लो उतारि मैदान ॥ ६ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, जासो कहूं निसंक ।
 जासो हिरदा की कहूं, सो फिरि माँडे कंक ॥ ७ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, जलती जोति बुझाय ।
 कथा सुनावै नाम की, तन मन रहै समाय ॥ ८ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, टारै मन का रोस ।
 जा पैडे साधू चले, (तू) चलि न सकै इक कोस ॥ ९ ॥
 ऐसा कोई ना मिला, सद्य देखै बतलाय ।
 अच्छर और निहअच्छरा, तामे रहै समाय ॥ १० ॥
 हम घर जारा अपना, लूका लीन्हा हाथ ।
 बाह का घर फंक दूं, (जो) चलै हमारे साथ ॥ ११ ॥
 हम देखत जग जात है जग देखत हम जाँहि ।
 ऐसा कोई ना मिला, पकड़ि लुड़ावै चाँहि ॥ १२ ॥
 सरप हि दूध पियाइये, सोई विष है जाय ।
 ऐसा कोई ना मिला, आपै हि विष खाय ॥ १३ ॥

६. मैदान—ससार से बाहर । ७. कंक—झगडा ।

१०. अक्षर—जीव । निहअक्षर—परम पुरुष ।

११. लूका—अवजली लकड़ी ।

१३. भलाई के बदले में बुराई करनेवाले ससार में बहुत हैं, परन्तु बुराई के बदले भलाई करनेवाले बिरले हैं ।

१. पा० लिया मुरादा हाथ । पा० अत्र घर जाऊ तासका,

तीन सनेही बहु मिले, चौथा मिला न कोय ।
 सय हि पियारे राम के, बैठे परवस होय ॥१४॥
 जैसा दृढत मै फिरू, तैसा मिला न कोय ।
 ततवेता तिरगुन रहित, निरगुन सो रत होय ॥१५॥
 सारा सूरु बहु मिले, घायल मिला न कोय ।
 घायल को घायल मिले, राम भक्ति दृढ होय ॥१६॥
 माया डोलै मोहती, बोलै बहुवा वैन ।
 कोई घायल ना मिले, साई हिरदा सैन ॥१७॥
 प्रेमी दृढत मै फिरू, प्रेमी मिले न कोय ।
 प्रेमी सों प्रेमी मिले, त्रिप से अमृत होय ॥१८॥
 जिन दृढा तिन पाइया, गहिरै पानी पैठ ।
 मै बपुरा बूझन दरा, रहा किनारे बैठ ॥१९॥
 सतगुरु हम सों रीझि के, एक दिया उपदेस ।
 भौ सागर में बूडता, कर गहि काढे केस ॥२०॥
 आदि अंत अब को नहीं, निज वाने का दास ।
 सब संतन मिलि यों रमै, ज्यों पुहुपन में बास ॥२१॥
 पुहुपन केरी बास ज्यों, व्यापि रहा सब ठोहि ।
 बाहर कबहु न पाइये, पावै संतों माँहि ॥२२॥

१४. तीन सनेही—सुत, पित और नारी के प्रेमी । चौथा—सद्गुरु
 का प्रेमी । १६ घायल—रामधियोगी ।

बिरछा पूछे बीज सो, कौन तुम्हारी जात ।
 बीज कहै ता वृच्छ सों, कैसे भै फल पात ॥२३॥
 बिरछा पूछे बीज को, बीज वृच्छ के पाँहि ।
 जीव जो हूँदै ब्रह्म को, ब्रह्म जीव के पाँहि ॥२४॥
 डाल जो हूँदै मूल को, मूल डाल के पाँहि ।
 आप आप को सब चले, (कोप)मिलेमूलमों नाँहि ॥२५॥
 डाल भई है मूल तें, मूल डाल के पाँहि ।
 सब हि पढे जब भरम में, मूल डाल कहु नाँहि ॥२६॥
 मूल कबीरा गहि चढ़ै, फल खाये भरि पेट ।
 चौरासी की भय नहीं, ज्यौ चाहे त्यौ लेट ॥२७॥
 आदि हती सब आपमें, सकल हती ता माहि ।
 ज्यौ तहवर के बीज में, डार पात फल छाँहि ॥२८॥
 हेरत हेरत हेरिया, रहा कबीर हिराय ।
 वुंद समानी समुंद में, सो कित हेरी जाय ॥२९॥
 हेरत हेरत है सखी, रहा कबीर हिराय ।
 समुंद समाना वुंद में, सो कित हेरा जाय ॥३०॥

२९ वृंद-जाय । समुंद-मालिक । टपासक अपने आपकी मालिक में मिलाना चाहते हैं । इस सखी में टपासकों की भावना का वर्णन है ।

३०. इस सखी में ज्ञानियों की धारणा का वर्णन है ।

कवीर वैद बुलाइया, जो भावै सो लेह ।
 जिहि जिहि औपध गुरु मिले, सो सो औपध देह ॥३१॥
 परगट कंहू तो मारिया, परदा लखै न कोय ।
 सहना छिग पयाळ में, को कटि वैरी होय ॥३२॥
 जैसे सती पिय सँग जरे, आसा सब की त्याग ।
 सुघर कूर सोचै नहीं, सिख पतिवर्त सुहाग ॥३३॥
 सरघस सीस चढाइये, तन कृत सेवा सार ।
 भूख प्यास सहै ताड़ना, गुरु के सुरति निहार ॥३४॥
 गुरु को दोष रती नहीं, सीप न सोधे आप ।
 सीप न छुडै मनमता, गुरु द्वि दोष का पाप ॥३५॥
 जैसी सेवा सिप करै, तस फल प्रापत होय ।
 जो बौवै सो लोवही, कहै कवीर विलोय ॥३६॥
 हिरदे ज्ञान न ऊपजे, मन परतीत न होय ।
 ताको सतगुरु कहा करै, घनघसि कुल्हरा न होय ॥३७॥

३१. वैद—गुरु । औपध—उपदेश । गुरु—सत्यपुरुष । ३२. सहना—
 —अधिगतपुरुष । पयार—पीरा, माया । ३३. सुघर—अच्छा । कूर—चुरा ।
 ३४. तनकृत सेवा सार—तन से अच्छी सेवा करता रहै । ३५. लोवही—
 काटता है । विलोय—सोच समझकर । ३७. घनघसि...होय—कुल्हार के
 घन को घिसकर कोई उसका कुल्हड़ा नहीं बना सकता ।

घनघसिया जोई मिले, घन घसि कांठे धार ।
 मूरख तें पंडित किया, करत न लागी वार ॥३८॥
 सिप पूनै गुरु आपना. गुरु पूजे सब साध ।
 कहै कबीर गुरु सीप को, मत है अगम अगाध ॥३९॥
 गुरु सोन ले सीप का, साधु संत को देत ।
 कहै कबीरा सौन से, लागे हरि सों हेत ॥४०॥
 सिप किरपिन गुरु स्वारथी, मिले योग यह आय ।
 कीच कोच के दाग को, कैसे सकै छुड़ाय ॥४१॥
 देस दिसन्तर में फिरुं, मानुष बड़ा सुकाल ।
 जा देखै सुख ऊपजै, वाका पड़ा दुकाल ॥४२॥
 सत को हूँहत में फिरुं, सतिया मिलै न कोय ।
 जब सत कुं सतिया मिले, त्रिप तजि अमृत होय ॥४३॥
 स्वामी सेवक होय के, मन ही में मिलि जाय ।
 चतुराई रीझै नहीं, रहिये मन के माय ॥४४॥
 धन धन सिप की सुरतिकुं, सतगुरु लिये समाय ।
 अन्तर चितवन करत है, (गुरु)तुरत हिले पहुंचाय ॥४५॥
 गुरु विचारा क्या करै, वांस्त न इंधन होय ।
 अमृत सोचै बहुत रे, बूढ़ रही नहि कोय ॥४६॥

४० सौज—वस्तु, चीजें । ४२. मानुष—सुकाल-मनुष्यों की
 कमी कहीं नहीं है ।

गुरु भया नहि सिप भया, हिरदे वपट न जाव ।
 आलो पालो दुख सहे, चढि पाथर की नाव ॥४७॥
 चन्छु होय तो देखिये, जुक्ती जानै सोय ।
 दो अंधे को नाचनो, कशो काहि पर मोय ॥४८॥
 गुरु कीजै जानि के, पानी पीजै छानि ।
 बिना विचारै गुरु करै, पहै चौरासी खानि ॥४९॥
 गुरु तो ऐसा चाहिये, सिपसों कछ न लेय ।
 सिप तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कुछ देय ॥५०॥

४८. दो अंधे,...मोय । जैसे दो अंधे एक दूसरे को अपना नाच दिखलावें तो उनमें से किसी पर किसी का नाच का असर नहीं हो सकता, क्यों कि दोनों ही बिना आँख के हैं । इसी प्रकार गुरु और शिष्य यदि दोनों अज्ञानी हों तो किसी से किसी को लाभ नहीं पहुँच सकता ।

घनघसिया जोई मिले,	घन घसि काढे धार ।
मूरख तें पंडिन किया,	करत न लागी बार ॥३८॥
सिप पूजे गुरु आपना.	गुरु पूजे सब साध ।
कहै कबीर गुरु सीप को,	मत है अगम अगाध ॥३९॥
गुरु सोन ले सीप का,	साधु संत को देत ।
कहै कबीरा सौन से,	लागे हरि सों हेत ॥४०॥
सिप किरपिन गुरु स्वारथी,	मिले योग यह आय ।
कीच कीच के दाग को,	कैसे सकै छुड़ाय ॥४१॥
देस दिसन्तर मैं फिरुं,	मानुष बड़ा सुकाल ।
जा देखै सुख ऊपनै,	वाका पड़ा दुकाल ॥४२॥
सत को हृदय मैं फिरुं,	सतिया मिलै न कोय ।
जब सत कूं सतिया मिले,	विष तजि अमृत होय ॥४३॥
स्वामी सेवक होय के,	मन ही में मिलि जाय ।
चतुराई रीझै नहीं,	रहिये मन के मांय ॥४४॥
घन घन सिप की सुरतिरुं,	सतगुरु लिये समाय ।
अन्तर चितवन करत है,	(गुरु)तुरत हिले पहुंचाय ॥४५॥
गुरु विचारा क्या करै,	चांस न इंधन होय ।
अमृत सोचै बहुत रे,	बूंद रही नहि कोय ॥४६॥

४०. मोज—वस्तु, चीजें । ४२. मानुष—सुकाल—मनुष्यों की कमी कहीं नहीं है ।

गुरु भया नहि सिप भया, हिरदे कपट न जाव ।
 आलो पालो दुख सहै, चटि पाथर की नाव ॥४७॥
 चन्हु होय तो देखिये, जुत्ती जानै सोय ।
 दो अंगे को नाचनो, कशे काहि पर मोय ॥४८॥
 गुरु कीजै जानि के, पानी पीजै छानि ।
 गिना विचारै गुरु करै, पटै चौरासी खानि ॥४९॥
 गुरु तो ऐसा चाहिये, सिपसों कटु न लेय ।
 सिप तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कुछ देय ॥५०॥



४८. दो अंगे....मोय । जैसे दो अंगे एक दूसरे को अपना नाच दिखलावें तो उनमें से किसी पर किसी क माघ का असर नहीं हो सकता; क्यों कि दोनों ही बिना आंख के हैं । इसी प्रकार गुरु और शिष्य यदि दोनों अज्ञानी हों तो किसी से किसी को लाभ नहीं पहुंच सकता ।

निगुरा को अंग ।



जो निगुरा सुमिरन करै,	दिन में सौ सौ बार ।
नगर नायका सत करै,	जरै कौन की लार ॥ १ ॥
गुरु बिनु अहिनिष नाम ले,	नहीं संत का भाव ।
कहै कबीर ता दास का,	पढ़ै न पूरा दाव ॥ २ ॥
गुरु बिन माला फेरते,	गुरु बिन देते दान ।
गुरु बिन सब निष्फल गया,	पूछौ वेद पुरान ॥ ३ ॥
गरभ योगेसर गुरु विना,	लागे हरि की सेव ।
कहै कबीर वैकुंठ ते,	फेर दिया सुकदेव ॥ ४ ॥
जनक विदेही गुरु किया,	लागा हरि की सेव ।
कहै कबीर वैकुंठ में,	उलटि मिला सुकदेव ॥ ५ ॥
चौसठ दीया जोय के,	चौदह चंदा माँहि ।
तिहि घर किसका चांदना,	जिहि घर सतगुरु नाँहि ॥ ६ ॥
निसि अंधियारी कारनै,	चौरासी लख चंद ।
गुरु बिन येते उदय है,	तह सुद्रिष्टि हि मंद ॥ ७ ॥

१. नगर नायका—वेश्या ।

६. चौसठ दीया—चौसठ कला । चौदह चंदा—चौदह विद्या ।

१. पा० सो तो दान हाराम है ।

दारुक में पावक बसै, घुनका घर किय जाय ।
 (यौं)दरिसंग विमुख निगुरुको, काल ग्रास ही खाय ॥ ८ ॥
 पूरे को पूरा मिले, पूरा पडसी दाव ।
 निगुरु तो कूबट चलै, जब तब करै कुदाव ॥ ९ ॥
 जो कामिनी पडदै रहै, सुनै न गुरुमुख बात ।
 सो तो होगी कूकरी, फिरै उयारै गाव ॥ १० ॥
 कबीर गुरु की भक्ति विनु, नारि कूकरी होय ।
 गली गली भूकत फिरै, टुक न डारै कोय ॥ ११ ॥
 कबीर गुरु की भक्ति विनु, राजा रासम होय ।
 माटी लदै कुम्हार की, घास न डारै कोय ॥ १२ ॥
 गगन मंडल के बीच में, तह्यौ अलकै नूर ।
 निगुर महल न पावई, पहुँचेगा गुरु पूर ॥ १३ ॥
 कबीर हृदय कठोर के, सद्ग न लागै सार ।
 सुधि बुधि के हिरदै विधे, उपजे ज्ञान विचार ॥ १४ ॥

८. दारुक — लकड़ी । पावक — अग्नि । घुनका — घुन ।

यद्यपि लकड़ी में आग रहती है; परन्तु वह उसे-घुन को नहीं बचा सकती । इसी प्रकार गुरु से विमुख नर हृदय में राम के रहते हुए भी काल के द्वारा मारा जाता है । ९. कूबट कुमार्ग ।

१०. स्त्रियों को भी अन्तरात्मा की शांति के लिये गुरु दीक्षा ग्रहण करना चाहिये । १२. रासम-गदहा ।

झिरमिर झिरमिर बरसिया, पाहन ऊपर मेह ।
 माटी गलि पानी भई, पाहन बाही नेह ॥१५॥
 हरिया जानै रुखड़ा, उस पानी का नेह ।
 सूखा काठ न जानि है, कितहूं बूढ़ा मेह ॥१६॥ :
 कबीर हरिरस बरसिया, गिरि परबत सिखराय ।
 नीर निवानू ठाहरै, ना वह छापर डाय ॥१७॥
 पसुवा सों पानौ पर्यो, रहु रहु हिया न खीज ।
 ऊपर बीज न ऊगसी, बोवै दूना बीज ॥१८॥
 ऊंचै कुल के कारनै, वांस वध्यो इंकार ।
 राम भजन हिरदै नहीं, जार्यो सब परिवार ॥१९॥
 कबीर चंदन के भिरै, नीम भी चंदन होय ।
 बूझ्यो वांस बढ़ाइयाँ, यो जनि बूढ़ी कोय ॥२०॥
 कबीर लहरि समुद्र की, मोती बिखरे आय ।
 बगुला परख न जानई, हंसा चुगि चुगि खाय ॥२१॥
 सारा लश्कर हूँदिया, सारदूक नहि पाय ।
 गीदड़ को सर बाहिके, नामै काम गँवाय ॥२२॥
 सुकदेव सरिखा फेरिया, तो को पावै पार ।
 गुरु बिन निगुरा जो रहै, पडै चौरासी धार ॥२३॥

१७. निवानू-तालतलेया, नीची जगह । ठाहरै-ठहरतां है । छापर-
 डाय-ऊंची समतल भूमि ।

१८. पानो-मुकाबला, काम । २०. भिरे-पास ।

'सत्त नाम है मोतिया,
 सुगुरे थे सो चुनि लिये,
 कंचन मेरु अरपहों,
 कौह कबीर गुरु बेमुखी,
 दारु के पावक करै,
 कौह कबीर गुरु बेमुखी,
 साकट का मुख विष है,
 ताकी औषधि मौन है,
 साकट कहा न कहि चलै,
 जो कौवा मठ हगि भरै,
 साकट सूकर कूकरा,
 कोटि जतन परमोधिये,
 टेक न कीजै वावरे,
 टेक छाहि मानिक मिले,
 टेक करै सो वावरा,
 जो टेकै साहिब मिले,
 साकट संग न बैठिये,
 तत्व सरीरों झड़ि पड़ै,
 साकट संग न बैठिये,
 ताके संग न चालिये,

'सचराचर रहो छाय ।
 चूक ढही निगुराय ॥२४॥
 अरपै कनक भंडार ।
 कबहुं न पावै पार ॥२५॥
 घुनक जरी (क्यौ)न जाय ।
 काल पास रहि जाय ॥२६॥
 निकसत वचन भुवंग ।
 विष नहीं व्यापै अंग ॥२७॥
 घुनहा कहा न खाय ।
 (तो)मठ को कहा नशाय ॥२८॥
 तीनों की गति एक ।
 तऊ न छाड़ै टेक ॥२९॥
 टेक माहि है हानि ।
 सतगुरु वचन प्रमान ॥३०॥
 टेकै होवै हानि ।
 सोड टेक परमान ॥३१॥
 अपनो अंग लगाय ।
 पाप रहै लपटाय ॥३२॥
 करन कुबेर समान ।
 पडि है नरक निदान ॥३३॥

साकट ब्राह्मन मति मिलो, वैष्णव मिलु चंडाल ।
 अंग भरै मरि भेटिये, मानो मिले दयाल ॥३४॥
 साकट सन का जेवरा, भीजै सो करराय ।
 दो अच्छर गुरु बाहिरा, बांधा जपपुर जाय ॥३५॥
 साकट से सूकर मला, सूचौ राखै गाँव ।
 बूढ़ौ साकट बापुरा, बाइस भरमौ नाँव ॥३६॥
 साकट हमरै कोऊ नहि, सब ही वैष्णव क्षारि ।
 संसय ते साकट मया, कहैं कबीर विचारि । ३७॥
 साकट ब्राह्मन सेवरा, चौथा जोगी जान ।
 इनको संग न कीजिये, होय भक्ति में हान ॥३८॥
 साकट संग न जाइये, दे मांगा मोहि दान ।
 प्रीत संगती ना मिलै, छाडै नहि अभिमान ॥३९॥
 साकट - नारी छाँडिये, गनिका कीजै नारि ।
 दासी है हरि जनन की, कुल नहीं आवै गारि ॥४०॥

३५. जेवरा-रस्सा । ३६ सूचौ-साफ । बाइस-कौवा । जिस प्रकार समुद्र में नाव पर बैठा हुवा कौवा उड़ाये जाने पर इधर भटक कर नाव पर ही आकर बैठ जाता है । इसी प्रकार निगुरे मनुष्य को ससार में कहीं सुख नहीं मिलता ।

४०. गनिका को हृदय में यदि भक्ति और सुबुद्धि उत्पन्न हो जाय और वह एक की स्त्री बनकर रहना चाहे तो उसे अपना लेना चाहिये । और अपनी स्त्री भी यदि व्यभिचारिणी कुलटा बन जाय तो उसे त्याग देना चाहिये ।

साकट ते सँत होत है, जो गुरु मिले सुजान ।
 राम नाम निज मंत्र दे, छुडवै चारों खान ॥४१॥
 कबीर साकट की सभा, तू मति बैठे जाय ।
 एक गुवाड़े कदि बड़े, रोज गदहरा गाय ॥४२॥
 मैं तोही सों कव कथा, (त)साकट के घर जाव ।
 बहती नदिया डूबि मरुं, साकट संग न खाव ॥४३॥
 संगति सोई विगुर्चई, जो है साकट साथ ।
 कंचन कटोरा छाडि कै, सनहक छीन्ही दाय ॥४४॥
 सूता साधु जगाइये, करै ब्रह्म को जाप ।
 ये तीनों न जगाइये, साकट सिंह रु साप ॥४५॥
 आँखों देखा घी भला, ना मुख मेला तेल ।
 साधू सों झगड़ा भला, ना साकट सों मेल ॥४६॥
 घर में साकट इस्तरी, आप कहावै दास ।
 ओ तो हैयगी सूकरी, वह रखवाला पास ॥४७॥
 खसप कहावै बैसनव, घर में साकट जोय ।
 एक घरा में दो मता, भक्ति कहाँ ते होय ॥४८॥
 एक अनूपम हम किया, साकट सों बेवहार ।
 निंदा साटि उजागरो, कीयो सौदा सार ॥४९॥

४२. गुवाड़े-गोशाला में । मूखों की सभा में मत जाओ, क्यों कि उनको अच्छे और बुरे की पहचान नहीं होती ।

४४. विगुर्चई-खराब होती है । सनहक-मिठी का कटोरा, सकोरा ।

ऊजड़ घर में बैठि के, किसका लीजै नाम ।
 साकुट के संग बैठ- के, क्यूं कर पावै राम ॥५०॥
 साकुट साकुट बहा करो, फिट साकुट को नाम ।
 ताही सँ सूअर भला, चोखा राखै गाम ॥५१॥
 हरिजन की लातों भलीं, बुरि साकुट की बाग ।
 लातो में सुख ऊपजे, बति इज्जत जात ॥५२॥
 साकुट भले हि सरजिया, परनिदा जु करंत ।
 पर को पार उतार के, आप हि नरक परंत ॥५३॥
 वैस्नव भया तो क्या भया, साकुट के घर खाय ।
 वैस्नव साकुट दोउ मिलि, नरक कुंड में जाय ॥५४॥
 सूने मंदिर पैठों, नही धनी की लाज ।
 कूकर कोने फिरत है, क्यों करि सरगो काज ॥५५॥
 पारब्रह्म बूढ़ो मोतिया, झडी बांधि सिखर ।
 सुगरा सुगरा चुनि लियां, चूक पड़ी निगुर ॥५६॥
 बेकामी को सिरजि निगवै, सांठि खोवै भालि गँवावै ।
 दास कबीर ताहि को भावै, रारि सँ सनमुख सरसावै ॥५७॥
 हरिजन आवत देखिके, मोहड़ो सूख गयो ।
 भाव भक्ति समुझ्यो नहीं, मूरख चूक गयो ॥५८॥
 दासी केरा पूत जो, पिता कौन से कहै ।
 गुरु विनः नर भरमत फिरै, मुक्ति कहा से लहै ॥५९॥
 निगुरा ब्राह्मन नहि भला, गुरुमुख भला चमार ।
 देवतन से कुत्ता भला, नित उठि भुंके द्वार ॥६०॥

साधु को अंग ।



कबीर दरसन साधु के, साहिब आवै याद ।
लेखे में सोई घड़ी, बाकी के दिन बाद ॥ १ ॥

कबीर दरसन साधु का, करत न कीजै कानि ।
ज्यों उद्यम से लक्ष्मी, आलस मन से हानि ॥ २ ॥

कबीर सोई दिन मला, जा दिन साधु मिलाय ।
अंक भरै भरी भेटिये, पाप सरीरों जाय ॥ ३ ॥

कबीर दरसन साधु के, बड़े भाग दरसाय ।
जो होवै सूली सजा, कांटे ई टरि जाय ॥ ४ ॥ —

दरसन कीजै साधु का, दिन में कइ कइ बार ।
आसोजा का पेह ज्यों, बहुत करै उपकार ॥ ५ ॥

कई बार नहि करि सकै, दोय बखत करि लेय ।
कबीर साधू दरस ते, काल दगा नहि देय ॥ ६ ॥

१. बाद=ब्रेकाम । २. कानि=मान मर्यादा-धरंकार ।

४. संतों के दर्शन की ऐसी महिमा है कि सूली की सजा के बदले कांटा लगाकर रह जाता है ।

५. आसोजा=आश्विन् ।

१. पा० कबीर सो दिन निरमला, । २. पा० संत । ३. पा० देहका ।

दोय वखत नहि करि सकै,
 कबीर साधू दरस ते,
 एक दिना नहि करि सकै,
 कबीर साधू दरस ते,
 दूजै दिन नहि करि सकै,
 कबीर साधू दरस ते,
 तीजै चौथै नहि करै,
 यामे विलँव न कीजिये,
 वार वार नहि करि सकै,
 कहै कबीर सो भक्त जन,
 पाख पाख नहि करि सकै,
 यामे देर न लाइये,
 मास मास नहि करि सकै,
 यामे ढील न कीजिये,
 छठै मास नहि करि सकै,
 कहै कबीर सो भक्तजन,
 वरस वरस नहि करि सकै,
 कहै कबीर जीव सो,
 मात पिता सुत इतरी,
 साधु दरस को जय चले,

दिन में नरु इक वार ।
 उतरे भौजल पार ॥ ७ ॥
 दूजै दिन करि लेह ।
 पावै उत्तम देह ॥ ८ ॥
 तीजै दिन करु जाय ।
 मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥ ९ ॥
 वार वार करु जाय ।
 कहै कबीर सञ्ज्ञाय ॥ १० ॥
 पाख पाख करि लेय ।
 जनम सुफल करि लेय ॥ ११ ॥
 मास मास करु जाय ।
 कहै कबीर समुझाय ॥ १२ ॥
 छठै मास अलगत्त ।
 कहै कबीर अविगत्त ॥ १३ ॥
 वरस दिना करि लेय ।
 जम हि चुनौती देय ॥ १४ ॥
 ताको लागे दोष ।
 कबहुं न पावै मोष ॥ १५ ॥
 आलस बधू कानि ।
 ये अट्कावै आनि ॥ १६ ॥

इन अटकाया ना रहै,	साधु दरस को जाय ।
कवीर सोई संत जन,	मोक्ष मुक्ति फल पाय ॥१७॥
साधु चलत रो दीजिये,	कीजै अति सनसैन ।
कहै कवीर कहु भेंट धरु,	अपने वित अनुमान ॥१८॥
खाली साधु न विदा करु,	मुनि लीजो सब कोय
कहै कवीर कहु भेंट धरु,	जो तेरे घर होय ॥१९॥
मोहर रूपैया पैसा,	छाजन भोजन देय ।
कह कवीर सो जगत में,	जनम सफल करि लेय ॥२०॥
हाथी घोडा गाय भैस,	रथ अरु गाढी भवन ।
कवीर दीजै साधु को,	कीया चाहै गवन ॥२१॥
बेटा बेटा इस्तरी,	साधु चहै सो देय ।
सिर साधु के अरपही,	जनम सुफल करि लेय ॥२२॥
कवीर दरसन साधु के,	खाली हाथ न जाय ।
यही सीख बुधि लीजिये,	कहै कवीर समुझाय ॥२३॥

२२ ऊपर की चार साखियों में साधुओं के निमित्त तन मन धन और सर्वस्व अर्पण करने का अर्थ बताया है । शरणागत का यही अर्थ है कि हम कुछ गुरु को सौंप दिया जाय, परन्तु गुरु की परीक्षा कर लेना भी आवश्यक है । गुरु की पहिचान इस साखी में बतलाई गई है—“तन मन ताको दाजिये जाके विप्रथा नाहि । आया समझी डारके रखे साहज माहि” । अर्थात् जो विषय विकार से सर्वथा रहित हो उही की सेवा में हम कुछ अर्पण करें । अन्यथा गुरु और शिष्य दोनों को हानि है ।

सुनिये पार जु पाइया, छाजन भोजन आनि ।
 कहै कबीरा साधु को, देत न कीजै कानि ॥२४॥
 कबीर लौंग इलायची, दातुन माटी पानि ।
 कहै कबीरा साधु को, देत न कीजै कानि ॥२५॥
 टुका मार्हो टुक दे, चीर मांहि सों चीर ।
 साधू देत न सकुचिये, यों कहै सत्त कबीर ॥२६॥
 कंचन दीया करन ने, द्रौपदी दीया चीर ।
 जो दीया सो पाइया, ऐसे कहै कबीर ॥२७॥
 निराकार निजरूप है, भेम भीति सों सेव ।
 जो चाहै आकार को, साधू परतछ देव ॥२८॥
 साधू आवत देखि के, चरनों लागी धाय ।
 क्या जानौ भस भेष में, रहि आवै मिळ जाय ॥२९॥
 साधू आवत देखि करि, हंसी हमारी देह ।
 माया का ग्रह ऊतरा, नैनन बढ़ा सनेह ॥३०॥
 साधू आवत देखि के, मनमें करै मरोर ।
 सो तो होसी चूहरा, बसै गांव की ओर ॥३१॥
 साधु आया पाहुना, मागै चार रतन ।
 धुनी पानी साधरा, सरधा सेती अन्न ॥३२॥

२४. छाजन—कपडा । २६ चीर—कपडा । ३२. साधरा— बिछौना

१ पा० किस । २ पा० सादेव ही ३ पा० छोर ।

साधू दया साहिव मिले,	उपजा परमानंद ।
कोटि विघन पलमें टलै,	पिटै सकल दुख दंद ॥३३॥
साधू सद्ग समुद्र है,	जामें रतन भराय ।
मंद भाग मुट्ठी भरे,	कंकर हाथ लगाय ॥३४॥
साधु मिलै यह सब टलै,	काल जाल जम चोट ।
सोस नवावत ढहि पड़े,	अघ पापन के पोट ॥३५॥
साधु सेव जा घर नहि,	सतगुरु पूजा नॉहि ।
सो घर मरघट जानिये,	भूत वसै तेहि ^१ मॉहि ॥३६॥
साधु सीप साहिव समुंद,	निपजत मोती मॉहि ।
वस्तु ठिकानै पाइये,	नाल खाल में नॉहि ॥३७॥
साधु बड़े संसार में,	हरि ते अधिका सोय ।
बिन इच्छा पूरन करै,	^२ साहिव हरि नहि दोषा ॥३८॥
साधु विरछ सतनाम फल,	सीतल सद्ग विचार ।
जग में होते साधु नहि,	जरि मरना संसार ॥३९॥
साधु हमारी आत्मा,	हम साधुन की देह ।
साधुन में हम यौ रहें,	ज्यौं बादल में मेह ॥४०॥ —
साधु हमारी आत्मा,	हम साधुन की सांस ।
साधुन में हम यौ रहें,	ज्यौ फूलन में वास ॥४१॥
साधु हमारी आत्मा,	हम साधुन के जीव ।
साधुन में हम यौ रहें,	ज्यौ पय मये धीव ॥४२॥ —

ज्यौ पय मद्धे धीव है,
 वक्ता सोता बहु मिले,
 साधु नदी जल प्रेम रस,
 कहैं कविर निरमल भया,
 साधु मिले साहिब मिले,
 मनसा वाचा करमना,
 साधू को उठि भेटिये,
 नातो साधु सम्प को,
 साधुन के मैं संग हूँ,
 जु मोहि अरपै प्रीतिसो,
 साधू भूखा भाव का,
 धन का भूखा जो फिर,
 'साधु बड़े परमारथी,
 तपन बुझावै और की,
 साधु बड़े परमारथी,
 तपन बुझावै और की,
 आवत साधु न हरपिया,
 कहैं कविर वा दास की,
 छाजन भोजन प्रीति सों,
 जीवत जस है जगत में,

(त्यौ) रमी रहा सब ठौर।
 मथि काढ़े ते और ॥४३॥
 तहाँ मछालो अंग ।
 हरि भक्तन के संग ॥४४॥
 अन्तर रही न रेख ।
 साधू साहिब एक ॥४५॥-
 मुख ते कहिये राम ।
 करनी सो नहि काम ॥४६॥
 अन्त कहूं नहि जाँव ।
 साधुन मुख है खोव ॥४७॥
 धन का भूखा नाँहि ।
 सो तो साधू नाँहि ॥४८॥
 घन ज्यौ बरसै आय ।
 अपनो पारस लाय ॥४९॥
 सीतल जिनके अंग ।
 दे दे अपनो रंग ॥५०॥
 जात न दीया रोय ।
 मुक्ति कहाँ ते होय ॥५१॥
 दीजै साधु बुलाय ।
 अन्त परम पद पाय ॥५२॥

४६. नातो-सम्बन्ध । ४९ पारस-ज्ञान । ५० रंग-स्वरूप, स्वभाव ।

सरवर : तरुवर संतजन, चौथा घरसै मेह ।
 परमारथ के कारनै, चारों धारी देह ॥५३॥
 विरछा कबहु न फल मखै, नदी न अँचवै नीर ।
 परमारथ के कारनै, साधुन धरा सरीर ॥५४॥
 अलख पुरुष की आरसी, साधु ही की देह ।
 लखा जु चाहै अलख को, इनही में लखि लेह ॥५५॥
 सुख देवै दुख को हरै, दूर करै अपराध ।
 कहैं कविर वह कब मिलै, परम सनेही साव ॥५६॥
 जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान ।
 मोल करो तलवार का, पढा रहन दो म्यान ॥५७॥
 हरि दरबारी साधु हैं, इन ते सब कुछ होय ।
 बेगि मिलावै राम को, इन्हें मिले जु कोय ॥५८॥
 कह अकास को फेर है, कह(हा) धरती का तोल ।
 कहा साधु की जाति है, कह(हा) पारस का मोल ॥५९॥

५४. अँचवै—पीती है ।

५५. सन्तों का हृदय दर्पण के समान निर्मल होता है । अतएव उसमें अलख पुरुष के दर्शन हो सकते हैं ।

५८. हरि दरबारी—हरि के दरबार में रहनेवाले ।

५९. जिस प्रकार आकाश की गोलाईका अन्दाज, पृथ्वी का तोल और पारस का मोल नहीं होता, इसी प्रकार साधु की भी जाति नहीं होती ।

१. पा० निराकार की । २. पा० जो पूछो तो ज्ञान ।

हरि सों तू मति हेत करु, कर हरिजन सों हेत ।
 माल मुल्क हरि देत हैं, हरिजन हरि ही देत ॥६०॥
 साधू खोजा राम के, धसै जु महलन माँहि ।
 औरन को परदा लगे, इनको परदा नाँहि ॥६१॥
 जा घर साधु न सेवहीं, पारब्रह्म पति नाँहि ।
 ते घर मरघट सारिखा, भूत वसें ता ठाँहि ॥६२॥
 साधुन की झुपडी भली, ना साकुट को गाँव ।
 चंदन की कुटकी भली, ना बाबुल बनराव ॥६३॥
 पुर पट्टन सूबस बसै, आनन्द ठाँवै ठाँव ।
 राम सनेही बाहिरा, ऊजड़ मेरे भाव ॥६४॥
 हयवर गयवर सघन घन, छत्रपति की नारि ।
 तासु पट्टर ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥६५॥
 क्यों नृपनारी निन्दिये, पनिहारी को पान ।
 (वह) मांग सँवारै पीव कुं, नित वह सुमिरै राम ॥६६॥
 साधुन की कुतिया भली, बुरी साकुट की पाय ।
 वह बैठी हरिजस सुनै, (वह) निन्दा करनै जाय ॥६७॥

६०. हरिजन-हरि के भक्त, साधु सन्त ।

६१. खोजा-हिजडे । राजपूताने में रानियों के महलों में हिज का पहरा रहता है । उनका पडदा नहीं होता ।

६३. बाबुल-बबूल । ६५. हयवर गयवर-अनेक सानों से मजी हुई

तीरथ न्हाये एक फल,	साधु मिले फल चार ।
सतगुरु मिले अनेक फल,	कहैं कबीर विचार ॥६८॥
साधु सिद्ध बहु अन्तरा,	साधु मता परचंड ।
सिद्ध जु तारे आप को,	साधु तारि नौ खंड ॥६९॥
यही बढ़ाई सन्त की,	करनी देखो आय ।
रज हूं ते झीना रहे,	लौलिन है गुन गाय ॥७०॥
परमेश्वर ते संत वड़,	ताका कह(हा) उनमान ।
हरि माया आगे धरै,	संत रहे निरवान ॥७१॥
नील कंठ कोडा भखै,	मुख बाके हैं राम ।
औगुन बाकै नहि लगै,	दरसन ही से काम ॥७२॥
अन वैस्नव : कोई नहीं,	सब ही वैस्नव जानि ।
जेता हरि को ना भजै,	तेता ताको हानि ॥७३॥
आप साधु करि देखिये,	देख असाधु न कोय ।
जाके हिरदै हरि नहीं,	हानी उसकी होय ॥७४॥
जा सुख को मुनिवर रटैं,	सुरनर करें विलाप ।
सो सुख सहजै पाइया,	सन्तों संगति आप ॥७५॥
मेरा मन पंछी भया,	चढ़ि के चढ़ा अकास ।
वैकुण्ठ हि खाली पडा,	साहिव सन्तों पास ॥७६॥

७१. हरि से सन्त सुखो है, इससे यही प्रमाण है कि हरि को माया लगी रहती है । और साधुजन उससे रहित हैं ।

परवत परवत मैं फिरा, कारन अपने राम ।
 राम सरीखे जन मिले, तिन सारै सब काम ॥७७॥
 कबीर सीतल जल नहि, हीम न सीतल होय ।
 कबीर सीतल संत जन, नाम सनेही सोय ॥७८॥
 भली भई हरिजन मिले, कहने आयो राम ।
 सुरति दसौं दिस जाय थी, अपने अपने काम ॥७९॥
 संत मिले जनि वीछुरौ, विछुरौ यह मम मान ।
 सद्ध सनेही ना मिलै, मान देह में आन ॥८०॥
 कोटि कोटि तीरथ करै, कोटि कोटि करुघाम ।
 जवलन साध न सेवई, तवलन काचा काम ॥८१॥ -
 आसा वासा सन्त का, ब्रह्मा लखै न वेद ।
 पट दरसन खटपट करै, विरला पावै भेद ॥८२॥
 वेद थके ब्रह्मा थके, थाके सेस महेस ।
 गीता हूं की गम नहीं, असत किया परवेस ॥८३॥
 धन सो माता सुन्दरी, जाया साधू पूत ।
 नाम सुमिरि निर्भय भया, अरु सब गया अबूत ॥८४॥

८३. पट दर्शन-जोगी जगम सेयडा, सन्यासी दरपेश ।

लुहा कहिषे ब्राह्मणा, छै घर छै उपदेश ।

८४. अनृत (अऊन)-निर्भय, बिना पश के ।

१. पा० थकिया शकर सेस । २. पा. गीता की जहं गम नहीं ।

३. पा० तहें सतगुरु का देस ।

साधू ऐसा चाहिये,	दुखै दुखवि नाँहि ।
पान फूल ^१ छे नही,	असै अगीचा पाँहि ॥८५॥
साधू जन सब में रमे,	दुख न काहु देहि ।
अपने मत गाढ़ा रहे,	साधन का मत येहि ॥८६॥
साध हजारों कापड़ा,	ताँमे मल न समाय ।
साकट काळी कामची,	भावै तहाँ बिछाय ॥८७॥
साधू मौरा जग कली,	निस दिन फिरै उदास ।
दुकि दुकि तहाँ बिलंबिया,	(जहाँ)सीतल सद्ध निवास ॥८८॥
साधु सिद्ध बड़ अन्तरा,	जैसे आप बबूल ।
बाकी डारी अभी फल,	बाकी डारी मूल ॥८९॥
साधु कहावन कठिन है,	आगे की सुधि नाँहि ।
सूली ऊपर खेलना,	गिरतो ठौरहि काहि ॥९०॥
साधु कहावन कठिन है,	ज्यों खाँडे की धार ।
ढगमगाय तो गिरि पड़े,	निहचल उतरै पार ॥९१॥
साधु कहावन कठिन है,	लम्बी पेट खजूर ।
चहु तो चाखै मेमरस,	गिरतो चकना चूर ॥९२॥
साधू चाल जु चालई,	साधु कहावै सोय ।
बिन साधन तो सुधि नहीं,	साधु कहा वे होय ॥९३॥

८७. हजारों कापड़ा सफेद कपड़े । ८८. दुकि दुकि धोड़ी २ देर ।

१. पा० तोड़े । २. पा० रहे ।

साधु सोई जानिये, चलै साधु की चाल ।
 परमारथ राता रहै, बोलै वचन रसाल ॥९४॥
 साधु सती औ सूरमा, दर्ई न मोहै मूंह ।
 ये तीनों भागा घुरा, साहिव जाकी सूंह ॥९५॥
 साधु सती औ सूरमा, राखा रहै न ओट ।
 माथा बांधि पताक सों नेजा बालैं चोट ॥९६॥
 साधु सती औ सिंघ को, ज्यौ लंघन त्यों सोभ ।
 सिंघ न मारै मेटका, साधु न बांधै लोभ ॥९७॥
 साधु सिंघ का इक मता, जीवत ही को खाय ।
 भाव हीन मिरतक दसा, ताके निकट न जाय ॥९८॥
 साधु साधु सब एक हैं, जस अफीम का खेत ।
 कोई विवेकी लाल हैं, और सेत का सेत ॥९९॥
 साधु तो हीरा भया, ना फूटै वन खाय ।
 ना वह बिनसै कुंभ ज्यों, ना वह आवै जाय ॥१००॥
 साधु साधु सबही बड़े, अपनी अपनी ठौर ।
 सद्ध विवेकी पारखी, ते माथे के पौर ॥१०१॥

९४ रसाल-मीठे । ९५ दर्ई-देव । इनको देव अपने लक्ष्य से न गिराने । सूंह-सींगद । ९६ ओट-आड में । पताक-ध्वजा । नेजा-भाला । ध्वजा से शिर बांधने का यह भाव है कि ध्वजा शिर के साथ रहे ।

९७ लघन—उपवास ।

१. पा० सों ।

साधू ऐसा चाहिये,	जाके ज्ञान विवेक ।
बाहर मिलने सों मिलै,	अन्तर सब सों एक ॥१०२॥
सदकृपालु दुखपरिहरन,	वैर-भाव नहि दोष ।
छिमा ज्ञान सत माखही,	हिंसा रहित जु होय ॥१०३॥
दुखसुख एक समान है,	हरष सोक नहि व्याप ।
उपकारी निहकामता,	उपजै छोह न ताप ॥१०४॥
सदा रहै सन्तोष में,	धरम आप दृढ़ धार ।
आम एक गुरु देव की,	और न चित्त विचार ॥१०५॥
सावधान औ सीलता,	सदा प्रफुलित गात ।
निर्विकार गंभीर मत,	धीरज दया वसात ॥१०६॥
निर्वैरी निहकामता,	स्वामी सेती नेह ।
विषया सों न्यारा रहे,	साधुन का मत येह ॥१०७॥
मान अमान न चित धरै,	औरन को सनमान ।
जो कोई आसा करै,	उपदेसै तेहि ज्ञान ॥१०८॥
सीलवंत दृढ़ ज्ञान मत,	अति उदार चित होय ।
लजावान अति निछलता,	कोमल हिरदा सोय ॥१०९॥
दयावंत धरमक ध्वजा,	धीरजवान प्रमान ।
सन्तोषी सुख दायका,	साधू परम सुजान ॥११०॥
निहचल भल अरु दृढ़ मता,	ये सब लच्छन जान ।
साधू सोई जगत में,	जो यह लच्छनवान ॥१११॥

मन रंजन पर दुख हरन, वैर भाव विसराय ।
 छिपा ज्ञान हिंसा रहित, सो नर साधु कहाय ॥११२॥ —
 इन्द्रिय मन निग्रह करन, हिरदा कोमल होय ।
 सदा सुद्ध आचार में, रह विचार में सोय ॥११३॥
 और देव नहि चित वसै, मन गुरुचरन बसाय ।
 स्वल्पाहार भोजन करु, तृष्णा दूर पराय ॥११४॥
 और देव नहि चित वसै, बिन प्रतीति भगवान ।
 मिठा (अ)हार भोजन करै, तृष्णा चलै न जान ॥११५॥
 पढ़ विकार यह देह के, तिन को चित न लाय ।
 सोक मोह प्यास हि लुधा, जरा मृत्यु नसि जाय ॥११६॥
 कपट कुटिलता छँडि के, सब सों मित्र हि भाव ।
 कृपावान सम ज्ञानवत, वैर भाव नहि काव ॥११७॥
 कपट कुटिलता दुग्धचन, त्यागी सब सों हैत ।
 कृपावन्त आसा रहित, गुरु भक्ति सिख देत ॥११८॥
 रवि को तेज घटै नहीं, जो यन जुरै घमंड ।
 साधु वचन पलटै नहीं, पलटि जाय ब्रह्मंड ॥११९॥
 जौन चाल संसार की, तौन साधु की नाहि ।
 हिम चाल करनी करै, साधु कहो मति ताहि ॥१२०॥
 गांठी दाम न बांधई, नहि नारी सों नेह ।
 कहैं कथिर ता साधु की, हम चरनन की खेह १२१॥

कोई आवै भाव ले, को (य) अभाव ले आव ।
 साधु दोउ को पोषते, भाव न गिनै अभाव ॥१२२॥
 रक्त छँडि पय को गहै, ज्यों रे गउ का बच्छ ।
 औगुन छाँडै गुन गहै, ऐसा साधू लच्छ ॥१२३॥
 संत न छाँडै संतता, कोटिक मिले असन्त ।
 मलय भुवंगम वेधिया, सीतलता न तमन्त ॥१२४॥
 साकट ब्राह्मन मति मिलो, साधु मिलो चंडाल ।
 जाहि मिले सुख ऊपजै, मानो मिले दयाल ॥१२५॥
 कमल पत्र है साधु जन, वसै जगत के माँहि ।
 बालक केरी धाय ज्यों, अपना जानत नाँहि ॥१२६॥
 हरि दरिया सूमर भरा, साधू का घट सीप ।
 तामें मोती नीपजै, चढ़ै देसावर दीप ॥१२७॥
 बहता पानी निरमला, बंदा भंडा होय ।
 साधू जन रमता भला, दाग न लागे कोय ॥१२८॥

१२४. चन्दन पर सर्पों के लिपटे रहने पर भी वह अपनी शीतलता नहीं छोड़ता ।

१२७ सूमर—पूरा । हरि समुद्र के समान भरपूर और व्यापक है, उसमें सर्पों का हृदय सीपी के समान है जिससे ज्ञान के मोती निकलकर सारे ससार में फैलते हैं ।

१. पा० गदिला । २. पा० रमते भले, ।

बंधा (भी) पानी निरमला, जो टुक गहिरा होय ।
 साधु जन बैठा भला, जो बहु साधन सोय ॥१२९॥
 ढोल दमामा गड़गड़ी, सहनाई औ तूर ।
 तीनों निकसि न बाहरै, साधु सती औ सूर ॥१३०॥
 दूटै बरत अकास सों, कौन सकत है शैल ।
 साधु सती औ सूर का, अनी उपर का खेल ॥१३१॥
 हांसी खेलें हराम है, जो जन राते नाम ।
 माया मंदिर इस्तरी, नहि साधु का कोम ॥१३२॥
 उडगन और सुधाकरा, बसत नीर की संध ।
 यौ साधु संसार में, कबीर पढ़त न फदे ॥१३३॥
 जौन भाव ऊपर रहे, भितर बसावै सोय ।
 भीतर औ न बसावई, ऊपर और न होय ॥१३४॥
 तन में सीतल सद्ध है, बोलै बचन रसाल ।
 कहै कबिर ता साधु को, गंजि सकै नहि काल ॥१३५॥
 तीन लोक उनमान में, चौथा अगम अगाध ।
 पंचम दसा है अलख की, जानैगा कोइ साध ॥१३६॥

१३१. बरत—नट के वास की रसी । १३३. पानी में चन्द्रमा और ताराओं का प्रतिबिम्ब पड़ता है, परन्तु जाल डालने पर वे उसमें नहीं आते ।

१३६ ब्रह्म, विष्णु और शिवलोक त्रिगुणरूप होने के कारण कल्पना के विषय हैं । चौथा निरजन का धाम अव्यक्त है । इन सब से परे अविगत पुरुष है उसको लखने वाले साधु त्रिले हैं ।

१सब वन तो चंदन नहीं, सुरा के दल नाँहि ।
 सब समुद्र मोती नहि, यों २साधू जग माँहि ॥१३७॥
 सिंघन के लेंहडा नहीं, हंसों की नहि पांत ।
 छालन की नहि वोरियों, साधु न चले जमात ॥१३८॥
 स्वांगी सब संसार हैं, साधू समज अपार ।
 अलल पंछि कोइ एक है, पंछी कोटि हजार ॥१३९॥
 ऐसा साधू खोजि के, रहिये चरनों लग ।
 मिटै जनम की कल्पना, जाके पूरन भाग ॥१४०॥
 ऊँडा चित अह सम दसा, साधू गुन गंभीर ।
 जो धोखा बिचलै नहीं, सोई संत सुधीर ॥१४१॥
 चित चैनमें गरकि रहा, जागि न देख्यौ मित्त ।
 कहाँ कहाँ सल पारि हो, गल बल सहर अनित्त ॥१४२॥

१३८. लेंहडा—झूड । पात—कतार । वोरिया गूल, धेला ।

१३९. अलल्यक्षी एक प्रकार का पक्षी होता है। मुना जाता है कि वह सदैम आकाशमें रहता है। यहां तक कि उसके अंडे भी आकाश में ही फूटकर बच्चे हो जाते हैं ।

१४२. सल पारि हो—मेल प्रेम करोगे । गलबल—गटबट ।

१. पा० सुरा का तो दल नहीं, चंदन का वन नाँहि ।

२. हाट हाट हीरा नहीं, चंदन के वन नाँहि ।

३. पा० हरिजन । ४. पा० टोले । ५. पा० ऊंचा चित्त समुद्र का ।

कबीर हमरा कोइ नहि, हम काहु के नाँहि ।
 पारै पहुँची नाव ज्यों, मिलि के बिलुरी जाँहि ॥१४३॥
 आज बाल के लोग हैं, मिलि के बिलुरी जाँहि ।
 लाहा कारन आपने, सोगँद रामकि खाँहि ॥१४४॥
 कबीर सब जग हेरिया, मेल्यौ कंध चढ़ाय ।
 हरि बिन अपना कोइ नहि, देखा ठोकि बजाय ॥१४५॥
 निसरा पै विसरा नहीं, तो निसरा ना काहि ।
 पहिली खाद उखालिया, सो फिर खाना नहि ॥१४६॥
 जो विभूति साधुन तजी, मूढ ताहि लपटाय ।
 ज्यों हि वमन करि डारिया, स्वानखाद करि जाय ॥१४७॥
 दुनिया बंधन पढ़ि गई, साधू हैं निरबंध ।
 राखै खड्ग जु ज्ञान का, काटन फिरै जु फंद ॥१४८॥
 कबीर कमलन जल बसै, जल बसि रहे असंग ।
 साधू जन तैसे रहें, सुनि सतगुरु परसंग ॥१४९॥
 मुरगिबी को देख कर, मन उपजा यह ज्ञान ।
 जल में गोता मारिकर, पंख रहे अलगान ॥१५०॥

१४४. लाहा-लाभ ।

१४६. संसार छोड़ने पर भी यदि हृदय से उसकी ममता नहीं गई तो छोड़ना किसी काम का न हुआ । उसकी तो वैसी ही दशा है जैसे कुत्ता मुँह से अन्न को गिराकर उसे फिर खा लेता है ।

१५०. मुरगाबी-जलकूकडी । अलगान-बिना भीगे हुए ।

जूआ चोरी मुखबिरी, ब्याज बिरानी नारि ।
 जो चाहै दीदार को, इतनी वस्तु निवारि ॥१५१॥
 सन्त समागम परम सुख, जान अल्प सुख और ।
 मान सरोवर हंस हैं, बगुला ठौरै ठौर ॥१५२॥
 संत मिले सुख ऊपजे, दुष्ट मिले दुख होय ।
 सेवा कीजै संत की, जनम कृतारथ होय ॥१५३॥
 हरिजन मिले तो हरि मिले, मन पाया विश्वास ।
 हरिजन हरि का रूप है, ज्युं फूलन में वास ॥१५४॥
 संत मिले तब हरि मिले, कहिये आदि रु अन्त ।
 १जो संतन को परि हरै, (सो)सदा तजै भगवत ॥१५५॥
 राम मिलन के कारनै, मो मन बड़ा उदास ।
 संत संग में सोधि ले, राम उनों के पास ॥१५६॥
 सरनै राखौ भौड़्यो, पूरो मन की आस ।
 और न मेरे चाहिये, संत मिलन की प्यास ॥१५७॥
 कलियुग एकै नाम है, दूजा रूप है संत ।
 साँचे मन से सेइये, मेदै करम अनंत ॥१५८॥
 संत जहाँ सुमरन सदा, आठों पहर अभूळ ।
 भरि भरि पीवै रामरस, प्रेम पियाला फूल ॥१५९॥

१५१. मुखबिरी-जासूसो । बिरानी-पराई ।

१, पा० जिन जिन साधू परिहरा, तिहि तजि दे भगवत ॥

फूटा मन बदलाय दे, साधू षडे सुनार ।
 कूटी होवै राम सौ, फेर सँधावन द्वार ॥१६०॥
 राज दुवार न जाइये, कोटिक मिले जु हेम ।
 सुपच भगत के जाइये, यह विस्नू का नेम ॥१६१॥
 संगत कीजै साधु की, कदी न निरफल होय ।
 लोहा पारस परस ते, सो भी कंचन होय ॥१६२॥
 सो दिन गया अक्राज में, संगत भई न संत ।
 प्रेम विना पशु जीवना, भाव विना मटकंत ॥१६३॥
 संत मिले तव हरि मिले, यूँ सुख मिलै न कोय ।
 दरसन ते दुरमत कटै, मन अति निरमल होय ॥१६४॥
 साद्विव मिला तव जानिये, दरसन पाये साध ।
 मनसा वाचा करमना, मिटे सकल अपराध ॥१६५॥
 सोई साधु पति वरत जु, सदा जरै पिय आग ।
 लाभ हानि विसराय के, रहू गुरु चरनन लाग ॥१६६॥
 दया गरीबी बंदगी, सुमता सील सुभाव ।
 येते लच्छन साधु के, कहै कविर सद्भाव ॥१६७॥
 मान नहि अपमान नहीं, ऐसे सीतल संत ।
 भवमागर ऊतर पड़े, तोरै जम के दंत ॥१६८॥
 आसा तजि माया तजै, मोह तजै अह मान ।
 हरख सोक निन्दा तजै, कहै कविर संत जान ॥१६९॥

साधु सोइ सराहिये,	कनक कामिनी त्याग ।
और कछु इच्छा नहीं,	निस दिन रह अनुराग ॥१७०॥
साधु ऐसा चाहिये,	जैसा फोकल भग ।
आप करावै ठूकड़ा,	पर मुख राखै रंग ॥१७१॥
तन हि ताप जिन को नही,	(नहि)माया मोह संताप ।
हरख सोरु आसा नहीं,	सो हरिजन हरि आप ॥१७२॥
सतन के मन भय रहे,	भय धरि करै विचार ।
निस दिन नाम जपउ करै,	विसरत नही लगार ॥१७३॥
आसन तो इकान्त करै,	कामिनी संगत दूर ।
सीतल संत सिरोमनी,	उनका ऐसा नूर ॥१७४॥
साधु साधु मुखसे कहै,	पाप भसम है जाय ।
आप कबीर गुरु कहत हैं,	साधू सदा सहाय ॥१७५॥
औं साधुन के संग रह,	अंत न कितहूँ जाऊँ ।
जु मोहि अरपै प्रीति सों,	साधुन मुख है खाऊँ ॥१७६॥
यह कलियुग आयो अने,	साधु न मानै कोय ।
कामी कोधी मसखरा,	तिनकी पूजा होय ॥१७७॥
संत संत सब कोइ कहै,	सब समुंदर पार ।
अनल पंखि कोइ एक है,	पखी कोटि हजार ॥१७८॥
कबीर सेवा दोउ भली,	एक संत इक राम ।
राम है दाता मुक्ति का,	संत जयावै नाम ॥१७९॥

साधू खारा यौ तजै, (ज्यौ) सोप समुंदर माँहि ।
 वासो तो वामे रहै. मन चित वासो नॉहि॥१८०॥
 साधु मिले साहिव मिले, ये सुख कहो न जाय ।
 अतरगत अंगीठही, ततलिन टाढ़ी थाय ॥१८१॥
 साहिव सँग राचै भँवर, कबहु न छूटै रंग ।
 जैसे जैसे कीजिये, उन संनन को सग ॥१८२॥
 साधू के घर जाय के, किरतन दीजै कान ।
 ज्यौ उद्यम त्यौ लाभ है, ज्यौ आलस त्यौ हानि॥१८३॥
 साधू के घर जाय के, सुधि ना लीजै कोय ।
 पीछे करी न देखिये, आगे हूँ सो होय ॥१८४॥
 साधु बिहंगम सुरसरी, चेल बिहंगम चाल ।
 जो जो गलियौ नीकसे, सो सो करै निहाल ॥१८५॥
 साधू सोई सराहिये, पांचौ राखै चूर ।
 जिन के पांचौ बस नहीं, तिनते साहिव दूर ॥१८६॥

१८४ साधु सग में बैठकर अपने किये हुए कर्मों पर पछताते न रहना चाहिये बल्कि आगे से सुकृती बनने का निश्चय कर लेना चाहिये। ऐसा करने से वह धीरे २ पुण्यात्मा बन जायगा ।

१८५. साधू देवनदी गंगा के समान हैं वे जहा २ जाते हैं उस भूमि को पवित्र करते हैं । और वहा के निवासियों का जीवन सफल कर देते हैं । १८६. पांचौ=पंच विषयों को । चूर=अपने अधीन ।

निहकामी निरमल दसा, पकड़े चारों खंड ।
 कहैं कविर बा . दास का, आस करै वैकुण्ठ ॥१८७॥
 रति एक धूँवा संतका, भूत ऊधरे चार ।
 जले जलाये फिर जले, कहैं कविर विचार ॥१८८॥
 साधु सरवन सांभरी, छोड़ चले गृह काम ।
 डग डग पै असमैध जग, यौ कहि श्री भगवान ॥१८९॥
 साधु दरस को . जाइये, जेता धरिये पाँय ।
 डग डग पै असमैध जग, कहैं कविर समुझाय ॥१९०॥
 साधु दरसन महाफल, कोटि जज्ञ फल लेह ।
 इक मंदिर को का पड़ी, (सब) सहर पवित्र करि लेह ॥१९१॥
 साधु मिले सुख ऊपजे, साधु गये दुख होय ।
 ताते देही दूबली, नैनन दीन्हा रोय ॥१९२॥
 जाकी धोति अघर तपै, ऐसे मिले असंख ।
 सब रिषियन के देखतां, सुपच बजाया घंट ॥१९३॥
 साहिब का बाना सही, संतन पाहरा जानि ।
 पांडव जग पूरन भयो, सुपच विराजे आनि ॥१९४॥

१८८. जोरित सन्तों की महिमा के विषय में तो क्या कहना है मृत
 सन्त के बारे में भी एक कथा में ऐसा सुना जाता है कि उनके जलाये
 हुए शरीर के धूँ से चार भूतों का उद्धार हो गया ।

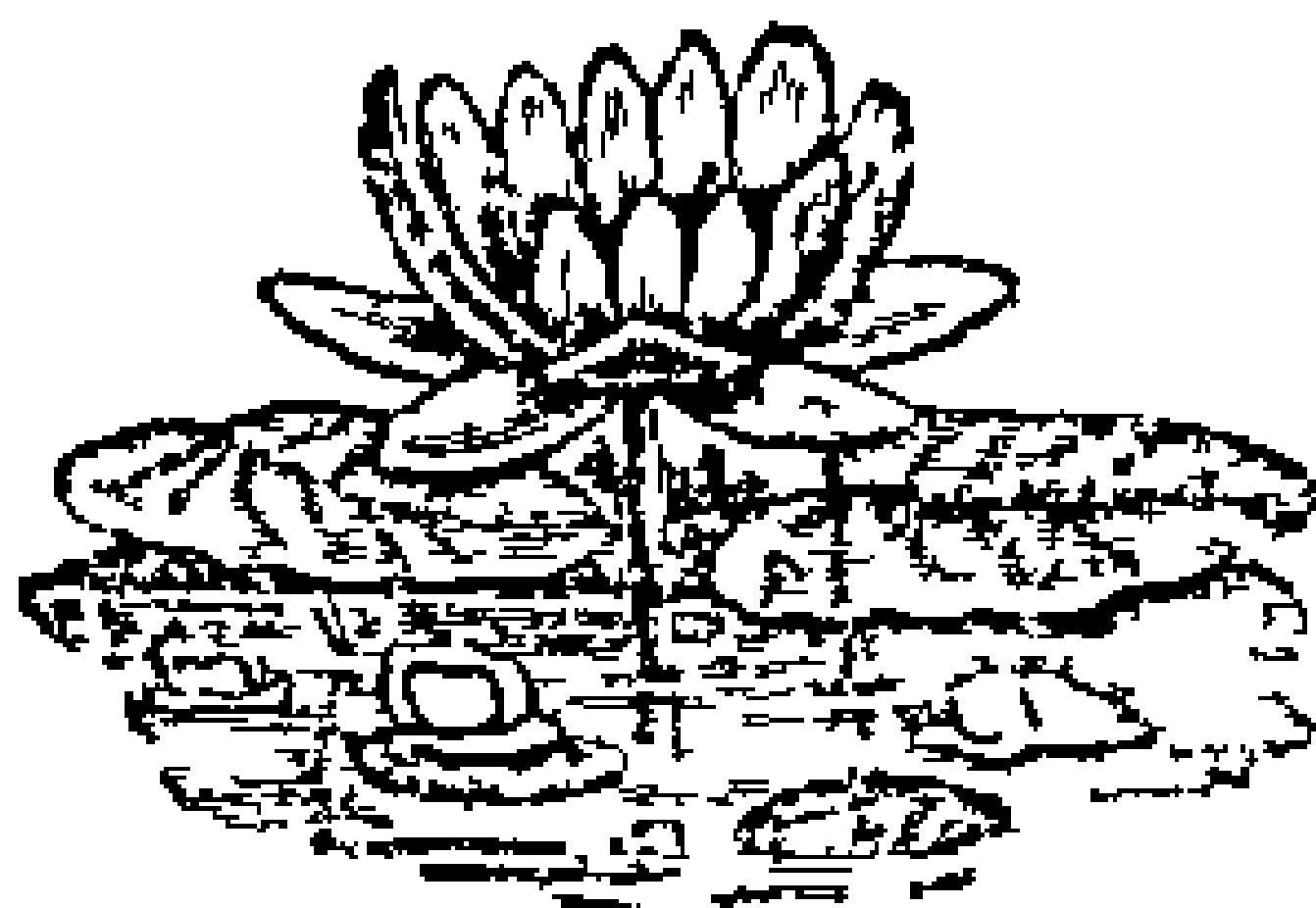
१. पा० जुरे । २. पा० सब ।

कुळवंता कोटिक मिले, पाडत कोटि पचीस ।
 सुपच भक्त की पनहि में, तुलै न काहू सीस ॥१९५॥
 हरि सेती हरिजन बड़े, जानै संत मुजान ।
 सेतु बांधि रघुवर चले, कूदि गये हनुमान ॥१९६॥
 ज्ञान ध्यान मन धनुष गहि, खँचन हार अलेख ।
 केते दुरिजन मारिया, (जब) आप कदै या मेखा ॥१९७॥
 साधु ऐसा चाहिये, जहाँ रहै तहाँ गैब ।
 बानी के विस्तार में, ताकू कोटिक ऐव ॥१९८॥
 सन्त मता गजराज का, चाले बंधन छोड़ ।
 जग कुत्ता पीछे फिरै, मुनै न बाका सोर ॥१९९॥
 आज काल दिन पांच में, बरस पंच जुग पंच ।
 जब तब साधू तारसी, और सकल परपंच ॥२००॥
 सतगुरु कैरा भावता, दूर हि ते दीसंत ।
 तन छीन मन उनमुनी, झूठा रूठ फिरंत ॥२०१॥
 ज्यों जल में मच्छी रहै, (यों) साहिब साधू माहि ।
 सब जग में साधू रहै, असमझ चीन्है नाँहि ॥२०२॥
 समझे घट कूं यूं बनै, ये तो बात अगाध ।
 सब ही सों निरवैरता, पूजन कीजै साध ॥२०३॥
 मिळता सेती मिलि रहै, बिलूरे सें वैराग ।
 साहिब सेती यों रहै, (ज्यों) विपन के गल ताग ॥२०४॥

१९८. गब=छियोडियाये । साधुको उचित है कि अधिक भाषण न करे; क्योंकि अधिक बातचीत से अनेक अनर्थ हो जाते हैं ।

हाजी कूं दुख बहुत हैं,	नाजी कृ दुख नाँहि ।
कबीर हाजी हैं रहो,	अपने ही दिल माँहि ॥२००॥
सन्त कहि सो साधु कहि,	वेद कही मति जान ।
कहैं कबीर एकै रही,	ताने होत पिछान ॥२०१॥
साधू ऐसा चाहिये,	जाका पूरन मन ।
विपति पड़े छाड़े नहीं	चढ़ै चौगुना रग ॥२०२॥
कबीर साधू (को) दुरमति,	ज्यौ पानी में छात ।
पल एकै विरजत रहे,	पीछै इक है जात ॥२०३॥
साधू ऐसा चाहिये,	जामे लउन बतीस ।
विरचाया विरचै नहीं,	पाँव चढ़े दे सीम ॥२०४॥
साधु मिले सनु पादया,	साजुट मिलि है हानि ।
बलिहारी वा दास की,	पिवै मेमरस छानि ॥२०५॥
केता जिभ्या रस भखै,	रती न लागै टक ।
ज्ञानी माया मुक्ति ये,	यो साधू निकलक ॥२०६॥
काग साधू दरसन कियो,	कागा ते भय इस ।
कबीर साधू दरस ते,	पाये उत्तम बंस ॥२०७॥
हंस साधू दरसन कियो,	हंसा ते भय कौर ।
कबीर साधू दरस ते,	पाये उत्तम ठौर ॥२०८॥
कौर साधू दरसन कियो,	पायो उत्तम मोष ।
कबीर साधू दरस ते,	मिटि गय तीनों दोष ॥२०९॥

कागा ते हंसा भयो, हंसा ते भयो कौर ।
 कवीर साधू दरस ते, भयो और को और ॥२१५॥
 हेत विना आवै नहीं, हेत तहाँ चलि जाय ।
 कवीर जल औ संतजन, नवै तहाँ उदराय ॥२१६॥
 संत होत है हेत के, हेत तहाँ चलि जाय ।
 कहै कविर वे हेत विन, गरज कहाँ पतिषाय ॥२१७॥
 दृष्टि सुष्टि आवै नही, रूप वरन पुनि नॉहि ।
 जो मनमें परतीत है, देखा संतन माँहि ॥२१८॥
 सदा मीन जल में रहे, कव अचवै है पानि ।
 ऐसी महिमा साधु की, पडै न काहू जानि ॥२१९॥
 मूर चढ़ै संग्राम कूं, बाधे तरकस चार ।
 साधू जन माने नही, बांधे बहु इकार ॥२२०॥
 संत सेवा गुरु चंदगी, गुरु सुमिरन वैराग ।
 येता तबही पाइये, पूरन मस्तक भाग ॥२२१॥



भेष को अंग ।

कबीर भेष अतीत का, अधिक करै अपराध ।
 बाहिर दीसै साधु गति, अन्तर बड़ा असाध ॥ १ ॥
 कबीर वह तो एक है, परदा दीया भेष ।
 भ्रम करम सब तर कर, सब ही माँहि अलेख ॥ २ ॥
 तत्त्व तिलक तिहु लोक में, सत्तनाम निजसार ।
 जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अगम अपार ॥ ३ ॥
 तत्त्व तिलक की खानि है, महिमा है निजनाम ।
 अछै नाम वा तिलक को, रहै अछै विसराम ॥ ४ ॥
 तत्त्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान ।
 करनी कंठी कंठ में, परसा पद निरवान ॥ ५ ॥
 तत्त्व हि फल मन तिलक है, अछै विरल फल चार ।
 अमर महात्म जानि के, करी तिलक ततसार ॥ ६ ॥
 त्रिकुटी ही निजमूल है, भूकुटी मध्य निसान ।
 ब्रह्म दीप अस्थूल है, अगर तिलक निरवान ॥ ७ ॥
 अगर तिलक सिर सोहई, बैसाखी उनिहारि ।
 सोभा अविचल नाम की, देखो सुरति विचारि ॥ ८ ॥
 जैसि तिलक उनहार है, तस सोभा अस्थीर ।
 स्वप्न लड़ाटे सोहई, तत्त्व तिलक गंभीर ॥ ९ ॥

मध्य गुफा जहँ सुरति है, उपरि तिलक का धाम ।
 अमर समाधि लगावई, दीसै निरगुन नाम ॥१०॥
 द्वादस तिलक बनावहीं, अंग अंग अस्थान ।
 * कहैं कबीर विराजहीं, ऊजल हस अपान ॥११॥
 ऊजल देखि न भरमिये, वक ज्यों लावै ध्यान ।
 कुटिल चाल करनी करै, सो मूरख अज्ञान ॥१२॥
 ऊजल देखि न धीजिये, बग ज्यों मांडै ध्यान ।
 घोरै बैठि चपेट सी, यों ले बूढ़े ज्ञान ॥१३॥
 चाल बकुल की चलत है, बहुरि कहावै हंस ।
 ते मुक्ता कैसे चुगै, पड़े काल के फंस ॥१४॥
 साधु भया तो क्या हुआ, माला पहिरी चार ।
 बाहर भेष बनाइया भीतर भरी भंगार ॥१५॥
 जेता मीठा बोलवा तेता साधु न जान ।
 पहिले थाह दिखाइ करि, औढै देसी आन ॥१६॥
 मीठे बोल जु बोलिये, ताते साधु न जान ।
 पहिले स्वाँग दिखाय के, पीछे दीसै आन ॥१७॥
 बांवी कूटै बावरा, सरप न मारा जाय ।
 मूरख बांवी ना हसै, सरप सबन को खाय ॥१८॥
 माला तिलक लगाय के, भक्ति न आई हाथ- ।
 दाढ़ी मूँछ मुँडाय के, चले दुनी के साथ ॥१९॥

दाढ़ी मूँछ मुँडाय के, हुआ घोटय घोट ।
 मन को क्यों नहि मूँडिये, जायें भरिया खोट ॥२०॥
 केसन कदा विगारिया, मुँडा सौ सौ बार ।
 मन को क्यों नहि मूँडिये, जायें विषय विकार ॥२१॥
 मन मेवासी मूँडिये, केस हि मूँडे काहि ।
 जो कुछ किया सो मन किया, केस किया कलु नाहि ॥२२॥
 मूँड मुँडावत दिन गया, अजहु न मिलिया राम ।
 राम नाम कहो क्या करै, मन के औरै काम ॥२३॥
 मूँह मुँडायै हरि मिले, सब कोइ लेहि मुँडाय ।
 बार बार के मूँडते, भेड न बैकुंठ जाय ॥२४॥
 स्वाँग पहिरि सोहरा भया, दुनिया खाई खुंद ।
 जा सेरी साधू गया, सो तो राखी मूँद ॥२५॥
 भूला भसम रमाय के, मिटी न मन की चाह ।
 जो सिका नहि साँच का, तबलग जोगी नाह ॥२६॥
 ऐसी ठाठों ठाठिये, बहुरि न यह तन होय ।
 ज्ञान गूदरी ओढिये, काहि न सकही कोय ॥२७॥

२२. मेवासी=लुटेरा, डाकू ।

२५. सेहरा=प्रसिद्ध । साधु का येष बनानेवाले येष के कारण संसार में प्रसिद्ध होकर आनन्द करते हैं; परन्तु महात्माओं के सच्चे रास्ते को ऐसे लोग लुप्त कर देते हैं ।

मन माला तन सुमरनी, हरिजी तिलक दियाय ।
 दुहाइ राजा राम की, दूजा दूरि कियाय ॥२८॥
 मन माला तन मेखला, भय की करै भभूत ।
 राम पिछा सब देखताँ, सो जोगी अवधूत ॥ २९ ॥
 माला फेरै मनमुखी, बहुतक फिरै अचेत ।
 गांगी रोलै बहि गया, हरि सों किया न हेत ॥३०॥
 माला फेरै कलु नहीं, डारि मुआ गल भार ।
 ऊपर ढोला हींगला, भीतर भरा भँगार ॥३१॥
 माला फेरै क्या भया, गाठि न हिय की खोय ।
 हरि चरना चित राखिये, तो अपरापुर जोय ॥३२॥
 माला फेरै कलु नहीं, काती मन के हाथ ।
 जबलग हरि परसै नहीं, तबलग थोधी बात ॥३३॥
 ज्ञान संपुरन ना विधा, हिरदा नहि भिदाय ।
 देखा देखी पकरिया, रंग नहीं ठहराय ॥३४॥
 बाना पहिरै सिंघ का, चले भेड की चाल ।
 बोली बोले सियार की, कुत्ता खावै फाल ॥ ३५ ॥
 भरम न भागै जीव का, बहुतक धरिया भेष ।
 सतगुरु मिलिया बाहिरै, अन्तर रहा अलेख ॥३६॥
 तन को जोगी सब करै, मन को करै न कोय ।
 सहजै सब सिधि पाइये, जो मन जोगी होय ॥ ३७ ॥

हम तो जागी मगहि के,	तन के हैं ते और ।
यन को जोग लगावताँ,	दसा भई कहु और ॥ ३८ ॥
पहिले बूढ़ी ^१ पिरथवी,	झूठे कुल की लार ।
अलख विसायों भेष में,	बूढ़ि काल की धार ॥ ३९ ॥
चतुराई हरि ना मिलै,	यह घातों की बात ।
निस्मेही निरधार का,	गाइक दीनानाथ ॥ ४० ॥
जप माला छापा तिलक,	सरै न एकी काम ।
मन काचे ^२ नाचे त्रिया,	साचे राचे राम ॥ ४१ ॥
हम जाना तुम मगन हो,	रहै प्रेमरस पाग ।
रंच (क) पौन के लागते,	उठै ^३ आग से जाग ॥ ४२ ॥
सीतल जल पाताल का,	साठि हाथ पर मेख ।
माला के परताप से,	ऊपर आया देख ॥ ४३ ॥
करिये तो करि जानिये,	सरिखा सेती संग ।
झिर झिर जिमि लोई भई,	तऊ न छोड़ै रग ॥ ४४ ॥
संसारी साकट भला,	कन्या कौरी माय ।
साधु दुराचारी बुरा,	हरिजन तहाँ न जाय ॥ ४५ ॥
वैरागी प्रिकत भला,	गिरा पड़ा फल खाय ।
सरिता को पानी पिये,	गिरही द्वार न जाय ॥ ४६ ॥

४३. जिस प्रकार कूवे का साठ हाथ गहरा पानी रहट की माला के प्रताप में ऊपर चला आता है इसी प्रकार माला की प्रेमपूर्वक फेरने से गुप्त राम भी प्रकट हो जाता है ।

१ पा० राचे । २ पा० नाग से ।

गिरही द्वारै जाय के, उदर समाता लेय ।
 पीछे लागे हरि फिरै, जब चाहै तब देय ॥४७॥
 सिप साखा संसार गति, सेवक परतछ काल ।
 वैरागी छवै मही, ताको मूल न डाल ॥४८॥
 जो मानुष गृहि धर्म युत, राखै सील विचार ।
 गुरु मुख बानी साधु संग, मन बच सेवा सार ॥४९॥
 सेवक भाव सदा रहै, वहम न आनै चित्त ।
 निरनै लखी यथार्थ विधि, साधुन को करै मित्र ॥५०॥
 सच सील दाया सहित, वरते जग व्यौहार ।
 गुरु साधु का आश्रित, दीन बचन उच्चार ॥५१॥
 बहु संग्रह विषयान को, चित्त न आवै ताहि ।
 मधुकर इम सब जगत जिव, घटि बढि लखि वरताहि ॥५२॥
 गिरही सेवै साधु को, साधु सुमरै नाम ।
 यामें श्रोखा कलु नही, सरै दोउ का काम ॥५३॥
 गिरही सेवै साधु को, भाव भक्ति आनन्द ।
 कहै कविर वैरागि को, निरवानी निरदुद ॥५४॥
 सब्द विचारे पथ चले, ज्ञान गली दे पॉव ।
 क्या रमता क्या बैठता, क्या गृह कंदला छॉव ॥५५॥
 जैसा मीठा घृत पकै, तैसा फीका साग ।
 रामनाम सों राचहीं, कहै कविर वैराग ॥५६॥

५६. जिनके मिये घी से बनी मिठाई और अलौना शाक दोनों
 बराबर है वे ही सच्चे वैरागी हैं । १ पा० समाना ।

पांच सात सुमता भरी, गुरु सेवा चित लाय ।
 तब गुरु आज्ञा लेयकै, रहे दिसंतर जाय ॥५७॥
 गुरु आज्ञा ते जो रमै, रमते तजे सरीर ।
 ताको मुक्ति हजूर है, सतगुरु कहै कवीर ॥५८॥
 गुरु के सनमुख जो रहै, सहै कसौटी दुख ।
 कहै कवीर ता दुख पर, वारैं कोटिक सुख ॥५९॥
 सतगुरु अधम उधारना, दया सिंधु गुरु नाम ।
 गुरु बिन कोइ न तरि सकै, क्या जप अलुह राम ॥६०॥
 माला पहिरै कौन गुन, मन दुविधा नहि जाय ।
 मन माला करि राखिये, गुरुचरनन चित लाय ॥६१॥
 मन का मस्तक मूडि ले, काम क्रोध का केस ।
 जो पांचौ परमोधि ले, चेला सबही देस ॥६२॥
 माला तिलक बनाय के, धर्म विचारा नाँहि ।
 माल विचारी क्या करै, मैल रहा मन माँहि ॥६३॥
 माल बनाई काठ की, विच में डारा सूत ।
 माल विचारी क्या करै, फेरन हार कपूत ॥६४॥
 माल तिलक तो भेष है, राम भक्ति कहु और ।
 कहै कविर जिन पहिरिया, पाचौ राखै ठौर ॥६५॥

५७. साधक को उचित है कि कुछ वर्षों तक अधीनता और गरीबी से गुरु की सेवा करे । पश्चात् यदि देशभ्रमण की इच्छा हो अथवा विदेश में रहने की इच्छा हो तो गुरु की आज्ञा लेकर जाये या रहे ।

माला तो मन की मली, औ' ससारी भेष ।
 भाला फेरें हरि मिले, रहस्य के गल देख ॥६६॥
 मन पैला तन ऊजला, षगुला कपटी अंग ।
 तासों तो कौआ भला, तन मन एक हि रंग ॥६७॥
 कवि तो कोटिन कोटि है, सिर के मुँडे कोट ।
 मन के मुँडे देख करि, ता संग लीजै ओट ॥६८॥
 भेष देखि मति भूलिये, वृजि लीजिये ज्ञान ।
 विना कसौटी होत नहीं, कंचन की पहिचान ॥६९॥
 फाली फूली गाढी, ओढि सिंग की खाल ।
 सांचा सिंग जग आ मिले, गाढर कौन हवाल ॥७०॥
 पाँची में फूला फिरै, साधु कहाँ सोय ।
 स्वान न मैले बाघरो, बाघ वहाँ से होय ॥७१॥
 बोली ठोली मसकरी, हांसी खेल हराम ।
 मद माया औ इस्तरी, नहि संतन के काम ॥७२॥
 भांड भवाई खेचरी, ये कुल को बेवहार ।
 दया गरीबी बंदगी, संतन का उपकार ॥७३॥
 दूध दूध सब एक है, दूध आक थी होय ।
 बाना देखि न बंदिये, नैना पखो सोय ॥७४॥

१ पा० माया पहिरे मन, सुखी, बाहिर के घट देख ।

२ पा० रहेंट । ३ पा० साधन ।

बाना देखी बंदिये, नहि करनी सों काम
 नीलकंठ कीड़ा चुगै, टरसन ही सों काम ॥७५॥
 कविर भेष भगवंत का, माला तिलक बनाय ।
 उनकुं आवत देखिके, उठिफर मिलिये राय ॥७६॥
 गिरही को चिंता धनी, वैरागी को भीख ।
 दोनों का विच जीव है, देहु न सन्तो सीख ॥७७॥
 वैरागी विरक्त भला, गिरही चित्त उदार
 दोउ चुकि खाली पड़े, ताको वार न पार ॥७८॥
 घर में रहे तो भक्ति करु, नातर करु वैराग ।
 वैरागी वंघन करै, ताका बड़ा अभाग ॥७९॥
 धारा तो दोनों भली, गिरही कै वैराग ।
 गिरही दासातन करै, वैरागी अनुराग ॥८०॥
 अजर जु घान अतीतका, गिरही करै अहार ।
 निश्चै होई दरिद्री, कहैं कपीर विचार ॥८१॥

भीख को अंग ।

माँगन मरन समान है, मति कोइ मागो भीख ।
 माँगन ते परना भला, यह मतगुरु की सीख ॥ १ ॥
 माँगन मरन समान है, सीख लई मै तोहि ।
 कहैं कविर सतगुरु सुनो, मतिरे मँगाउ मोहि ॥ २ ॥
 माँगन मरन समान है, तोहि दर्द में सीख ।
 कहैं कविर समुझाय के, मति कोइ मागै भीख ॥ ३ ॥

माँगन गय सो पर रहे,
 तिनते पहिले वे मरे,
 उदर समाता मांगि ले,
 कहै कविर अधिका गहै,
 अजहं तेरा सब मिटे,
 जबलग तूं घर में रहे,
 उदर समाता अन्न ले,
 अधिक हि संग्रह ना करै,
 अन मांगा तो अति मला,
 उदर समाता मांगि ले,
 अन मांगा उत्तिम कहा,
 कहै कविर निकृष्ट सो,
 सहज मिलै सो दूध है,
 कहै कविर वह रक्त है,
 आब गया आदर गया,
 यह तीनों तवही गये,
 भीख तीन परकार की,
 दास कविर परगट कहै,
 उत्तिम भीख है अजगरी,
 कहै कविर ताके गहै,
 भँवर भीख मध्यम कही,
 कहै कविर ताके गहै,
 खर कृकर की भीख जो,
 कहै कविर इस भीख में,

मरै जु माँगन जाँहि ।
 होत करत है नाँहि ॥ ४ ॥
 ताको नाहीं दोष ।
 ताकी गति न मोष ॥ ५ ॥
 जो मानै गुरु सीख ।
 मति कहूँ माँगै भीख ॥ ६ ॥
 तन ही समाता चीर ।
 तिसका नाँव फकीर ॥ ७ ॥
 माँगि लिया नहि दोष ।
 निश्चै पावै मोष ॥ ८ ॥
 मध्यम माँगि जु लेय ।
 पर घर धरना देय ॥ ९ ॥
 माँगि मिलै सो पानि ।
 जामे ऐचातानि ॥ १० ॥
 नैनन गया सनेह ।
 जवहि कहा कलु देह ॥ ११ ॥
 सुनहु संत चित लाय ।
 भिन्न भिन्न अरथाय ॥ १२ ॥
 सुनि लीजे निज बैन ।
 महा परम सुख चैन ॥ १३ ॥
 सुनो संत चित लाय ।
 मध्यम माँहि समाय ॥ १४ ॥
 निकृष्ट कहाये सोय ।
 मुक्ति न कवहं होय ॥ १५ ॥

संगति को अंग ।



कवीर संगति साधु की,	नित प्रति कीजै जाय ।
दुरमति दूर वहावसी,	देसी सुमति चताय ॥ १ ॥
कवीर संगति साधु की,	कबहुं न निष्फल जाय ।
जो पै बोवै भुनि के,	फुलै फलै अघाय ॥ २ ॥
कवीर संगति साधु की,	जौ की भूसी खाय ।
खीर खांड मोजन मिलै,	साकट संग न जाय ॥ ३ ॥
कवीर संगति साधु की,	ज्यों गंधी का वास ।
जो कुछ गंधी दे नहीं,	तो भी वास सुवास ॥ ४ ॥
कवीर संगति साधु की,	निष्फल कमी न होय ।
दोसी चंदन वासना,	नीम न कइसी कोय ॥ ५ ॥
कवीर संगति साधु की,	जो करि जानै कोय ।
सकल विरछ चंदन भये,	बांस म चंदन होय ॥ ६ ॥
कवीर चंदन संग से,	बेधे ढाक पलास ।
आप सरीखा करि लिया,	जो ठहरा तिन पास ॥ ७ ॥
मलया गिरि के पेड़ सों,	सरप रहै लिपटाय ।
रोम रोम बिष भीनिया,	अमृत, कहा समाय ॥ ८ ॥

१. पा० द्वाय । २. पा० आक । ३. जौ होते उन पास ।

एक घड़ी आधी घड़ी,
 कबीर संगति साधु की,
 घड़ि ही की आधी घड़ी,
 सत संगति पल ही भली,
 जा पल दरसन साधु का,
 सत्तनाम रसना वसै,
 ते दिन गये अकारधी,
 प्रेम बिना पसु जीवना,
 जा घर गुरु की भक्ति नहि,
 ता घर जम डेरा दिया,
 रिद्धि सिद्धि मांगूं नहीं,
 नित प्रति दरसन साधु का,
 मेरा मन हंसा रमै,
 बगुला मन मानै नहीं,
 मेरा संगी दो जना,
 वे दाता है मुक्ति के,
 कबीर वन वन में फिरा,
 राम सरीखा जन मिलै,
 कबीर तासों संग कर,
 राजा राना छत्रपति,

आधी हूं सों आव ।
 कटै कीटि अपराध ॥ ९ ॥
 भाव भक्ति में जाय ।
 जमका धका न खाय ॥ १० ॥
 ता पल की बलिहार ।
 लीजै जनम सुधार ॥ ११ ॥
 संगति भई न संत ।
 भक्ति बिना भगवंत ॥ १२ ॥
 संख नही मिहमान ।
 जीवत भये मसान ॥ १३ ॥
 मांगूं तुम पै येह । ॥
 कहै कबिर मुहि देह ॥ १४ ॥
 हंसा गगनि रहाय ।
 घर आंगुन फिर जाय ॥ १५ ॥
 इक वैस्नव इक राम ।
 वे सुमिरावै नाम ॥ १६ ॥
 हूँदि फिरा सब गाय ।
 तब पूरा है काम ॥ १७ ॥
 जो रे भजि हैं राम ।
 नाम बिना बेकाम ॥ १८ ॥

कवीर लहरि समुद्र की,	कमी न निस्फल जाय ।
बगुला परखि न जानई,	हंसा चुगि चुगि खाय ॥१९॥
कवीर मन पैछी भया,	भावै तहवाँ जाय ।
जो जैसी संगति करै,	सो तैसा फल पाय ॥ २० ॥
कवीर खाई कोट की,	पानी पियै न कोय ।
जाय मिले जव गंग में,	सब गंगोदक होय ॥ २१ ॥
कवीर कलह रु कल्पना,	सतसंगति सँ जाय ।
दुख वासों भागा फिरै,	सुख में रहै सपाय ॥२२॥
संगति कीजै संत की,	जिनका पूरा मन ।
अनतोले ही देत है,	नाम सरीखा धन ॥२३॥
साधु संग अन्तर पहे,	यह मति कबहुँ होय ।
कहै कविर तिहु लोक में,	सुखी न देखा कोय ॥२४॥
मथुरा कासी द्वारिका,	हरिद्वार जगनाथ ।
साधु संगति हरिभजन विन,	कहू न आवै हाथ ॥२५॥
साखि सन्द बहुते सुना,	मिटि न मनका दाग ।
संगति सो सुधरा नहीं,	ताका बडा अभाग ॥२६॥
साधुन के सतसंग ते,	धर धर कांपै देह ।
कबहुँ भाव कुभाव ते,	प्रति मिटि जाय सनेह ॥२७॥
राम बुलावा मेजिया,	दिया कवीर रोय ।
जो सुख साधू संग में,	सो वैकुण्ठ न होय ॥२८॥

राम राम रटिवो करै, निसदिन साधुन संग ।
 कहो जु कौन विचारतै, (नहि) नैना लागत रंग ॥२९॥
 मन दीया कहूँ ओर ही, तन साधुन के संग ।
 कहै कबिर कोरी गजी, कैसे लागे रंग ॥३०॥
 भुङ्गम वास न बेधई, चंदन दोष न लाय ।
 सब अंग तो विष सों भरा, अमृत कहाँ समाय ॥३१॥
 चंदन परसा वाचना, विष ना तजै भुङ्ग ।
 यह चाई सुन आपना, कहा करै सतसंग ॥३२॥
 कबीर चंदन के निकट, नीम भि चंदन होय ।
 बूढ़े वांस बडाइया, यौ जनि बूढ़ो कोय ॥३३॥
 चंदन जैसे संत हैं, सरप जैस संसार ।
 बाके अंग लपटा रहै, भागै नहीं विकार ॥३४॥
 चंदन दर लहसुन करै, पति रे विगारै वास ।
 सुगुरा निगुरा सों दरै, जग से दरपै दास ॥३५॥
 कबिर कुसंग न कीजिये, लोहा जल न तिराय ।
 कदली सीप भुङ्ग सुख, एक बुद तिर भाय ॥३६॥
 कबिर कुसंग न कीजिये, जाका नाँव न आव ।
 ते क्यों होसी बापरा, साध नहीं जिहि गॉव ॥३७॥
 कबीर गुरु के देस में, बसि जानै जो कोय ।
 कागा ते इसा बनै, जाबि बरन कुल खोय ॥३८॥

कवीर कहते क्यों बने, अन बनता के संग ।
 दीपक को भावै नहीं, जरि जरि मरै पतंग ॥३९॥
 ऊजल बुंद अकास की, पडि गइ भूमि बिकार ।
 पाटी मिलि भइ कीच सो, बिन संगति भौ छार ॥४०॥
 हरिजन सेती रुठना, संसारी सों हेत ।
 ने नर कबहु न नीपजे,^{४१} ज्यों कालर का खेत ॥४१॥
 गिरिये परवत सिखर ते, परिये घरनि मँझार ।
 मूरख मित्र न कीजिये, बूढ़ो काली धार ॥४२॥
 मूरख को समझावते, ज्ञान गांठि का जाय ।
 कोयला होय न ऊजल, सौ मन साधुन छाये ॥४३॥
 कोयला भि होय ऊजल, जरि धरि है जो सेत ।
 मूरख होय न ऊजला, ज्यों कालर का खेत ॥४४॥
 संगति अधम असाधु की, मीच होय ततकाल ।
 कहैं कविर सुन साधवा, बानी ब्रह्म रसाल ॥४५॥
 मेर निसानी मीच की, कूसंगति ही काल ।
 कहैं कविर सुन मानिया, बानी ब्रह्म सँभाल ॥४६॥
 ऊंचे कुल कइ जनमिया, (जो) करनी ऊंच न होय ।
 कनक कलस मद सों भरा, साधुन निंदा सोय ॥४७॥

४१. कालर=एक प्रकार का घास । यह घास जिस खेत में बढ़ता है उसमें दूसरी चीज नहीं हो सकती ।
 ४६. मेर=सीमा ।

जानि बूझि साँची तजै, करै झूठ सों नेह ।
 ताकी संगति रामजी, सपने हूँ मति देह ॥४८॥
 काचा सेती पति मिलै, पाका सेती वान ।
 काचा सेती मिलत ही, है तन धन की हान ॥४९॥
 तोहि पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल ।
 काची सरसों पेलि के, खरी भया नहि तेल ॥५०॥
 कुल दूटै काँची पड़ी, सरा न एकौ काम ।
 चौरासी वासा भया, दूर पडा हरिनाम ॥५१॥
 दाग जु लागा नील का, सौ मन साबुन धोय ।
 कोटि जतन परमोधिये, कागा हंस न होय ॥५२॥
 जग सों आपा राखिये, ज्यों विपहर सो अंग ।
 करो दया जो खूब है, बुरा खलक का संग ॥५३॥
 जीवन जोवन राजमद, अविचल रहै न कोय ।
 जु दिन जाय सतसंग में, जीवन का फल सोय ॥५४॥
 ब्राम्हन केरी बेटिया, मांस शराव न खाय ।
 संगति भई कलाल की, मद विन रहा न जाय ॥५५॥
 साखि सब्द बहुत हि सुना, मिटा न मनका मोह ।
 पारस तक पहुँचा नहीं, रहा लोह का लोह ॥५६॥

५३. कुसंगी लोगों की संगति से अपने आपको ऐसे बचना चाहिये जिस तरह साप से अपने शरीर को बचाते हैं ।

माखी चंदन परिहरे, जहँ रस मिळितहँ जाय ।
 पापी सुनै न हरि कथा, ऊँघे कै डठि जाय ॥५७॥
 पुरब जनम के माग से, मिले संत का जोग ।
 कहँ कविर समुझै नहीं, फिर फिर चाहै भोग ॥५८॥
 जहाँ जैसी संगति करै, तहँ तैसा फल पाय ।
 हरि मारग तो कठिन है, क्यों करि पैठा जाय ॥५९॥
 ज्ञानी को ज्ञानी मिलै, रस की लूटम लूट ।
 ज्ञानी अज्ञानी मिल, होवै भाषा कूट ॥६०॥
 सज्जन सों सज्जन मिले, होवे दो दो बात ।
 गदहा सों गदहा मिले, खावे दो दो घात ॥६१॥
 मै मांगू यह मांगना, मोहि दीजिये सोय ।
 संत समागम हरिकथा, हमरे निसदिन होय ॥६२॥
 कंचन भौ पारस परसि, बहुरि न लोहा होय ।
 चंदन वास पलास विधि, ढाक कहै नहि कोय ॥६३॥
 पहिले पद पास बिना, बीबै पड़े न भात ।
 पास बिन लागे नहीं, कुसुम बिगारै साथ ॥६४॥

६४. कपडे को कुसुमिया और समुद्रलहर बनाने के लिये पहले उसे खूम किया जाता है । पश्चात् सल पाड कर उसे डोरों से बाधा जाता है । इसके बाद कुसुम का पास बनाकर उससे कपडे को रंगते हैं ।

बीबे पडे न भात-समुद्रलहर की शोभा नहीं आती । पास बिना-पास चढाये बिना ।

कवीर सतगुरु सेविये,	कहा साधु को संग ।
बिन बगुरे भिगोय बिना,	कोरै चढ़ै न रंग ॥ ६५ ॥
कवीर विषधर बहु मिले,	मनिधर मिला न कोय ।
विषधर को मनिधर मिले,	विषधर अमृत होय ॥ ६६ ॥
भीति करो सुख लेन को,	सो सुख गयो हिराय ।
जैसे पाइ छटुंदरी,	पकड़ि साप पछिताय ॥ ६७ ॥
जो छोड़ै तो आंधरा,	खाये तो मरि जाय ।
ऐसे खंभ छटुंदरी,	दोउ भांति पछिताय ॥ ६८ ॥
साप छटुंदर दोयकूँ,	नीला नीगल जाय ।
वाकूँ विष वेहै नहीं,	जदी भरोसे खाय ॥ ६९ ॥
कूसंगति लागे नहीं,	सह सजीवन हाथ ।
वाजीगर का बालका,	सोवै सरपकै साथ ॥ ७० ॥
पानी निरमल अति घना,	पल संगे पल भंग ।
ते नर निरफल जायंगे,	करै नीचको संग ॥ ७१ ॥
निगुनै गांव न वासिये,	सब गुन को गुन जाय ।
चंदन पड़िया चौक में,	ईधन बढ़ले जाय ॥ ७२ ॥

६५. कहा-साधु का संग करना कहा है । बिनु बगुरे भिगोय बिना-कपड़े को खून भिगो कर धोये बिना ।

६६. मणिधारी सर्प की मणि में यह गुण होता है कि सर्प के काट लेने पर सर्पमणि को लगा देने से वह विष को खींच लेती है । पश्चात् उसे दूध में डाल देने से दूध अमृत के समान गुणकारी हो जाता है । कोढ़ी को वह दूध यदि पिला दिया जाय तो उसका कोढ़ दूर हो जाता है । ६८. खंभ-खाकर ।

संगति को बैरी घनो, सुनो संत इक बैन ।
 येही काजल कोठरी, येही काजल नैन ॥७३॥
 साधू संगति परिहरै, करै विषय को संग ।
 कृप खनी जल वावरे, त्यागि दिया जल गंग ॥७४॥
 अन मिलता सों संग करि, कहा विगोयो आप ।
 सत्त कविर यों कहत है, ताहि पुरखो पाप ॥ ७५ ॥
 लकड़ी जल डूबै नहीं, कहो कहाँ की मीति ।
 अपना सींचो जानि के, यही बड़न की रीति ॥७६॥
 मैं सींचो हित जानि के, कठिन मयो है काठ ।
 ओछी संगति नीचकी, सिर पर पाड़ी बाट ॥७७॥
 साधू सद्ग सुलच्छना, गांधी हाट बनेह ।
 जो जो मांगे मीति सों, सो सो कौड़ी देह ॥ ७८ ॥

७३. काजल यदि नेत्रों में लगता है तो उसकी शोभा और स्थिरता रहती है । और वह यदि कोठरी में समा जाता है तो उसे चूने से मिटा देते हैं। यह योग्य और अयोग्यकी संगतिकी फल है । ७५. विगोयो-विगाड़ा.

७६. यह जल की उदारता है कि वह काठ को (नाव को) यह समझकर नहीं डुबाता कि इसको मैंने सींचकर बड़ा किया है । यह बड़े पुरुषों की महत्ता है ।

७७. जल के इस प्रकार उदारता दिखलाने, पर भी काठ अपनी नीचता को नहीं छोड़ता । वह सदैव उसके सिर पर चढ़ा रहता है और जल के ऊपर से ही अपना आना जाना जारी रखता है । यही नीचों की नीचता है ।

तरुवर जड़ से काटिया,	जबै सम्हारो जहान ।
तारै पन बोरै नहीं,	बाँह गहै की लाज ॥ ७९ ॥
साधु संगति गुरुमक्ति जु,	निष्कल कबहुँ न जाय ।
चंदन पास है खूबडा,	(सो) कबहुँक चंदन भाय ॥ ८० ॥
संत सुरसरी गंगजल,	आनि पखारा अंग ।
मैले से निरमल भये,	साधू जन के संग ॥ ८१ ॥
चर्चा करु तब चौहटे,	ज्ञान करो तब दोय ।
ध्यान धरो तब एकिला,	और न दूजा कोय ॥ ८२ ॥
संगति कीजै साधु की,	दिन दिन होवै हेत ।
साकुट काली कामली,	धोते होय न सेत ॥ ८३ ॥
साधु संगति गुरु भक्ति रु,	बढ़त बढ़त बढ़ि जाय ।
ओछी संगति खर सव्द रु,	घटत घटत घटि जाय ॥ ८४ ॥
संगति ऐसी कीजिये,	सरसा नर सों संग ।
छर छर लोई होत है,	तऊ न छाडै रंग ॥ ८५ ॥
सब संगति सब सों बढ़ी,	बिन संगति सब ओस ।
सत संगति परमानता,	कटै करम की दोस ॥ ८६ ॥

८०. भाय—हो जाता है ।

८४. साधुसंगति गुरुमक्ति के समान दिन२ बढ़ती ही जाती है ।
और कुसंगति गद्दे की रेंकन (आवाज) के समान धीरे२ घटती ही जाती है ।

साधिव दरसन कारनै, निस दिन फिरुं उदास ।
 साधू संगति सोधि ले, नाम रहे उन पास ॥८७॥
 तेछ तिली सों ऊपजै, सदा तेछ को तेल ।
 संगति को बेरो भयो, ताते नाम फुल्लल ॥८८॥
 हरिजन केवल होत हैं, जाको हरि का संग ।
 विपति पदै विसरै नहीं, चढ़ै चौगुना रंग ॥८९॥



सेवक को अंग ।

सेवक सेवा में रहे, अन्त कहूं नहि जाय ।
 दुख सुख सिर ऊपर सहै, कहैं कविर सगुणाय ॥१॥
 सेवक सेवा में रहे, सेवक कहिये सोय ।
 कहैं कविर सेवा बिना, सेवक कभी न होय ॥२॥
 सेवक मुखै 'कहावई', सेवा में दृढ़ नाँहि ।
 कहैं कविर सो सेवका, लख चौरासी माँहि ॥३॥
 सेवक सेवा में रहे, सेव करै दिनरात ।
 कहैं कविर कूसेवका, सनमुख ना ठहरात ॥४॥
 सेवक फल मांगै नहीं, सेव करै दिनरात ।
 कहैं कविर ता दास पर, काल करै नहि घात ॥५॥

सेवक स्वामी । एक मत, मत में मत मिलि जाय ।
 चतुराई रीझै नहीं, रीझै मन के भाय ॥६॥
 सेवक कुत्ता रामका, सुतिया बाका नाँव ।
 डोरी छागी प्रेम की, जित खँचै तित जाँव ॥ ७ ॥
 तू तू करु तो निकट है, दुर दुर करु तो जाय ।
 ज्यों गुरु राखै त्यों रहै, जो देखै सो खाय ॥ ८ ॥
 फल कारन सेवा करै, निसदिन जाँचै राम ।
 कहैं कविर सेवक नहीं, चाहै चौगुन दाम ॥ ९ ॥
 सब कछु गुरु के पास है, पाइये अपने भाग ।
 सेवक मन सोंप्या रहै, रहे चरन में लग ॥ १० ॥
 सतगुरु सद्ध उलंघि कर, जो सेवक कहँ जाय ।
 जहाँ जाय तहँ काल है, कहैं कविर समुझाय ॥ ११ ॥
 सतगुरु बरजै सिष करै, क्यों करि बाँचै काल ।
 दहँ दिसि देखत वहि गया, पानी फूटी पाल ॥ १२ ॥
 सतगुरु कहि जो सिष करै, सब कारज सिध होय ।
 अपर अभय पद पाइये, काल न झाँकै कोय ॥ १३ ॥

१०. मन सोंप्या रहे—अपना मन अर्पण कर दे ।

१२. पाल—तालाब का बाध । जिस प्रकार पाल के फूटने से पानी फावू से बाहर हो जाता है । इसी प्रकार गुरु की आज्ञा का भग करनेवाला शिष्य संसार में बह जाता है । शुक्राचार्य ने बलिराजा को धामन को दान देने से रोका था, परन्तु उसने गुरु की आज्ञा नहीं मानी, इसलिये उसे पाताल में जाना पड़ा ।

साहिब को भावै नहीं, सो हमसों जनि होय ।
 सतगुरु लाजै आपना, साधु न मानै कोय ॥१४॥
 साहिब जासों ना रुचै, सो हमसों जनि होय ।
 गुरु की आज्ञा में रहै, बल बुधि आपा खोय ॥१५॥
 साहिब के दरबार में, कमी काहु की नाहि ।
 बंदा मौज न पावहीं, चूक चाकरी माहि ॥ १६ ॥
 द्वार धनी के पड़ि रहै, धका धनी का खाय ।
 कबहुक धनी निवाजिहै, जो दर छाँडि न जाय ॥१७॥
 आस करै बैकुण्ठ की, दुरमति तीनों काल ।
 मुक्त कही बलि ना करी, ताते गयो पताल ॥ १८ ॥
 गुरु आज्ञा मानै नहीं, चलै अटपटी चाल ।
 लोक वेद दोनों गये, आगे सिर पर काल ॥१९॥
 भुक्ति मुक्ति मांगौं नहीं, भक्ति दान दे मोहि ।
 और कोइ जांचौ नहीं, निसदिन जांचौ तोहि ॥२०॥
 भोग मोक्ष मांगौं नहीं, भक्ति दान गुरुदेव ।
 और नहीं कहु चाहिये, निसदिन तेरी सेव ॥२१॥
 यह मन ताको दीजिये, सांचा सेवक होय ।
 सिर ऊपर आरा सहै, तऊ न दूजा होय ॥२२॥
 अन राते सुख सोवना, राते निंद न आय ।
 ज्यों जल हूटी माछरी, तलफत रैन विहाय ॥२३॥

२२. आरा—करवन । २३. अनराते—जिनका किसीसे प्रेम नहीं है ।

राता राता सब कहै, अनगता नहि कोय ।
 राता सोई जानिये, जा तन रक्त न होयै ॥२४॥
 राता रक्त न नीकसे, जो तन चीरै कोय ।
 जो राता गुरु नाम सों, ता तन रक्त न होयै ॥२५॥
 सीलवंत सुर ज्ञान मत, अति उदार चित होय ।
 लज्जावान् अति निछलता, कोपल हिरदा सोय ॥२६॥
 दयावंत धरमक ध्वजा, धीरजवान प्रमान ।
 सन्तोषी सुख दायका, सेवक परम सुजान ॥२७॥
 चतुर विवेकी धीर मत, छिमावान बुधिवान ।
 आज्ञावान् परमत लिया, मुदित प्रफुल्लित जान ॥२८॥
 ज्ञानी अभिमानी नहीं, सब काहुं सो हेत ।
 सत्यवान परमारथी, आदर भाव सहेत ॥२९॥
 पट्ट दरसन को प्रेम करि, असन बसन सों पोष ।
 सेव करै हरिजनन की, हरपित परम सँतोष ॥३०॥
 यह सब लच्छन चित धरै, अप लच्छन सब त्याग
 सावधान सम ध्यान है, गुरु चरनन में लाग ॥३१॥
 गुरु मुख गुरु चितवत रहै, जैसे मनी भुवंग ।
 कहै कविर बिसरै नहीं, यह गुरुमुख को अंग ॥३२॥

* २७. धरमकध्वजा धर्म को प्रकट करने के लिये ध्वजा के समान ।

३०. पट्टदर्शन—जोगी, जगम सेवड़ा, संन्यासी, दरवेश; और
 ब्राह्मण । असन—भोजन । बसन—कपड़ा ।

गुरु मुख गुरु चितवत रहे, जैसे साह दिवान ।
 और कभी नहि देखता, हे वाही को ध्यान ॥३३॥
 गुरुमुख गुरु आज्ञा चले, छाँड़ि देइ सब काम ।
 कहै कविर गुरुदेव को, तुरत करै परनाम ॥३४॥
 उकटे सुलटे वचन के, सीप न मानै दूख ।
 कहै कविर संसार में, सो कहिये गुरुमुख ॥ ३५ ॥
 सुरति सुहागिन सोइ सहि, जो गुरु आज्ञा मॉहि ।
 गुरु आज्ञा जो भेटहीं, तासु कुसल है नाँहि ॥ ३६ ॥
 गुरु आज्ञा लै आवही, गुरु आज्ञा लै जाय ।
 कहै कविर सो सन्त प्रिय, बहु विवि अमृत पाय ॥३७॥
 कहै कविर गुरु भेष वस, क्या नियरै क्या दूर ।
 जाका चित जासों बसै, सो तिहि सदा इजूर ॥३८॥
 कवीर गुरु औ साधु कं, सीस नवावै जाय ।
 कहै कविर सो सेवका, महा परम पद पाय ॥ ३९ ॥

दासातन को अंग ।

गुरु समरथ सिर पर खड़े, कदा कबि तोहि दास ।
 रिद्धि सिद्धि सेवा करै, मुक्ति न छाँड़ै पास ॥ १ ॥
 दुख सुख सिर ऊपर सहै, कबहु न छाँड़ै मंग ।
 रंग न लागै और का, व्यापै सतगुरु रंग ॥ २ ॥

धूम धाम सहता रहै, कबहु न छाडै संग ।
 पाहा विन लागे नहीं, कपड़ा के बहु रंग ॥ ३ ॥
 कबीर गुरु सब को चहै, गुरु को चहै न कोय ।
 जब लग आस सरीर की, तबलग दास न होय ॥ ४ ॥
 कबीर गुरु के भावते, दूर हि ते दीसंत ।
 तन छीना मन अनमना, जग ते रूठि फिरत ॥ ५ ॥
 कबीर खालिक जागिया, और न जागै कोय ।
 कै जागै विषया भरा, दास बंदगी जोय ॥ ६ ॥
 कबीर पांचौ बलधिया, ऊजड़ ऊजड़ जाहि ।
 बलिहारी वा दास की, पकड़ि जु राखै बाँहि ॥ ७ ॥
 काजर केरी कोठरी, ऐसो यह संसार ।
 बलिहारी वा दास की, पैठी निकसन हार ॥ ८ ॥
 काजर केरी कोठरी, काजर ही का कोट ।
 बलिहारी वा दास की, रहै नाम की ओट ॥ ९ ॥
 निरबंधन बंधा रहै, बधा निरबंध होय ।
 करम करै करता नहीं, दास कहावै सोय ॥ १० ॥
 दासातन हिरदै नहीं, नाम धरावै दास ।
 पानी के पीये बिना, कैसे पिटै पियास ॥ ११ ॥

३. पाहा—कपड़ेको मही चढ़ाना । ५. गुरु के भावते—गुरु प्रेमी । अनमना—उदास । ६. खालिक—मालिक साहब । ७. पा बलधिया—रंचज्ञानेन्द्रिया ।

दासातन हिरदै बसै, साधुन सों आधीन ।
 कहैं कबिर सो दास है, मेम भक्ति लौं लीन ॥१२॥
 नाम धराया दास का, मन में नहीं दीन ।
 कहैं कबिर सो स्वान गति, और हि के लौं लीन ॥१३॥
 नाम धरावै दास को, दासातन में लीन ।
 कहैं कबिर लौं लीन विन, स्वान बुद्धि कहि दीन ॥१४॥
 स्वामी होना सोहरा, दुहरा होना दास ।
 गाढर आनी ऊनको, बांधी चरै कपास ॥१५॥
 दास दुखी तो हरि दुखी, आदि अंत तिहुँ काल ।
 पलक एक में प्रगट है, छिन में करुं निहाल ॥१६॥
 दास दुखी तो मैं दुखी, आदि अंत तिहुँ काल ।
 पलक एक में प्रगटि के, छिन में करै निहाल ॥१७॥
 कबीर कुल सो ही भला, जा कुल उपजै दास ।
 जा कुल दास न उपजै, सो कुल आक पलास ॥१८॥
 भली मई जो भय मिटा, टूटी कुल की लाज ।
 वेपरवाही है रहा, बैठा नाम जहान ॥१९॥

१९. सोहरा-सहल । दुहरा—मुश्किल । गाढर-भेड ।

स्वामी बनना सहज है परंतु दास होना कठिन है । स्वामी में
 अहंता और दास में उसका अभाव होता है । जो स्वामी (गुरु) तो
 बन जाते हैं; परन्तु अहंकार नहीं त्यागते उनको लाभ के बदले इस
 प्रकार हानि उठाना पड़ती है जिस तरह ऊन के लिये लाई हुई भेड
 कपास खा जाती है और उसके मालिक को पछताना पड़ता है ।

कविर भये हैं केतकी, भँवर भये सब दास ।
 जहँ जहँ भक्ति कवीर की, तहँ तहँ मुक्ति निवास ॥२०॥
 दास कहावन कठिन हैं, मैं दासनका दास ।
 अब तो ऐसा है रहँ, पाँव तले की घास ॥२१॥
 काहुँ को न सँतापिये, जो सिरहंता सोय ।
 फिर फिर वाहुँ बंदिये, दास लच्छु है सोय ॥२२॥
 लगा रहै सतनाम सों, सब ही बंधन तोड़ ।
 कहै कविर वा दास सों, काल रहै हथ जोड़ ॥२३॥
 दास, कहावन कठिन है, जबलग दूजी आन ।
 हांसी साहिव जो मिलै, कौन सहै खुरसान ॥२४॥
 डग डग पै जो डर करै, नित सुमिरै गुरुदेव ।
 कहै कविर वा दास की, साहिव मानै सेव ॥२५॥
 निहकामी निरमल दसा, नित चरनों की आस ।
 तीरथ इच्छा ता करै, कब आवै वे दास ॥२६॥
 चंदन डरपै सरप सों, पति रे विगाड़ै वास ।
 सरगुन डरपै निगुन सों, (यौ) जगसँ डरपै दास ॥२७॥

भक्ति को अंग ।



भक्ति , डाविड़ ऊपजी, लाये रामानंद ।
 परगट करी कबीर ने, सात दीप नव खड ॥ १ ॥
 भक्ति भाव भादौ नदी, सब हि चली घहराय ।
 सरिता सोई सराहिये, जेठ मास उहराय ॥ २ ॥
 भक्ति भान सों होत है, मन दे कीजै भाव ।
 परमार्थ परतीति में, यह तन जाये जाव ॥ ३ ॥
 भक्ति बीज विनसै नहीं, आय पड़ै जो झोल ।
 कंचन जो विष्टा पड़ै, घटै न ताको मोल ॥ ४ ॥
 भक्ति बीज पलटै नहीं, जो जुग जाय अनंत ।
 ऊंच नीच घर औतरे, होय संत का संत ॥ ५ ॥
 भक्ति कठिन अती दुर्लभ, भेष सुगम नित सोय ।
 भक्ति जु न्यारी भेष सें, यह जानै सब कोय ॥ ६ ॥
 भक्ति भेष बहु अंतरा, जैसे धरनि अकास ।
 भक्त लीन गुरु चरन में, भेष जगत की आस ॥ ७ ॥
 भक्ति रूप भगवंत का, भेष आहि कछु और ।
 भक्त रूप भगवंत है, भेष जु मन की दौर ॥ ८ ॥

३. पन-टेक । ४. झोल-शमेला आपत्ति । १०. दुहेली-कठिन ।

१. ११० पन ।

भक्ति पदारथ तब मिलै,	जब गुरु होय सहाय ।
मेम प्रीति की भक्ति जो,	पूरन भाग मिलाय ॥ ९ ॥
भक्ति दुहीली गुरुन की,	नहिं कायर का काप ।
सीस उतारै हाथ सों,	ताहि मिलै सतनाम ॥ १० ॥
भक्ति दुहीली राम की,	नहिं कायर का काम ।
निस्पेही निरधार को,	आठ पहर संग्राम ॥ ११ ॥
भक्ति दुहीली नाम की,	जस खांडे की धार ।
जो डोलै सो कटि पडै,	निहचल उतरै पार ॥ १२ ॥
भक्ति जु सीढ़ी मुक्ति की,	चढ़े भक्त हरपाय ।
और न कोई चाढ़ि सकै,	निज मन समझौ आय ॥ १३ ॥
भक्ति निसैनी मुक्ति की,	संत चढ़े सब धाय ।
जिन जिन मन आलस किया,	जनम जनम पछिताय ॥ १४ ॥
भक्ति विना नहिं निसतरै,	लाख करै जो कोय ।
सद्व सनेही है रहै,	घर को पहुँचै सोय ॥ १५ ॥
भक्ति दुवारा सांकरा,	राई दसवै भाय ।
मन तो पैगल है रहा,	कैसे आवै जाय ॥ १६ ॥
भक्ति दुवारा मोकला,	सुमिरी सुमिरि समाय ।
मन को तो मैदा किया,	निरमय आवै जाय ॥ १७ ॥
भक्ति सोइ जो भाव सों,	इक मन चित को राख ।
सोंच सील सों खेलिये,	मैं तैं दोऊ नाख ॥ १८ ॥

भक्ति गेद चौगान की, भावै कोइ ले जाय ।
 कहै कबिर कछु भेद नहीं, कहा रंक कह राय ॥१९॥
 भक्ति सरव ही ऊपरै, भागिन पावै सोय ।
 कहै पुकारै संत जन, सत सुमिरत सब कोय ॥२०॥
 भक्ति बिनावै नाम बिन, भेष बिना ये होय ।
 भक्ति भेष बहु अन्तरा, जानै बिरला कोय ॥२१॥
 कबीर गुरु की भक्ति करु, तज बिपया रस चौज ।
 बार बार नहि पाइये, मनुष जनम की मौज ॥२२॥
 कबीर गुरु की भक्ति बिन, धिक् जीवन संसार ।
 धूवा का धौराहरा, बिनसत लगे न बार ॥२३॥
 कबीर गुरु की भक्ति का, मन में बहुत हुलास ।
 मन मनसा माँजै नहीं, होन चाहत है दास ॥२४॥
 कबीर गुरु की भक्ति से, संसै हारा धोय ।
 भक्ति बिना जो दिन गया, सो दिन सालै मोय ॥२५॥
 जब लग नाता जाति का, तब लग भक्ति न होय ।
 नाता तोड़ै गुरु भजै, भक्त कहावे सोय ॥२६॥
 छिपा खेत भल जोतिये, सुमरिन बीज जपाय ।
 खंड ब्रह्मंड सूखा पड़ै, भक्ति बीज नहि जाय ॥२७॥

२२. चौज—चाह, इच्छा । मौज—आनन्द । २३. धौराहरा—मीनार, स्तूप ।

१. पा० भीसागर भागे नहीं, सोच विचारो माय । २. ब्रिथा ।

जल ज्यों प्यारा माछरी,
 माता प्यारा बालका,
 प्रेम बिना जो भक्ति है,
 उदर भरन के कारनै,
 भाग बिना नहि पाइये,
 बिना प्रेम नहि भक्ति कह्यु,
 जहाँ भक्ति तहँ प्रेम नहि,
 नाम भक्ति जो प्रेम सों,
 भाव बिना नहि भक्ति जग,
 भक्ति भाव एक रूप है,
 गुरु भक्ती अति कठिन है,
 बिना सांच पहुँचै नहीं,
 कामी क्रोधी लालची,
 भक्ति करै कोइ सुरमा,
 जाति वरन कुल खोय के,
 कहै कविर सतगुरु मिलै,
 जब लग भक्ति सकाम है,
 कहै कविर वह क्यों मिलै,

लोभी प्यारा दाम ।
 भक्ति प्यारी राम ॥२८॥
 सो निज दंभ विचार ।
 जनम गुंवायो सार ॥२९॥
 प्रेम प्रीति का भक्त ।
 भक्त भयों सब जक्त ॥३०॥
 वरनाश्रम तहाँ नाँहि ।
 सो दुरलभ जग मौहि ॥३१॥
 भक्ति बिना नहि भाव ।
 दोऊ एक सुभाव ॥३२॥
 ज्यों खांडे को धार ।
 महा कठिन व्यवहार ॥३३॥
 इनसे भक्ति न होय ।
 जाति वरन कुल खोय ॥३४॥
 भक्ति करै चित लाय ।
 आवागवन नसाय ॥३५॥
 तबलग निस्फल सेव ।
 निहकामी निज देव ॥३६॥

३१. भक्ति के लिये किसी वेप के बनाने की आवश्यकता नहीं है ।
 और न किसी वर्ण और आश्रम की है । भाव यह है कि सब वर्ण
 और आश्रम के तथा बिना वेप बनाये भी भक्ति हो सकती है ।

जान भक्त का नित मरन, अनजाने का राज ।
 सर औसर समझे नहीं, पेट भरन सों काज ॥३७॥
 मन की मनसा मिटि गई, दुरमति भइ सब दूर ।
 जन मन प्यारा राम का, नगर वसै भरपूर ॥३८॥
 मेवासा मोहै किया, दुरिजन काढै दूर ।
 राज पियारे राम का, नगर वसै भरपूर ॥३९॥
 आरत है गुरु भक्ति करु, सब कारज सिध होय ।
 करम जाल भोजाल में, भक्त फसै नहि कोय ॥४०॥
 आरत सों गुरुभक्ति करु, सब सिध कारज होय ।
 कृपा मांग्या राख है, सदा न फवसी कोय ॥४१॥
 सब सों कहं पुकारि कै, क्या पंडित क्या सेख ।
 भक्ति ठानि सबै गई, बहुरि न काछै भेष ॥४२॥
 देखा देखी भक्ति का, कबहु न चढ़सी रंग ।
 विपति पढ़ै यौ छांडसी, केचुली तजत भुजंग ॥४३॥
 देखा देखी पकड़िया, गई छिनक में छट ।
 कोइ विरला जन बाहुरै, जाकी गहरी मूढ ॥४४॥

३७. भक्ति में आई हुई अनेक बाधाओं के कारण भक्त सदा मृत्यु के मुख में ही रहता है ।

३९. मेवासा—ममता । मोहै किया—दवा लिया । ४०. आरत है—
 पीडित होकर, दुःखी होकर । ४१. राठि—चरतन । फवसी शोभा देगा ।
 ४२. बहुरि न काछै भेष—फिर नाना शरीरों में आना नहीं होगा ।
 ४४. बाहुरै—लोट आता है ।

तोटे में भक्ति करै, ताका नाम सपूत ।
 मायाधारी मसखरै, कैते गये अऊत ॥४५॥
 ज्ञान संपूरन ना भिदा, हिरदा नाहि जुदाय ।
 देखा देखी भक्ति का, रंग नहीं ठहराय ॥४६॥
 खेत बिगायों खरतुआ, सभा बिगारी कूर ।
 भक्ति बिगारी लाकची, ध्यों केसर में धूर ॥४७॥
 तिमिर गया रवि देखतै, कुमति गई गुरुज्ञान ।
 सुमति गई अति लोभसे, भक्ति गई अभिमान ॥४८॥
 निर्विषी की भक्ति है, निर्मोही को ज्ञान ।
 निरदुंदी की मुक्ति है, निर्लोभी निखान ॥४९॥
 विषय त्याग वैराग है, समता कहिये ज्ञान ।
 सुखदाई सब जीव सों, यही भक्ति परमान ॥५०॥
 विषय त्याग वैराग रत, समता दिये समाय ।
 मित्र सहु एकौ नहीं, मन में राम वस्तय ॥५१॥
 जब लगि आसा देह की, तब लगि भक्ति न होय ।
 आसा त्यागी हरि भजै, भक्त कहावै सोय ॥५२॥
 चार चिन्ह हरि भक्ति के, प्रगट दिखाई देत ।
 दया धर्म आधीनता, परदुख को हरि लेत ॥५३॥

४५. अऊत—निर्वश । ४७. खरतुआ—एक प्रकार का घास जो बढ़कर खेत को नष्ट कर देता है ।

और कर्म सब कर्म है, भक्ति कर्म निहकर्म ।
 कहैं कवीर पुकारि के, भक्ति करो तजि मर्म ॥५४॥
 भक्ति भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति न आई काज ।
 जिहि को कियो मरोसवा, तिहि ते आई गाज ॥५५॥
 इन्द्र राज मुख भोगकर, फिर भौसागर मॉहि ।
 यह सिरगुन की भक्ति है, निर्भय कन्हू नॉहि ॥५६॥
 भक्त आप भगवान है, जानत नाहि अयान ।
 सीस नवावै साधु कूं, बूझि करै अभिमान ॥५७॥
 सत्त भक्ति तरवार है, बांधे विरळा कोय ।
 कोइ एक बांधे मूरमा, तन मन डारै खोय ॥५८॥
 भक्ति महल बहु ऊंच है, दूर हि ते दरसाय ।
 जो कोइ जन भक्ति करै, सोमा वरनि न जाय ॥५९॥
 भक्तन की यह रीत है, बांधे करै जो माव ।
 परमारथ के कारनै, या तन रहो कि जाव ॥६०॥
 भक्ति भक्ति बहु कठिन है, रती न चाले खोट ।
 निराधार का खेल है, अथर धार की चोट ॥६१॥

५५. गाज=गर्जना, फटकार ।

५७. उद्धर्णशालों के हृदय में अपनी उच्चता का ऐसा अहंकार रहता है कि वे बिना जाति पूछे किसी भक्त (साधु) को प्रणाम तक नहीं करते, यह उनकी धारणा नितान्त ही अनुपयुक्त है, क्योंकि भक्त में और भगवान में किसी प्रकार का भेद नहीं होना । इस कारण प्रणाम करते समय साधु की जाति पूछना अत्यन्त ही अनुचित है ।

भक्ति निसैनी मुक्ति फी,
नीचै वाघिन लुकि रही,
भक्ति भक्ति सब कोइ कहै,
पूरन भक्ती जब मिलै,
सतगुरु की किरपा बिना,
मनसा वाचा कर्मना,
दुख खंडन भय भेटना,
वा घर राचे साधरी,
भक्ति बीज है प्रेम का,
कहै कविर बोया बना,
भक्ति भक्ति सब कोइ कहै,
एक भक्ति तो अजब है,
भक्त उलटि पीछै फिरै,
परतछ दीसै जीवताँ,
दया गरीबी दीनता,
ये लच्छन हैं भक्ति के,
सल्लिख भक्त कहूं ना तरै,
सतगुरु सँ सनमुख नही,

संत चढे सब आय ।
कुचल पडे कूं खाय ॥६२॥
भक्ति न जानै भैव ।
कृपा करै गुरुदेव ॥६३॥
सत की भक्ति न होय ।
सुनि लीजो सब कोय ॥६४॥
भक्ति मुक्ति बिसराम ।
यही भक्ति को नाम ॥६५॥
परगट पृथ्वी माँहि ।
निपजै कोइक ठाँहि ॥६६॥
भक्ति भक्ति में फेर ।
इक है दमड़ी सेर ॥६७॥
संत धरै नहि पाँव ।
सुआ माँहिला भाव ॥६८॥
सुमता सील करार ।
कहै कबीर विचार ॥६९॥
जावै नरक अघोर ।
धर्मराय के चोर ॥७०॥

६२. भक्ति की निसैनी को दृढ़ता से पकड़कर चढ़नेवाले सब सत जन, परम पद के महल में पहुँच जाते हैं । और जो इस निसैनी से गिर पड़ते हैं उनको माया बाविनी खा लेती है । ६९. करार दृढ़ता ।

संत सुहागी सुरमा, सद्धै ऊठै जाग ।
 सलिल सद्ध मानै नहीं, जरि वरि लागे आग ॥७१॥
 सतगुरु सद्ध बथापही, अपनी महिमा लाय ।
 कहैं कविर वा जीव कुँ, काळ घसीटै जाय ॥७२॥
 साँच सद्ध खाली करै, आपन होय सयान ।
 सो जीव मनमुखी भये, कलियुग के व्रतमान ॥७३॥

सुमिरन को अंग ।

नाम रतन धन पाय कर, गांठी बांध न खोळ ।
 नहि पाटन नहि पारखी, नहि गाढ़क नहि मोळ । १ ।
 नाम रतन धन संत पहुँ, खान खुळी घट माँहि ।
 संत मँत ही देत हूँ, गाढ़क कोई नाँहि ॥ २ ॥
 नाम नाम सब को (इ) कहै, नाम न चीन्है कोय ।
 नाम चीन्हि सतगुरु मिलै, नाम कहावै सोय ॥ ३ ॥
 नाम बिना बेकाम है, छप्पन भोग विछास ।
 क्या इन्द्रासन बैठना, क्या बैकुंठ निवास ॥ ४ ॥
 नाम रतन सो पाइहै, ज्ञान दृष्टि जेहि होय ।
 ज्ञान बिना नहि पावई, कोटि करै जो कोय ॥ ५ ॥

नाम जो रती एक है,	पाप जु रती हजार ।
आध रती घट संचरै,	जारि करै सब छार ॥ ६ ॥
नाम जपत कुष्टी भला,	चुड़ चुड़ परै जु चाम ।
कंचन देह किस कामको,	जा मुख नहीं नाम ॥ ७ ॥
नाम जपत कन्धा भली,	साकुट भला न पूत ।
छेरी के गल गल थना,	जामे दूध न मूत ॥ ८ ॥
नाम जपत दरिद्री भला,	टूटी घर की छानि ।
कचन मंदिर जारि दे,	जहाँ न सतगुरु नाम ॥ ९ ॥
नाम लिया जिन सब लिया,	सब साखन को भेद ।
बिना नाम नरके अगये,	पढ़ि गुनि चारों वेद ॥ १० ॥
नाम पियू का छोड़ि के,	करै आन का जाप ।
बेस्या करा पूत ज्यों,	कहै कौन को बाप ॥ ११ ॥
आदि नाम बीरा अहै,	जीव सकल ल्यौ बूझ ।
अमरावै सत लोक ले,	जम नहि पावै सूझ ॥ १२ ॥
आदि नाम पारस अहै,	मन है मैला लोह ।
परसत ही कंचन भया,	छटा बंधन मोह ॥ १३ ॥
आदिनाम निज सार है,	बूझि लेहु सो ठंस ।
जिन जान्यो निज नामको,	अपर भयो सो बंस ॥ १४ ॥
आदि नाम निज मूल है,	और भंत्र सब डार ।
कहै कबिर निज नाम बिनु,	बूझि मूवा संसार ॥ १५ ॥

१. पा० भक्ति न सारगपानि । २. पा० सफल वेद का भेद ।

३. पा० पडा । ४. पा० पढता ।

कोटि नाम संसार में, ताते मुक्ति न होय ।
 आदि नाम जो गुप्त अप, धिरला जाने कोय ॥ १६ ॥
 सत्त नाम निज औपधि, कोटिक कटै विकार ।
 विष वारी धिरकत रहै, काया कंचन सार ॥ १७ ॥
 यह औपधि अंग ही लगि, अनेक उधरी देह ।
 कोव फेर कूपथ करै, नहि तो औपधि येह ॥ १८ ॥
 सत्त नाम निज औपधि, सतगुरु दर्ह बताय ।
 औपधि खाय रु पथ रहै, ताकी वेदन जाय ॥ १९ ॥
 सतनाम विश्वास, करम मरम सब परिहरै ।
 सतगुरु पुरचै आस, जो निरास आसा करै ॥ २० ॥
 रामनाम को सुमिरता, उधरे पतित अनेक ।
 कहैं कविर नहि छाड़िये, रामनाम की टेक ॥ २१ ॥
 रामनाम को सुमिरता, हँसि कर भावै खीझ ।
 उलटा सुलटा नीपजै, ज्यों खेतनमें बीज ॥ २२ ॥
 रामनाम जाना नहीं, लागी मोटी खोर ।
 काया हांडी काठकी, ना वह चढ़ै बहोर ॥ २३ ॥

१७. कंचनसार-कुंदन, जो अपने शरीर में विषयवादी की जहरीली हवा नहीं लगाने देता, उसका शरीर कुंदन के समान निर्मल रहता है ।

१८. कोट फेर—.....विषयभोग का कुपथ्य ससार के रोगों को बढ़ा देता है, परन्तु औपधी तो यही सत्यनाम है । १९. वेदन=इ ख ।

ॐकार निश्चै भया, सो कर्ता मति जान ।
 साँचा सद्ध कबीर का, परदे माँहि पिछान ॥२४॥
 जो जन होइ है जौहरि, रतन लेहि बिलगाय ।
 सोहँग सोहँग जपि मुआ, मिथ्या जनम गँगाय ॥२५॥
 सब हि रसायन हप करि, नहीं नाम सम कोय ।
 रंचक घट में संचरै, सब तन कंचन होय ॥२६॥
 जबहि नाम हिरदै धरा, भया पापका नास ।
 मानो चिनगी आगकी, परी पुराने घास ॥ २७ ॥
 कोई न जम सैं वांचिया, नाम बिना धरि खाय ।
 जे जन विरही नामदे, ताको देखि डराय ॥ २८ ॥
 पूंजि मेरी नाम है, जाते सदा निहाल ।
 कबीर गरजे पुरुष बल, चोरी करै न काल ॥ २९ ॥
 कबीर हपरे नाम बल, सात द्वीप नव खंड ।
 जम हरपै सब भय करै, गाजि रहा ब्रह्मण्ड ॥ ३० ॥
 कबीर हरिके नाम में, सुरति रहै करतार ।
 ता मुखसैं मोती झरे, हीरा अनैत अपार ॥ ३१ ॥
 कबीर हरिके नाममें, बात चलवै और ।
 तिस अपराधी जीवको, तीन लोक कित ठौर ॥३२॥

२४ परदे माह शब्दी (शब्द करनेवाला) चेतन पुरुष सत्य है । और ॐकार आदिक सब असत्य है यह वार्ता परदे की है ।

२६. रसायन—धातुमारण की विधि । रचक—थोड़ीसी ।

१. पा० नहि ।

कबीर सब जग निरधना,^{३४} धनवंता नहि कोय ।
 धनवंता सो(इ) जानिये, राम नाम धन होय ॥३३॥
 साहेब नाम सँभारतां, कोटि विघन टरि जाय ।
 राई मार वसंदरा,^{३५} कैता काठ जराय ॥३४॥
 कबीर परगट राम कहूँ, छानै राम न गाय ।
 फूसक जोहा दूरि करूँ, बहुरि न लागे लाय ॥३५॥
 कबीर आपन राम कहि, औरन राम कहाय ।
 जा मुख राम न नीसरे,^{३६} ता मुख राम कहाय ॥३६॥
 कबीर मुख सोई मछा, जा मुख निकसै राम ।
 जा मुख राम न नीकसै, सो मुख है किस काम ॥३७॥
 कबीर 'हरि के बिलन की,^{३७} वात सुनी हम दोय ।
 कै कहूँ 'हार को नाम ले, कै कर ऊँचा होय ॥३८॥
 कबीर राम रिझाय ले, जिह्वा सों कर प्रीत ।
 हरे सागर जनि वीसरे,^{३८} छीलर देखि अनीत ॥३९॥
 कबीर राम रिझाय ले, मुख अमृत गुन गाय ।
 फूट नम ज्यों जोरि मन, संधै संधि मिळाय ॥४०॥
 कबीर नैन झर लाइये, रहट बहै निस जाम ।
 पपिहा यों पी पी करै, कवरि मिलेगे राम ॥४१॥

३४. वसंदरा-आम । ३५. छीलर—छिछला तालाव, (अनित्य संसार)

१. पा० गुरु । २. पा० गुरु ।

कबीर कठिनाई खरी,	सुमिरंत हरि को नाम ।
सूखी ऊपर नट विधा,	गिरै तो नाहिँ ठाम ॥ ४२ ॥
लंबा मारग दूर घर,	विकट पंथ बहु मार ।
कहो संत क्यों पाइये,	दुर्लभ गुरु दीदार ॥ ४३ ॥
सुन सिखर चढ़ि घर किया,	सहज समाधि लगाय ।
नाम रतन धन तहँ मिला,	सतगुरु भये सहाय ॥ ४४ ॥
घटहि नाम की आस करु,	दूजी आस निरास ।
वसै जु नीर गँभीर में,	क्यों वह मरै पियास ॥ ४५ ॥
जा घट भीत न प्रेम रस,	पुनि रसना नहि नाम ।
ते नर पशु संसार में,	उपजि मेरे बेकाम ॥ ४६ ॥
जैसे माया मन रमै,	तैसा राम रमाय ।
तारा मंडल बेधि के,	तब अमरापुर जाय ॥ ४७ ॥
ज्ञान दीप परकास करि,	भीतर भवन जराय ।
तहाँ सुमिर सतनामको,	सहज समाधि लगाय ॥ ४८ ॥
एक नाम को जानि के,	मेहु करम का अंक ।
तबही सो सुचि पाइ है,	जब जिव होय निसंक ॥ ४९ ॥
एक नाम को जानि करि,	दूजा देइ वहाय ।
तीरथ ब्रत जप तप नहीं,	सतगुरु चरन समाय ॥ ५० ॥

४९. सुचि — सुख ।

१. पा० बटमार ।

जैसे फनिपति मंत्र सुनि,	राखै फनहि सिकोर ।
तैसे चीरा नाम ते,	काल रहै मुख मोर ॥५१॥
सबको नाम सुनावहु,	जो आवैगो पास ।
सद्ध हमारो सत्त है,	हठ राखो विश्वास ॥५२॥
होय बिरेकी सद्ध का,	जाय मिले परिवार ।
नाम गहै सो पहुँचई,	मानो कडा हमार ॥५३॥
सुरति समावे नाम में,	जगसे रहे उदास ।
कहै कविर गुरु चरनमें,	हठ राखो विश्वास ॥५४॥
अस औसर नहि पाइहो,	धरो नाम कडिहार ।
भौसागर तरि जाव जत्र,	पलक न लागै वार ॥५५॥
आसा तो इक नाम की,	दूजी आस निवार ।
दूजी आसा मारसी,	ज्यों चौपर की सार ॥५६॥
कोटि करम कटि पलकमें,	रेचक आवै नाम ।
जुग अनेक जो पुन्य करु,	नहीं नाम बितु ठाम ॥५७॥
असपने में चरवाई के,	धोखे निकरै नाम ।
चाके पगकी पानही,	मेरे तन को चाम ॥५८॥
जाकी गांठी नाम है,	ताके है सब सिद्धि ।
कर जोरै ठाही सवै,	अष्ट सिद्धि नव निद्धि ॥५९॥

५१. फनिपति—सर्प ।

१. पा० कडा बडाई तासुकी, जो मुख सुमिरे राम ।

हयवर गयवर सघन घन, छत्र धुजा फहराय ।
 ता सुख तें भिक्षुक मला, नाम भजत दिन जाय ॥६०॥
 पारस रूपी नाम है, लोहा रूपी जीव ।
 जब सो पारस भेटि है, तब जिव होसी सीव ॥६१॥
 पारस रूपी नाम है, लोह रूप संसार ।
 पारस पाषा पुरुष का, परखि परखि टकसार ॥६२॥
 सुख के पाये सिक परै, नाम हृदे से जाय ।
 बलिहारी वा दुःख की, पल पल नाम रटाय ॥६३॥
 लेने को सतनाम है, देने को अन्न दान ।
 तरने को आधीनता, बूडन को अभिमान ॥६४॥
 लूटि सकै तो लूटि ले, राम नाम की लूट ।
 फिर पाछे पछिताहुगे, मान जाहिगे छूट ॥६५॥
 लूटि सकै तो लूटि ले, रामनाम की लूट ।
 नाम जु निरगुन को गहौ, नातर जैहो खूट ॥६६॥
 कहैं कविर तूं लूटि ले, रामनाम भंडार ।
 काल कंठ को जब गहे, रोके दसहं द्वार ॥६७॥
 कविर निर्भय नाम जपु, जब लग दीवे बाति ।
 तेल घटे बाती बुझै, सोवोगे दिनराति ॥६८॥
 कवीर सूना क्या करै, जागी जपो मुरार ।
 एक दिना है सोवना, लंबे पाँव पसार ॥६९॥

कबीर सूता क्या करै, उठिन मजो भगवान ।
 जम धर जब ले जायंगे, पढा रहेगा म्यान ॥७०॥
 कबीर सूता क्या करै, गुन सतगुरु का गाय ।
 तैरे सिर पर जम खड़ा, खरच कदे का खाय ॥७१॥
 कबीर सूता क्या करै, सूने होय अकाज ।
 ब्रह्मा को आसन दिग्यो, सुनी कालकी गाज ॥७२॥
 कबीर सूता क्या करै, ऊठि न रोवो दुख ।
 जाका वासा गोर में, सो क्यों सोये सुख ॥७३॥
 कबीर सूता क्या करै, जागन की कर चौप ।
 ये दम हीरा लाल है, गिन गिन गुरु को सौप ॥७४॥
 कबीर सूता क्या करै, काहेन देखै जागि ।
 जाके संग तैं बीछुरा, ताहि के संग लागि ॥७५॥
 अपने पहरे जागिये, ना परि रहिये सोय ।
 ना जानौ छिन एकमें, किसका पहरा होय ॥७६॥
 निंद निसानी मीच की, ऊहु कबीरा जाग ।
 और रसायन छांदि के, नाम रसायन लाग ॥७७॥
 सोया सो निष्फल गया, जागा सो फल लेहि ।
 साहिब इक न राखसी, जब मागे तब देहि ॥७८॥

१। केसव कहि कहि कूकिये, ना सोड्ये असरार ।
 रात दिवस के कूकते, कबहुँक लगै पुकार ॥७९॥
 कबिर क्षुधा है कूकरी, २। करत भजन में मंग ।
 याकूँ दुकड़ा डारिके, सुमिरन करु सुरंग ॥८०॥
 ४। गिरही का दुकड़ा बुरा, दो दो आंगुल दांत ।
 भजन करै तो ऊबरे, नातर काढै आंत ॥८१॥
 बाहिर क्या दिखलाइये, अन्तर जपिये नाम ।
 कहा महोला खलक सों, पर्यो धनी सों काम ॥८२॥
 गोविंद के गुन गावता, कबहु न कीजै लाज ।
 यह पद्धति आगे मुक्ति, एक पंथ दो काज ॥८३॥
 गुन गाये गुनना कटै, रटै न नाम वियोग ।
 अहिनिंसि गुरु ध्यायो नहीं, (क्यों) पावै दुरलभ योग ॥८४॥

७९. असरार—बेखबर ।

८१. गृहस्थों का अन्न खाकर जो भजन नहीं करते उनका पाप कर्म घेर लेते हैं और वे घे मौत मारे जाते हैं ।

८३. पद्धति—मार्ग । संकोच त्यागकर साहब के गुन गाने से लोक में शिक्षा का मार्ग प्रचलित होता है । और आगे के लिये मुक्ति का द्वार खुलता है । यही एक पंथ है और दो काज है ।

८४. गुनना—चौरासी का चक्र । हरिगुण के गाने से संसार-भ्रमण मिट जाता है । और बार२ रटने से विस्मरण नहीं होता ।

१. पा० पिट पिउ । २. पा० कूकते । ३. पा० होय रहो निःसंक

४. पा० संसारी का दुकड़ा ।

सतगुरु का उपदेस,	सतनाम निज सार है ।
यह निज मुक्ति संदेस,	सुनो संत सत भावसे ॥८५॥
क्यों छूटे जम जाल,	घहु बंधन जिव बांधिया ।
काटे दीन दयाल,	करम फंद एक नामसे ॥८६॥
काटहु जमके फंद,	जेहि फंदै जग फंदिया ।
कटे तो होय निसंक,	नाम खडग सतगुरु दिया ॥८७॥
तजै कागको देह,	हंस दसा की सुरति पर ।
मुक्ति संदेसा यह	सतनाम परमान अस ॥८८॥
सुमिरन पारग महजका,	सतगुरु दिया बताय ।
साँस साँस सुमिरन करू,	इक दिन मिलसी आय ॥८९॥
सुमिरन से सुख होत है,	सुमिरन से दुख जाय ।
कहै कविर सुमिरन किये,	सोई माँहि सपाय ॥९०॥
सुमिरन की सुधि यों करो,	जैसे कामी काम ।
एक पलक विसरै नहीं,	निस दिन आठौ जाय ॥९१॥
सुमिरन की सुधि यों करो,	ज्यौ गागर पनिहारि ।
हालै होलै सुरति में,	कहै कबीर विचारि ॥९२॥
सुमिरन की सुधि यों करो,	जैसे कामी काम ।
कहै कबीर पुकारि के,	तब प्रगटै निज नाम ॥९३॥
सुमिरन की सुधि यों करो,	ज्यों सुरभी सुत माँहि ।
कहै कविर चारा चरत,	विसरत कबहुँ नाँहि ॥९४॥

सुमिरन की सुधि यों करो, जैसे दाम कँगाल ।
 कहैं कविर विसरै नही, पल पल लेत सँभाल ॥९५॥
 सुमिरन की सुधि यों करो, * जैसे नाद कुरंग ।
 कहैं कविर विसरै नही, भान तजै तिहि संग ॥९६॥
 सुमिरन की सुधि या करो, ज्यों सूई में डोर ।
 कहैं कविर छूटे नहीं, चलै ओर की ओर ॥९७॥
 सुमिरन सों मन लाइये, जैसे कीट भिरंग ।
 कविर विसारे आपको, होय जाय तिहि रंग ॥९८॥
 सुमिरन सो मन लाइये, जैसे दीप पतंग ।
 भान तजै छिन एक में, जरत न मोरै अंग ॥९९॥
 सुमिरन सों मन लाइये, जैसे पानी मीन ।
 भान तजै पल वीछुरे, दास कविर कहि दीन ॥१००॥
 सुमिरन सों मन जब लगै, ज्ञानांकुस दे सीस ।
 कहैं कविर डोळै नहीं, निश्चै बिस्वा धीस ॥१०१॥
 सुमिरन मन लागै नहीं, बिपहि दलाहल खाय ।
 कबीर हटका ना रहै, करि करि थका उपाय ॥१०२॥
 सुमिरन माँहि लगाय दे, सुरति आपनी सोय ।
 कहैं कविर संसार गुन, तुझै न व्यापै कोय ॥१०३॥
 सुमिरन सुरति लगाय के, मुख ते कहु न बोळ ।
 बाहर के पट देय के, अंतर के पट खोळ ॥१०४॥

९६. कुरंग हरिण । १०४. बाहर के पट-दोनों नेत्र । अंतर के पट-हृदय की दृष्टि ।

सुमिरन तू घट में करै, घट ही में करतार ।
 घट ही भीतर पाइये, सुरति सद्ग भंडार ॥१०५॥
 राजा राना रात्र रँक, बड़ो जु सुमिरै नाम ।
 कहै कविर सब सों बड़ा, जो सुमिरै निहकाम ॥१०६॥
 सहकामो सुमिरन करै, पावै उत्तम धाम ।
 निहकामी सुमिरन करै, पावै अविचल राम ॥१०७॥
 जप तप संजम साधना, सब कलु सुमिरन मांहि ।
 कबीर जाने भक्त जन, सुमिरन सम कलु नांहि ॥१०८॥
 थोड़ा सुमिरन बहुत सुख, जो करि जानै कोय ।
 हरदी लगै न फिस्करी, चोखा ही रंग होय ॥१०९॥
 ज्ञान कथे वकि वकि मरै, काहे करै उपाय ।
 सतगुरु ने तो यों कहा, सुमिरन करो बनाय ॥११०॥
 कबीर सुमिरन सार है, और सकल जंजाल ।
 आदि अंत मधि सोधिया, दूना देखा काल ॥१११॥
 कबीर हरि हरि सुमिरि ले, मान जाहिंमे लूट ।
 घर के प्यारे आदमी, चलते लेंगे लूट ॥११२॥
 कबीर चित चंचल भया, चहुँदिस लागी लाय ।
 गुरु सुमिरन हाथे घडा, लीजे वेगि बुझाय ॥११३॥
 कबीर मेरी सुमिरनी, रसना ऊपर राम ।
 आदि जुगादि भक्ति है, सबका निज विसराम ॥११४॥

कबीर राम रिझाय ले,
 और स्वाद रस त्याग दे,
 कबीर मुख से राम कहु,
 रामक सुमिरन ध्यान निव,
 राम नाम गुन गावने,
 जो कोइ लाजै राम रामसे,
 जीना थोड़ा ही भला,
 लाख बरस का जीवना,
 निज सुख आत्म राम है,
 मनसा वाचा करमना,
 जो बोलो तो राम कहु,
 कहै कविर निसदिन कहै,
 नर नारी सब नरक है,
 कहै कविर सो पीव को,
 दुखमें सुमिरन सब करै,
 जो सुख में सुमिरन करै,
 सुख में सुमिरन ना किया,
 कहै कविर ता दासकी,
 साइ सुमिर मति ढील कर,
 इहाँ खलक खिदैमत करै,

जिभ्या के रस स्वाद ।
 राम नाम के स्वाद ॥११५॥
 मन हि राम को ध्यान ।
 यही भक्ति यहि ज्ञान ॥११६॥
 तोहि न आवै लाज ।
 ताका तन बेकाज ॥११७॥
 हरि का सुमिरन होय ।
 लेखै धरै न कोय ॥११८॥
 दूजा दुःख अपार ।
 कबीर सुमिरन सार ॥११९॥
 अन्त कहूँ मति जाय ।
 सुमिरन सुरति लगाय ॥१२०॥
 जब लगि देह सकाम ।
 जो सुमिरै निहकाम ॥१२१॥
 सुख में करै न कोय ।
 दुख काहे को होय ॥१२२॥
 दुख में कीया याद ।
 कौन सुनै फारियाद ॥१२३॥
 जो सुमिर ते लाइ ।
 उहाँ अमरपुर जाइ ॥१२४॥

साँई यौ मति जानियो, प्रीति घटे मम चीठ ।
 मरुं तो सुमीरत मरुं, जीयत सुमिरुं नीत ॥१२५॥
 साँई को सुमिरन करै, ताको वंदे देव ।
 पहली आप उगावही. पाछे लारै सेव ॥१२६॥
 चिंता तो सतनाम की, और न चितवै दास ।
 जो कछु चितवै नाम विनु, सोई कालकी फांस ॥१२७॥
 पांच संगि पिव पिव करै, छठा जो सुमिरै मंन ।
 आई सुरति कबीर की, पाया राम रतन ॥१२८॥
 मन जो सुमिरै रामको, राम वसै घट^१ आहि ।
^२अब मन रामहि है रहा, सीस नवाँज काहि ॥१२९॥
 तू तू करता तू भया, मुझ में रही न हूँय^३ ।
 बारी तेरे नाम पर, जित देखू तित तूँय ॥१३०॥
 तू तू करता तू भया, तुझ में रहा समाय ।
 तुझ माँही मन मिलि रहा, अब कहूँ अनत न जाय ॥१३१॥
 रग रग बोला गमजी, रोम रोम (र)रंकार ।
 सहजे ही धुन होत है, सोई सुमिरन सार ॥१३२॥
 सहजे ही धुन होत है, पल पल घटही माँहि ।
 सुरति सद्ग मेला भया, मुख की दाजत नाँहि ॥१३३॥

१. पा० साँहि । २. पा० राम मोर में राम का, ।

३. पा० अब कहा आये जाय ।

अजपा सुमिरन घट विषे, दीन्हा सिरजन हार ।
 वाही-सों मन लागि रहा, कहैं कधीर विचार ॥१३४॥
 साँस साँस पर नाम ले, वृथा ^१साँस मति खोय ।
^२न जानै इस साँस को, आवन होय न होय ॥१३५॥
 सास सुफल सो जानिये, जो सुमिरन में जाय ।
 और साँस यों ही गये, करि करि बहुत उपाय ॥१३६॥
 कहाँ भरोसा देह का, विनसि जाय छिन माँहि ।
 साँस साँस सुमिरन करो, और जतन कछु नाँहि ॥१३७॥
 जाकी पूंजी साँस है, छिन आवै छिन जाय ।
 ताको ऐमा चाहिए, रहे नाम लौ लाय ॥१३८॥
 कहता हूँ कहि जात हूँ, कहूँ बजाये ढोल ।
 स्वासा खाली जात है, तीन लोक का मोल ॥१३९॥
 ऐसे महुँगे मोलका, एक साँस जो जाय ।
 चौदह लोक न पटतरै, काहे धूर मिलाय ॥१४०॥
 माला साँसउ साँस की, ^३फेरै को (इ) निज दास ।
 चौरासी भरमै नहीं, कटै ^४करम की फाँस ॥१४१॥
 माला फेरत मन खुशी, ताते कछु न होय ।
 मन माला के फेरते, घट उजियारो होय ॥१४२॥

माला फेरत जुग गया,	मिटा न मन का फेर ।
करका मनका डारिं दे,	मन का मनका फेर ॥१४३॥
जे राते सतनाम सों,	ते तन रक्त न होय ।
रति इक रक्त न नीकसे,	जो तन चीरै कोय ॥१४४॥
माला तो करमें फिरै,	जीम फिरै मुख मॉहि ।
मनवा तो दहु दिस फिरै,	यह तो सुमिरन नाँहि ॥१४५॥
माका फेरै न हरि भजूँ,	मुखसे कहूँ न राय ।
मेरा हारे मोको भजै,	तब पाऊँ विसराय ॥१४६॥
माला मोसे लड़ि पड़ी,	का फेरत है मोहि ।
मन की माला फेरि ले,	गुरु से मेछा होय ॥१४७॥
माला फेरै कह भयो,	हिरदा गाँठि न खोय ।
गुरु चरनन चित राचिये,	तो अमरापुर जोय ॥१४८॥
कवीर माला काठकी,	बहुत जतनका फेर ।
माला साँस उमौस की,	जामें गाँठ न मेर ॥१४९॥
क्रिया करै अंगुरि गिनै,	मन धावै चहुँ और ।
निहि फेरै साँई मिलै,	सो भय काठ कठोर ॥१५०॥
तन थिर मन थिर वचन थिर,	सुरति निरति थिर होय ।
कहै कविर उस पलकको,	कल्प न पावै कोय ॥१५१॥
जाय मरै अजवा मरै,	अनठद भी मरि जाय ।
सुरति समानी सद्धर्म,	ताहि काल नहि खाय ॥१५२॥

^१बिना साँच सुमिरन नहीं, (बिन)भेदी भाक्ति न सोय ।
 पारस ^२में परदा रहा, (कस)लोहा कंचन होय ॥१५३॥
 हिरदे सुमिरनि नामकी, मेरा मन मसगूल ।
 छवि लागै निरखत रहूँ, मिटि गय संसै सुल ॥१५४॥
 देखा देखी सब कहै, भोर भये ^३हरि नाम ।
 अरध रात को (इ) जन कहै, खाना जाद गुलाम ॥१५५॥
 नाम रटत अस्थिर भया, ज्ञान कथत भया लीन ।
 सुरति सब्द एकै भया, जल ही हैगा मीन ॥१५६॥
 कहता हूँ कहि जात हूँ, सुनता है सब कोय ।
 सुंमिरन सौं भल होयगा, नातर भला न होय ॥१५७॥
 कबीर माला काठकी, पहिरी मुगद डुलाय ।
 सुमिरन की सुधि है नहीं, (ज्यौँ)ढीगरवाँधी गाय ॥१५८॥
 नाम जेपे अनुराग से, सब दुख ^४हारै धोय ।
 विश्वासे तो गुरु मिले, लोहा कंचन होय ॥१५९॥
 सब मंत्रन का बीज है, सत्तनाम ततसार ।
 जो को(इ) जन हिरदै धरे, सो जन उतरै पार ॥१६०॥

१५४. मसगूल-लपलान । १५५. खानाजादगुलाम-घरका दास ।

१५८. मुगद-मूख ।

१. पा. सुद्धि बिना सुमिरन नहीं, भाव बिनु भाक्ति न होय ।

२ पा० बिच । ३ पा. ते राम । ४ पा. डाले ।

जब जागै तब नाम जप,	सोवत नाम सँभार ।
ऊठत बैठत आतमा,	चालत नाम चितार ॥१६१॥
सुमिरन ऐसो कीजिये,	खरे निशाने चोट ।
सुमिरन ऐसो कीजिये,	हाले जीभ न ओठ ॥१६२॥
ओठ कंठ हाले नही,	जीभ न नाम उचार ।
गुप्त हि सुमिरन जो लखे,	सोई हंस हमार ॥१६३॥
अंतर हरि हरि होत है,	मुख की हाजत नाहि ।
सहजे धुन लागी रहे,	संतन के घट माहि ॥१६४॥
अन्तर जपिये रामजी,	रोम रोम रकार ।
सहजे धुन लागी रहे,	येही सुमिरन सार ॥१६५॥
कवीर मन निश्चल करो,	सत्त नाम गुन गाय ।
निश्चल बिना न पाईये,	कोटिक करो उपाय ॥१६६॥
निसदिन एकै पलक ही,	जो कहु नाम कवीर ।
ताके जनमो जनम के,	जैह पाप शरीर ॥१६७॥
सुरति फसी संसार में,	ताते परिगो दूर ।
सुरति बाधि अस्थिर करो,	आठों पहर हैजूर ॥१६८॥
नाम साँच गुरु साँच है,	आप साँच जब होय ।
तीन साँच जब परगटे,	बिपका अमृत होय ॥१६९॥
मनुष्य तो गाफिल भया,	सुमिरन लगै नाहि ।
घनी सहेगा सासना,	जमके देरगह माहि ॥१७०॥

हाथों में माला फिरे, हिरदा डामाडूल ।
 पग तो पाला में पड़ा, भागन लागे सूल ॥१७१॥
 वाद विवादा मत करो, करु नित एक विचार ।
 नाम सुमिर चित्त लायके, सब करनीमें सार ॥१७२॥
 वाद करै सो जानिये, निगुरेका वह काम ।
 संतों को पुरसद नहीं, सुमिरन करते नाम ॥१७३॥
 भक्ति भजन हरि नाम है, दूजा दुःख अपार ।
 मनसा वाचा कर्मना, कबीर सुमिरन सार ॥१७४॥
 जागन में सोवन करै, सोवनमें लव लाय ।
 सुरति होरि लागी रहे, तार तूटि नहि जाय ॥१७५॥
 जोइ गहै निज नामको, सोई हंस हमार ।
 कहै कविर धर्मदास सों, उतरे भवजल पार ॥१७६॥
 कबीर सुमिरन अंगको, पाठ करै मन लाय ।
 विद्याहिनि विद्या, लहे, कहै कविर समुदाय ॥१७७॥
 जो कोय सुमिरन अंगको, पाठ करै मन लाय ।
 भक्ति ज्ञान मन ऊपजै, कहै कविर समुदाय ॥१७८॥
 जो कोय सुमिरन अंगको, निसि वासर करै पाठ ।
 कहै कविर सो संत जन, संघै औघट घाट ॥१८९॥

परिचय को अंग



तब परिचय तब जानिये, पित्तों हिल मिल होय ।
 पित्त की लाली मुख परै, परगट दीतै सोय ॥ १ ॥
 लाली मेरे लाल की, जित देखूं तित लाल ।
 लाली देखन मैं गई, मैं भी हो गई लाल ॥ २ ॥
 जिन पावन भुईं बहु फिरै, घूमै देस बिदेस ।
 पिया मिलन जब होइया, आंगन मया बिदेस ॥ ३ ॥
 उलटि समानी आप में, प्रगटी जोति अनंत ।
 साहिब सेवक एक संग, खेलें सदा वसंत ॥ ४ ॥
 जोगी हुआ झक लगी, मिटि गई ऐचातान ।
 उलटि समाना आप में, हुआ ब्रह्म समान ॥ ५ ॥
 हम वासी वा देस के, जहां पुरुष की आन ।
 दुख सुख कोइ ब्यापै नहीं, सब दिन एक समान ॥ ६ ॥
 हम वासी वा देस के, (जहें) वारह पास वसंत ।
 नीझर झरै महा अपी, भीजत हैं सब संत ॥ ७ ॥

१. पित्त-साहब, मालिक । लाली-काति, प्रसन्नता । २. झक-—रगन ।

३. पा० झक लगी जोगी हुआ ।

हम वासी वा देसके, गगन धरन दुइ नाँहि ।
 भौरा बैठा पंख विन, देखौ पलकों माँहि ॥८॥
 हम वासी वा देस के, जहाँ ब्रह्म का कूप ।
 अविनाशी विनसै नहीं, आवै जाय सरूप ॥९॥
 हम वासी वा देसके, आदि पुरुष का खेल ।
 दीपक देखा गैवका, विन वाती विन तेल ॥१०॥
 हम वासी वा देस के, वारह मास विलास ।
 प्रेम झरै विगसै कमल, तेजपुंज परकास ॥११॥
 हम वासी वा देस के, जाति वरन कुल नाँहि ।
 सद्ग मिलवा है रहा, देह मिलवा नाँहि ॥१२॥

८. गगनधरन—ब्रह्मांड और पिंड । इस साखी में अचरी मुद्रा का वर्णन किया गया है । जिसमें दृष्टि को उलट कर भुकुटी में लगाई जाती है ।

१२. हम उस देश के वासी हैं जहाँ जाति, वर्ण और कुल की मर्यादा नहीं मानी जाती । उस देश का संबन्ध केवल शब्द से होता है, देह से नहीं । इस साखी को लोग बहुधा छूयाछूत की रक्षा के प्रणाम में बोलते हैं । और ऐसा अर्थ करते हैं कि सर्व साधारण से केवल शब्द से मिलो, देह से नहीं । इसका ऐसा अर्थ नितान्त अनुचित है; क्यों कि यह पिव परचे के प्रकरण की है । इसके अतिरिक्त छूयाछूत की पुष्टि में कोई प्रमाण नहीं है, प्रत्युत “पंडित देखहु मन मई जानी । कह्यो छूत कहां से उपजी, तबहीं छूत तुम मानी ” इत्यादि छूत छूत के खंडन के अनेक प्रमाण हैं ।

हम वासी वा देस के,	रूप वरन कछु नाँहि ।
सैन मिलावा है रहा,	शत्रु मिलावा नाँहि ॥१३॥
हम वासी वा देस के,	पिंड ब्रह्मंड कछु नाँहि ।
आपा पर दोइ बीसरा,	सैन मिलावा नाँहि ॥१४॥
हम वासी वा देस के,	गाज रहा ब्रह्मंड ।
अनदद वाजा वाजिया,	अविचल जोति अखंड ॥१५॥
संसै करौ न मैं डरौ,	सब दुख दिये निवार ।
सहज सुझ में घर किया,	पाया नाम आधार ॥१६॥
बिन पाँवन का पंथ है,	बिन वस्ती का देस ।
बिना देह का पुरुष है,	कहैं कबिर संदेस ॥१७॥
नौन गला पानी मिठा,	बहुरि न भरि हैं गौन ।
सुरति सद्द मेला मया,	काल रहा गहि मौन ॥१८॥
टिल मिल खेलै सद्द सों,	अन्तर रही न रेख ।
समसै का मत एक है,	क्या पंडित क्या सेख ॥१९॥
अलख लखा कालच लगा,	कहत न आवै बैन ।
निज मन धसा सरूपमें,	सतगुरु दीन्ही सैन ॥२०॥
कहना था सो कहि दिया,	अब कछु कहा न जाय ।
एक रहा दूजा गया,	दरिया लहरि समाय ॥२१॥
जो कोइ समझै सैनमें,	तासों कहिये घाय ।
सैन बैन समझै नहीं,	तासों कहै बलाय ॥२२॥

पिंजर , प्रेम प्रकासिया, जागी जोति अनंत ।
 संसै छटा भय मिटा, मिला पियारा कंत ॥२३॥
 उनमुनि लागी सुन्न में, निस दिन रहि गलतान ।
 तन मन की कछु सुधि नहीं, पाया पद निरवान ॥२४॥
 उनमुनि चढी अकाम को, गई धरनि से छूट ।
 हंस चला घर आपने, काल रहा सिर कूट ॥२५॥
 उनमुनि सों मन लागिया, गगन हि पहुंचा जाय ।
 चाद विहूना चांदना, अलख निरंजन राय ॥२६॥
^१उनमुनि सों मन लागिया, ^२उन मुनि नहीं विलंगि ।
^३लैन विलंग्या पानिया, पानी नैन विलंगि ॥ २७ ॥
 पानी ही ते हिम भया, हिम ही गया विलाय ।
 जो कुछ था सोई भया, अब कुछ कहा न जाय ॥२८॥
 पेरी मिटि मुक्ता भया, पाया अगम निवास ।
 अब मेरे दूजा नहीं, एक तुम्हारी आस ॥२९॥

२६. विहूना-विना । गगन-गगन गुफा । निरजन-माया से रहित ।

नोट-अप्य ग्रन्थों में अलख निरजन को काल पुरूप माना है ।

जैसा कि यह बीजक का वचन है-“ अलख निरजन लखे न काई,
 जेहि बन्धे प्रया सप्त लेई । ” इत्यादि ।

१. पा० मन लागा उनमुनि मू । २. पा० उनमुनि मतहि प्रिय ।

३. पा० लैन मिलोयो पानि में ।

सुरति समानी निरति में, अजपा माही जाप ।
 लेख समाना अलख में, आपा माही आप ॥३०॥
 सुरति समानी निरति में, निरति रही निरधार ।
 सुरति निरति परिचय भया, खुल गया सिंधु द्वार ॥३१॥
 गुरु मिले सीतल भया, मिटी मोह तन ताप ।
 निसि वासर सुख निधि लहूं, अन्तर भगटे आप ॥३२॥
 सुचि पाया सुख ऊपजा, दिल दरिया भरपूर ॥
 सकल पाप सहजै गया, साहिव मिले हजर ॥३३॥
 तत पाया तन बीसरा, ^१मन धाया धरि ध्यान ।
 तपत मिटी सीतल भया, सुन किया ^२अस्थान ॥३४॥
 कौतुक देखा देह बिना, रविससि बिना उजास ।
 साहेव सेवा माही है, बेपरवाही दास ॥३५॥
 नेव बिहूना देहरा, देह बिहूना देव ।
 कबीर तहाँ बिलंबिया, करै अलख की सेव ॥३६॥
 देवल मोहि ^३देहुरी, तिल जैसा बिस्तार ।
 माहीं पाती फूल जल, माहीं पूजन द्वार ॥३७॥

३०. जाप अजपा में, सुरति निरति में और लेख अलख में परिणत होने पर आप (मैं) अपने आप (स्वयं) को पा सकता है ।

३४. सुन-गाया प्रपच से रहित देश । ३६. देहरा — देवमन्दिर ।

३७. देवल-शरीर । देवरी हृदय । पाती-प्रीति । जल स्नेह ।

सिचनहार-प्राण ।

१. पा० साहिव से धरि ध्यान । २. पा० अस्नान । ३. पा० देवली ।

पवन नहीं पानी नहीं, नहि धरनी आकास ।
 तहाँ कबीरा संत जन, साहिव पास खवास ॥३८॥
 अशुवानी तो आइया, ज्ञान विचार विवेक ।
 पीछे हरि भी आर्यगे, सारे सौंज समेत ॥३९॥
 पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान
 कहिवे की सोभा नहीं, देखै ही परमान ॥४०॥
 सुरज समाना चांद में, दोउ किया घर एक ।
 मन का चेता तब भया, पुरब जनम का लेख ॥४१॥
 पिंजर प्रेम प्रकासिया, अंतर भया उजास ।
 मुख करि सूती महल में, चानी फूटी वास ॥४२॥
 आया था संसार में, देखन को बहु रूप ।
 कहै कबीरा संत हो, परि गया नजर अनूप ॥४३॥
 पाया था सो गहि रहा, रसना लगी स्वाद ।
 रतन निराळा पाइया, जगत ठोला बाद ॥४४॥
 हिम से पानी है गया, पानी हुआ माप ।
 जो पहिले था सो मया, प्रगटा आपहि आप ॥४५॥

४०. उनमान — अंदाज । ४१. इस साखी में “चांद सुरज एकै घर लायो, सुयमण मेती पान लगायो” इस वचन के अनुसार ध्यानोपयोगी सुगुण्या का लाना आवश्यक बताया गया है ।

कुछ करनी कुछ करम गति,	कुछ पूरव ले लेख ।
देखो माग कबीर का,	लख से भया अलेख ॥४६॥
जब मैं था तब गुरु नहीं,	अब गुरु हैं मैं नाँहि ।
कबीर नगरी एक मैं,	दो राजा न समझि ॥४७॥
मैं जाना मैं और था,	मैं तजि हूँ गय सोय ।
मैं ते दोऊ मिटि गये,	रहे कहन को दोय ॥४८॥
अगम अगोचर गम नहीं,	जहां झिलमिली जोत ।
तहाँ कबीरा रहि रहा,	पाप पुन नहि छोट ॥४९॥
कबीर तेज अनंत का,	मानो सूरज सैन ।
पति संग जागी सुंदरी,	कौतुक देखा नैन ॥५०॥
कबीर देखा एक अंग,	महिमा कही न जाय ।
तेजपुंज परसा धनी,	नैनों रहा समाय ॥५१॥
कबीर कमल प्रकासिया,	ऊगा निरमल सूर ।
रैन अंधेरी मिटि गई,	बाजै अनहद दूर ॥५२॥
कबीर मन मधुकर भया,	करै निरन्तर बास ।
कमल खिल्ला है नीर बिन,	निरखै कोइ निजदास ॥५३॥
कबीर मोतिन की लंडी,	हीरों का परकास ।
चांद मूर की गम नहीं,	दरसन पाया दास ॥५४॥
कबीर दिळ दरिया मिला,	पाया फल समरत्थ ।
सागर माँहि हिंदोरतां,	हीरा चढ़ि गया हथ्थ ॥५५॥

कबीर जब हय गावते, तब जाना गुरु नाँहि ।
 अब गुरु दिल में देखिया, गावन को कछु नाँहि ॥५६॥
 कबीर दिल दरिया मिला, बैठा दरगह आय ।
 जीव ब्रह्म मेला भया, अब कछु कहा न जाया ॥५७॥
 कबीर कंचन भासिया, ब्रह्म वास जहां होय ।
 मन भौंरा तहां लुवधिया, जानेगा जन कोय ॥५८॥
 गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गंभीर ।
 चहुं दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर ॥५९॥
 गगन मंडल के बीच में, झलकै सत का नूर ।
 निगुरा गम पावै नहीं, पहुँचे गुरुमुख सूर ॥ ६० ॥
 गगन मंडल के बीच में, मंडल पडा इक चीन्हि ।
 कहै कबिर सो पावई, जिहि गुरु परिचै दीन्हि ॥६१॥
 गगन मंडल के बीच में, बिना कलम की छाप ।
 पुरुष एक तहां रयि रहा, नहीं मंत्र नहि जाप ॥६२॥
 गगन मंडल के बीच में, तुरी तत्त इक गाँव ।
 लच्छु निसाना रूप का, परखि दिखाया ठाँव ॥६३॥
 गगन मंडल के बीच में, जहां सोहंगम डोर ।
 सह्र अनाहद होत है, सुरति लगी तहँ मोर ॥६४॥
 गरजै गगन अमी चुबै, कदली कपल प्रकास ।
 तहां कबीरा संतजन, सत्तपुरुष के पास ॥६५॥

गरजै गगन अभी चुबै, कदली कमल प्रकास ।
 तहां कबीरा वंदगी, कर कोई निजदास ॥६६॥
 दीपक जोया ज्ञान का, देखा अपरम देव ।
 चार वेद की गम नहीं, तहां कबीरा सेव ॥६७॥
 मान सरोवर सुगम जल, हंसा केलि कराय ।
 मुक्ताहल मोती चुगै, अब उड़ि अंत न जाय ॥६८॥
 सुन महल में घर किया, बाजै सह रसाल ।
 रोष रोष दीपक भया, मगटै दीन दयाल ॥६९॥
 पूरे से परिचय मया, दुख सुख मेला दूर ।
 जप सौ बाकी कटि गई, साईं मिला हजूर ॥७०॥
 सुरति उड़ानी गगन को, चरन विलंबी जाय ।
 सुख पाया साहेब मिला, आनंद उर न समाय ॥७१॥
 जा वन सिंघ न संचरै, पंछी उड़ि नहि जाय ।
 रैन दिवस की गम नहीं, रहा कबीर समाय ॥७२॥
 सीप नहीं सायर नहीं, स्वाति बुंदभी नाहि ।
 कबीर मोती नीपजै, सुन सरवर घट पाँहि ॥७३॥

६८. मुक्ताहल मोती—अनवेधे मोती । ७२. वन—अगम पद ।

सिद्ध—जीवात्मा । पंछी—मन ।

१. पा० अंग । २. पा० सागर ।

काया सिप संसारमें, पानी धुंद सरीर ।
 बिना सीप के मोतियां, मगटे दास कबीर ॥७४॥
 घट में औघट पाइया, औघट माहीं घाट ।
 कहैं कबीर परिचय मया, गुरु दिखाई वाट ॥७५॥
 जा कारन में जाय था, सो तो मिळिया आय ।
 सौई ते^५ सनमुख भया, लगा कबीरा पाय ॥७६॥
 जा कारन में जाय था, सो तो पाया ठौर ।
 सो ही फिर आपन भया, को कहता और ॥७७॥
 जा दिन किरतम ना हता, नहीं हाट नहि वाट ।
 हता कबीरा संत जन, देखा औघट घाट ॥७८॥
 नहीं हाट नहि वाट था, नहीं धरति नहि नीर ।
 असंख जुग परलै गया, तब की कहैं कबीर ॥७९॥
 चांद नहीं सूरज नहीं, हता नहीं ओंकार ।
 तहां कबीरा संतजन, को जानै संसार ॥८०॥
 धरति गगन पवनै नहीं, नहि होते तिथि वार ।
 तब हरि के हरिजन हुते, कहैं कबीर विचार ॥८१॥
 धरति हती नहि पग धरूं, नीर हता नहि न्हाऊं
 माता ते जनम्या नहीं, छीर कहाते खाऊं ॥८२॥
 अगन नहीं जहँ तप करूं, नीर नहि तहँ न्हाऊं ।
 धरती नहीं जहँ पग धरूं, गगन नहि तहँ जाऊं ॥८३॥

पांच तत्त्व गुन तीन के, आगे मुक्ति मुकाम ।
 तहां कवीरा घर किया, गोख दत्त न राम ॥ ८४ ॥
 सुर नर मुनिजन औलिया, ये सब उरली तीर ।
 अलह राम की गम नहीं, तई घर किया कवीर ॥ ८५ ॥
 सुर नर मुनिजन देवता, ब्रह्मा विस्तु महेस ।
 ऊंचा महल कवीर का, पार न पावै सेस ॥ ८६ ॥
 जब दिल मिला दयाल सों, तब कलु अंतर नाँहि ।
 पाछा गलि पानी भया, यों हरिजन हरि माँहि ॥ ८७ ॥
 ममता मेरा क्या करै, प्रेम उधारी पोल ।
 दरसन भया दयाल का, सुल भई सुख सोल ॥ ८८ ॥
 सुन्न सरोवर मीन मन, नीर निरंजन देव ।
 सदा समुह सुख बिलसिया, विरला जानै भेव ॥ ८९ ॥
 सुन्न सरोवर मीन मन, नीर तीर सब देव ।
 सुधा सिंधु सुख बिलसही, विरला जानै भेव ॥ ९० ॥
 लौन गला पानी मिला, बहुरि न मरि है गून ।
 हरिजन हरि सो मिलि रहा, काल रहा सिर धन ॥ ९१ ॥

८८. पोल—दरवाजा । सोल—सहल, सहज । ८९. समुह—सन्मुख ।

९०. सरोवर के किनारों पर बने हुए देवालयों के देवता सरोवर के आनन्द-विहार और शीतलता का अनुभव नहीं कर सकते । उस आनन्द को तो मच्छली ही उठाती है । इसी प्रकार शून्य सरोवर के आनन्दामृत को केवल अम्बासी ही पा सकता है । देवता उस सुख को क्या जाने ।

गुन इन्द्रो सहजे गये, सतगुरु करी सहाय ।
 घट में नाम प्रगट भया, बकि बकि मरै बलाय ॥९२॥
 जब लग पिय परिचय नहीं, कन्या कौरी जान ।
 हथलेवो हूँ सालियो, मुस्किल पढ़ि पढ़ि नान ॥९३॥
 सेजै सूनी रग रम्हा, मागा मान गुमान ।
 हथ लेवो हरि सँ जुयों, अखै अमर वरदान ॥९४॥
 पूरे सों परिचय भया, दुख सुख मेला दुर ।
 निरमल कीन्ही आत्मा, ताते सटा इजूर ॥९५॥
 मैं लागा उस एक सों, एक भया सब माँहि ।
 सब मेरा मैं सबनका, तहां दूसरा नाँहि ॥९६॥
 भली भई जो भय पड़ी, गई दिसा सब भूल ।
 पाला गलि पानी भया, हूलि पिछा उस कूल ॥९७॥
 चितमनि पाई चौदटै, हाड़ी मारत हाथ ।
 मीरां मुझ पर मिहर करि, मिला न काहू साथ ॥९८॥
 वरसि अमृत निपज हिरा, घटा पड़े टकसार ।
 तहां कबीरा पारखी, अनुभव उतरै पार ॥९९॥

९३ हथलेवो हूँ सालियो—पाणिप्रदण भी अखरने लगता है ।
 ९७ जो भय पड़ी—जो हो गई । पाला—अज्ञानी जीव । पानी—ज्ञानी ।
 टमकूल—मालिका में । ९८ चितमनि—साहन । हड्डो—हिरस । मीरा—
 तद्गुरु । ९९ अमृत—अमी । हिरा—शुद्ध मन ।

मकर तार सों नेहरा,	झलकै अघर बिदेह ।
मुरति सोहंगम मिलि रहि,	पल पल जुरै सनेह ॥१००॥
ऐसा अविगति अलख है,	अलख लखा नहि जाय ।
जोति सरूपी राम है,	सब में रह्यौ समाय ॥१०१॥
मिलि गय नीर कबीर सों,	अंतर रही न रेख ।
तीनों मिलि एकै भया,	नीर कबीर अलेख ॥१०२॥
नीर कबीर अलेख मिलि,	सहन निरंतर जोय ।
सच सद्ध औ मुरति मिलि,	हंस हिरंवर होय ॥१०३॥
कहना था सो कहि दिया,	अब कलु कहना नाहि ।
एक रही दूजी गई,	बैठा दरिया माँहि ॥१०४॥
आया एक हि देस ते,	उतरा एक ही घाट ।
विच में दुखिया हो गई,	हो गये बारह बाट ॥१०५॥
तेजपुंज का देहरा,	तेजपुंज का देव ।
तेजपुंज झिलिमिल शरै,	तहां कबीरा सेव ॥१०६॥
खाला नाला हीम जल,	सो फिर पानी होय ।
जो पानी मोती भया,	सो फिर नीर न होय ॥१०७॥
देखो कर्म कबीर का,	कलु पूरवछा लेख ।
जाका महल न मुनि लहै,	किय सो दोस्त अलेख ॥१०८॥
मैं था तब हरि नहि जय,	अब हरि है मैं नाहि ।
सकल अंधेरा मिटि गया,	दीपक देखा माँहि ॥ १०९ ॥

मूरत में मूरत बसै,
 ता तत तत्व विचारिया,
 फेर पड़ा नहीं अंग में,
 फेर पड़ा कछु बूझ में,
 साहेब पारस रूप है,
 पारस सो पारस भया,
 मोती निपजै सुन्न में,
 खोज करंता पाइये,
 या मोती कछु ओर है,
 या मोती है सद्ग का,
 दरिया माही सीप है,
 वस्तु ठिकानै " पाइये,
 चौदा भुवन भाजि धरै,
 कहै कविर गुरु सद्ग सो,
 हमकुं स्वामी मति कहो,
 स्वामी कहिये तासु कुं,
 हमकुं बाबा मति कहो,
 बाबा है करि बैठसी,
 यह पद है जो अगमका,
 समुझे, कुं दरसन दिया,

मूरत में इक तत्त ।
 तत्व तत्व सो तत्त ॥११०॥
 नहि इन्द्रियन के माँहि ।
 सो निरुवारै नाँहि ॥१११॥
 लोह रूप संसार ।
 परखि भया टकसार ॥११२॥
 विन सायर विन नीर ।
 सतगुरु कहै कबीर ॥ ११३॥
 वा मोती कछु और ।
 व्यापि रहा सब ठौर ॥११४॥
 मोती निपजै माँहि ।
 नाले खाले नाँहि ॥११५॥
 ताहि कियो बैराट ।
 मस्तक डारै काट ॥११६॥
 हम हे गरीब अधार ।
 तीन लोक विस्तार ॥११७॥
 बाबा है बलियार ।
 धनी सहेगा मार ॥११८॥
 रन मंग्रामे जूझ ।
 खोजत मुये अनूझ ॥११९॥

सीतल कोमल दीनता,	संतन के आधीन ।
वासों साहिब यों मिले,	ज्यों जल भीतर मीन ॥१२०॥
कबीर आदू एक है,	करन सुनन कूं दोय ।
जल से पारा होत है,	पारा से जल होय ॥१२१॥
दिल लगा जु दयाल सों,	तब कछु अंतर नाहि ।
पारा गलि पानी भया,	साहिब साधू माँहि ॥१२२॥
ऐसा अविगति रूप है,	चीन्है विरला कोय ।
कहै सुनै देखै नहीं,	वाते अचरज मोय ॥१२३॥
सत्तनाम तिरलोक में,	सकल रहा मरपूर ।
लाजै ज्ञान सरीर का,	दिखवै साहिब दूर ॥१२४॥
कबीर दुख सुख सब गया,	गय सो पिंड सरीर ।
आत्म परमात्म मिलै,	दूध धोया नीर ॥१२५॥
गुरु हाजिर चहुदिसि खड़े,	दुनी न जानै मेद ।
कवि पंडित कूं गम नहीं,	थाके वपुरे वेद ॥१२६॥
जा कारन हम जाय थे,	सनमुख मिलिया आय ।
धन मैली पिव ऊजला,	लाग सकी नहि पाय ॥१२७॥
भीतर मनुषा मानिया,	बाहिर कहूं न जाय ।
ज्वाला फेरी जल भया,	बूझी जलती लाय ॥१२८॥

१२७. धन-जीरामा ।

१. पा. तन भीतर मन मानिया, बाहिर कबहु न लाग ।

ज्वाला ते फिरि जल भया, बूझी जलती आग ॥

जिन जेता प्रभु पाइया, ताकूं तेता लाभ ।
 ओसे प्यस न भागई, जव लग धसै न आभ ॥१२९॥
 अकास बेली अमृत फल, पंखि मुवे सब झूर ।
 सारा जग हि झखि मूआ, फल मीठा पै दूर ॥१३०॥
 तीखी सुरति कबीर की, फोड़ गई ब्रह्मंड ।
 पीव निराळा देखिया, साव दीप नौ खंड ॥ १३१ ॥
 ना मैं छई छापरी, ना मुझ घर नहि गाँव ।
 जो कोइ पूछै मुझसों, ना मुझ जाति न ठाँव ॥१३२॥

प्रेम को अंग

यह तो घर है प्रेमका, खाला का घर नाँहि ।
 सीस उतारै भुँय धरै, तब पैठै घर माँहि ॥ १ ॥
 यह तो घर है प्रेमका, मारग अगम अगाध ।
 सीस काटि पग तर धरै, निकट प्रेमका स्वाद ॥ २ ॥
 यह तो घर है प्रेमका, ऊँचा अधिक इकंत ।
 सीस काटि पग तर धरै, तब पैठै कोइ संत ॥ ३ ॥
 सीस काटि पासंग किया, जीव तेर भरि लीन ।
 जिहि भावै सो आय ले, प्रेम आगु हम कीन ॥ ४ ॥

१२९. आभ जल । १३० आकाश-गगनमहल । बेली-सुरत । पंखी-मन ।

१. खाला—मोसी । ४. देह और प्राण की समता के त्याग बिना कोइ भी प्रेम के आनन्द को नहीं ले सकता ।

सीस उतारै भुँय धरै,	ऊपर राखै पाँव ।
दास कबीरा यों कहै,	ऐसा है तो आव ॥ ५ ॥
प्रेम न बाढी ऊपजै,	प्रेम न हाट विक्राय ।
राजा परजा जो रुचै,	सीस देय ले जाय ॥ ६ ॥
प्रेम पियाला सो पिये,	सीस दच्छिना देय ।
लोभी सीस न दे सकै,	नाम प्रेम का लेय ॥ ७ ॥
प्रेम पियाला भरि पिया,	राचि रखा गुरु ज्ञान ।
दिया नगारा शब्द का,	लाछ खडै मैदान ॥ ८ ॥
प्रेम प्रेम सब को (इ) कहै,	प्रेम न चीन्है कोय ।
आठ पहर भीजा रहै,	प्रेम कहावै सोय ॥ ९ ॥
प्रेम प्रेम सब को (इ) कहै,	प्रेम न चीन्है कोय ।
जा मारग साहिब मिलै,	प्रेम कहावै सोय ॥ १० ॥
प्रेम पियारे लालसों,	मन दे कीजै भाव ।
सतगुरु के परसाद से,	भला बना है दाव ॥ ११ ॥
प्रेम विकाता मैं सुना,	माया साटै हाट ।
पूछत बिलम न कीजिये,	ततछिन दीजै काट ॥ १२ ॥
प्रेम बनिज नहि करि सकै,	चढै न नाम कि गैल ।
मानुष बेरी खोलरी,	ओढि फिरै ज्यों बैल ॥ १३ ॥
प्रेम बिना धीरज नहीं,	विरह बिना वैराग ।
सतगुरु बिन जाँवै नहीं,	मन मनसा का दाग ॥ १४ ॥

पिया पिया रस जानिये, उतरै नहीं खुमार ।
 नाम अपल पाता रहै, पिये अमीरस सार ॥३५॥
 कबीर भाठी प्रेम की, बहुतक बैठे आय ।
 सिर सौपै सो पीवसी, नातर पिया न जाय ॥३६॥
 कबीर हम गुरु रस पिया, बाकी रही न छाक ।
 पाका कलस कुम्हारका, बहुरि न चढसी चाक ॥३७॥
 कबीर तासे प्रीति करु, जो निरवाहै ओर ।
 बनै तो विविधि न राचियु, देखत लगै खोर ॥३८॥
 जब मैं था तब गुरु नहो, अब गुरु है मैं नाहि ।
 प्रेम गली अति सांकरि, तामें दो न समौहि ॥३९॥
 आया बबुला प्रेम का, तिनका उड़ा अकास ।
 तिनका तिनका सें मिला, तिनका तिनका पास ॥४०॥
 अधिक सनेही मालरी, दूजा अल्प सनेह ।
 जवही जलते बीछुरै, तवही त्यागै देह ॥४१॥
 सौ जोजन साजन वसै, मानो हृदय मँझार ।
 कष्ट सनेही आंगनै, जानो समुंदर पार ॥४२॥
 यह तत बह तत एक है, एक मान दुइ गात ।
 अपने जिय से जानिये, मेरे जिय की बात ॥४३॥

३७. छाक—प्यास । ३८. विविधि—अनेको से । ४०. बबुला—बबडर । तिनका—जीयात्मा ।

१. पा० और न पीया जाय । २. पा० ऊठा । ३. पा० दिल ।

हम तुम्हरो सुमिरन करै, तुम हम चितवौ नाहि ।
 सुमिरन मनकी भीति है, सो मन तुमही माँहि ॥४४॥
 मेरा मन तो वृक्ष सों, तेरा मन कहूँ और ।
 कहैं कविर कैसे, बने, एक चित्त दुइ ठौर ॥४५॥
 ज्यों मेरा मन वृक्ष सों, यों तेरा जो होय ।
 अहरन ताता लोह ज्यों, संधि लखै ना कोय ॥४६॥
 भीति जु लागी घुल गई, पैठि गई मन माँहि ।
 रोम रोम पियु पियु करै, सुख की सरधा नाँहि ॥४७॥
 जो जागत सो सपन में, ज्यों घट भीतर साँस ।
 जो जन जाको भावता, सो जन ताके पास ॥४८॥
 भीति ताहि सो कीजिये, (जो) आप समाना होय ।
 कबहुँक जो अवगुन पड़े, गुनही लहै समोय ॥४९॥
 नाम रसायन प्रेम रस, पीवत अधिक रसाल ।
 कवीर पीवन दुलभ है, माँगै सीस कलाल ॥५०॥
 यह रस यहँगा सो पियै, छाँडि जीव की धान ।
 माथा साटे जो मिलै, तौ भी सस्ता जान ॥५१॥
 सबै रसायन हम किया, प्रेम समान न कोय ।
 रंचक तन में संचरै, सब तन कंचन होय ॥५२॥
 अमृत केरी मोटरी, राखी सतगुरु छोरि ।
 आप सरीखा जो मिलै, ताहि पिछावै घोरि ॥५३॥
 अमृत पीवै ते जना, सतगुरु लागा कान ।
 वस्तु अगोचर मिलि गई, मन नहि आवै आन ॥५४॥

साधू सीप समुद्र के,
 तृषा गड़ एक बुंदसे,
 मिलना जगमें कठिन है,
 विछुरा साजन तिहि मिलै,
 जोड़ मिलै सो प्रीति में,
 मनसे मनसा ना मिलै,
 जो दिलि दिलही में रहे,
 जो दिलि दिलि सें बाहिरा,
 नैनो की करि कोठरी,
 पलकों की चिक डारिकै,
 जब लगि मरने सें डरै,
 'वही दूर है प्रेम घर,
 पिय का मारग कठिन है,
 नाचन निकसी बापुरी,
 प्रिय का मारग सुगम है,
 नाचि न जानै बापुरी,
 प्रीति बहुत संसार में,
 'उतम प्रीति सो जानिये,
 गुनवेता औ द्रव्य को,
 कबीर प्रीती (सो) जानिये,

सतगुरु स्वाती बुंद ।
 क्या ले करो समुंद ॥५५॥
 मिलि विछुरौ जनि कोय ।
 जिहि माथै मनि होय ॥५६॥
 और मिलै सब कोय ।
 (तो) देह मिलै क्या होय ॥५७॥
 सो दिलि कहूँ नहि जाय ।
 सो दिलि कहाँ समाय ॥५८॥
 पुतली पलंग विछाय ।
 पियको लिया रिझाय ॥५९॥
 तब लगि प्रेमी नाहि ।
 समझि लेहु मन माँहि ॥६०॥
 'जैसा खांडा सोय ।
 'घूँघट कैसा होय ॥ ६१ ॥
 तेरा चलन अघेठ ।
 कहै आंगना टेढ़ ॥ ६२ ॥
 नाना विधि की सोय ।
 सतगुरु सें जो होय ॥ ६३ ॥
 प्रीति करै सब कोय ।
 इतने न्यारी होय ॥६४॥

कहा भयो तन बीछुरे, दूरि वसै जो वास ।
 नैना ही अंतर पड़ा, मान तुम्हारे पास ॥६५॥
 जो है जाका भावता, जब तब मिलि है आय ।
 तन मन ताको सौपिये, (जो) कबहु न छाडी जाय ॥६६॥
 जल में वसै कमोदिनी, चंदा वसै अकास ।
 जो है जाका भावता, सो ताही के पास ॥६७॥
 तन दिखलावै आपना, कछु न राखै गोय ।
 जैसी प्रीति कमोदिनी, ऐसी प्रीति जु होय ॥६८॥
 सही हेत है तासुका, जाको सतगुरु टेक ।
 टेक निवाहै देह भरि, रहे सद्ग मिलि एक ॥६९॥
 पासा पकड़ा मेमका, सारी किया सरीर ।
 सतगुरु दाव बताइया, खेलै दास कवीर ॥७०॥
 खेल जु पैडा खिलाडिसों, आनंद बढा अघाय ।
 अब पासा काहु पढौ, प्रेम बँधा जुग जाय ॥७१॥
 अगि आँचि सहना सुगम, सुगम खडग की धार ।
 नेह निवाहन एक रस, महा कठिन व्योहार ॥७२॥
 नेह निवाहै ही बनै, सोचै बनै न आन ।
 तन दे मन दे सीस दे, नेह न दीजै जान ॥७३॥
 राई वातां बीसवा, फिर बीसन का बीस ।
 ऐसा मनुवा जो करै, ताहि मिलै जगदीस ॥७४॥

प्रेम पिछोरी तान के, सुख मंदिर में सोय ।
 घर कबीर को पाय के, कहा मुक्ति को रोय ॥७६॥
 प्रीति पुरानि न होत है, जो उत्तम से लाग ।
 सो वरसां जलमें रहै, पथर न छोड़ै आग ॥७६॥
 तुम मति जानो बीछुरे, साजन प्रीति घटाय ।
 बैपारी का व्याज ज्यूँ, दिन दिन दून बढ़ाय ॥७७॥
 गहरी प्रीति सुजान की, बढ़त बढ़त बढ़ि जाय ।
 ओछी प्रीति अजानकी, घटत घटत घटि जाय ॥७८॥
 कबीर सूरत मित्र की, दिन दिन चढ़ रहे चित्त ।
 तन न मिलै तो क्या भया, मन तो मिलता नित्त ॥७९॥
 प्रीति जु तासों कीजिये, जाकी जात मजीठ ।
 प्रीति कुसुंव न कीजिये, भीड़ पड़े दे पीठ ॥८०॥
 सजन सनेही बहुत हैं, सुखमें मिले अनेक ।
 विपति पड़े दुख बाँटिये, सो लाखन में एक ॥८१॥
 बलिहारी उस फूलकी, जामें दूनी वास ।
 अपना तन मन सौंपके, भया पुराना घास ॥८२॥
 नेह निबाहन कठिन है, सबसे नीमत नाँहि ।
 चढ़वो मोम तुरंग पर, चढ़वो पावक माँहि ॥८३॥
 प्रेम प्रीतिसे जो मिले, ताको मिलिये धाय ।
 कपट राखि के जो मिले, तासैं मिले बलाय ॥८४॥

प्रीतम प्रीति बढ़ाय के, दूर देस मति जाय ।
 हम तुम एक नगर वसे, (जो)भीख मांग नित खाय ॥८५॥
 एक दृष्टि दो नैन हैं, * एक सद्य दो कान ।
 हम तुम एक पदतारा, दो घट में एक पान ॥८६॥
 पपिया तो पिव पिव करे, निस दिन प्रेम पियास ।
 पंछी विरह न छांढही, क्यों छांढ निजदास ॥८७॥
 आठ पहर चौसठ घड़ी, लागि रहे अनुराग ।
 हिरदै पलक न बीसरे, तब साँचा वैराग ॥८८॥
 जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय ।
 बिन अनुराग न पावई, कोटि करै जो कोय ॥८९॥
 प्रेम पंथमें पग धरे, दैत न सीस डराय ।
 सपने मोह व्यापे नहि, ताको जन्म नसाय ॥९०॥*

विरह को अंग ।

राख्युं रुनी विरहिनी, ज्युं वच्चोंको कुंज
 कवीर अंतर परगठ्यो, विरह अग्नि को पुंज ॥ १ ॥

८७. विरह-वाना ॥९०. जन्म नसाय-आवागमन का नाश होता है ।

१. रुनी-ठूँस रुई । कुंज-कौंच । जैसे कौंच पक्षी अपने बच्चों के बिलुडने पर विलाप करता है ।

१. पा० राखिचा ।

प्रीतम प्रीति बढ़ाय के, दूर देस मति जाय ।
 हम तुम एक नगर वसे, (जो)भीख मांग नित खाया ॥८५॥
 एक दृष्टि दो नैन हैं, * एक सद्य दो कान ।
 हम तुम एक पटतरा, दो घट में इक मान ॥८६॥
 पपिया तो पिव पिव करे, निस दिन प्रेम पियास ।
 पंछी विरह न छांढही, क्यों छांढ निजदास ॥८७॥
 आठ पहर चौसठ घड़ी, लागि रहे अनुराग ।
 हिरदै पलक न बीसरे, तब साँचा बैराग ॥८८॥
 जाके चित अनुराग है, ज्ञान मिले नर सोय ।
 बिन अनुराग न पावई, कोटि करै जो कोय ॥८९॥
 प्रेम पंथमें पग धरै, देत न सीस डराय ।
 सपने मोह व्यापे नहि, ताको जन्म नसाय ॥९०॥ *

विरह को अंग ।

राख्युं रुनी विरहिनी, ज्युं वधोंको कुंज
 कवीर अंतर परगछ्यो, विरह अग्नि को पुंज ॥ १ ॥

८७. विरह-वाना ॥९०. जन्म नसाय-आयागमन का नाश होता है ।

१. रुनी-उदास हुई । कुंज-कौंच । जैसे कौंच पक्षी अपने वधों के विछुड़ने पर विलाप करता है ।

१. पा० सन्निधा ।

अमर कुंज कुरलाइया, गरजि भरा सब ताल ।
 जिनते ^१साहिव विहुरा, तिनका कौन हवाल ॥ २ ॥
^२चकवी विहुरी रैन की, ^३आय मिली परभात ।
 जो जन विहुरे नामसो, दिवस मिले नहि रात ॥ ३ ॥
 वासर सुख नहि रैन सुख, ना सुख सपना माँहि ।
 जो नर विहुरे राम सो, तिनको धूप न छाँहि ॥ ४ ॥
 बहुत दिनन की जोइती, ^४वाट तुम्हारी राम ।
 जिय तरसै तुव मिलन को, मन नाँहीं विसराम ॥ ५ ॥
 विरहिनि ऊभी पंथ सिर, पंथी पूछे धाय ।
 एक सद्ध कहो पीवका, ^५कब हि मिलेंगे आय ॥ ६ ॥
 विरहिनि देय सँदेसरा, सुनो हमारे पीव ।
 जल बिन मछली क्यों जिये, पानी में कत जीव ॥ ७ ॥
^६विरहिनि देय सँदेसरा, सुनहु राम सुजान ।
 बेगि ^६मिलो तुम आय के, नहि तो तजिहौं प्रान ॥ ८ ॥
 विरहिनि विरह जलाइया, बैठी हूँ छार ।
 पति को (य) कुइला ऊवरै, जारै दूजी बार ॥ ९ ॥

२. अमर-आकाश में । आकाश में झौंच पक्षी वर्षा में चिह्नाते हैं । ४. छूप न छाहि न छूप ही अच्छी लगती है और न, छाया ।

१. पा० सतगुरु (साई) २. पा० रैन की विहुरी चाकरी । ३. पा० आनि ।

४. पा० रटत तुम्हारी नाम । ५. पा० कबरे ।

विरहिनि जलती देखि के,	साँई आये धाय ।
प्रेम बुँद सों छिरकि के,	जलती लैय बुझाय ॥१०॥
विरहिनि थी तो क्यों रही,	जरी न पिव के साथ ।
रहि रहि मूढ़-गहेलरी,	अब क्यों भीजे हाथ ॥११॥
विरहिनि उठि उठि मुँड परै,	दरसन कारन राग ।
लोहा पाटी मिल गया,	तब पारस किहि काम ॥१२॥
मूये पीछे मति मिलो,	कहैं कबीरा राम ।
लोहा पाटी मिल गया,	तब पारस किहि काम ॥१३॥
विरह जलन्ती मैं फिरँ,	मोहि विरह का दूग ।
छाँह न वैहँ डरपती,	मति जलि उठै रुख ॥१४॥
विरह तेज तनमें तप	अंग सयै अकुलाय ।
बट सूना जिव पीव में,	मौत हँडि फिरि जाय ॥१५॥
विरह कमंडल कर लिये,	बैरागी हो नैन ।
माँगै दरस मधुकरि,	छक रहे दिन रैन ॥१६॥
विरह विधा बैराग की,	कही न काहू जाय ।
सूँगा सपना देखिया,	समझि समझि पछिनाय ॥१७॥
विरह बढो बरी भयो.	हिरदा वरै न बीर ।
सुरति मनेही ना मिलै,	मिटै न मन की पीर ॥१८॥
विरह प्रबल दल साजिके.	घेरि लियो मोहि आय ।
नहि माँगे छाटै नहीं.	तळफि तळफि जिय जाय ॥१९॥

विरह कुल्हाड़ी तन बधै, धाव न बांधै रोह ।
 मरने का संसै नहीं, छूटि गया भ्रम मोह ॥२०॥
 विरह अगनि तन मन जला, लागि गहा तन जीव ।
 कै वा जानै विरहिनी, कै जिन भेटा पीव ॥२१॥—
 विरह जलाई मै जलूँ, जलती जलहर जाऊँ ।
 मो देखा जलहर जलै, सन्तो कहँ बुझाऊँ ॥२२॥
 विरहा पूत लुहार का, धुवै हमारी देह ।
 कुइला किया न छूटि है, जब लग होय न खेह ॥२३॥
 विरहा पीव पठाइया, कही साधु परमोधि ।
 जा घट तालाबेलिया, ताको लावो सोधि ॥२४॥
 विरहा आया दरदसों, कहुवा लागा काम ।
 काया लागी काल है, मीठा लागा राम ॥२५॥
 विरहा सेती मति अटै, रे मन मोर सुजान ।
 हाड मांस रग खात है, जीवत करै मसान ॥२६॥
 विरही प्रानी विरह की, पिनर पीर न जाय ।
 एक पीर है प्रीति की, रही कलेजे छाय ॥२७॥
 विरहा विरहा मति कहो, विरहा है सुलतान ।
 जा घट विरह न संचरे, सो घट जान मसान ॥२८॥—

२०. रोह—धावका भर आना । २२. जलहर—तालाब वगैरह ।

२४. तालाबेली—छटपटी, बेचैनी ।

विरहा मोसों यों कहे,	गाढा पकड़ो मोहि ।
चरन कमल की मौजमें,	ले पहुँचावौ तोहि ॥ २९ ॥
विरहा भयो विछावना,	ओढ़न विपति वियोग ।
दुख सिरहाने पाय तन,	कौन बना संजोग ॥ ३० ॥
विरहा कहे कवीरको,	तू मति छाडै मोहि ।
पारब्रह्म के तेज में,	जहाँ ले राखूँ तोहि ॥ ३१ ॥
कवीर सुन्दरि यों कहे,	सुनिये कंत मुजान ।
बेगि मिलो तुम आयके,	नहि तो तजि हों प्रान ॥ ३२ ॥
कवीर हसना दूर कर,	रोने से कर चीन ।
दिन रोयै क्यों पाइये,	मेम पियारा मीत ॥ ३३ ॥
कवीर चिनगी विरहकी,	मो तन पडी चड़ाय ।
तन जरि धरती हू जरी,	अंबर जरिया जाय ॥ ३४ ॥
कवीर सुपनै रैनके,	पडा कलेजे छेक ।
जब सोऊँ तब दुड जना,	जब जागूँ तब एक ॥ ३५ ॥
कवीर वेद बुलाइया,	जो भावै सो लेय ।
जिहि जिहि औपध हरि मिलै,	सो मो औपध देय ॥ ३६ ॥
कवीर वेद बुलाइया,	पकरि क देखी बाँहि ।
वेद न वेदन जानसी,	करक कलेजे माँहि ॥ ३७ ॥

३५. सोना-अज्ञान । जागना-ज्ञान । ३६. वेद-संसारी उपदेशक ।
 ३७. करक-कसक ।

जाहु वैद घर आपने,	तेरा किया न होय ।
जिन या वेदन निरमई,	मला करेगा सोय ॥ ३८ ॥
अंदेसो नहि भागसी,	संदेसो कहिआय ।
कै हरि आया भागसों,	कै हरि पास गथाय ॥ ३९ ॥
आय न सकि हौं तोहि पे,	सकूँ न तुझै बुलाय ।
जियरा यौही लेहुगे,	विरह तपाय तपाय ॥ ४० ॥
या तन जाऊँ मसि करूँ,	धूँवा जाय सुरंग ।
मति वह राम दया करै,	वरसि बुझावै अंग ॥ ४१ ॥
या तन जाऊँ मसि करूँ,	लिखूँ राम को नाँव ।
लेखनि करूँ करक की,	लिखि लिखि राम पठाँव ॥ ४२ ॥
साँई सेवत जरि गई,	मांस न रहिया देह ।
साँई जब लग सेयहीं,	या तन है है खेह ॥ ४३ ॥
कै विरहिनि को पीच दे,	(कै)आप आय दिखलाय ।
आँठ पहरका दाक्षना,	मो पै सदा न जाय ॥ ४४ ॥
तन मन जोवन जारिके,	मसम किया सब देह ।
लठी कबीरा विरहिनी,	अजहूँ हूँदै खेह ॥ ४५ ॥
हं जु विरह की लाकडी,	समुझि समुझि धुँधवाय ।
छूटि परूँ जो विरह सों,	सघरी ही जलि जाय ॥ ४६ ॥
लाकडी जलि कुइला मये,	मो तन अजहूँ आग ।
विरह की ओदि लाकडी,	सिलग सिलग उठि जाग ॥ ४७ ॥

निसदिन दाक्षै विरहिनी, अंतर गति की लाय ।
 दास कवीरा क्यों बुझै, सतगुरु गये लगाय ॥ ४८ ॥
 तन मन जोवन यों जला, विरह अगिनि सों लागि ।
 मिरतक पीर न जानही, जानेगी वा आगि ॥ ४९ ॥
 चोट सतावै विरह की, सब तनजरजर होय ।
 मारन द्वारा जानि है, कै जिस लागि सोय ॥ ५० ॥
 अँखियन तो झाँई परी, पथ निहार निहार ।
 जिभ्या तो छाला पड्या, नाप पुकार पुकार ॥ ५१ ॥
 नैनन तो झडि लाइया, रहट बहै निछुवास ।
 पपिहा ज्यों पिव पिव रटै, पिया मिलन की आस ॥ ५२ ॥
 सब रग ताँती खाव तन, विरह वजावै नीत ।
 और न कोई सुनि सकै, कै साँई कै चीत ॥ ५३ ॥
 या तन का दिवला करूँ, वाती मेलूँ जीव ।
 लोह सीचूँ तेल ज्यौ, तब मुख देखूँ पीव ॥ ५४ ॥
 अँखिया प्रेम कसाइयाँ, जिन जानौ दुखदाय ।
 नाम सनेही कारनै, रो रो रात बिताय ॥ ५५ ॥

५३. खाव-एक प्रकार का बाजा ।

१. पा० अँखडिया प्रेम कनाइया, जनि जानो दुखडिया ।
 राम सनेही कारनै, राय रोय रातडिया ॥

'सोई आसू साजना, सोई लोग २ विढ़ाय ।
 जो लोचन ३ लोही चुनै, ४ तो जानो हित आय ॥५६॥
 हसुँ तो दुःख न वीसरूँ, रोजँ बल घटि जाय ।
 मनही मोहि विसूरना, ज्यों घुन काठ हि खाया ॥५७॥
 काठ हि घुन जो खाइया, खात न किनहु दीठ ।
 छाल उखाडी देखिये, भीतर जमिया चीठ ॥५८॥
 चीठर जमिया चूनका, बैरी विरहा खद ।
 बीछुरिया सो साजना, वेदन काहू लद ॥५९॥
 हसि हसि कंत न पाइया, जिन पाया तिन रोय ।
 हाँसी खेलौं पिव मिले, (तो) कौन दुहागिन होय ॥६०॥
 हाँसी खेलौं पिव मिलै, (तो) कौन सहे खुरसान ।
 काम क्रोध तृस्ना तजै, ताहि मिले भगवान ॥६१॥
 देखत देखत दिन गया, निसिभी देखत जाय ।
 विरहिनीं पिव पावै नही, जियरा तलफत जाय ॥६२॥
 ५ रोवत रोवत मैं फिरूँ, नैन 'गँवायो रोय ।
 सो बूटी पाऊँ नहीं, जासों जीवन होय ॥६३॥
 नैना अन्तर आव-तू, निसदिन निरखूँ तोहि ।
 ६ कव हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहि ॥६४॥

५७. विसूरना—सुसकना । ५८. चीठ—मेल ।

१. पा० जोइ आसू साजन जन । २ पा० बडाहि । ३. पा० लोह ।
 ४. पा० जानो हेत हियाहि । ५. पा० २परवत । ६. पा० गँवाऊ ।

नैन हमारे वावरे, छिन छिन लोरें तुझ ।
 ना तुम मिलो न मैं सुखी, ऐसी वेदन, मुझ ॥६५॥
 रनयों राग छिपाइयों, रहु रहु संख मझूर ।
 देवल देवल धाहरी, दिवस न ऊँगे सूर ॥६६॥
 तू मति जानै बीसरो, भीति घटै मम चित्त ।
 मरूँ तो तुम सुमिरत मरूँ, जिऊँ तो सुमिरूँ नित्त ॥६७॥
 फारि पटोरा धज करूँ, कामलियों पहराऊँ ।
 जिन जिन भेषै हरि मिलै, सो सो भेष बनाऊँ ॥६८॥
 गलौ तुम्हारे नाम पर, ज्यों पानी में लौन ।
 ऐसा विरहा मेलि के, नित दुख पावै कौन ॥६९॥
 सुखिया सब संसार है, खावै अरु सोवै ।
 दुखिया दास कवीर है, जागै अरु रोवै ॥७०॥
 यो विरहिनि का पिव सुआ, दाग न दीया जाय ।
 मांस हि गलिगलिभुइ परा, करंक रही लपटाय ॥७१॥
 मली भई जो पिव सुआ, नित उठि करता रार ।
 छुटी गलकी फांसरी, सोऊँ पाँव पसार ॥७२॥
 काग करंक ढँदोरिया, मुठि इक रहिया हाड ।
 जिस पिंजर विरहा वसै, याँस कहाँ रे हाड ॥७३॥

६८. पटोरा-रेशम के कपडे ।

१. पा० लोटें ।

मांस गया पिंजर रखा,	तमकन लागे काग ।
साहिव अजहुँ न आइया,	मंद हमारे भाग ॥७४॥
काग करंक न चूथि रे,	उहिरे परेरों जाय ।
मैं दुख दाश्री विरह की,	(तु) आया मास न खाय ॥७५॥
रगत मांस सब भपि गया,	नेक न किन्ही कान ।
अब विरहा कूकर भया,	लागो हाड चवान ॥७६॥
पिय विन जिय तरसत रहै,	पल पल विरह सताय ।
रैन दिवस मोहि कल नहि,	सिसकि सिसकि दम जाय ॥७७॥
जो जन विरही नाम के,	तिनकी गति हैं येह ।
देहीसें उद्यम करै,	सुमिरन करै विदेह ॥७८॥
मैं तुमको हूँत फिरूँ,	वहूँ न मिलिया राम ।
हिरदा माँहि उठि मिलै,	कुसल तुम्हारे काम ॥ ७९ ॥
अंक भरे भरि भेटिया,	मनमें बांधी धीर ।
कहै कविर वह क्यों मिले,	जब लग दोय सरीर ॥ ८० ॥
जीव विलंबा जीव सों,	अलख लख्यो नहि जाय ।
साहिव मिल न झल बुझै,	रही बुझाय बुझाय ॥८१॥
जीव विलंबा जीव सों,	पिय जो लिया मिलाय ।
लेख समाना (अ) लेख में,	अब कहु कहा न जाय ॥८२॥
सब को(य) विरहिनि पीयरी,	तू विरहिनि क्यूँ लाल ।
परचा पाया पीव का.	यों हम भई निहाल ॥ ८३ ॥

१. पा० ताकन । २. पा० दाशा । ३. पा० मन नहि बाधै धीर ।

४. पा० आनेनासी को सेज पर, भोजी भया निहाल ।

अविनासी की सेज का, कैसा है बनमान ।
 कहिये को सोभा नहीं, देखे ही परमान ॥ ८४ ॥
 अविनासी की सेज पर, केलि कर आनंद ।
 कहैं कविर वा सेज पर, विलसत परमानंद ॥ ८५ ॥
 तन मन जोवन जरि गया, विरह अगिनि घट लग ।
 विरहिनि जानि पीर को, क्या जानेगी आग ॥ ८६ ॥
 आग लगी आकास में, झरि झरि परे अंगार ।
 कबीर जलि कंचन भया, कांच भया संसार ॥ ८७ ॥
 तन मन जोवन जारिके, भसम किया सब देह ।
 विरहिनि जरिवरि मरि गई, क्या तू हूँदे खेह ॥ ८८ ॥
 लकड़ी जली कुइला भई, कुइला जलि भइ राख ।
 मैं विरहिनि ऐसी जली, कुइला भई न राख ॥ ८९ ॥
 दीपक पावक आनिया, तैल भि आना संग ।
 अतिनू मिलिके जोईया, उडि उडि परै पतंग ॥ ९० ॥
 हवस करे पिय मिलनकी, औ सुख चाहै अग ।
 पीड सहै बिनु पदमिनी, पूत न लेत डछंग ॥ ९१ ॥
 चूड़ी पटकुं पलंग सैं, चोछी लार्ज आगि ।
 जा कारन या तन घरा, ना सूती गल लागि ॥ ९२ ॥
 पावक रूपी नाम है, सब घट रहा समाय ।
 चित चक्रमक चहुँटे नहीं, धूँवा है है जाय ॥ ९३ ॥

सबही तर तर जायके, सब फल लीनो चीख ।
 फिर फिर मँगत कबीर है, दरसन ही की भीख ॥ ९४ ॥
 कबीर जिन कलु जानिया, सुख, निंदरी विहाय ।
 भेरे अवसी बूझिया, पड़ी पड़ी बिललाय ॥ ९५ ॥
 राम वियोगी विकल तन, ताहि न चीन्हें कोय ।
 तबोली का पान ज्यों, दिन दिन पीला होय ॥ ९६ ॥
 पील कँदौरी सांझा, केवल कहै इस रोग ।
 छौने लंघन नित करुं, राम पियारे जोग ॥ ९७ ॥
 जलो हमारा जीवना, यों मति जीवो कोय ।
 सब कोइ सूता निंद भरि, हमकुं निंद न होय ॥ ९८ ॥
 जिहि साई का सोच है, सो तन फूले नाहि ।
 जन कबीर सिमटा रहै, ज्यों अजा सिंघ पाँहि ॥ ९९ ॥
 मेरे मन होरी जरै, सब को खेले काग ।
 खेत सु मिरगा खा गया, राजा मांगे भाग ॥ १०० ॥
 फट रे हिया फाटै नहीं, साई तनो वियोग ।
 काला मुँह लीये फिरै, कह परमोधै लोग ॥ १०१ ॥

९५. मेरा=बास या लकड़ी का टूंड जो कि पानी में बहाया जाता है । इहा मेरा से तात्पर्य शरीर का है ।

९७. साई के वियोग में मैं कदूरी की तरह पीली हो गई । अज्ञानी लोग कहते हैं कि इसे पीलिया रोग हो गया है । मैंने प्यारे राम के मिलने के लिये पांच ज्ञान इन्द्रिया और मन के विषयों को त्याग दिया है ।

१. पा. मैं अबूझी बूझाया, पूरी पड़ी बलाय ।

फाटे दोढ़े मैं फिरुं,	नजर न आवै कोय ।
जिस घट मेरा सांझा,	सो क्यों छाना होय ॥१०१॥
विरहा घूरा अनि कहो,	विरहा है सुलतान ।
जा घट हरि विरहा नहीं,	सो घट सदा ममान ॥१०३॥
जा तनमें विरहा बसै,	ता तन लोहु न मांस ।
इतना बहुत जु लवरा,	हाड चाम अरु स्वास ॥१०४॥
पहिले अगनी विरह की,	पीछे प्रेम पियास ।
कहै कविर तब जानिये,	राम मिठन की आस ॥१०५॥
जितना अवगुण मैं किया,	तितना करै न कोय ।
काला हवा मूखडा,	धोय न सकहुं रोग ॥१०६॥
विरहीनी मर जायगी,	आतुर हाल शरीर ।
बेगी दर्शन दीजिये,	जीवै दास कबीर ॥१०७॥
मैं दीवानी नाम की,	कहै दिवानी कोय ।
मोहि दिवाना आ मिळा,	(तब) बंदी चंगी होय ॥१०८॥
कबीर पीर पिरावनी,	पिंजर पीर न जाय ।
एक पीर जो प्रीति की,	रही कलेजे छाय ॥१०९॥
सो सर मेरे मन बस्या,	जिहि सर मारा कालिह ।
सर बिनु सचु पाऊं नहीं,	तिहि सर अजहू मारि ॥११०॥
मो चित तिल नहि बोरौ,	तुम हरि दूर ययांड ।
यहि अंग औलू भाजसी,	जद तद तुम मिलियांड ॥१११॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव ।
 कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥१९॥
 कबीर खेत किसान का, मिरगन खाया झारि ।
 खेत विचारा क्या करै, धनी करै नहि वारि ॥२०॥
 कबीर अनहुआ हुआ, बहु रीता संसार ।
 पडा भुलावा, गाफला, गया कुबुद्धि हार ॥२१॥
 कबीर वा' दिन याद कर, पग ऊपर तल सीस ।
 मृतु मडल में आय के, विसरि गया जगदीस ॥२२॥
 कबीर वेडा जरजरा, कूडा खेवन हार ।
 हरये हरये तरि गये, बूडे जिन सिर भार ॥२३॥
 कबीर पांच पखेरुया, राखै पोष लगाय ।
 एक जु आयो पारधी, लड़ गय सबै उढाय ॥२४॥
 कबीर पैडा दूर है, बीच पडी है रात ।
 ना जानौ क्या होयगा, ऊँते परभात ॥ २५ ॥
 कबीर यह तन बन भया, करम जु भया कुलहार ।
 आप आपको काटि है, कहै कबीर विचार । २६ ॥
 कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छडै भोट ।
 घन अहरन बिच लोह ज्यों, धनी सहै सिर चोट ॥ २७ ॥
 कबीर नाव तो झांझरि, भरी बिराने भार ।
 खेवन् सो परिचै नहीं, क्यों कर उतरै पार ॥ २८ ॥

कवीर रसरी पाव पैं, कह सोवै सुख चैन ।
 सांस नगारा कूच का, वाजत है दिन रैन ॥ २९ ॥
 कवीर जंत्र न वाजई, टूटि गये सब तार ।
 जंत्र विचारा क्या करै, चला बजावन द्वार ॥ ३० ॥
 कवीर माफिल क्या करै, आया काल नजीक ।
 कान पकरिके ले चले, ज्यौ अजिया हि खटीक ॥ ३१ ॥
 कवीर पानी होज का, देखत गया बिलाय ।
 ऐसे ही जिव जायगा, काल जु पहुँचा आय ॥ ३२ ॥
 कवीर चित हि चपक्रिया, किया पयाना दूर ।
 कायथ कागज काढिया, दरगह लेखा पूर ॥ ३३ ॥
 कवीर केवल नाम कह, सुद्ध गरीबी चाल ।
 कूर बढाई बूढसी, मारी परसी झाल ॥ ३४ ॥
 कवीर पूंजी साहकी, तू जिन करै खुवार ।
 खरी विगुरचन होयगी, लेखा देती वार ॥ ३५ ॥
 मरेंगे मरि जायेंगे, कोय न लेगा नाम ।
 ऊजह जाय बसाहिंगे, छोडि बमन्ता नाम ॥ ३६ ॥
 लेखा देना सोहगा, जो दिल साँचा होय ।
 साँई के दरवार पैं, पला न पकडे कोय ॥ ३७ ॥
 कायथ कागज काढिया, लेखा वार न पारै ।
 जबलग सांस सरीरमें, नव छग नाम सँभार ॥ ३८ ॥

कबीर यह तन जात है, सकै तो ठौर लगाव ।
 कै सेवा कर साध की, कै गुरु के गुन गाव ॥१९॥
 कबीर खेत किसान का, मिरगन खाया झारि ।
 खेत विचारा क्या करै, धनी करै नहि वारि ॥२०॥
 कबीर अनहुआ हुआ, बहु रीता संसार ।
 पडा भुलावा, गाफला, गया कुबुद्धि हार ॥२१॥
 कबीर 'वा' दिन याद कर, पग ऊपर तल सीस ।
 मृतु मंडल में आय के, विसरि गया जगदीस ॥२२॥
 कबीर बेडा जरजरा, कूडा खेवन हार ।
 हरुये हरुये तरि गये, बूडे जिन सिर भार ॥२३॥
 कबीर पांच पखेरुवा, राखै पोष लगाय ।
 एक जु आयो पारधी, लइ गय सबै उडाय ॥२४॥
 कबीर पैडा दूर है, बीच पढी है रात ।
 ना जानौ क्या होयगा, ऊगँते परभात ॥ २५ ॥
 कबीर यह तन बन भया, करम जु भया कुलहार ।
 आप आपको काटि है, कहै कबीर विचार । २६ ॥
 कबीर सतगुरु सरन की, जो कोइ छाडै ओट ।
 घन अहरन बिच लोह ड्यौं, घनी सहै सिर चोट ॥ २७ ॥
 कबीर नाव तो झारि, भरी विराने भार ।
 खेवट भौ परिचै नहीं, क्यों कर उतर पार ॥ २८ ॥

कबीर रसरी पांव में,	कह सोवै सुख चैन ।
सांस नगारा कूच का,	वाजत है दिन रैन ॥ २९ ॥
कबीर जंत्र न बाजई,	टूटि गये सब तार ।
जंत्र विचारा क्या करै,	चला बजावन द्वार ॥ ३० ॥
कबीर गाफिल क्या करै,	आया काल नजीक ।
कान पकरिके ले चले,	ज्यौ अजिया दि खटीक ॥ ३१ ॥
कबीर पानी होज का,	देखत गया बिलाय ।
ऐसे ही जिव जायगा,	काल जु पहुँचा आय ॥ ३२ ॥
कबीर चित्त दि चमकिया,	किया पयाना दूर ।
कायथ कागज काढिया,	दरगह लेखा पूर ॥ ३३ ॥
कबीर केवल नाम कह,	सुद्ध गरीबी चाल ।
चूर बढाई बूडसी,	भारी परसी झाल ॥ ३४ ॥
कबीर पूंजी साहकी,	तू जिन करै खुवार ।
खरी विगुरचन होयगी,	लेखा देती वार ॥ ३५ ॥
मरेगे मरि जायंगे,	कोय न लेगा नाम ।
ऊजड जाय बसाहिगे,	छोडि बसन्ता गाम ॥ ३६ ॥
लेखा देना सोहरा,	जो टिल साँचा होय ।
साँई के दरवार में,	पला न पकडे कोय ॥ ३७ ॥
कायथ कागज काढिया,	लेखा वार न पार ।
जबलग सांस सरीरमें,	तब लग नाम सँभार ॥ ३८ ॥

जिनके नौवत धाजती, मैगल बधति वारि ।
 एकहि गुरुके नाम विन, गये जनम सब हारि ॥ ३९ ॥
 ढोल दमामा दुरवरी, सहनाई सँग भेरि ।
 औसर चले बजायके, है कोय राखि फेरि ॥ ४० ॥
 एक दिन ऐसा होयगा, सब सो पग विछोह ।
 राजा राना राव रँफ, मावध क्यों नहि होय ॥ ४१ ॥
 ऊनड खेडे टेकरी, घडि घडि गये कुम्हार ।
 गवन जैसा चलि गया, अंका को मरदार ॥ ४२ ॥
 आज काल के बीचमें, जंगल होगा वास ।
 ऊपर ऊपर हल फिरै, ढोर चरंगे घास ॥ ४३ ॥
 हाड जरै ज्यों लाकडी, केस जरै ज्यों घास ।
 सब जग जस्ता देखि करि, भये कबीर उदास ॥ ४४ ॥
 पानी केरा बुद बुदा, इस मानुसकी जात ।
 देखत ही छिप जायंगे, ज्यों तारा परमात ॥ ४५ ॥
 रात भँवाई सोय कर, दिवस गँवायो खाय ।
 हीरा जनम अमोल था, कौडी बदले जाय ॥ ४६ ॥
 कै खाना कै खोवना, और न कोई चीत ।
 सतगुरु शब्द बिसारिया, आदि अंत का भीत ॥ ४७ ॥
 निगडक बैठा, नाम विनु, चेति न करै पुकार ।
 यह तन जलका बुदबुदा, बिनसत नाही वार ॥ ४८ ॥

यह औसर चेत्यो नहीं, पसु ज्यौ पाली देह ।
 सत्त नाम जान्यो नहीं, अंत पडे मुख खेह ॥४९॥
 आठे दिन पाले गये, गुरु सों किया न हेत ।
 अब पछितावा क्या करै, चिटियां चुगि गइ खेत ॥५०॥
 आज कहै मैं कालि भजुँ, काल कहै फिर काल ।
 आज काल कैं करत ही, औसर जासी चाल ॥५१॥
 काल करै सो आज कर, सबहि साज तुव साथ ।
 काल कालि तू क्या करै, काल काल के हाथ ॥५२॥
 काल करै सो आज कर, आज करै सो अब ।
 पलमें परलय होयगी, बहुरि करेगा कव्व ॥५३॥
 पाव पलक की सुधि नहीं, करै काल का साज ।
 काल अचानक मारसी, ज्यौ तीतर को बाज ॥५४॥
 पाव पलक तो दूर है, मो पै कहा न जाय ।
 ना जानौ क्या होयगा, पल के चौधे भाय ॥५५॥
 ऊँचा दीसै धौहरा, माँडी चीती पोल ।
 एक गुरु के नाम विना, जम मारेंगे रोल ॥५६॥
 ऊँचा मंदिर मेढियां, चूना कली दुलाय ।
 एकहि गुरु के नाम विन, जदि तदि परलै जाय ॥५७॥
 ऊँचा महल चुनाइया, सुवरन कली दुलाय ।

ते मन्दिर खाली पड़े, रहै मसाना जाय ॥५८॥
 १ऊँचा महल चूनावते, करते होड़म होड़ ।
 ने मंदिर खाली पड़े, गये पलकमें छोड़ ॥५९॥
 २सातों शब्द जु बाजते, घरि घरि होने राग ।
 ते मंदिर खाली पड़े, बैठन लागे काग ॥६०॥
 कहा चुनावै मेडियां, चूना माटी लाय ।
 मीच सुनैगी पापिनी, दौरि कि लेगी आय ॥६१॥
 कहा चुनावै मेडियां, छँची भीत उतारि ॥
 घर तो साढ़े तीन दूध, घना तु पौने चारि ॥६२॥
 पांच तत्व का पूतला, मानुस धरिया नाम ।
 दिना चार के कारनै, फिर फिर रोकै ठाम ॥६३॥
 पाकी खेती देखिके, गरबै कहा किसान ।
 अजहू झोला बहुत है, घर आवै तब जान ॥६४॥
 ३हाड जले लकड़ी जले, जले जलावन द्वार ।
 कौतिक हारा भी जले, कासों करुं पुकार ॥६५॥
 घर रखवाला बाहिरा, चिडियां लाया खेत ।
 आधा परधा ऊवरै, चेति सकै तो चेत ॥६६॥
 मौत विसारी बावरी, अचरन कीया कौन ।
 तन माटीमें मिलि गया, उर्यौ आटामें लौन ॥६७॥

१. पा० सुवरन कली दुलावते, । २. पा० पाचौ शब्द जु बाजते, ।

३. पा० मडा ।

जनमै मरन विचारि के,	कूरे काम निवारि ।
जिन पथा तोहि चालना,	सोई पथ संवारि ॥६८॥
जिन गुरुकी चोरी करी,	गये नाम गुन भूल ।
त विघना बागल रचे,	रहे अरथ मुख झूल ॥६९॥
राम नाम जाना नहीं,	पाला सकल कुटुंब ।
धधा ही ये पचि मरा,	वार भई नहि धुंव ॥७०॥
रामनाम जाना नहीं,	हुआ बहुत अकाज ।
बूडोगे रे बापुरे,	बड़े बड़ों की लाज ॥७१॥
रामनाम जाना नहीं,	ता मुख आन घरंम ।
कै मूसा कै कातरा	खाता गया जनम ॥७२॥
राम नाम जाना नहीं,	मेला मना विसार ।
ते नर हाली बालढी,	सदा पराये वार ॥ ७३ ॥
राम नाम जाना नहीं,	बात बिनूडी भूल ।
देहरिसा हितु विसारिया,	अंत पड़ी मुख धूल ॥ ७४ ॥
राम नाम जाना नहीं,	चूके अब की बात ।
माटी मिलन कुम्हारकी,	बनी सहेगा लान ॥ ७५ ॥
माटी कहे कुम्हारको,	क्या तू रौंदै मोहि ।
एक दिन ऐसा होयगा,	मै रौंदैगो तोहि ॥ ७६ ॥

७० धुंव—डका, सुपश ।

१. पा० जिन जिन पंथों चालना, सो निज पथ संवारि ।

२. पा० हेरत इहारी हारिया, पटत पड़ी मुख धूल ।

लकड़ी कहैं लुहारसों, तू मति जरै मोहि ।
एक दिन ऐसा होयगा, मैं जरौंगी तोहि ॥ ७७ ॥
कदा किया हम आयके, कदा करेंगे जाय ।
इत के भये न ऊतके, चाले मूल गँवाय ॥ ७८ ॥
जग जहदा में राचिया, झूठे कुलको लाज ।
तन छीजै कुल विनसि है, रटै न नाम जहाज ॥ ७९ ॥
यह तन काचा कुंभ है, लिया फिरै ये साथ ।
टपका लागा फुटि गया, बहू न आया हाथ ॥ ८० ॥
यह तन काचा कुंभ है, चोट चहुं दिस खाय ।
एक हि गुरुके नाम विन, जदि तदि परलै जाय ॥ ८१ ॥
यह तन काचा कुंभ है, माँहि किया रहिवास ।
कबीर नैन निहारिया, नहि जीवनकी आस ॥ ८२ ॥
दुनिया थांडा दुख का, भरा मुँहा मुँह मुख ।
आदी अलुह राम की, कुरलै कौनी कृख ॥ ८३ ॥
दुनिया के मैं कुछ नहीं, मेरे दुनिया कात ।
साहिब दर देखै खडा, दुनिया दोजख जात ॥ ८४ ॥
दुनिया सेती दोसती, होय भजनमें भंग ।
एकाएकी राम सों, कै साधन के संग ॥ ८५ ॥
दुनियाकें धोखै मुआ, चला कुद्वे की कानि ।
तब कुलकी क्या लाज है, जब ले धरा मसानि ॥ ८६ ॥

कुल खोये कुल ऊबरे,
 राम निकुल कुल भेटिया,
 कुल करनी के कारनै,
 तब कुल काको लाजि है,
 कुल करनी के कारनै,
 तब कुल काको लाजि हैं,
 कहत सुनत जग जात हैं,
 कहैं कबिर सुन प्रानिया,
 पानी का सा बुद बुदा,
 ऐसा जियरा जायगा,
 काया मँजन बया करैं,
 लजल होय न लूटसी,
 लजल पहिनै कापडा,
 कबीर गुरुकी भक्ति विन,
 मलमल खासा पहिरते,
 नेहा होकर चालते,
 महलन मांहीं पोढते,
 ते सपने दीसे नहीं,
 महलन मांहीं पोढते,
 लत्रपती की छारमें,
 जंगल देशी राखकी,
 तेभी होते मानवी,

कुल राखै कुल जाय ।
 सब कुल गया विलाय ॥ ८७ ॥
 हंसा गया विगोय ।
 चारि पाँव का होय ॥ ८८ ॥
 ढिग ही रहिगो राम ।
 (जब) जम की धूमाधाम ॥ ८९ ॥
 विषय न सूझै काल ।
 साद्वि नाम सम्हाल ॥ ९० ॥
 देखत गया विलाय ।
 दिन दस ठोली लाय ॥ ९१ ॥
 कपडा धोयम धोय ।
 सुख निंदरि नहि सोय ॥ ९२ ॥
 पान सुपारी खाय ।
 बाँधा जमपुर जाय ॥ ९३ ॥
 खाने नागर पान ।
 करते बहुत गुमान ॥ ९४ ॥
 परिमल अंग लगाय ।
 देखत गये विलाय ॥ ९५ ॥
 परिमल अंग लगाय ।
 गदहा लोटे जाय ॥ ९६ ॥
 उपरि उपरि हरियाय ।
 करते रंग रलियाय ॥ ९७ ॥

मेरा संगी कोय नहि,	सबै स्वाग्धी लोय ।
मन परतीति न ऊपजै,	जिय विश्वास न होय ॥१८॥
थलि जो चरता मिरगला,	बेधा इक जूं सौंन ।
हम तो पथी पंथ मिर,	हरा चरेगा कान ॥१९॥
जिसको रहना उत घरा,	सो क्यों तोड़ै मीत ।
जैसे परघर पाहुना,	रहै उठाये चीत ॥१००॥
इत परघर उत है घरा,	बनिजन आये हाट ।
करम करीना बेचि के,	उठि करि चाळो बाटा ॥१०१॥
ज्यों कोरी रेजा चुनै,	भीरा आवै छोर ।
ऐसा लेखा मीच वा,	दौरि सकै तो दौर ॥१०२॥
कोठे ऊपर दौरना,	सुख निंदरि नहि सोय ।
पुनै पाया देहरा,	ओछी दौर न खोय ॥१०३॥
मैं मेरी तू जनि करै,	मेरी मूल विनासि ।
मेरी पगका पैखडा,	मेरी गलकी फासि ॥ ०४॥
मैं मैं बडी बलाय है,	सको तो निकसु भागि ।
कवलग राखो रामजी,	रुई लपेटि आगि ॥१०५॥
मोर तोर की जेवरी,	बल बंरा संसार ।
कदा सुकुलवा सुतकलिष्ठ,	दाक्षिन वारवार ॥१०६॥
मोर तोर की जेवरी,	गल बंधा संसार ।
दास कविग क्यों बंनै,	जाक नाम आधार ॥१०७॥

१०४. पैखडा-बेडी ।

१. पा० चुनता । २. पा० कायस कूटे वस्तु फल ।

नान्हा कातौ चित दे, मँहगे मोल विकाय ।
 ग्राहक राजा राम है, औरन नीरा जाय ॥१०८॥
 तन सराय मन पाहरू, मनसा उत्तरी आय ।
 को काहू का है नही, देखा ठोंकि बजाय ॥१०९॥
 राम कहैतै खिन्न परै, कुष्ट होय गलि जाय ।
 सूकर है करि औतरै, नाक बूडता खाय ॥११०॥
 पुर पट्टन काया पुरी, पाच चोर दस द्वार ।
 जमराजा गढ़ भेलसी, सुमरि लेहु करतार ॥१११॥
 पीपर सूना फूल विन, फल विन सूनी राय ।
 एकाएकी मानुषा, टप्पा दीया आय ॥११२॥
 राज दुवारे बांधिया, मूढी धुनै गयंद ।
 मनुष जनम कब पायंहूँ, कब भजिहूँ गोविंद ॥११३॥
 आये हैं ते जायंगे, राजा रक फकीर ।
 एक मिवासन चढि चले, (एक) बांधे जात जँजीर ॥११४॥
 या मन गहि जो थिर रहे, गहिरी धूनी गाहि ।
 चलती विरिया उठि चला, हस्ती घोड़ा छाडि ॥११५॥
 तू मति जानै बावरे, मेरा है सब कोय ।
 पिंड मान सो बधि रहा, सो नहि अपना होय ॥११६॥
 दीन गँवायो दुनि सँग, दुनी न चाली साथ ।
 पाँव कुल्हाडी मारिया, मूर्ख अपने हाथ ॥११७॥
 मैं भौरा तुहि वरजिया, बन बन घोस न लेय ।
 अटकेगा झुंडुं बेलसों, तहप तड़प जिय देय ॥११८॥

वाढी के बिच भँवर था,
 सो तो भौंरा उड़ि गया,
 ऐसी गति संसार की,
 एक पड़ी जिहि गाड़ में,
 एक सीस का मानवा,
 लंकापति रावन गया,
 कालचक्र चक्की चलै,
 सगुन अगुन दीय पाटला,
 राम भजो तो अब भजो,
 हरिया हरिया रूखड़े,
 भविनु भाव न ऊपजै,
 जब हिरदे से भै गया,
 भयसे भक्ति करै सबै,
 भय पारस है जीवको,
 डर करनी डर परमगुरु,
 डरता रहै सो ऊबरै,
 खलक मिला खाली हुआ,
 वांझ हिलावे पालना,
 यह विरियाँ तो फिरि नहि,
 आया लाभ हि कारनै,

कलियाँ लेता वास ।
 तजि वाढीकी आस ॥११९॥
 ज्याँ गाढर की ठाट ।
 सबै जाहि तिहि बाट ॥१२०॥
 करता बहुतक हीस ।
 बीस भुझा दम सीस ॥१२१॥
 बहुत दिवस औ रात ।
 तामे जीव पिसात ॥१२२॥
 बहोरि भजोगे कब ।
 इधन हो गये सब ॥१२३॥
 भै विनु होय न प्रीति ।
 पिटी सकलरस रीति ॥१२४॥
 भयसे पूजा होय ।
 निरभय होय न कोय ॥१२५॥
 डर पारस डर सार ।
 गाफिल खावे मार ॥१२६॥
 बहुत किया बकवाद ।
 तामे कौन सवाद ॥१२७॥
 मन में देखु विचार ।
 जनम जुआ मति डार ॥१२८॥

बैल गढन्ता नर गढा,	चूका सींग रु पूछ ।
एक हि गुरुके नाम बिनु,	धिक दाढ़ी धिक मूल ॥१२९॥
यह मन फूला विषय बन,	तहां न लावो चीत ।
सागर क्यों ना उहि चलो,	सुनी वैन मन पीठ ॥१३०॥
कहैं कधीर पुकारि के,	चेत नहीं कोय ।
अवकी बिरियो चेति है,	सो साहिबका होय ॥१३१॥
धोखे धोखे जुग गया,	जनमहि गया सिराय ।
थिति नहि पकड़ो आपनी,	यह दुःख कहा समाय ॥१३२॥
केतो कह बुझाय के,	परहथ जीव बिकाय ।
में खैचू सत लोकको,	^१ सीधा जमपुर जाय ॥१३३॥
झूठा सब संसार है,	कोउ न अपना पीठ ।
सत्तनाम को जानि ले,	चलै सो भौजल जीत ॥१३४॥
एकदिन ऐसा होयगा,	कोय काहुका नौहि ।
घरकी नारी को कहै,	^२ तनकी नारी जाहि ॥१३५॥
आठ प्रहर यौही गया,	माया मोह जंजाल ।
सत्तनाम हिरदे नहीं,	जीत लिया जम काल ॥१३६॥
मदिर माँही झलकती,	दीवा की सो ज्योति ।
हस बगज चलि गया,	काढ़ी घरकी छोति ॥१३७॥

१३५. तन की नारी—नाडी ।

१ पा० बाधा । १ पा० करकी ।

वारी वारी आपने, चले पियारे मीत ।
 तेरी वारी जीयरा, नियरे आवै नीत ॥१३८॥
 सेस नागके सहस फन, फन फन जिभ्या दोष ।
 नरके एरै जीभ है, रहै ताहि में सोय ॥१३९॥
 परदै रहती पदामिनी, वरती कुलकी कान ।
 छडी जु पहुँची कालकी, छोड भई मैदान ॥१४०॥
 मछरी यह छोडौ नही, धीमर तेरो काल ।
 जिहि जिहि ढावर घर करो, तहँ तहँ मेले जाल ॥१४१॥
 पानीमे की मालरी, वर्यौ नै पकर्या तीर ।
 कटिया खडकी जालकी, आई पहुँचा कीर ॥१४२॥
 हे मतिहीनी मालरी, राखि न सकी शरीर ।
 सो सरवर सेवा नही, जाल काल नहि कीर ॥१४३॥
 हे मतिहीनी मालरी, धीमर मीत कियाय ।
 कदि समुद्रसे रुसना, छीलर चित्त दियाय ॥१४४॥
 हे मतिहीनी मालरी, छीलर माढी आलि ।
 ढावरिया छुटै नहों, सकै तुसमुँद सँभाल ॥१४५॥

१३८. शास्त्र का कथन है कि शेष नाग भी अपनी दो हजार जिह्वाओं से हरि का भजन करता है । वह भी अपनी । जिह्वाओं को प्रपञ्च से रोके रहता है । नर के एक जीभ है परंतु यह उसे भी नहीं रोक सकता ।

१४२. कीर—धीमर । १४५. आल—क्रीडाविहार ।

मछली फिरि फिरि बाहुरी, ताकि समुंदर तीर ।
 दरिया भीतर घर किया, कहा करेगा कीर ॥१४६॥
 आंखदियौ रतनालियां, चेजा करै पताल ।
 मैं तोहि बूझौ माली, तू क्यों बंधी जाल ॥१४७॥
 सुखन लागै केवडा, टूटन लागै डार ।
 पानी की कल जानता, चला सो सींचन हार ॥१४८॥
 भाई बीर बटाउवा, मरि भरि नैनन रोय ।
 जाका था सो ले लिया, दीन्हा था दिन दोय ॥१४९॥
 मरती विरियाँ पुन करै, जीवत बहुत कठोर ।
 कहैं कविर क्यों पाइये, काढै खाँडै चोर ॥१५०॥
 कबीर यह चिन्तावनी, भूत संसार गँवाय ।
 जो पहिले सुख भोगिया, तिनका गुड ले खाय ॥१५१॥
 जब रंग था तब ना रंगा, हरि रंग मान मजीठ ।
 अब पछताये क्या हुआ, जब रंग दिन्हा पीठ ॥१५२॥
 सुमरिन का संसै रहा, पछितावा मन माँहि ।
 कहैं कबीरा रामरस, सघरा पीया नाँहि ॥१५३॥
 विषय वासना उरझिकर, जनम गँवाया बाद ।
 अब पछितावा क्या करै, निजकरनी कर याद ॥१५४॥
 कबीर दरदीवान जो, क्यों करि पावै दाद ।
 पहिले बुगी कमायके, पीछै करि फिरियाद ॥१५५॥

एक बुन्द ते सब किया,	नर नारी का नाम ।
सो तू अन्तर खोजि ले,	सकल वियापक राम ॥१५६॥
एक बुन्द ते सब किया,	यह देहका विस्तार ।
सो तू क्यों बीसारिया,	अंधा मूढ गँवार ॥१५७॥
सब घट भीतर राम है,	ऐसा आप सुजान ।
आप आप से बाँधिया,	आपै मया अजान ॥१५८॥
पाँच धातुका पिंजरा,	सो तो अपना नाँहि ।
अपना पिंजर तहँ वसे,	अगम अंगोचर माँहि ॥१५९॥
सगा हमारा रामजी,	सहुदर है पुनि राम ।
और सगा सब सगपगा,	कोइ न आवै काम ॥१६०॥
चले गये सो ना मिले,	किसको पूछं बात ।
मात पिता सुत बान्धवा,	झूठा सब संघात ॥१६१॥
राम बिसारो बावरा,	अचरज किन्ही येह ।
घन जोवन चल जायगा,	अंत होयगी खेह ॥१६२॥
मनुस जन्म तोकुं दियो,	भजिवेको हरिनाम ।
कहैं फविर चेत्यो नहीं,	लगे औरहि काम ॥१६३॥
मनुस जन्म तोकुं दियो,	भजिवेको गोविन्द ।
अपनी करनी आपको,	कदा बंधाये फंद ॥१६४॥
कबीर केवल नामकी,	जबलमि दीपक वाति ।
तेल घटा वाती झूठी,	हव सोवे दिनराति ॥१६५॥

मनुसा जन्महि पायके, भज्यो नरघुपतिराय ।
 तेली केरा बैल ज्यु, फिरिफिरि फेरा खाया ॥१६६॥
 जो तूं परा है फंदमें, निकसेगा कब अंध ।
 माया मद तोकूं चढा, मत भूले मति मंद ॥१६७॥
 कवीर काया पाहुनी, हंस बदाऊ मॉहि ।
 ना जानूं कब जायगी, मोहि भरोसा नाहि ॥१६८॥
 भाटी केरा पूतला, मानुष धरिया नाम ।
 एक कला के बीछो, विकल भया सब ठाम ॥१६९॥
 यह अवसर चेत्यो नहीं, चूक्यो मोठी घात ।
 माटी मिलत कुंभार की, बहुत सहेगो लात ॥१७०॥
 दरद न लेवै जात को, सुआ न राखै कोय ।
 सगा उसीको कीजिये, (जो) नेह निवाहू होय ॥१७१॥
 मनुषा जन्म हि पाय के, जब लगि भज्यो न राम ।
 जैसे कुवा जल विना, ताको नाही काम ॥१७२॥
 जिन घर नौवत बाजती, होत छतीसों राग ।
 सो घर भी खाली पड़े, बैठन लागे काग ॥१७३॥
 क्या करिये क्या जोड़िये, थोड़े जीवन काज ।
 छांढि छांढि सब जात है, देह गेह धन राज ॥१७४॥
 जागो लोको मत सुनो, ना करु निंदसे प्यार ।
 जैसा सपना रैनका, ऐसा यह संसार ॥१७५॥

सब कोई मरि जात है.	काल काल की फाँस ।
सत्तनाम प्रकारतां,	कोइक उवरा दास ॥१७६॥
एक बुद के कारनै,	रोता सब संसार ।
^१ (अ)नेक बुंद खाली गये,	तिनका नहीं विचार ॥१७७॥
मरुं मरुं सब को(इ) कहै,	मेरी परै वढाय ।
मरना था सो मरि चुका,	अब को मरनै जाय ॥१७८॥
मन मूआ माया मुई,	संशय मुभा शरीर ।
अविनाशी जो ना मरे,	तो क्यों मरे कबीर ॥१७९॥
मरते मरते जग मुआ,	सुत वित दारा जोय ।
राम कबिरा यौ मुआ,	एक बराबर होय ॥१८०॥
ना मूआ ना मरि गया,	नहि आवै नहि जाय ।
यह चरित्र करतारका,	उपजै और समाय ॥१८१॥
जाय मरै मो जीव है,	रमता राम न होय ।
जन्म मरनसँ न्यार है,	मेरा साहिब सोय ॥१८२॥
हरि मरि है तो,	हम हूँ मरि हैं ।
हरि न मरै,	हम काहे को मरि हैं ॥१८३॥
नर नारायन रूप है,	तू मति जानै देह ।
जो समझे तो ममज्ञ जे,	खलक पलकमें खेह ॥१८४॥
अर्ध कपाले झूलता,	सो दिन कर ले याद ।
जठरा मेती राखिया,	^२ नॉहि पुरुष कर याद ॥१८५॥

अहिरन की चोरी करै, करै सूइ का दान ।
 ऊँचा चढ़ि कर देखता, वैतिक दूर विमान ॥१८६॥
 कबीर पट्टण कारिवां, पांच चोर दस द्वार ।
 जम राना गढ़ भेलसी, बोल गले गोपाल ॥१८७॥
 आया अन् आया भया, जब राता संसार ।
 पढा भुलावा गाफिला, गये कुबुद्धि द्वार ॥१८८॥
 पानी ज्यों रि तलावका, दस दिसि गया विछाय ।
 यह सब यों ही जायगा, सकै तो ठाढ़ लाय ॥१८९॥
 माय विहानी वाप बिड़, हम भी मांस विडांहि ।
 दरिया केरी नाव ज्युं, संजोगै मिलि जांहि ॥१९०॥
 आंखि न देखे वावरा, सद्ध सुनै नहि कान ।
 सिरके केस उजल भये, अवहं निपट अजान ॥१९१॥
 क्यों खोवै नरतन त्रिधा, परि विषयन के साथ ।
 पांच कुल्हाडी मारही, मूरख अपने हाथ ॥१९२॥
 चेठ सवरे वावरे, फिर पाछे पछताय ।
 लुझको जाना दूर है, कहें कबीर जगाय ॥१९३॥
 मूरख शब्द न मानई, धर्म न सुनै विचार ।
 सत्य सब्द नहि खोजई, जावै जमके द्वार ॥१९४॥
 राजपाट धन पाय कर, क्यों करता अभिमान ।
 पाडोसीकी जो दशा, लड़ सो अपनी जान ॥१९५॥

यह नर गर्व भुलाइया, देखी माया झौ
 कहै कविर अब चेत ह, सुमिरि पाछलो कौल ॥१९६॥
 समुझाये समझे नही, धरे बहुत अभिमान ।
 गुरुका शब्द उछेदके, कहत सकल हम जान ॥१९७॥
 ज्ञानी होय सो ही, बूझै सब्द .इमार ।
 कहै कविर सो वांचि है, और सकल जम धार ॥१९८॥
 साधु महातम ना कहै, गुरुवन दिया लखाय ।
 कहै कविर वा ^१गुरुका, ^२चेला चौरासि जाय ॥१९९॥
 त्वापी सेवकसँ कहै, सुनरे चेत अचेत ।
 पीतल ही का पारखु, नहि हीरासे हेत ॥२००॥
 कबीर मनुवा मोर है, संसय रूपी सांप ।
 खाया पीया पचि गया, अन्तर प्रगटे आप ॥२०१॥

उपदेस को अंग ।



जीवदया	क्ति	राखिने,	साखी	कहे	कवीर ।
भौसागर	के	जीव	को,	आनि	लगावै तीर ॥ १ ॥
अंतर	याहि	विचारिया.	साखी	कहो	कवीर ।
भौसागर	में	जीव	है,	सुनि	कै लागै तीर ॥ २ ॥
काल	काल	तत्काल	है,	बुरा	न करिये कोय ।
अनबोवै	लुनता	नहीं,	बोवै	लुनता	होय ॥ ३ ॥
काल	काम	तत्काल	है,	बुरा	न कीजै कोय ।
भले	मलाई	पै	लहे,	बुरे	बुराई होय ॥ ४ ॥
जो	तोको	कांटा	बुवै,	ताको	बो तू फूल ।
तोहि	फूलको	फूल	है,	वाको	है तिरसूल ॥ ५ ॥
दुरबल	को	न	सताइये,	जाकी	मोटी हाय ।
बिना	जीवकी	साँभ	से,	लोह	भसम है जाय ॥ ६ ॥
कवीर	आप	ठगाइये,	और	न ठगिये	कोय ।
आप	ठगे	सुख	उपजै,	और	ठगे दुःख होय ॥ ७ ॥
या	दुनियामें	आयके,	छाँडि	देय	तू ऐंठ ।
लेना	है	सो	लेय	ले,	ऊठि जात है पैठ ॥ ८ ॥
खाय	पकाय	लुटाय	ले,	यह	मनुवा मिजमान ।
लेना	है	सो	लेय	ले,	यही गोय मैदान ॥ ९ ॥

३. अनबोवै-बिना बीज डाले । लुनता नहीं-काटता नहीं । ९. गोय-गोंद ।

खाय पकाय लुटायके,	करिले अपना काम ।
चलनी विरिया रे नरा,	संग न चलै छदाम ॥ १० ॥
लेना होय सो रत्न ले,	कही सुनीमति मान ।
कही सुनी जुगजुग चली,	आवा गवन ध्यान ॥ ११ ॥
सत ही में सत बांई,	रोटी में ते टुक ।
कहै कबिर ता दासको,	कबहु न आवि चूक ॥ १२ ॥
देह धरे का गुन यही,	देह देह कछु देह ।
बहुरि न देही पाइये,	अब की देह सुदेह ॥ १३ ॥
कहै कबीर पुकारि कै,	दो बातें लिखि लेय ।
कै साहिव की बदगी,	मुखोंको कछु देय ॥ १४ ॥
कहै कबीरा देय तूं,	जबलग तेरी देह ।
देह खेह है जायगी,	(फिर) कौन कहेगा देह ॥ १५ ॥
देह खेह है जायगी,	(फिर) कौन कहेगा देह ।
निश्चय कर उपकारही,	जीवन का फल येह ॥ १६ ॥
हाथ बड़ा हरि भजन करि,	द्रव्य बड़ा कछु देह ।
अकल बड़ी उपकार करि,	जीवन का फल येह ॥ १७ ॥
गांठि होय सो हाथ कर,	हाथ होय सो देह ।
आगे हाट न बनिया,	लेना है सो लेह ॥ १८ ॥
यहां विसादन करि चलो,	आगे बिसयी बाट ।
स्वर्ग विसादन ना मिले,	ना बनिया ना हाट ॥ १९ ॥

धर्म किये धन ना धरे, नदी न घटै नीर ।
 अपनी आँखों देख लो, यों कथि कहै कवीर ॥ २० ॥
 कवीर यह तन जात है, सको तो राखु बहोर ।
 खाली हाथों वह गये, जिनके लाख करोर ॥ २१ ॥
 स्वामी है संग्रह करै, दूजै दिन का नीर ।
 तरै न तरि और को, यों कथि कहै कवीर ॥ २२ ॥
 या दुनिया हो रोजकी, मत कर यासै हेत ।
 गुरु चरनन चित लाइये, जो पूरन मुख देत ॥ २३ ॥
 हस्ती चढिये ज्ञान का, सहज दुलीचा द्वार ।
 स्वान रूप संसार है, भुंकर दे झक मार ॥ २४ ॥
 कवीर काहेको डरै, सिरपर मिरजन द्वार ।
 हस्ती चढि दुरिये नहीं, कृकर भुसै हजार ॥ २५ ॥
 ऐसी नानी बोलिये, मन का आपा खोय ।
 औरन को सीतल करै, आपुहि सीतल होय ॥ २६ ॥
 जगमे बैरी कोय नहि, जो मन सीतल होय ।
 या आपा को द्वारि दे, दया करै सब कोय ॥ २७ ॥
 कहने को कहि जान दे, गुरु की सिख तूं लेय ।
 साकट जन औ स्वान को, फेर जवाब न देय ॥ २८ ॥
 कवीर तहाँ न जाइये, जहँ जो कुल को हेत ।
 साधुपनो जानै नहीं, नाम याप को लेत ॥ २९ ॥
 कवीर तहाँ न जाइये, जहाँ सिद्ध को गँव ।
 स्वामी कहै न बैठना, फिर फिर पूछे नाँव ॥ ३० ॥

कबीर संगी साधु का, दल थाया भरपूर ।
 इंद्रिज को तब बांधिया, या तन कीया घूर ॥३१॥
 इष्ट मिले अरु मन मिले, मिले सकल रस रीत ।
 कहैं कविर तहाँ जाइये, यह संतन की भीत ॥३२॥
 आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक ।
 कहैं कविर नहि उलटिये, वही ^१एकही एक ॥३३॥
 गारी पोटा ज्ञान, जो रंचक उरमें जरै ।
 कोटि सँवारै काम, वैरि उलटि पाँवन परै ॥३४॥
 कोटि सँवारै काम, वैरि उलटि पाँवन परै ।
 गारी सौ कया हानि, हिरदै जु यह ज्ञान धरै ॥३५॥
 गारी ही सैं ऊपजै, कलह कष्ट औ मीच ।
 * हारि चलै सो सन्न है, लागि मरै सो नीच ॥३६॥
 हारजन तो हारा भला, जीतन दे संसार ।
 हारा तो हरि सौ मिले, जीता जमके ^२द्वार ॥३७॥
 * जैसा घट तैसा मता, घट घट और सुभाव ।
 जा घट हार न जीत है, ता घट ब्रह्म समाव ॥३८॥
 जैसा भोजन खाइये, तैसा ही मन होय ।
 जैसा पानी पीजिये, तैसी बानी सोय ॥३९॥
 कथा कीरतन कलि विषे, भौ सागर की नाव ।
 * कहैं कविर जन तरनको, नाँही और उपाव ॥४०॥

कथा कीरतन करनकी, जाके निसदिन रीत ।
 कहै कविर ता दाससों, निश्चै कोजै , प्रीत ॥ ४१ ॥
 कथा कीरतन छौंड़ि कै, करै जु और उपाव ।
 कहै कविर ता साधुके, पास कोइ मति जाव ॥ ४२ ॥
 कथा कीरतन रातदिन, जाके उद्यम येह ।
 कहै कविर ता साधुके, चरन कमलकी खेह ॥ ४३ ॥
 कथा करो करतारकी, निसदिन साज सकार ।
 काम कथा को परिहरो, कहै कवीर विचार ॥ ४४ ॥
 कामकथा सुनिये नहीं, सुनि कै उपजै काम ।
 कहै कवीर विचार के, विसरि जात है नाम ॥ ४५ ॥
 कथा करो करतार की, सुनो कथा करतार ।
 आन कथा सुनिये नहीं, कहै कवीर विचार ॥ ४६ ॥
 आन कथा अंतर परै, ब्रह्म जीवमें सोय ।
 कहै कविर यह दोष बड़, सुनि लीजै सब कोय ॥ ४७ ॥
 कथा कीरतन कलि विषे, तरवे को उपकार ।
 सुने सुनावै प्रेम सों, यह उपदेस हमार ॥ ४८ ॥
 कथा कीरतन सुननकी, जो कोय करै मनेह ।
 कहै कविर ता दासकी, मुक्तिमें नहि संदेह ॥ ४९ ॥
 बहते को बहि जान दे, मत पकड़ारो और ।
 सपझाया समझै नहीं, देय धका दो और ॥ ५० ॥

बहने को मत बहन दो,
 कहो सुन्यो मानि नहीं,
 बदे तूं कर बदगी,
 औसर मानुस जनमका,
 बार बार तो सों कहा,
 बनजारेका बैल ज्यु,
 बनजारे को बैल ज्यु,
 एकन के दूना भया,
 मन राजा नायक भया,
 है है है है है रही,
 बनजारे के बैल ज्यु,
 खँड लादि भुस खात है,
 जीवत कोय समुझै नहि,
 तनमनसै परिचय नहीं,
 जो कोय समुझै सैनमें,
 सैन बैन समुझै नहीं,
 जिहि जियरी ते जग वैधा,
 जासी आटा लौन ज्यौ,
 जिन गुरु जैसा जानिया,
 ओसे प्यास न भागसी,

कर गहि ऐंचहु ठौर ।
 सन्द कहो दुइ और ॥ ५१ ॥
 तो पावै दीदार ।
 बहुरि न वारंवार ॥ ५२ ॥
 सुनरे मनवा नीच ।
 पैडा माही मीच ॥ ५३ ॥
 टाडो उतर्यो आय ।
 (एक)चाला मूल गँवाय ॥ ५४ ॥
 टाडा लादा जाय ।
 पूँजी गई बिछाय ॥ ५५ ॥
 भरमि फिर्यो चहुँ देस ।
 दिनसतगुरु उपदेस ॥ ५६ ॥
 मुया न कह संदेस ।
 ताको क्या उपदेस ॥ ५७ ॥
 तासै कहिये बैन ।
 तासो कछु न कैन ॥ ५८ ॥
 तूं जनि वैधै कवीर ।
 सोन समान शरीर ॥ ५९ ॥
 तिनको तैसा लाभ ।
 जत्र लगि धसैन आभ ॥ ६० ॥

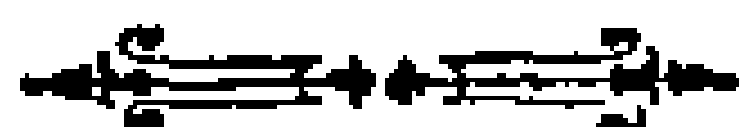
जिन हूँटा तिन पाइया, गहरे पानी पैठि ।
 जो बीरा इधन डरा, रहा किनारै बैठि ॥ ६१ ॥
 चतुराई क्या कीजिये, जो नहीं सब्द समाय ।
 कोटिक गुन सूत्रा पढ़ै, अन्त विछाई साय ॥ ६२ ॥
 (अल)मस्त फिरै क्या होत है, सुरति सब्द में पोय ।
 चतुराई नहीं छूटसी, सुरति सब्द में पोय ॥ ६३ ॥
 पढ़ना गुनना चातुरी, यह तो बात सहज ।
 काम दहन मन बस करन, गगन चढ़न सुसकल ॥ ६४ ॥
 पढ़ि पढ़ि के पत्थर भये, लिखि लिखि भये जु ईट ।
 कथीर अन्तर मेमकी, लागी नेक न छीट ॥ ६५ ॥
 नाम भजो मन बसि करो, यही बात है तंत ।
 काहे को पढ़ि पचि मरो, कोटिन ज्ञान गिरंथ ॥ ६६ ॥
 करता था तो क्यों रहा, अब करि क्यों पछिताय ।
 बोवै पेड़ बूलका, आम कहा ते स्वाय ॥ ६७ ॥
 मैं कथि कहि कहि कहि गये, ब्रह्मा विष्णु महेस ।
 सत्तनाम तत सार है, सब काहू उपदेस ॥ ६८ ॥
 जिनमें जितनी बुद्धि है, तितनी देव बताय ।
 वाको घुरा न मानिये, और कहाते लाय ॥ ६९ ॥
 काल (का) जीव मानै नहीं, कोटिन कहू बुझाय ।
 मैं खैचूं सतलोक को, बांधा जमपुर जाय ॥ ७० ॥

आत्म पूजा जिव दया, पर आत्म की सेव ।
 कदैं कबिर सतनाम भज, सहज परम पद लेव ॥ ७१ ॥
 सतनाम सुमिरन करै, सतगुरु पद निज ध्यान ।
 आत्म पूजा जिव दया, लहे सो मुक्ति अमान ॥ ७२ ॥
 चातुर को चिंता घनी, नहि मूरख को लाज ।
 सर अवसर जानै नहीं, पेट भरन सँ काज ॥ ७३ ॥
 कंचन को कलु ना लगे, आग न कीडा खाय ।
 बुरा भला होय वैश्व, कदी न नरके जाय ॥ ७४ ॥
 भूख गई भोजन मिले, टंड गई कंवाय ।
 जोवन गई तिरिया मिले, ताको आग लगाय ॥ ७५ ॥
 मांगन को भल बोलनो, चोरन को भल चूप ।
 माली को भल बरसनो, धोधी को भल धूप ॥ ७६ ॥
 धोती पोती बीनती, गुरु सेवा सतसंग ।
 ये औरनसँ ना बनै, खान खुनावन अंग ॥ ७७ ॥
 तीन तापैं ताप है, तिनका अनैत उपाय ।
 ताप आत्म महाबली, संत बिना नहि जाय ॥ ७८ ॥
 हिय हीरा की कोठरी, बारवार मत खोल ।
 मिले हिराका जोहरी, तब हीराका मोल ॥ ७९ ॥
 हां न जाको गुन लहे, तहां न ताको ठांव ।
 धोधी बस के बया करे, दीगंवर के गांव ॥ ८० ॥

अति दृढ मत कर बांधरे, दृढसे बात न होय ।
 ज्युं ज्युं भीजे कामरी, त्युं त्युं भारी होय ॥८१॥
 सबसे हिलिये सबसे मिलिये, सबका लीजे नाम ।
 हांजी हांजी सबसे कहिये, बसिये अपने ठाम ॥८२॥
 वाद विवादां मनि करे, करु निन अपना काम ।
 गुरु चरनों चित लाय के, भज लै केवल राम ॥८३॥
 बालू जैसी करकरी, कुजल जैसी धूप ।
 ऐसी मीठी कलु नहीं, जैसी मीठी चूप ॥८४॥
 रितु बसंत याचक भया, हरखि दिया द्रुम पात ।
 ताते नव पल्लव भया, दिया दूर नहि जात ॥८५॥
 जो जल बाढे नावमें, घरमें बाढे दाम ।
 दोनों हाथ उछीचिये, यही सयाना काम ॥८६॥
 काम क्रोध वृष्णा तजै, तजै मान अपमान ।
 सद्गुरु दाया जाहि पर, जम सिर मरदे मान ॥८७॥
 काया सों कारज करे, मकल काज की रीत ।
 कर्म भर्म सब मेटके, सय नाम सों प्रीत ॥८८॥
 गुरु मुग्य सह प्रतीति कर, हर्ष सोक विसराय ।
 दया क्षमा सत सोल गहि, अमरलोक को जाय ॥८९॥
 खाख लपेटे जो रहें, उन्हें नीच पति लेख ।
 साई के मन भावही, ज्यों कीकीमें रेख ॥९०॥

भाव मुआ तो मरन दे, सदा चलेगा नाम ।
 कबीर द्वारै बैठि के, करिले अपना काम ॥११॥
 मान अभिमान न कीजिये, कहैं कबीर पुकार ।
 जो सिर साधू ना नमै, सो सिर काटि उतार ॥१२॥
 सांझ सवेरे बखत दो, सीस नवावन जाय ।
 कबीर रात जु ना पड़े, साधु धरै जो पाय ॥१३॥
 गुरु को पूजै गुरुमुखी, बाना पूजै साध ।
 पट दरसन जो पूजहीं, ताका मता अगाध ॥१४॥

सब्द को अंग ।



कबीर सद् सरीर में, बिन गुन बाजै तांत ।
 बाहर भीतर रमि रहा, ताते छूटी भ्रांत ॥ १ ॥
 सद् सद् बहु अन्तरा, सार सद् चित देह ।
 जा सद् साहिव मिले, सोइ सद् गहि लेह ॥ २ ॥
 सब्द सब्द बहु अन्तरा, सब्द सार का सीर ।
 सब्द सब्द का खोजना, सब्द सब्द का पीर ॥ ३ ॥
 सब्द बराबर धन नही, जो कोय जानै मोल ।
 हीरा तो दामों मिले, सब्द हि मोल न तोल ॥ ४ ॥

सन्द कहै सो कीजिये,	बहुतक गुरु लगार ।
अपने अपने . लोप को,	ठौर ठौर बटपार ॥ ५ ॥
सन्द न करै मुलाहिजा,	सन्द फिरै चहुँ वार ।
आपा, पर जब चीन्हिया,	तब गुरु सिष व्यग्रहार ॥ ६ ॥
सन्द हमारा हम सन्द के,	सन्द ब्रह्म का कूप ।
जो चाहै दीटार को,	परख सन्द का रूप ॥ ७ ॥
सन्द दुराया ना दुरै,	कहू जु ढोल बजाय ।
जो जन होवै जौहरी,	लैहै सीस चढाय ॥ ८ ॥
सन्द पाय पुरति राखहि,	सो पहुचै दरवार ।
कहै कविर तहा देखिये,	बैठा पुरुष हमार ॥ ९ ॥
सन्द उपदेस जु मैं कहूं,	जु कोय मानै संत ।
कहै कवीर विचारि के,	ताहि मिलावै कंत ॥ १० ॥
सन्द भेद तब जानिये,	रहै सन्द के पाँहि ।
सन्दै सन्द परगट भया,	दजा दीखै नाहि ॥ ११ ॥
सन्द खोजि मन प्रस करै,	सहज जोग है येह ।
सत्त सन्द निज सार है,	यह तो झूठी देह ॥ १२ ॥
सन्द गुरु का सन्द है,	काया का गुरु काय ।
भक्ति करै नित सन्द की,	सतगुरु यौ समझाय ॥ १३ ॥
सन्द सन्द सब कोय कहै,	सन्द का करो विचार ।
एक सन्द सीतल करै,	एक सन्द दे जार ॥ १४ ॥

एक सब्द सुख खानि है,
 एक सब्द बंधन कटै,
 निझर झरै अनहद बजै,
 अविगत अंतर प्रगट है,
 रैन समानी भानु में,
 अकास समाना सब्दमें,
 खोजी हुआ सब्द का,
 कहै कबिर गहि सब्द को,
 दारु तो सब को(य) करै,
 जो दारु सतगुरु दई,
 मता हमारा मंत्र है,
 सब्द हमारा कल्पतरु,
 सोइ सब्द निज सार है,
 बलिहारी वा गुरुन की,
 वह तो मोती जानियो,
 यह तो मोती सब्द का,
 सीसै सुनै विचारि ले,
 बिना समझै सब्द गहै,
 यही बड़ाई सब्द की,
 बिना सब्द नहि ऊरै,

एक सब्द दुख रासि ।
 एक सब्द गल फांसि ॥१६॥
 तब ऊपजै ब्रह्मज्ञान ।
 लगा मेम निज ध्यान ॥१६॥
 भानु अकासे माँहि ।
 सब्द परै कछु नॉहि ॥१७॥
 धन्य संत जन सोय ।
 कबहु न जाय विगोय ॥१८॥
 वह सुभाव की नॉहि ।
 वही सब्द के माँहि ॥१९॥
 हम सा है सो लेह ।
 जो चाहै सो देह ॥२०॥
 जो गुरु दिया बनाय ।
 सीप विगोय न जाय ॥२१॥
 घुड़े पोत के साथ ।
 बेधि रहा सब गात ॥२२॥
 ताहि सब्द सुख देय ।
 बह न लाहा लेय ॥२३॥
 जैसे चुंघरु भाय ।
 केता करै उपाय ॥२४॥

सही टेक हैं तासुकी,	जाको सतगुरु टेक ।
टेक निवाहैं देह भरि,	रहै सब्द मिलि एक ॥ २५ ॥
काल फिरै सिर ऊपरै,	जीवहि नजरि न आय ।
कहैं कविर गुरु सब्द गहि,	जमसैं जीव बचाय ॥ २६ ॥
ऐसा मारा सब्द का,	मुआ न दीसै कोय ।
कहैं कविर सो ऊपरै,	घड़पर सीसन होय ॥ २७ ॥
संत संतोपी सर्वदा,	सब्द हि भेद विचार ।
सतगुरु के परताप ते,	सहज सील मत सार ॥ २८ ॥
सरसा सर जन वेधिया,	सर विन गम कछु नाँहि ।
लागी चोट जो सब्द की,	करक कलेजे पाँहि ॥ २९ ॥
सारा बहुत पुकारिया,	पीर पुकारै और ।
लागी चोट जो सब्द की,	रहा कवीरा ठौर ॥ ३० ॥
लागी लागी वया करै,	लागत रही लगार ।
लागी तब ही जानिये,	निकसी जाय दुमार ॥ ३१ ॥
विन सर और कमान विन,	मारा है जु कसीस ।
बाहर धावन दीसई,	वेधा नख सिख सीस ॥ ३२ ॥
मैं कलिका कोतवाल हूँ,	लेहू सब्द हमार ।
जो या सब्दहि मानि है,	सो उतरै भौ पार ॥ ३३ ॥
सब को सुख दे सद्गका,	अपनी अपनी ठौर ।
जा घट्ये साद्विष वमै,	ताहि न चीन्है और ॥ ३४ ॥

सीतल सद्ग उचारिये,	अहं आनिये नाँहि ।
तेरा प्रीतम तुझहि में,	दुसमन भी तुझ माँहि ॥ ३५ ॥
हरिजन मोई जानिये,	जिह्वा कहै न मार ।
आठ पहर चितवत रहे,	गुरु का ज्ञान विचार ॥ ३६ ॥
टीला टीली हाँहि के,	फोरि करै मैदान ।
समझ सफा करता चलै,	सोइ सद्ग निरवान ॥ ३७ ॥
कुबुधि कपानी चढि रहे,	कुटिल वचन के तीर ।
भरि भरि मरि कान में,	सालै सकल सरीर ॥ ३८ ॥
कुटिल वचन सब तेँ बुरा,	जारि करै सब छार ।
साधु वचन जल रूप है,	वरसै अमृत धार ॥ ३९ ॥
कर गहन दुरजन वचन,	रहे सन्तजन टारि ।
विजुली परै समुद्र में,	कहा सकेगी जारि ॥ ४० ॥
कुटिल वचन नहि बोलिये,	सितल बैन ले चीन्हि ।
गंगा जल सीतल भया,	परवत फोडा तीन्हि ॥ ४१ ॥
सीतलता तब जानिये,	समता रहे समाय ।
विष छाँटे निरविष रहै,	सब दिन दुखा जाय ॥ ४२ ॥
खोद खाद धरती सहै,	काट कूट बनराय ।
कुटिल वचन साधू महे,	औंसे सदा न जाय ॥ ४३ ॥
जिह्वा में अमृत बसै,	जो कोय जानै बोल ।
विष वामृक्किा ऊनरै,	जिह्वा तनै हिलोल ॥ ४४ ॥

४० करगहन—करम ।

४४. सर्प का विष जीभ से चूस लिया जाता है ।

जिह्वा सकर दूध जिभ,	जिह्वा प्यारीजागि ।
जिह्वा माजन रलि मिले,	जिह्वा छर्वै आगि ॥ ४५ ॥
सहज तगाजू आनि कै,	सब रस देखा तोल ।
सब रस पांहीं जीभ रस,	जु कोय जानै बोल ॥ ४६ ॥
मुख आवै सोई कहें,	बोल नहीं विचार ।
हठे पराडं आनया,	जीभ बांधि तरवार ॥ ४७ ॥
बोलै बोल विचारिके,	बैठे ठौर सँभारि ।
कहें कविर ता दासको,	कबहु न आवै हारि ॥ ४८ ॥
रैन तियिर नासत भयो,	जबही मानु उगाय ।
सार सद्द के जानने,	करम भरम मिटि जाय ॥ ४९ ॥
जत्र मंत्र सब झूठ है,	प्रति भरमो जग कोय ।
सार सद्द जानै विना,	कागा हंस न होय ॥ ५० ॥
सार सद्द निज जानिके,	जिन कीन्ही परतीति ।
काग कुपन नजि हंस हूँ,	चले सु भोजल जीति ॥ ५१ ॥
सार सद्द जानै विना,	जिव परल में जाय ।
काया माया थिर नहीं,	सद्द लेहु अरयाय ॥ ५२ ॥
सार सद्द को खोजिये,	सोई सद्द सुख रूप ।
अन समझ तो कुछ नहीं,	बह तो दुखका रूप ॥ ५३ ॥
सार हि सद्द विचारिये,	सोई सद्द सुख देय ।
अन समझा सद्दै कहै,	बहु न लाहा लेय ॥ ५४ ॥

कर्मफंद जग फंदिया,
 जाहि सद्ध ते मुक्ति होय,
 सतजुग त्रेता द्वापरा,
 सार सद्ध एक साच है,
 पृथिवी अपहु तेज नहीं,
 अलल पच्छि तहां है रहे,
 सतगुरु सद्ध परमान,
 और झूठ सब ज्ञान,
 ज्ञानी सुनहु संदेस,
 कह्यो मुक्तिपुर देस,
 मन तहँ गगन समाय,
 नहि आवै नहि जाय,
 ज्ञानी करहु बिचार,
 सत्त सद्ध निज सार,
 जगमें बहु परपंच,
 नहि पावै कोय संच,
 गहै सद्ध निज मूल,
 सुक्षम में अस्थूल,
 सद्ध हमारा आदिका,
 आगा पीछा सो करै,

जप तप पूजा ध्यान ।
 सो न परा पहिचान ॥ ५५ ॥
 यह कलजुग अनुमान ।
 और झूठ सब ज्ञान ॥ ५६ ॥
 नहीं वायु आकास ।
 सत्त सद्ध परकास ॥ ५७ ॥
 अनहद बानी ऊचरै ।
 कहैं कवीर विचारिके ॥ ५८ ॥
 सद्ध विवेकी पेखिया ।
 तीन लोक के बाहिरे ॥ ५९ ॥
 धुनि सुनि सुनिके मगनहै ।
 सुन सद्ध थिति पावहीं ॥ ६० ॥
 सतगुरु ही सें पाइये ।
 और सबै विस्तार है ॥ ६१ ॥
 तामें जीव भुलान सब ।
 सार सद्ध जानै बिना ॥ ६२ ॥
 सिंधुहि बुंद समान है ।
 बीज बिछ विस्तार ज्युं ॥ ६३ ॥
 हमसे बली न कोय ।
 जो बल हीना होय ॥ ६४ ॥

घर घर हम सबसे कहा, सब्द न सुनै हमार ।
 ते भवसागर बुझीं, लख चौरासी धार ॥६५॥
 मैं कबीर विचलौ नहीं, सब्द मोर समरथ ।
 ताको लोक पठाइ हो, (जो) चढे सब्द के रत्न ॥६६॥
 सब्द सम्हारे बोलिये, सब्द के हाथ न पांव ।
 एक सब्द औपध करै, एक सब्द करै घाव ॥६७॥
 एक सब्द सो प्यार है, एक सब्द कूपार ।
 एक सब्द सब दुश्मना, एक सब्द सब यार ॥६८॥
 सब्द जु ऐसा बोलिये, तनका आपा खोय ।
 औरन को सीतल करै, आपन को सुख होय ॥६९॥
 जिहि सब्दे दुख ना लगे, सोई सब्द उचार ।
 तपत मिठी सीतल भया, सोइ शब्द ततसार ॥७०॥
 कागा काको धन हरै, कोयल काको देत ।
 पीठा सब्द सुनाय के, जग अपनो करि लेत ॥७१॥
 जिभ्या जिन वसमें करी, तिन बस कियो जहान ।
 नहि तो औगुन ऊपजे, कहि सब संत सुजान ॥७२॥
 कहने को चुकै नहीं, जेतो जिस की दौर ।
 सबै सब्द सविदान हैं, परख सब्द सो ठौर ॥७३॥
 सब्द गहै सो मरद है, मेहरी सब संसार ।
 पढ़ि पंडित रंढिया भये, बिन मेढे भरतार ॥७४॥

विश्वास को अंग ।

जाके मन विश्वास है,	सदा गुरु हैं संग ।
कोटि काल झक झोलहीं,	तऊ न हो मन भंग ॥ १ ॥
सत्तनाम की ली लगी,	जगसँ दूर रहाय ।
मोहि भरोसा नामका,	बदा नरक न जाय ॥ २ ॥
सत्तनाम सँ मन मिला,	जम सँ परा दुराय ।
मोहि भरोसा इष्ट का,	बंदा नरक न जाय ॥ ३ ॥
रचनहार को चीन्हि ले,	खाने को क्या रोय ।
मन मन्दिर में पैठि के,	तान पिछोरी सोय ॥ ४ ॥
भूखा भूखा क्या करै,	कहा सुनावै लोग ।
भांडा घड़िया मुख दिया,	सोही पूरन जोग ॥ ५ ॥
सिरजन हारे सिरजिया,	आटा पानी लौन ।
देनेहारा देत है,	भेटनहारा कौन ॥ ६ ॥
सौई इतना दीजिये,	जामें कुटुंब समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ,	साधु न भूखा जाय ॥ ७ ॥
हरिजन गॉठि न बांधहीं,	उदर समाना लेय ।
आगे पीछे हरि खड़े,	जो मार्गें सो देय ॥ ८ ॥
कबीर चिंता क्या करूँ,	चिन्ता सों क्या होय ।
मेरी चिन्ता हरि करै,	चिन्ता मोहि न कोय ॥ ९ ॥

चिन्तामनि चित में बसै, सोई चित में आनि ।
 बिना प्रभु चिन्ता करै, यह मूरख की वानि ॥१०॥
 चिन्ता छोड़ि अचिन्त रह, देनहार समरत्य ।
 पसू पखेरू जन्तु जीव, तिन के गांठि न ढूँढ्य ॥११॥
 अंडा पालै काछुई, विन धन राखै पोख ।
 यौ करता सब को करै, पालै तीनों लोक ॥१२॥
 पौ फाटी पगरा भया, जगै जीवा जून ।
 सब काहू को देत है, चोंच समान^१ चून ॥१३॥
 खोजि पकरि विश्वास गहु, धनी मिलेंगे आय ।
 अजिया गज मस्तक चढ़ी, निरभय कोपल खाय ॥१४॥
 पाँडर पिंजर मन भँवर, अरथ अनूपम वास ।
 एक नाम सींचा अमी, फल लागी विश्वास ॥१५॥
 पद नाथै लौलीन है, कटै न संसै फांस ।
 सबै पछोरै थोथरा, एक बिना विश्वास ॥ १६ ॥
 गाया जिन पाया नहीं, अनगाये ते दूर ।
 जिन गाया विश्वास गहि, ताके सदा हजूर ॥ १७ ॥
 गावन ही में रोवना, रोवन ही में राग ।
 एक वन हि में घर करै, एक घर ही वैराग ॥ १८ ॥
 घट में जोति अनूप है, रिजक मौतजिवसाथ ।
 कदा सार है मनुसका, कल्प धनी के हाथ ॥ १९ ॥

साई दीया सहज में, खोई रिजक हलाल ।
 हैवां सबै हराय है, तजि संसै जिव साल ॥ २० ॥
 सब ते मली मबूकरी, भांति भाति का नाज ।
 दावा कीसी का नही, बिना बिलायत राज ॥ २१ ॥
 जाके दिल में हरि वसै, सो जन कलपै काहि ।
 एकै लहरि समुद्रकी, दुख दारिद्र वहि जाहि ॥ २२ ॥
 आगे पीछे हरि खड़ा, आप सहारे भार ।
 जन को दुःखी क्यों करै, समरथ सिरजन हार ॥ २३ ॥
 भक्त भरोसै राम के, निधडक ऊंची दीठ ।
 तिनकुं करम न लागई, राम ठकोरी पीठ ॥ २४ ॥
 सौटा कीजै राम सों, भरिये गून हलाय ।
 जो कबहुं टाडा लुटे, पूजी विलै न जाय ॥ २५ ॥
 राखनदारा राम है, जाय जंगल में बैठ ।
 हरि कोपै नहि ऊचरै, सात पताले पैठ ॥ २६ ॥
 डोरी लागी भय मिटा, मन पाया बिसराम ।
 चित्त चहुटा राम सों, याही केवल धाम ॥ २७ ॥
 करम करीमा लिखि रहा, अब कलु लिखा न होय ।
 मासा घटै न तिल बढे, जो सिर पटके कोय ॥ २८ ॥
 करम करीमा लिखि रहा, नर सिर माग अभाग ।
 जो कबहुं चिन्ता करै, तौट न आगै आग ॥ २९ ॥

२०. हलाल-धर्मयुक्त । हैवा-बलात्कार ।

२५. टाडा—बैलों की कतार । २९. आग—आगि, सामने ।

जो सांचा विसत्राम है,	तौ दुख क्यों ना जाय ।
कहे कबीर विचारि के,	तन मन देहि जराय ॥ ३० ॥
विस्वासी है गुरु भजै,	लोहा कंचन होय ।
नाम भजै अनुराग ते,	हरप सोक नहि दोय ॥ ३१ ॥
काहे को तलफत फिरै,	काहे पावै दुख ।
पहिले रिजक बनायके,	पीठे दोनो भूख ॥ ३२ ॥
अब तूं काहेको डरै,	सिरपर हरिका हाथ ।
हस्ती चढ़कर डोलिये,	कूकर भुसे जु लाख ॥ ३३ ॥
मेरो चित्यो हरि ना करे,	क्या करू मैं चित्त ।
हरि को चित्तौ हरि करे,	ता पर रहू निचित ॥ ३४ ॥
राम किया सोई हुआ,	राम करै सो होय ।
राय करै सो होयगा,	काहा कल्पौ कोय ॥ ३५ ॥
ऐसा कौन अभागिया,	जो विश्वासै और ।
राय विना पग धरनकूं,	कहो कहां है ठौर ॥ ३६ ॥
किये विना मागै विना,	जान विना सब आय ।
काहे को मन कल्पिये,	सहजे रहा समाय ॥ ३७ ॥
मुरदे को भी देव है,	कपडा पानी आग ।
जीवत नर चिता करै,	ताका बडा अभाग ॥ ३८ ॥
पीठे चाहे चाकरी,	पहिले पहिना देय ।
ता साहिव सिर मीपते,	वयूं कसकाता देह ॥ ३९ ॥

भजन भरोसै आपके, मगहर तजा शरीर ।
तेज पुंज परकास मैं, पहुँचै दास कबीर ॥ ४० ॥

सती को अंग ।



अब तो ऐसी है परी, मन भति निरमल कीन्ह ।
मरने का भय छाँड़ि के, हाथ सिंधोरा लीन्ह ॥ १ ॥
ढोल ददामा बाजिया, सब्द सुना सब कोय ।
जो सर देखी साने भगै, दोउ कुल हाँसी होय ॥ २ ॥
सती जरन को नीकसी, चिन धरि एक विवेक ।
तन मन सौँपा पोव को, अंतर रही न रेख ॥ ३ ॥
सती जरन को नीकसी, पिय का सुमिरि सुनेह ।
सब्द सुनत जिय नीकसा, भूलि गई सुधि देह ॥ ४ ॥
सती सूर तन ताइया, तन मन कीया वान ।
नाम जपन चिता मिटी, निरसा तनसैं प्रान ॥ ५ ॥
सती विचारी सत किया, काँगें सैज बिडाय ।
सूती ले पिय संग में, चहुँ दिसि आग लगाय ॥ ६ ॥

१. सिंधोरा-मिट्टरदान । स्त्री सती होने क समय अपने आप को
शृंगार से सुसज्जित कर लेती है । २. सर—चित्ता ।

५. वान—वानी, पेरना ।

सती पुकारै ^१सर चढ़ी, सुनरे मीत मसान ।
^२लोग बटाऊ सब गये, हम तुम रहे निदान ॥ ७ ॥
 सती डिगै तो नीच घर, सूर डिगै तो कूर ।
 साधु डिगै तो सिखरते, ^३गिरि भय चकना चूर ॥ ८ ॥
 सती न पीसै पीसना, जो पीसै रॉड ।
 साधु भीख न मांगई, जो मागै सो भांड ॥ ९ ॥
 मैं तोहि पूछूं हे सखी, जीवत क्यों न जराय ।
 मूये पीछै सत करै, जीवत क्यों न कराय ॥ १० ॥
 ऐसी भाँति जो सति है, सो निज मुक्ति परमान ।
 मुक्ति देव संसार को, सोऽ सती तूं जान ॥ ११ ॥
 साध सती औ सूरमा, इनका मता अगाध ।
 आसा छाँडै देहकी, तिनमें अधिका साध ॥ १२ ॥
 साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गजदंत ।
 ते निकसै नहि बाहुरै, जो जुग जाहि अनंत ॥ १३ ॥
 साध सती औ सूरमा, कबहुँ न फेरै पीठ ।
 तीनों निकसी , बाहुरै, तिनका मुख नहि दीठ ॥ १४ ॥
 साध सती औ सूरमा, इन पट्टर कोय नाँहि ।
 अगम ग्रंथ को पग धरै, ^४गिरि तो कहाँ समाहि ॥ १५ ॥

१. पा० सत । २. संगी थे सो चलि गये । ३. पा० होय चरनकी धूर ।

४. लैटे तो कित जाहि ।

कबीर सतियाँ कुसतियाँ, जरै मरे की वार ।
 सतियां सोई जानिये, जरै सँभारि सँभारि ॥१६॥
 सत तो तासों कीजिये, जहँवां मन पतियाय ।
 ठाम ठाम के सत्त सों, कुल कलंक चढ़ि जाय ॥१७॥
 आँखडियां काजल भरी, मुख में भरी तंबोल ।
 चलिहारी गुरु आपनी, साहिव सेति किलोल ॥१८॥
 सतिया सोई अस तिया, जलती है इक वार ।
 नित जलना है संत कूं, नाम पुकार पुकार ॥१९॥
 सहज जलना सतिया तना, सूखै काठ मिलाय ।
 लै पैठी पिय अपना, चहुं दिस आग लगाय ॥२०॥
 सतिया का सुख देखना, जले पीव के संग ।
 आपै आग लगात है, तक न मोहै अंग ॥२१॥
 सती भई है सत्त कूं, सरीर कीन्ही सान ।
 बाट बटाऊ चलि गये, हम तुम रहै निदान ॥२२॥
 सती विचारी सत किया, ले अपना वे भेष ।
 एक एक जब है मिली, अंतर रही न रेख ॥२३॥
 सती सूर तन साहिया, तनमन किया जु ध्यान ।
 दिया महोला पीव कूं, महदट करै वखान ॥ २४ ॥
 सूर सती स्वर्ग पाइ है, जाय मिले सब कोय ।
 कबीर सौदा नाम सुं, सिर विन कदी न होय ॥ २५ ॥

सती चमाकै अगनिसूं, मूरा सीस डुलाय ।
 साधु जु चूकै टेक सों, तीन लोक अथडाय ॥ २६ ॥
 ये तीनों डलटे बुरे, साधु सती औ सर ।
 जगमें हांसी होयगी, मुख पर रहै न नूर ॥ २७ ॥

पतिव्रता को अंग ।

पतिवरता के एक है, व्यभिचारिन के दोष ।
 पतिवरता व्यभिचारिनी, कहु क्यों मेला होय ॥ १ ॥
 पतिवरता को सुख घना, जाके पति है एक ।
 मन मैली व्यभिचारिनी, ताके खसम अनेक ॥ २ ॥
 पतिवरता मैली भली, काली कुचल कुरूप ।
 पतिवरता के रूप पर, वारों कोटि सरूप ॥ ३ ॥
 पतिवरता मैली भली, गले काँचकी पोत ।
 सब सखियनमें यों दियै, ज्यों सूरज की जोत ॥ ४ ॥
 पतिवरता पतिको भजै, पति भजि धर विस्वास ।
 आन दिसा चितवै नहीं, सदा पीव की आस ॥ ५ ॥
 पतिवरता पतिको भजै, और न आन सुहाय ।
 सिंघ बच्चा जो लंघना, तो भी घास न खाय ॥ ६ ॥

पतिवरता तब जानिये, रती न खंडै नैन ।
 अंतर तो सूची रहे, बोलै मोठा देन ॥ ७ ॥
 पतिवरता ऐसी रहे, जैसे चोली पान ।
 जब सुख देखै पीवका, चित्त न आवै आन ॥ ८ ॥
 पतिवरता व्यभिचारनी, इक मंदिर में वास ।
 वह रंग राती पीवके, घर घर फिरै उदास ॥ ९ ॥
 पतिवरता के एक तू, और न दूजा कोय ।
 आठ पहर निरखत रहै, सोइ सुहागिन होय ॥ १० ॥
 पतिवरता तो पिव भैजै, पिपा पिपा रट लाय ।
 जीवत जस है जगत में, अन परम पद पाय ॥ ११ ॥
 नना अंतर आव तू, नैन झॉपि तुहि लेव ।
 ना मैं देखौं और को, ना तुहि देखन देव ॥ १२ ॥
 कबीर सीप समुद्रकी, रटै पियास पियास ।
 १और बुँद को ना गहे, स्वाति बुँद की आस ॥ १३ ॥
 कबीर सीप समुद्र की, खारा जल नहि लेय ।
 पानी पीवै स्वाति का, सोभा सागर देय ॥ १४ ॥
 कबीर भेरै बैठिके, सघसों कहूँ पुकारि ।
 धरा धरै सो धरकुटी, अधर धरै सो नारि ॥ १५ ॥
 धरिया कूँ धीजूँ नही, गहूँ अधर की वाँहि ।
 धरिया अधर पिछानिया, कहूँ धरावहि नाँहि ॥ १६ ॥

१५. धरा—कृत्रिम, बनावटी, । धरै—पूजे । धरकुटी—व्यभिचारिणी ।

१. पाठ पीव पीव । २. पा० समुंद्र हि तिनका बर गिनो ।

नाम न रटा तो क्या हुआ,	जो अंतर है हेत ।
पतिवरता पिवको भजै,	मुख सें नाम न लेत ॥ १७ ॥
सुरति सपानी नाम में,	नाम किया परकास ।
पतिवरता पिव को मिली,	पलक न छौडै पास ॥ १८ ॥
सौई मोर सुलच्छना,	मैं पतिवरता नारि ।
देहु दीदार दया करो,	मेरे निज भरतार ॥ १९ ॥
प्रीत अहो है तुरससैं,	बहु गुनियाला कंन ।
जो हसि बोलूँ और मे,	नील रँगौँ देन ॥ २० ॥
सौई मेरा एक तूँ,	और न दूँ कोय ।
दूजा सौई क्या करूं.	तुझ सम और न कोय ॥ २१ ॥
सौई मेरा एक तूँ,	और न दूजा कोय ।
दूजा सौई जो करूं,	जो 'कुलदूजा होय ॥ २२ ॥
मो चित पलहु न वीसरूं,	तुम परदेस दि जाय ।
यह अंग और न भेलसी,	जयतव तुम मिलि आय ॥ २३ ॥
कबीर रेख सीदूर अर,	काजर दिया न जाय ।
नैनन प्रीतम रधि रहा,	दूजा कष्ट सभाय ॥ २४ ॥
आठ पहर चौसठ घड़ी,	मेरे और न कोय ।
नैना माँही तूँ बसै,	नींद ठौर नहि होय ॥ २५ ॥
बार बार क्या आखिये,	मेरे मन की सोय ।
कलि तो ऊखल होयगी,	सौई और न होय ॥ २६ ॥

जो यह एक न जानिया, बहु जाने क्या होय ।
 एकै ते सब होत है, सब ते एक न होय ॥२७॥
 जो यह एकै जानिया, तो जानो सब जान ।
 जो यह एक न जानिया, सबही जान अजान ॥२८॥
 सब आये उस एकमें डार पात फल फूल ।
 अब कहो पाछै क्या रहा, गहि पकडा जव मूल ॥२९॥
 एकै साथै सब साथै, सब साथै सब जाय ।
 माली सींचै मूलको, फूलै फलै अघाय ॥३०॥
 जो मन लागै एक सौ, तो निरुवारा जाय ।
 तूरा दो मुख बाजता, घना तमाचा खाय ॥३१॥
 एक नाम को जानि कर, दूजा दिया बहाय ।
 जप तप तीरथ व्रत नहीं, सतगुरु चरन समाय ॥३२॥
 मैं अबला पिव पिव करूं, निरगुन मेरा पीव ।
 सुन सनेही राम विन, और न देखू जीव ॥३३॥
 मैं सेवक समरथ का, कबहु न होय अकाज ।
 पतिव्रता नंगी रहै, बाही पति को लाज ॥३४॥
 मैं सेवक समरथ का, कोई पुरवला भाग ।
 सूनी जागी धुंदरी, साँई दिया सुहाग ॥३५॥
 एक चित होय न पिव मिलै, पतिव्रत ना आवै ।
 चंचल मन चहुँ दिसि फिरै, पिय कहो कैसे पावै ॥३६॥

सुंदरि तो सौँई मजै,	तजै खलक की आस ।
ताहि न कबहुँ परिहरै,	पलक न छाडै पास ॥३७॥
चढी अखाडे सुन्दरी,	माँडा पीवसैं खेल ।
दीपक जोया ज्ञान का,	काम जलै ज्यों तेल ॥३८॥
सूरा के तो सिर नहीं,	दाता के धन नाँहि ।
पतिवरता के तन नहीं,	सुरति वसै पिव माँहि ॥३९॥
दाता के तो धन घना,	सूरा के सिर वीस ।
पतिवरता के तन सही,	पत राखै जगदीस ॥४०॥
भोरे भूली खसम को,	कबहुँ न किया विचार ।
सतगुरु आनि बताइया,	पूरवला भरतार ॥४१॥
जो गावै सो गावना,	जो जोडै सो जोड ।
पतिवरता साधू जना,	यहि कलिमें है थोड ॥४२॥
घर परमेश्वर पाहुना,	सुनो सनेही दास ।
खट रस भोजन भक्ति करि,	कबहुँ न छाडै पास ॥४३॥
एक जानि एकै समझ,	एकै कै गुन गाय ।
एक निरख एकै परख,	एकै सौँ चित लाय ॥४४॥
जीवत मिरतक हो रही,	तन पन सेती नेह ।
कहै कविर ता नारि की,	चरन कमल की खेह ॥४५॥
ऊँची जाति पपीहरा,	पीये न नीचा नीर ।
कै सुरपति को जाँचई,	कै दुख सई सरीर ॥४६॥

पडा पपीहा सुरसरी, लगा धधिक का वान ।
 सुख भूँदे सुरति गगन में, निकसि गये यूँ प्रान ॥४७॥
 पपिहा पन को ना तजै, दजै तो तन बेकाज ।
 तन छाडै तो कुछ नही, पन छाडि है लाज ॥४८॥
 पपिहा का पन देख करि, धीरज रहै न रच ।
 घरते दम जलमें पडा, तऊ न बोरी चंच ॥ ४९ ॥
 चातक सुन हि पढावई, आन नीर मलि लेय ।
 मम कुल याही रीत है, स्वाति बुँद चित देय ॥५०॥
 चातक सुत हि पढावई, सुनो बात यह तात ।
 आन नीर नहि पीवना, यह सपूत की बात ॥ ५१ ॥
 चातक चित हि चुभि गई, सुत सपूत की बात ।
 आन नीर परसौं नहीं, सुनो तात यह बात ॥ ५२ ॥
 दोजख हमहि अंगिनिया, या दुख नार्हो मुझ ।
 मेरे भित्त न चाहिये, बौछि पियारे तुझ ॥ ५३ ॥
 पिय सनमुख सेवा करे, सो पतिव्रता जान ।
 पिय तजि किन जित जोरमे, वर्त भंग तेहि मान ॥ ५४ ॥

विभिचारिनि को अंग ।



कवीर कलियुग आयके,	कीया बहुत जमीत ।
जिन दिल बाँधा एक सँ,	ते सुखसोय निचित ॥ १ ॥
गुरु मरजाद न भक्तिपन,	नहि पिवका अविकार ।
कहै कविर विभिचारिनी,	निच नया भरतार ॥ २ ॥
विभिचारिनि विभिचार में,	आठ पहर दुशियार ।
कहै कविर पतिवन्द विन,	क्यों रीझै भरतार ॥ ३ ॥
विभिचारिन के वस नहीं,	अपनो तन मन दोय ।
कहै कविर पतिवस्त विन,	नारी गई विगोय ॥ ४ ॥
नारि कदावै पीव की,	रहे और सँग सोय ।
जार सदा मनमें वसै,	खसम खुसी क्यों होय ॥ ५ ॥
सेज बिछावै सुन्दरी.	अन्तर परदा होय ।
तन सौपै मन दे नहीं,	सदा दुहागिन सोय ॥ ६ ॥
* कवीर मन दीया नहीं,	तन कर डाला जेर ।
अन्तरजामी लखि गया,	बात कहन का फेर ॥ ७ ॥
मुखसँ नाम रटा करै,	निस दिन साधुन संग ।
कहु थौ कौन कुफेर तें,	नहीं लागत रंग ॥ ८ ॥

कबीर पथ निहारतां, आनि पडी है साँझ ।
 जन जन को मन राखतां, बेम्या रहि गइ बौझ ॥ ९ ॥
 रात जगावै राँडिया, गावै विषया गीत ।
 मारै लौंदा लापसी, गुरु न आवै चीत ॥ १० ॥
 कबीर जो कोइ सुन्दरी, जानि करै विभिचार ।
 ताहि न कन्हू आदरै, परम पुरुष भरतार ॥ ११ ॥
 सत्तनाम को छँडिकर, करै और की आस ।
 कहैं कवि ता नारि को, होय नरकमें वास ॥ १२ ॥
 नौ सत साजै सुन्दरी, तन मन रही सजोय ।
 पिय के मन मानै नहीं, १ विडव किये क्या होय ॥ १३ ॥
 सौ बरसां भक्ति करै, एक दिन पूजै आन ।
 सो अपराधी आत्मा, पडै चौरासी खान ॥ १४ ॥
 सत्तनाम को छँडि कै, करै आन को जाप ।
 ताके मुँहदे दीजिये, नौसादर को बाप ॥ १५ ॥
 सत्तनाम को छँडि कै, करै और को जाप ।
 बेस्या केरां पूत ज्यौं, कहै कौन को बाप ॥ १६ ॥
 सत्तनाम को छँडि कै, राखै करवा चौथि ।
 सो तो होगी सूकरी, तिन्हें रामसों कौथि ॥ १७ ॥

१३. नोसत=सोलह शृंगार । १५. नोसादर को बाप=मेल ।

सत्तनाम को छाँडि कै, राति जगावन जाय ।
 साँपिनी है करि ओतर, अपना जाया खाय ॥ १८ ॥
 आन भजै सो आँधरा, राप भजै सो साव ।
 तत्त भजै सो बैस्नवा, तिनका मता अगाध ॥ १९ ॥
 करै मुहाली लापसी, जाय आनकी जाति ।
 ज्वारा हँसै मलकता, आई मेरी घात ॥ २० ॥
 कामी तरि क्रोधी तरै, लोभी तरै अनन्त ।
 आन उपासी कृतघनी, तरै न गुरु कहन्त ॥ २१ ॥
 काज कनागत कारटा, आनदेव को खाय ।
 कहै कविर समुझै नहों, बाँधा जमपुर जाय ॥ २२ ॥
 देवि देव मानै सवै, अलख न मानै कोय ।
 जा अलेख का सय किया, तासो बेमुख होय ॥ २३ ॥
 देवि देव ठाढ़े भये, हम को ठौर बताव ।
 जो कोइ मुझ हूँ विमुख है, तिन को लूटौ खाव ॥ २४ ॥
 पन छूटै छुटा फिरै, तै नर भूत खबीस ।
 • भूतन पिंडा राखका, पडा पटकि के सीस ॥ २५ ॥
 माइ मसानि सिद्धि सितला, नैद भूत हनुमन्त ।
 साहिव सों न्यारा रहे, जो इन को पूजन्त ॥ २६ ॥

सूरमा को अंग ।

कवीर सोई सूरमा, मन सों भँडै जूझ ।
 पाँचौ इन्द्री पकडि के, दूरि करे सब दूझ ॥ १ ॥
 कवीर सोई सूरमा, (जिन)पाँचौं राखी चूर ।
 जिन के पाँचौं मोकली, तिन सों साहिव दूर ॥ २ ॥
 कवीर सोई सूरमा, जाके पाँचौं हाथ ।
 जाके पाँचौं बस नहीं, तो हरि संग न साथ ॥ ३ ॥
 कवीर रनमें आय के, पीछे रहे न सूर ।
 सोई के सनमुख रहै, जूझैं सदा हजूर ॥ ४ ॥
 कवीर घोड़ा भेमका, चेतन चढ़ि अमवार ।
 ज्ञान खड़ग ले काल सिर, भली पचाई मार ॥ ५ ॥
 कवीर तुरी पलानिया, चाबुक कीन्हा हाथ ।
 दिवस थका सोई मिले, पीछे पडि है रात ॥ ६ ॥
 कवीर हीरा बनजिया, मँहगे मोल अपार ।
 हाट गली माटी मिळा, सिर सारैं बेवहार ॥ ७ ॥
 कवीर तोड़ा मान गढ़, पारैं पाँच गनीम ।
 सीस नवाया धनी को, साथी बड़ी मुहीम ॥ ८ ॥

१. दूझ=दाशन, जलन । २. चूर=वशमें । मोकली=खुली हुई ।

८. गनीम=शत्रु । मुहीम=आक्रमण ।

नाम कुल्हाड़ी कुबुधि वन,	काटि किया पैदान ।
कवीर जीते मान गढ़,	मारै पांचौ खान ॥ ९ ॥
कवीर तोड़ा मान गढ़,	लूटी पाँचौ खानि ।
ज्ञान कुल्हाड़ी करम वन,	काटि किया पैदान ॥ १० ॥
कवीर पाँचौ मारिये,	जो मारै सुख होय ।
भला भली सब कोय कहै,	बुरा न कहसी कोय ॥ ११ ॥
गगन दमामा वाजिया,	पड़त निसानै चोट ।
कायर भागै कछु नहीं,	सूरा भागै खोह ॥ १२ ॥
गगन दमामा वाजिया,	पड़त निसानै घाव ।
खेत पुकारै सूरमा,	अब लडने का दाव ॥ १३ ॥
गगन दमामा वाजिया,	इनहनिया के कान ।
सूरा धरै बधावनौ,	कायर तजै पिरान ॥ १४ ॥
सूरा सोइ सराहिये,	छडै धनी के हेत ।
पुरजा पुरजा है पडे,	तऊ न छाडै खेत ॥ १५ ॥
सूरा सोइ सराहिये,	अंग न पहिरै लोह ।
जूझै सब बंद खोलि के,	छाडै वन का मोह ॥ १६ ॥
सूरा जूझै गिरद सों,	इक दिस मूर न होय ।
यौं जूझै विन बाहरा,	भला न कहसी कोय ॥ १७ ॥
सूरा सीस उतारिया,	छाँडी तनकी आस ।
आगे सें गुरु हरपिया,	आवत देखा दास ॥ १८ ॥

सूर के मैदान में, कायर फंदा आय ।
 ना भाजै ना लडि सकै, मनही मन पछिताय ॥१९॥
 सूर के मैदान में, कायर का क्या काम ।
 सूर सों सूर मिलै, तब पूरा संग्राम ॥२०॥
 सूर के मैदान में, कायर का क्या काम ।
 कायर भाजै पीठ दै, सूर करै संग्राम ॥२१॥
 सूर के मैदान में, कायर का क्या काम ।
 तीर तुपक वरछी बहै, बिगसि जायगा चाम ॥२२॥
 तीर तुपक सों जो लहै, सो तो सूर न होय ।
 माया तजि भक्ति करै, सूर कहावै सोय ॥२३॥
 तीर तुपक सों जो लहै, सो तो सूर नाहि ।
 सूर सोइ सराहिये, बाँटि बाँटि धन खाँहि ॥२४॥
 सूर सनमुख बाहता, कोइ न बाँधै धीर ।
 पर दल मोरन रन अटल, ऐसा दास कबीर ॥२५॥
 सूर नाम धराय करि, अब क्यों हरपै धीर ।
 मँडि रहना मैदान में, सनमुख सहना तीर ॥२६॥
 सूर लहै कपंद हँ, धड़ सों सीस उतारि ।
 कहें कबीर मारा मुआ, कहें जु मारि हि मारि ॥२७॥
 सूर तो साँचै मतै, सहै जु सनमुख धार ।
 कायर अनी चुभाय के, पीछे झलै अगार ॥२८॥

सूर थोड़ा ही भला, सत का रोपै पग ।
 घना मिला किहि कामका, सावन का सा वग ॥२९॥
 सूर चञ्चा संग्राम को, कबहु न देवें पीठ ।
 आगे चलि पाछे फिरे, ताको मुख नहि दीठ ॥३०॥
 सूर सनाह न पहिरई, जब रन वाजा तूर ।
 माथा काटै धड लहै, तब जानीजै सूर ॥३१॥
 सूर सनाह न पहरई, मरता नहीं डराय ।
 कायर भाजें पीठ दे, सूर मुँहामुँह खाय ॥३२॥
 सूर न सेरी ताकई, नेजा घालै घाव ।
 सब दल पाछा मोड़ि के, माझी सेती चाव ॥३३॥
 सूर सार संवाहिया, पहरा सहज सँजोग ।
 ज्ञान गयेंद्र हि चढ़ि चला, खेत परन का जोग ॥३४॥
 खेत न छाँडै सूरमा, जूझै दो दल मांहि ।
 आसा जीवन मरन की, मन में राखै नांहि ॥३५॥
 अब तो जूझै ही बनै, मुड़ि चालै घर दूर ।
 सिर साहिब को सोंपने, सोच न कीजै सूर ॥३६॥
 भागै भला न होयगा, मुँह मोड़ै घर दूर ।
 साँई आगे सीस दे, सोच न कीजै सूर ॥३७॥

३१. सनाह=कनच ।

३३. सेरी=गली । नेजा=भाला । माझी=दोनों दलोंके बीचमें रहनेका ।

भागै भला न होयगा, कहु सूरतन सार ।
 भरम बकतर दूर करी, सुमिरन सेल सँभार ॥३८॥
 भागै भला न होयगा, मुडि चाल्यै धसि दूर ।
 खडग उपाडै ना डरै, सो साचा है सूर ॥३९॥
 जाय पूछो उस घायलां, दिवस पीर निसि जागि ।
 वाहनदारा जानि है, कै जानै जिस लागि ॥४०॥
 घायल तो घूमत फिरे, राखा रहै न ओट ।
 जतन करै जीवै नही, लगी मरम की चोट ॥४१॥
 साथ सती औ सूरमा, राखा रहै न ओट ।
 सीस कटावै धड छँडै, सुन जो पावै चोट ॥ ४२ ॥
 सेल जु जाही मारिये, नहि काहु की ओट ।
 ओलाजा लोपौ नहीं, खाली पडै न चोट ॥ ४३ ॥
 निसंक है रन में रहै, ज्यौ दरिया में दोट ।
 साहिव तबही पाइये, सहिये सिर पर चोट ॥४४॥
 ओटा लिया न ऊगरै, सुनरे मनुवा बूझ ।
 निकसि रहो मैदान में, कर पाचों से जूझ ॥ ४५ ॥
 घायल की गति और है, औरन की गति और ।
 मेष चान हिरदै लगा, रहा कबीरा ठौर ॥४६॥
 चिन चेतन ताजी करै, लो की करै लगाव ।
 सब्द गुरुका ताजना, पहुँचै संत मुठाम ॥४७॥

सिर राखै सिर जात है,
जैसे वाती दीप की,
धड़ से सीस उतारि के,
कोड़ सूर को सोहसी,
लडने को सब ही चले,
सादिव आगे आपने,
जूझेंगे तब कहेंगे,
भीड़ पड़े मन मसखरा,
मेरे संसय कोय नहीं,
काम क्रोध सों जूझता,
जब लग धड़ पर सीस है,
माथा टूटै धड़ लडै,
रन हि धसा जो ऊवरा,
घरै बघावा वाजिया,
सांई सेति न पाइये,
कवीर सौदा नाम का,
जेता तारा रैन का,
धंड सूली सिर कंगुरै,
ऐसी मार कवीर की,
कहै कविर सो ऊवरै,

सिर काटै सिर सोय ।
कटि उजियारा होय ॥४८॥
हारि देय ज्यों ढेल ।
घर जानेका खेल ॥४९॥
सस्तर बाधि अनेक ।
जूझैगा कोय एक ॥५०॥
अब कुछ कहा न जाय ।
लडै किर्यौं भगि जाय ॥५१॥
गुरु सो लागै हेत ।
चौडै मांढा खेत ॥५२॥
सूर कहावै कोय ।
कर्मद कहावै सोय ॥५३॥
आगै गिरह निवास ।
और न दूजी आस ॥५४॥
वातन मिलै न कोय ।
सिर विन कबहु न होय ॥५५॥
येता वैरी मुझ ।
तउ न बिसारुं तुझ ॥ ५६ ॥
मुआ न दोसै कोय ।
घड़ पर सीस न होय ॥ ५७ ॥

सीतलता संजोय ले, सूर चढै संग्राम ।
 अबकी भाजन सरत है, सिर साहब के काम ॥ ५८ ॥
 जोग-सुँ तो जौहर भला, घड़ी एक का काम ।
 आठ पहर का जूझना, बिन खाँडै संग्राम ॥ ५९ ॥
 पंज असमाना जब लिया, तब रन धसिया सूर ।
 दिल सौपा सिर ऊवरा, मुजरा धनी हजूर ॥ ६० ॥
 कठिन कमान कबीर की, पड़ी रहै मैदान ।
 केने जोधा पचि गये, खींचै संत मुजान ॥ ६१ ॥
 कड़ी कमान कबीर की, धरी रहै मैदान ।
 सूर है सो खींचहीं, नहि कायर का काम ॥ ६२ ॥
 कड़ी कमान कबीर की, न्यारे न्यारे तीर ।
 चुनि चुनि मारै बगतरी, सूरख गिनै न तीर ॥ ६३ ॥
 कड़ी कमान कबीर की, काचा टिकै न कोय ।
 सिर सौपी सूर लडै, कालै निरभय होय ॥ ६४ ॥
 कहीं है धारा राव की, काचा टिकै न कोय ।
 सिर सौपै सीधा लडै, सूर कहिये सोय ॥ ६५ ॥
 बाँकी तेग कबीर की, अनी पडै दो टुक ।
 मार धीर महाबली, ऐसी मूठ अचूक ॥ ६६ ॥

५८. संजोग ले=प्रारण करके । अब की भाजन=अब की बेर ।

५९. जौहर—सतीत्य धर्मकी रक्षा के लिये जीते जी जलना ।

६०. पन असमाना—पाचों शख, दूसरे पक्षमें पंचज्ञानेन्द्रियां ।

वाँका गढ़ वाँका मता,	वाँकी गढ़की पोल ।
काछ कवीरा नीकसा,	जमसिर घाली रोल ॥ ६७ ॥
रका वहै लोहा झरे,	टूटे जिरह जँजीर ।
अविनासी की फौज में,	गूँजे दास कवीर ॥ ६८ ॥
सार वहै लोहा झरे,	टूटे जिरह जँजीर ।
जम ऊपर साटि करी,	चढिया दास कवीर ॥ ६९ ॥
ज्यों ज्यों गुरुगुन सँभली,	त्यों त्यों लागै तीर ।
सांटी सांटी झरि पढी,	मलका रदा सरीर ॥ ७० ॥
ज्यों ज्यों गुरु गुन सँभले,	त्यों त्यों लागै तीर ।
लागे पन भागै नहीं,	सोई साथ सुधीर ॥ ७१ ॥
जौपड मांढी चौदहै,	अरथ उरथ बाजार ।
सतगुरु सेती खेलतां,	कबहु न आवै हार ॥ ७२ ॥
जो हारौ तो सेव गुरु,	जो जीतौ तो दाव ।
सत्तनाम सों खेलतां,	भिर जावै तो जाव ॥ ७३ ॥
खोजी को डर बहुत है,	पल पल पढ़ै विजोग ।
प्रन राखत जो तन गिरै,	सो तन सादिय जोग ॥ ७४ ॥
भाव मालका मुरति सर,	धरि धीरज कर तान ।
मन की मूठ जहाँ मुँढी,	चोट तहां ही जान ॥ ७५ ॥
धुजा फलके मुन में,	वाजै अनहद तुर ।
सकिया है मैदान में,	पहुँचेगा कोय मूर ॥ ७६ ॥

कहै दरवारी चातरी, क्यों पावै वह धाम ।
 सीस उतारै संचरै, नाहि और को काम ॥ ७७ ॥
 सीस खिसै साईं लखै, भल वॉका असवार ।
 कमद कबीरा किलकिया, केता किया सुमार ॥ ७८ ॥
 लालच लोभ न मोह मद, एकल ^१भला अनीह ।
 हरिजन ऐसा चाहिये, जैसा वन का सिंह ॥ ७९ ॥
 रन रोही अति ही हुभा, साजन मिला हजूर ।
 सूर सूर ठाहरा, भाजि गई भकमूर ॥ ८० ॥
 सब ही साथी कलतरो, धीर न बंधै कोय ।
 भागा पीछै बाहरै, ठाठ गुसाईं सोय ॥ ८१ ॥
^२खाँडा तिस को चाहिये, ^३फिर खाँडे को देय ।
^४कायर को क्या चाहिये, दाँतों तिनका लेय ॥ ८२ ॥
 कोनै परा न छूटि है, सुनरे जीव अबूझ ।
 कबीर मँड मैदान मे, करि इन्द्रियन सों जूझ ॥ ८३ ॥
 इक मारियो इक मारियो, येही विपमा सिद्धि ।
 ना वे कायर मरेंगे, चालै तरकस विद्धि ॥ ८४ ॥
 कायर हुभा न छूटि है, कूचि घुरातन माँहि ।
 मरम भलाका दूरि करि, घुमिरन सेल सनाँहि ॥ ८५ ॥

७८. कमद=बड । ७९. एकल=एकाकी । मल=मिलता है ।

१. पा० मल । २. पा० सेल जो नाहि मारिये । ३. पा० उलटि सेल को देय । ४. पा० ताही सेल न मारिये ।

कायर मया न छूटि हो,	सुरता, कछु समाय ।
भरम भालका दूरि करि,	सुमिरन सेल मँजाय ॥८६॥
कायर को कौतुक भला,	काहे कसै सनाह ।
भीर परै भगि जायगा,	जीवन का है लाह ॥८७॥
कायर का घर फुसका,	भभकी चहुं पछीव ।
सूरा के कछु डर नहीं,	गज गीरी की भीत ॥८८॥
कायर बहुत पमावई,	अधिक न बोलै सूर ।
सार खलक कै जानिये,	किहि के मुँहडै नूर ॥८९॥
कायर सेरी ताकवै,	सूरा मँडै पाँव ।
सीस जीव दोऊ दिया,	पीठ न आया घाव ॥९०॥
कायर भागा पीठ दे,	सूर रहा रन मँहि ।
पटा लिखाया गुरु पै,	खरा खजीना खाँहि ॥९१॥
भागि कहाँ को जाइये,	भय भारी घर दूर ।
बहुरि कबीरा खेत रहु,	दल आया भरपूर ॥९२॥
भागै भलो न होयगी,	कहां घरोगे पाँव ।
सिर सौंपी सीधे लहौ,	काहे करौ कुदाव ॥९३॥
सति जो दरपै अगिन ते,	सूरा सर हि डराय ।
हरिजन भागै भक्ति सों,	देस दुनी ते जाय ॥९४॥

८८. गजगीरी की भीत—ऐसी चौड़ी दीवार जिस पर हाथी चल सकता हो ।

१. पा० कायर भागै कालसुं । २. पा० रहै । ६. पा० प्रेमका ।

मानुस खोजत मैं फिरा,	मानुस बड़ा सुकाल ।
जाको देखत दिल थिरे,	ताका पड़ा दुकाल ॥१९॥
सूर चढ़े संग्राम को,	वाना पहिन अनेक ।
साई के मुख सापने,	मुवा जु कोई एक ॥१६॥
सूर चढ़े संग्राम कूं,	अरिदल भाँहि धसाय ।
सिर साहब को दे रहे,	सहज सुरति प्रत खाय ॥१७॥
सूर चढ़े संग्राम कूं,	पीछे पांव न देह ।
साहब लाजै भाजतां,	दृष्टि पड़ा तोहि देह ॥१८॥
सूर चढ़े संग्राम कूं,	पाँव न पीछा देह ।
सिर के साटे जूझहीं,	अगम दौरकूं लेह ॥१९॥
जो सिर सौषा साई को,	वह सिर भया सनाथ ।
कबीर दे उवरन भये,	जाका ताके हाथ ॥२०॥
जाका ताकूं दीजिये,	कभी उवरना होय ।
पहिले देवै सो सरा,	पीछे तो सब कोय ॥२०१॥
सूरा सोई जानिये,	पावन पीछे पेख ।
आगे चलि पीछा फिरै,	ताका मुख नहि देख ॥२०२॥
देखा देखी सूर चढ़े,	मर्म न जानै कोय ।
साई कारन सीस दे,	सूर जानौ सोय ॥२०३॥
सिर साटे का खेल है,	सो सरन का काम ।
पहिले मरना आग में,	पीछे कहना राम ॥२०४॥

हरि का गुन अति कठिन है,
सिर काटी पगतर धरै,
ऊँचा तरवर गगन फल,
बहुत सयाने पचि गये,
दूर भया तो क्या भया,
जबलग सिर सोंपे नहीं,
दूर भया तो क्या भया,
सिर सोंपे उन चरन में,
यह रन माँड़ी पैठ कर,
साहिव के सनमुख रहे,
जबलग घड पर सीस है,
माथा तूटे घड लडै,
कवीर साँचा सूरमा,
जीवन के बंध खोल के,
कठिनाई कलु है नहीं,
राम नाम नहि छाँडिये,
मारग कठिन कवीर का,
आय चले कोइ सूरमा,
रन जँग वाजा धाजिया,
पूरा सो तो लडत है,

ऊँचा बहुत अकथ्य ।
तब जा पहुँचे हृथ्य ॥१०६॥
पखी ^१मूआ झूर ।
^२फल ^३लागा पै दूर ॥१०६॥
सिर दे नियरा होय ।
चाख सकै नहि कोय ॥१०७॥
सतगुरु मेला होय ।
कारज सिद्धि होय ॥१०८॥
पीछै रहै न सूर ।
धर दे सीस हजूर ॥१०९॥
मूरा कहिये नाहि ।
मूरा कहिये ताहि ॥११०॥
कबू न पहिरे लोह ।
छाँडै तन का मोह ॥१११॥
जो सिर बदले लेह ।
जो सिर करवत देह ॥११२॥
धरि न सकै पग कोय ।
जा घड़ सीसन होय ॥११३॥
सूरा आये धाय ।
कायर भागै जाय ॥११४॥

सब कोइ सूर कहावई,	धीर न बंधे कोय ।
आगे पीछे बावरा,	फिदरे कहै सब कोय ॥११५॥
रग बग टोपी सत्र कसी,	रन कुं चलै बजाय ।
फिर फिर भवन चितावई,	बाना विरद लजाय ॥११६॥
कायर का काचा मता,	घडी पलक मन और ।
आगा पीछा है रहै,	जागि मिलै नहि ठौर ॥११७॥
कायर कचरी बैठि के,	मूछाँ मरहै मरड ।
सूरा तब ही जानिये,	निकसे सरहै सरड ॥११८॥
सूरा कायर दुइ भला,	एक जीव इक प्रान ।
सूर मचवि मापला,	कायर देवै जान ॥११९॥
कान हसिया मुख बकिया,	इक दिन घायल होय ।
टप लागी नहि चुप रहै,	सूरा कहिये सोय ॥१२०॥
हाक बनी जब खेत में,	तब रन दोसै प्रीत ।
सारा लरकर खलवलै,	कायर दीन्ही पीठ ॥१२१॥
सूर निसाना गाडिया,	लहै धनीकी रीज ।
सिर बहै नीरत सहे,	चहु दिस चमकै बीज ॥१२२॥
धरनि अकासा थर हरै,	गरजै सुनके बीच ।
कहै कविर जब सिर दिया,	लेहो लरकर जीत ॥१२३॥
पारथ मूरा मै सुना,	जाके सारंगपान ।
बाहर बैरी बहु हने,	एक न मारै बान ॥१२४॥

सूरा सबहि निकसिया,	बाना पहिरि अनेक ।
साहिब के सुख कारनै,	मूआ कोई एक ॥१२५॥
साधू सब ही सूरमा,	अपनी अपनी ठौर ।
जिन ये पाँची चूरिया,	सो माथे का मौर ॥१२६॥
सूरा सो सनमुख लडै,	देखि धनी की प्रीति !
जीता जानै जगत कुं,	जक्त न जानै रीति ॥१२७॥
कबीर चढै सिकार को,	हाथै लाल कमान ।
मूरख नर सो रहि गये,	मारे संत सुजान ॥१२८॥
कबीर चढै सिकार को,	हाथै लाल कमान ।
मेरा मारा फिर उठै,	बहुरि न गहुं कमान ॥१२९॥
मारा हे मरि जायगा,	प्रेम मुरंगी वान ।
मेरा मारा फिरि उठै,	बहुरि न गहुं कमान ॥१३०॥
सब्द सुरति का तीर है,	तरकस भरे जँजीर ।
गीदहियाँ पर बाइताँ,	केते खोवे तीर ॥१३१॥
जूझन चाले सूरमा,	घरनी किया मुकाम ।
मर्दों के मैदान में,	नहि कायर को काम ॥१३२॥
भलका है गजवेलका,	खरा सरान चढाय ।
सारा लस्कर हूँदिया,	को सिरदार न पाय ॥१३३॥
कायर काम न आवई,	ये सूरका खेत ।
हाथ पाँव चित् जूझना,	काया सीस समेत ॥१३४॥

जे मूआ गुरु हेत सुं,	ताकूं बूम न वार ।
साधू साहिव ह्वै रहा,	माय रही सिर मार ॥१३५॥
जो मूआ हरि हेत में,	कोइ न बूझै सार ।
हरिजन हरि सा ह्वै रहा,	माया रहि सिर मार ॥१३६॥
सिर साटै का खेळ है,	छांड़ि देय सब वान ।
सिर साटै साहिव मिलै,	तोहु हानि मति जान ॥१३७॥
नाम करन नाना भये,	रहे मदा रन मॉय ।
भलका मारे प्रेमका,	खरा खजीना खाय ॥१३८॥
धीरा ह्वै धमका सहै,	ज्यों अहरनका घाव ।
सिर के साटै जब लडै,	कबहुं काज न खाव ॥१३९॥
धतुक वान की चोट है,	पानी का परसंग ।
जिन कूं लागी होय सी,	तिन कूं और हि रंग ॥१४०॥
रम रहै सूर मये,	सूर भये जो सूर ।
सूरा पूरा रहि गये,	भागि गये सब कूर ॥१४१॥
सूरा खांडा जो गहे,	जब रन बजै तूर ।
सीस पडै तो धड लडै,	तब तूं सांचा सूर ॥१४२॥
सबै कहवै लस्करी,	सब लम्कर कूं जाय ।
सेल धमका जो सहै,	खरा मुसारा खाय ॥१४३॥
जुझै ते नर भागिया,	लिया पीठ पर घाव ।
जागीरी सब ऊनरी,	धनी न कहसी आव ॥१४४॥

जूझै ते नर जूझिया,	लिया सीस पर घाव ।
जागीरी दूनी मई,	दिया सीस पर पाव ॥१४५॥
चोट सहै जो सेल की,	ऊठी देह अवास ।
चोट सन्द की जो सहै,	सोइ सुहागी दास ॥१४६॥
रन चढि सन्द पुकार ही,	हो हो हो हुंकार ।
सिर चिन घड चिन भिड पडै,	ता मोंहीं मयकार ॥१४७॥
कोइ मारै तिर तोप सँ,	होत दुवादस घाव ।
कबीर मारै सन्द सँ,	तल मूडी पर पाव ॥१४८॥
मन तरकस तन तोपसी,	सुरति पलीता छाय ।
करो भडाका नाम का,	काल कुबुध उडि जाय ॥१४९॥
ज्ञान कामठा गुन चिला,	तन तरकस मन तीर ।
सन्द भालका सार का,	मारै दास कबीर ॥१५०॥
आस वास मन मेलिया,	जब रन घसिया सूर ।
दल मोटै सर ऊगरै.	मुजरा साम हजूर ॥१५१॥
सूर लडै गुरु दाव सँ,	इक दिस जूझन होय ।
जूझै बीना सूरमा,	मला न कहसी कोय ॥१५२॥
सूरा तो बहुतक मिले,	घायल मिळा न कोय ।
घायल कुं घायल मिले,	नाम भक्ति दृढ होय ॥१५३॥
बाहिर घाव दिसै नहीं,	पडा कलेजे घाव ।
वाकू औषध का करै,	घायल जीवै नाहि ॥१५४॥

१५०. कामठा—पकड़नेकी मूठ । चला—चिला, डोरी । तरकस—भाथा ।

भालका—भाला ।

१. पा० चला ।

जान तीरछा भेदिया, लगा भलका सार ।
 भरम बकतर भेदि कर, निकसि गया भौ पार ॥१५५॥
 लगा भलका नाम का, रही गया उर माँहि ।
 लगा ताकुं साल सी, औरों कुं गम नांहि ॥१५६॥

स्वारथ को अंग ।

स्वारथ का सब को सगा, सारा ही जग जान ।
 विन स्वारथ आदर करै, सो नर चतुर सुजान ॥ १ ॥
 निज स्वारथ के कारनै, सेव करै संसार ।
 विन स्वारथ भक्ति करै, सो भावै करतार ॥ २ ॥
 स्वारथ कुं स्वारथ मिले, पडि पडि लूबालूब ।
 निस्पेही निरधार को, कोय न राखै शूब ॥ ३ ॥
 माया कुं माया मिले, कर कर लंबे हाथ ।
 निस्पेही निरधार को, गाहक दीनानाथ ॥ ४ ॥
 माया कुं माया मिले, लंबी करके पांख ।
 निरगुन को चीन्है नही, फूटी चारों आंख ॥ ५ ॥
 संसारी सैं मीठडी, सरै न एकौ काम ।
 दुविधा में दोनों गये, माया मिली न राम ॥ ६ ॥

परमार्थ को अंग।



परमाथ पाको रतन, करहुँ न दीजै पीठ ।
 स्वारथ सेंमळ फल है, कली अपूठी पीठ ॥ १ ॥
 मरुँ पर माँगूँ नहीं, अपने तन के कान ।
 परमार्थ के कारनै, मोहि न आवैं लाज ॥ २ ॥
 पीत रीत सब अर्थ की, परमार्थ की नोहि ।
 कहै कविर परमाथी, विरला को(य) कलि मौहि ॥ ३ ॥
 सुख के संगी स्वारथी, दुख में रहते दूर ।
 कहै कविर परमाथी, दुख सुख सदा हजूर ॥ ४ ॥
 जो कोय करे सो स्वारथी, अरस परस गुन देत ।
 दिन किये करै सुरमा, परमार्थ के हेत ॥ ५ ॥
 आप स्वारथी मेदिनी, भक्ति स्वारथी दास ।
 कवीर जन परमाथी, डारी तन की आस ॥ ६ ॥
 स्वारथ सूका लाकडा, छौंढ बिहूना मूल ।
 पीपल परमार्थ भजो, सुख सागर को मूल ॥ ७ ॥
 धन रहै न जोवन रहै, रहै न गाँव न ठाम ।
 कवीर जग में जस रहै, करदे किसिका काम ॥ ८ ॥

१. सेंभरके फूलकी कली उलटी होती है जो कि अपनी ओर मिलती है । भाव यह है कि स्वार्थ से केवल अपने का और परमार्थ से सारे ससार को लाभ पहुच सकता है ।

१. पा० कवीर नाम स्वारथी, छौंड़ी तन की आस ।

विपर्यय को अंग ।

सांझ पड़ी दिन ढल गया, वाघन घेरी गाय ।
गाय विचारी ना मरै, वाघ न भूखा जाय ॥ १ ॥
पापी को दोजख नहीं, धरमी दोजख जाय ।
यह परमार्थ बूझि के, मति कोय धरम कराय ॥ २ ॥
पांच पचीसों मारिया, पापी कहिये सोय ।
या परमार्थ बूझि के, पाप करै सब कोय ॥ ३ ॥

१ सांझ-अत अवस्था । दिन-जीवन । वाघ-काल । गाय-आत्मा ।
अत अवस्था आने से जीवन का अत हो गया, अत काल ने
आत्मा को आ दबाया । ऐसी दशा में भी न तो आत्मा ही मरती है और
न काल ही भूखा रहता है ।

जिस प्रकार निर्जन वन में रक्षक के अभाव से रात को सिंह गाय
को दबाता है, इसी प्रकार अज्ञानियों को काल बार-बार चमेटा करता है ।
यद्यपि आत्मा का नाश नहीं होता, तथापि देह से प्राणपुरुष का वियोग
काल कर देता है, इसी का नाम मृत्यु है । यह एक आश्चर्य है कि न तो
आत्मा ही मरती है और न काल ही भूखा रहता है ।

२ पापी-पांच ज्ञानेन्द्रिय और पचीस प्रकृतियों को मारनेवाला ।
(वश में करनेवाला) दोजख-नर्क । धरमी-पाच और पचीसों को अपने
विषयों में लगानेवाला ।

३ पाच और पचीसों को मारनेवाला पापी कहलाता है । यद्यपि पापी
शब्द सुनने में बुरा लगता है, परन्तु इसका अर्थ अच्छा है, इस लिये
सबों को ऐसा पापकर्म सदैव करना चाहिये ।

आपा मेटे हरि मिलै, हरि मेटे सब जाय ।
 अकथ कहानी प्रेम की, कोई ना पतियाय ॥ ४ ॥
 घर जॉर घर उबरै, घर राखै घर जाय ।
 एक अचंभा देखिपा, मुआ काल को खाय ॥ ५ ॥
 तिल समान तो गाय है, बटुड़ा नौ नौ हाथ ।
 मटकी भरि भरि दुहि लिया, पूछ अठारह हाथ ॥ ६ ॥

४ आपा—अहकार । हरि—पापों के हरणकर्ता, साहब ।

अहकार को दूर करनेवाला साहब के दरबार में पहुँच जाता है । और मालिक से प्रेम तोड़नेवाले का सब कुछ चला जाता है । प्रेम की इस अकथ कहानी पर कोई निश्वास नहीं करता ।

५ घर—प्रपच, विकार । घर—आत्मा । मूआ—जीवितमृतक । ।

प्रपच के विकारों को णछा देने से जीवात्मा का उबार (उद्धार) होता है । और प्रपच के विकारों को बढाने से जीव चौरासी में चला जाता है, यह एक भारी आश्चर्य है कि जीवन्मृतक काल को भी खा लेता है ।

भावार्थ—अहकारादिक विकारों का त्यागना भीतेजी मरना है । जो ऐसा करता है उसे काल चौरासी में नहीं ले जा सकता ।

६ बाणीरूप गायत्री तो तिल के समान स्वल्प है, परन्तु उसके बड़े रूप व्याकरण लम्बे २ नव हैं । और उसका अर्थरूप दूध भी बहुत अधिक होने के कारण अपार है । और तो और उसकी पूछ भी अठारह पुराणों के रूप में अठारह हाथ की है ।

झाल बठी झोली जली, खपरा फूटम फूत ।
 जोगी था सो रमि गया, आसन रही भभूत ॥ ७ ॥
 आग जु लागी नीरमें, कादौं जरिया झार ।
 उत्तर दिसि का पडिवा, रहा विचार विचार ॥ ८ ॥
 धौं लागी सायर जळे, पंखी बैठे आय ।
 दाधी देर न पालि है, सतगुरु गये लगाय ॥ ९ ॥
 जल दासा चीखल जला, विरहा लागी, आग ।
 तिनका वपुरा ऊबरा, गल पूला के लाग ॥ १० ॥

७ झाल ज्ञान त्रिरह । झोली—अतः कारण के विकार । खपरा—काया ।
 जोगी—जीवात्मा । आसन—ससार । भभूत—अनुभव ।

ज्ञान त्रिरह के उदय से ज्ञानी पुरुषों के हृदय के विकार नष्ट हो जाते हैं । अनंतर उनके विदेहमुक्त हो जाने पर भी—जोगी के चले जाने पर भभूति की तरह उनका अनुभव ससार के लिये प्रसाद रूप रह जाता है ।

८ और रूप हृदय में ज्ञान त्रिरह की अग्नि के जल ठठने से सम्पूर्ण कर्मों का कीचड़ जल गया, इसके फल स्वरूप ज्ञानी जन निर्मल हावर विदेहमुक्त हो गये, परन्तु उपासनाकुशल उत्तरायण सूर्य की प्रतीक्षा करनेवाले उत्तरीय पडित तो विचारे विचार ही करते रह गये ।

९ ज्ञानी के हृदय रूप सागर में ज्ञान त्रिरह की अग्नि के लगने से इन्द्रियों के गुण रूप पक्षी जल गये । सद्गुरु ने जिसको यह अग्नि लगा दी वह अपने शरीर की पट्टा कदापि नहीं करता ।

१० जल—काया । चीखल—कीचड़, चिन्ता । तिनका—जीव । पूला मालिक ।

हृदय में ज्ञान त्रिरह की अग्नि के प्रकट होने से मन और मनके विकार—चिन्ता आदिक नष्ट गये । केवल जीवात्मा सद्गुरु साहब के शरण पहुचने से बच गया ।

आहेरी धौं छाड़या, मिरग-पुकारै रोय ।
 जा धनपै की लाकड़ी, दासत-हे बन सोय ॥११॥
 पानी माहीं परजळी, रुई अपरवल आग ।
 बहती सरिता रह गई, मच्छ-रहे जल त्यागि ॥१२॥
 नदिया जलि कोइला मई, समुंदर लागी आग ।
 मच्छी विरछा चढि गई, ऊठ कवीरा जागि ॥१३॥
 पच्छी उडानी गगन को, पिंड रहा परदेस ।
 पानी पीया चोंच विन, भूलि गया वह देस ॥१४॥

११ आहेरी—सद्गुरु । धौं—वन की अग्नि, ज्ञान विरह । मृग—पंच इन्द्रिय । वन—कामादिक विकार ।

सद्गुरु ने ज्ञान विरह की ऐसी आग लगाई कि उसमें कामादिक विकार रूपी जंगल की लाकड़ियाँ रूप इन्द्रियों जल गई । अपनी रक्षा का तो उपाय उन्होंने बहुत कुछ किया फिर भी न बच सकी ।

१२ पानी—हृदय । आगि—ज्ञान विरह । सरिता—सुरति । मच्छ—मन । जल—माया ।

ज्ञान विरह की अग्नि हृदय में ऐसी प्रज्वलित हुई कि सुरति एकाएक ठहर गई । और मन भी माया को छोड़ भागा ।

१३ हृदय समुद्र में ज्ञान विरह की ऐसी आग लगी कि आशा की नदी जलकर कोयला हो गई । और मछली रूप सुरती दौड़ कर अछे पुरुष रूप बड़े पेड़ पर चढ़ गई ।

१४ सुरति पिंड को छोड़कर गगन मंडल चढ़ गई, अनंतर वहाँ अंतर-गति से निजानन्दामृत का ऐसा पान किया कि उसे इस देश की सुधि तनिक भी न रहे ।

आकासे , औंधा कुवा, पाताले पनिहार ।
 जल हंसा कोय पीवई, विरला आदि विचार ॥१५॥
 सिव सक्ति मुख को जुवै, पच्छिम दिसि उठे धूर ।
 जलमें सिंध जो घर करै, मछरी चढै खजूर ॥१६॥
 जिहि सर घटा न बूढ़ता, मैंगल मलि मलि न्हाय ।
 देवल बूढ़ा कलस सों, पँछि पियासा जाय ॥१७॥
 चोर भरोसै साहुके, लाया वस्तु चोराय ।
 पहिले बांधो साहु को,^३ चोर आप बँधि जाय ॥१८॥

१५ गगन मडल में नीचे मुख का एक अमृतकूप है । गुरुगम युक्ति के बिना उस अमृत को कुडली शक्ति पी लेती है । कोई विरले इस आदि-विचार से उस अमृत का पान करते हैं ।

१६ मेरुदेड में प्राणों के सचार से मन और मनसा का लय होता है । और गगन मडल में सुरति के चढ़ने से हृदय में ज्ञान का सचार होता है ।

१७ 'सद्गुरु के' बिना जिसे निजानन्द सागर में मन जरा भी नहीं पैठता था अब तो वह हाथों के समान विहारपरापण होकर उससे जरा भी निकलना नहीं चाहता । और शरीर भी नख से शिखा तक उस आनन्द से आनन्दित हो गया, परन्तु ससारी उडाकू मन को इससे कुछ आनन्द नहीं मिलता ।

१८ चोर=मन । साहु=शरीर ।

शरीर की सहायता से मन नाना प्रकार के अनर्थ कर बैठता है, अतः शरीर को सप्त बनाना भी अन्याय्य है, शरीर के निरोध से मन असहाय बनकर स्वयं हतोत्साह हो जाता है ।

चोर मरोसै साहु के, वस्तु पराई लेय ।
जब लग साह न बांधई, चोर वस्तु नहि देय ॥१९॥
भँवरा चारी परिहरी, मेवा विलँबा जाय ।
बावन चंदन घर किया, भूलि गया वनराय ॥२०॥
एक दोस्त इमहू किया, जिहि गल काल कवाय ।
सब जग धोवी धोय मरे, तोभी रंग न जाय ॥२१॥
चगुली नीर बिटारिया, सार्यर चढा कलंक ।
और पँखेरु पीविइया, हंस न बोरै चंच ॥२२॥

१९ मन शरीर के उपभोग के लिये माया का सचय करता है; अतः जब तक शरीर सयत न बनाया जाय तब तक मन नहीं रुक सकता ।

२० सद्गुरु की कृपा से अब मन ने त्रिपर्यायी को त्याग दिया और नित्यानन्द रूप मेव को खाने लगा । और पारब्रह्म रूप चन्दन का ऐसा निरासी बन गया कि अब ससार की तनिक भी मुषि नहीं करता ।

२१ मैंने ऐसे प्रेमी मन का संग किया जिसके गले तक प्रेम का लाल जामा है । अनेक ससारी लोगों ने उस रंग को फाँका करने का उद्योग किया; परन्तु वह ज्यों का त्था बना रहा ।

२२ कुबुद्धि ने जीव को अपने कर्तव्य से च्युत कर दिया, अतः शरीर को भी कलंक लग गया । ससारी लोग चाहें कुबुद्धि के पीछे पडे रहें; परन्तु सतजन तो उसका संग कदापि नहीं करते । आत्मा का माया और मया के गुणों से कभी अत होता नहीं ।

जल में अँन जो ना चुरै, घृत में पाक न होय ।
 कहैं कबिर या साखि को, अर्थ करै सब कोय ॥२३॥

तीन गुनन की बादरी, ज्यों तरुवर की छाँहि ।
 बाहर रहै सो ऊवरै, भीजै मन्दिर माँहि ॥२४॥

ऐसी व्याई सो तुई, बेस्या सो रहि पेट ।
 सगो समुर पाँयन पयो, भइ सतगुरु सों भेट ॥२५॥

सूप सदा ही उद्धरै, दाता जाय नरक ।
 कहै कबिर यह साखि सुनि, मति कोय जाव सरक ॥२६॥

२३ कबीर साहब कहते हैं कि इस साखीका अर्थ सब कोई कर सकते हैं, अर्थात् इस बात को सब कोई जान सकते हैं ।

२४ तरुवर की छाया की तरह तीन गुन की बदली रूप माया की छाया भी स्थिर नहीं रहती । जो इस माया मन्दिर से बाहर रहते हैं वे भीजने नहीं पाते और जो इसके अन्दर रहते हैं वे गुणरूप जल से पूरी तरह भीज जाते हैं ।

२५ त्रिगुणहिता स्त्रीरूप सुमति का गर्भपातरूप ज्ञान का नाश हो गया । और त्रेष्टारूप माया के गर्भ से अज्ञानरूप पुत्र उत्पन्न हो गया । और सद्गुरु से भेंट होने पर अहंकार रूप स्वशुभ भी पैरों में आ पड़ा ।

२६ सूय-वीर्य का दान नहीं करनेवाला साधुमन । दाता-वीर्य दान करनेवाला कामी पुम्प ।

दाता नरक सूय वैकुण्ठे, मच्छर अजर जरै ।
 कबीर साखी कठिन है, हिरदै रसै तब अर्थ करै ॥२७॥
 वैसन्दर जाड़े मरै, पानी मरै पियास ।
 भोजन तो भूखा मरै, पाथर मरै इगास ॥२८॥
 नलिनी सायर घर किया, दौं लागी बहु तन ।
 जल ही मांहीं जलि मुई, पूरव जन्म लखन ॥२९॥
 रौने पुरै वासर वटै, वन अंधियारा होय ।
 लागि रहा फूला फला, पथ नहि काटा कोय ॥३०॥

२७ नहीं जलनेवाली मत्सरता (दूसरों में तुच्छता बुद्धि) को जलनेवाले पूर्वोक्त सूय को सद्वृत्ति होती है और पहले कहे हुए दाता जो तो नरक ही जाना पड़ता है । कबीर साहब कहते हैं कि कठिनता के कारण जिसके हृदय में यह अर्थ बैठना है वही इस साखी का अर्थ कर सकता है ।

२८ कामाग्नि का शील से नाश होता है और तृष्णा के शमन से तृष्णा का नाश होता है । तथा इन्द्रियों के शमन से त्रिषयभोग की निवृत्ति होती है । इसी प्रकार भय से मूर्ख का दमन होता है ।

२९ आत्मा को शरीराध्यास ही के कारण लोभ मोहादिक से अनेक सताप उठाने पड़ते हैं । यह कुछ भाग्य की बात है कि माया ही से इसका सर्व नाश होता है ।

३० जगनी बीत गई और बुढ़ापा भी धीरे २ बीत रहा है । और निर्यलता के कारण इन्द्रिया भी अमर्ष्य हो गई । अज्ञानों लोग व मृता से ससार में आसक्त रहते हैं । पुत्र और पौत्रादिकों के सुख को उठाने हुए भी चौरासी से नहीं छूटने पान ।

उलटा ज्ञान विचार के, देखो अपना देस ।
 हरदी चून मिलाय के, रहे न दूजी लेम ॥३१॥
 कबीर उलटा ज्ञान का, कैसे करूं विचार ।
 अस्थिर बैठा पंथ कटै, चला चली नहि पार ॥३२॥
 सायर मारीं सर गया, मच्छी खाया सोय ।
 सो मच्छी तरुवर चढ़ी, बूझै बिरला कोय ॥३३॥
 हरि घोड़ा ब्रह्मा बड़ी, बासक पीठि पलान ।
 चांद सुरज दुइ पायडा, चढसी संघ सुजान ॥३४॥

३१ ससार से उपरत होकर निजपद की ओर बढ़ो । आत्मा और आत्मचिंतन के प्रताप से द्वेष का लेश तक नहीं रहता ।

३२ इस उल्टे ज्ञान का वर्णन नहीं किया जा सकता । जो ससार से उपरत होकर बैठ जाते हैं वे तो चौरासी के मार्ग को पार कर लेते हैं, और जो अनेक विडवनाओं में पड़कर इधर उधर दौड़ धूँव करते रहते हैं वे इस मार्ग का अन्त नहीं पाते ।

३३ हृदय में समाये हुए गुरु के सद्ब को मुरति ने ग्रहण कर लिया इस कारण वह सर्वोच्चपद को पहुँच गई, इस बात को त्रिलो पुरुष जानते हैं ।

३४ आत्मयोगी लोभ तमोगुण के घोड़े को रजोगुण की कड़ी लगाकर कुडलनी सर्पिणा को बश में करते हैं । अनंतर डगला और पिंगला के पापड़े बनाकर सुषुम्णा में मुरति को चढ़ाते हैं ।

घटी बढी जानै नहीं, मन में राखै जीत ।
 गाडर लडै गयन्द सों, देखो उलझी रीत ॥३६॥
 कूरर बहुबहु जरि मुआ, सलसै चढी सियार ।
 रोवत आवै गदहरा, बोधत आय बिलार ॥३६॥
 मा मारी धी घर करै, गौ सो बच्छा खाय ।
 ब्राह्मन मारै मद पिये, तो अमरापुर जाय ॥३७॥
 माता मुये एक फल, पिता मुये फल चार ।
 भाई मुये हानि है, कहैं कबीर विचार ॥३८॥

३५ गाडर-काया । गयन्द मन ।

अपने ऊपर आई हुई अनेक आपत्तियों को सहनेवाला मनुष्य शारीरिक-संयम के कारण मन पर विजय पा सकता है । शरीर से मन को रोकना हाथी से भेड़ का लडना है ।

३६ ज्ञानी वीरों की ज्ञानाग्नि से कामादिक कुत्तों के झुड जल जाते हैं । ओर सशय रूपी शियार जीते की चिता पर चढ़ जाता है । गर्व रूपी गदहा रोता है और वादरूप बिलार उसको सान्त्वना देता है ।

३७ जो अधिकारी पुरुष ममतारूप माता को मारता है तथा बुद्धिरूप लडकी को अपने हृदयरूप गृह की गृहिणी बनाता है । इसी प्रकार सुमतिरूप गो के विनेक बछड़े को खाता है, तथा जो वादरूप ब्राह्मण को मारकर गुरुमत रूपी मद्य को खूब पीता है वह स्वर्ग को अवश्य पहुँचता है ।

३८ माता रूप ममता के मरने से चिरशक्तिरूप एक उत्तम फल मिश्रता है । और पिता=वित्त, क्रोध के मरने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्षरूप चार फलों की प्राप्ति होती है; परन्तु मातरूप भाई के मरने से तो मुक्ति में हानि हो जाती है । यह उपदेश सद्गुरु कबीर ने खूब विचार कर दिया है ।

अचर चरै चर परिहरै, मरै न चरै जाय ।
 वारह मास विलोचना, घूमे एकै माय ॥३९॥
 ऊनै आई वादरी, बरसन लगा अंगार ।
 ऊठि कबीरा धाड़ दै, दाहत है संसार ॥४०॥
 बेटि को भाटी ले गई, बेटा को (ले गई) भंगार ।
 माता को लोड़ ले गई, कबीर सिरजनहार ॥४१॥
 अब तो ऐसी है पढ़ी, ना तुम्बरी ना बेलि ।
 जारन आनी लाकड़ी, ऊठी कोंपल मेलि । ४२॥
 बिन पाँवन का पंथ है, मंझ सहर अध्यान ।
 बिकट घाट औघट घना, पहुँचै संत सुजान ॥४३॥

३९ जो पुरुष सदा के लिये निश्चल तत्त्व में स्थिर होकर ससार से नाता तोड़ देना है वह न मरता है और न विचलित ही होता है ।

४० माया की वादरी झुक आई और उससे विकार के अंगारे बरसने लगे । ऐ जीव ! इससे निकल भाग, देखो, मारा ससार इससे जल रहा है ।

४१ बेटा-भलाई को भाटी-भलाई ले गई । और बेटा-वाद को भंगार-भजन ले गया । इसी प्रकार माता-ममना को लौ-लगन ले गई । और कबीर-जीव को सिरजनहार ले गया ।

४२ सद्गुरु की दया से मायारूप बोल और तृष्णारूप तुम्हरी दोनों का उच्छेद हो गया । और कायारूप काठी में पाग की अग्नि के लगते ही उससे भक्ति की कांपल निकल आई ।

४३ सद्गुरु का स्थान-निवास मध्यशहर अर्थात् हृदयकमल में है; परन्तु उसका मार्ग बिना पाप का है अर्थात् निष्काम कर्म के द्वारा उसकी प्राप्ति होती है । और उसका घाट द्वार भी औघट अटपट है । ऐसी स्थिति में कोई सुजान सन्त ही वहाँ पहुँच सकते हैं । “ क्षुरस्य धरा निशिता दुरत्यया दुर्ग पथस्तत्कनयो वदन्ति ” इति श्रुतेः ।

ऊँचा चढ़ि असमान को, मेरु ऊलंघे ऊढ़ि ।
 पशु पंछी जिव जन्तु सब, रहा मेरुमें गूढ़ि ॥४४॥
 धरति समानी अघर में, अघर धरा के पांदि ।
 अघर धरा जब देखिया, दीसै दूसर नांदि ॥४५॥
 या देखा वा देखिया, वा देखा या थीर ।
 यह वह दो एकै भया, सतगुरु मिलै कवीर ॥४६॥

४४ अम्बासी को उचित है कि गगन मंडल में चढ़कर और सुरति के पाखों से उड़कर मेरु अर्थात् मेरु दंड से पार हो जाय; क्यों कि पशु पक्षी और सब जीव, जन्तु मेरुदण्ड में ही गड़े पड़े हैं ।

भावार्थ—पशु पक्षियों से यहा पाशविक भावनाएँ ली गई हैं जो कि मनुष्यों को ससार की ओर खेंचती हैं । मूलाधार से सहस्रार तक मेरु की सीमा है । सहस्रदल कमल निरंजन का है इसमें मन का निवास है । इसके परे सुरति कमल है, जहापर “ सुरति कमल में (पर) साधेन बोले ” इसके अनुसार सद्गुरु का धाम है । यहा पहुचने से पाशविक भावनाएँ दूर हो सकती हैं ।

४५ अम्बासी की धरती-सुरति अघर-निरति (शब्द) में सना गयी, मिल गयी । ऐसा होने से वह अघर (शब्द) धरा-सुरति में ही आ गया । इस प्रकार अम्बासी को सुरति और निरति की एकता के कारण समाधि लाभ होने से—“ तदा द्रष्टुं स्वरूपेऽवस्थानम् ” (योग दर्शन) इसके अनुसार स्वरूपस्थिति होने से “ दीसे दूसर नादि ” दूसरा प्रपच कुछ भी नहीं दीखता ।

४६ जीव के स्वरूप का बोध होने पर साहेब का भी साक्षात्कार हो जाता है । और साहेब के सक्षात्कार के अनंतर ही इस जीव को सच्ची स्थिरता प्राप्त होती है । कर्पूर साहेब कहते हैं कि यह दुर्लभ लाभ तब ही प्राप्त हो सकता है जब सद्गुरु मिलें, सद्गुरु के मिलने पर ही यह और वह अर्थात् जीव मादिक दोनों एक रूप हो जाते हैं ।

पानी हुने पातला, धूँवा हू ते झीन ।
 पवन हू वेग उतावला, दोस्त कवीरा कीन ॥४७॥
 पुहुप वास ते पातला, सूक्ष्म जाको रंग ।
 कवीर तासैं मिलि रहा, कन्हु न छडै संग ॥४८॥
 पहिल मा का खसम भया, पिछै भया है पूत ।
 अंतर गत की समुझि कै, छोडि चले अवधूत ॥४९॥

४७ इस जीव ने ऐसे मन के साथ मित्रता की है— जो पानी से भी पतला और धूँवा से झीना है । ओर जिसका वेग पवन से भी अधिक है, ऐसे चंचल मन के साथ रहनेवाले जीवात्मा को कदापि शान्ति नहीं मिल सकती ।

“ चंचल हिं मन कृष्ण प्रमाथि बल्यद् दृढ, तस्याह निग्रह मये नायोरिव सुदुष्करम् ” (गी०)

४८ यह जात्र ऐसे मन के साथ मिल जुल रहता है, ओर उसका साथ कभी नहीं छोड़ता जो कि फूलों की महक से भी पतला है, ओर जिसका स्वरूप बहुत ही सूक्ष्म है । और यही कारण है कि उसको ठीक तरह से यह जात्र नहीं जान पाता है ।

४९ ससार के ऐसे सूक्ष्म रहस्य को समझकर त्यागी पुरुष इसे छोड़ देते हैं । देखिये यह कैसा आश्चर्य है । “ तदेव जायाया जायात्र यदस्या जायते पुमान् ” तथा “ आत्मा ते जायते पुत्र ” इन श्रुतियों के अनुसार पुरुष ही पुत्र रूप से अपनी स्त्री के गर्भ से उत्पन्न होता है । पुत्र की उत्पत्ति के पश्चात् इस कथन से स्त्री माता हो जाती है । “ भौ बालक भग द्वारे आया, भग भोगी के पुरुष कहाया ” ससार की यही विचित्र लीला हम साखी में कहा गई है, ‘पहले माका खसम भया, पिछे भया है पूत’ अर्थात् स्त्री प्रसंग के समय पुरुष अपनी माता का पति बनता है । और वही पुत्रोत्पत्ति के समय पाछे उसका लडका बन जाता है । इसी उलट फेर से डरकर त्यागी पुरुष अलग ही रहते हैं ।

खसम सञ्जटि बेटा भया, माता मिहरी होय ।
 मरख मन समुझै नही, बड़ा अचंभा मोय ॥५०॥
 पानी में की माछली, चढ़ि सो परवत गई ।
 अग्री पीया पुष्ट भई, जल पीया मर गई ॥५१॥
 कफ काया चित चकमका, झाली वारंवार ।
 तीन बार धूँवा उठे, चौथे पडे अंगार ॥५२॥

५० ऊपर की साखी के कथन अनुसार पुत्र की उत्पत्ति के समय पति ही अपनी स्त्री का पुत्र बनता है । इस नाते से स्त्री उस पुरुष की माता बन जाती है । कबीर साहेब कहते हैं कि इस गूढ़ रहस्य को गुरु लोग अपने मन में नहीं समझते हैं, इसका मुझे बड़ा आश्चर्य है ।

५१ ससारी जीवों की सुरति एक विचित्र मउली है, जो कि ससार के विषयों की अग्नि को पी कर मस्त बनी रहती है । सद्गुरु की दया होने पर उनकी सुरति में ऐसी शक्ति पैदा हो जाती है कि वह परब्रह्म के समान सत्र से ऊँचे सद्गुरु के वाम में चढ़ जाती है, और वहाँ पहुँचने पर उसको जल के समान अत्यंत प्रिय निजानंद रूपी अमृत पीने को मिलता है । आश्चर्य है कि वह जल के पीते ही सदा के लिये मर जाती है । अर्थात् ससार की सुधि भूल जाती है ।

५२ सद्गुरु कहते हैं कि काया के कपडे पर चित के चकमक को बार २ झाड़ो, अर्थात् अभ्यास और वंशग्य के द्वारा तन में मन का निरोध करो । इस प्रकार बार २ अभ्यास करने से मन की त्रिगुणावस्था दूर हो जायगी । त्रिगुणावस्था का रहना अग्नि की वह धूँमावस्था है कि जिसमें प्रकाश का अभाव रहता है । इसी बात को इस साखी में तीन बार

गुरु दाइया चेला जलया, विरहा लागी आग ।
 तिनका वपुरा ऊवरा, गल पूरी के लाग ॥५३॥
 बहनी से बेटा भई, बेटा से भइ नार ।
 नारी से माता भई, मनसा लहर पसार ॥५४॥

५३ ज्ञानी के हृदय में ज्ञान विरह की अग्नि के प्रगट होने पर उसका दृष्टि में गुरुभाव और शिष्यभाव नहीं रहता, यही गुरु और चेले का जलना है । इस प्रकार पूर साहेब की शरण में जाने से वह तुच्छ दास निकराल कालाग्नि से बाल २ बच जाता है ।

भावार्थ—“ पूरा साहेब सैइये, सब निधि पूरा होय ”

५४ मन की लहर का दोड़ाव इस प्रकार से होता है कि पहले बहनी=प्रज्ञा से बेटा=इच्छा होती है, और बेटा से नारी=प्रवृत्ति बन जाती है । पश्चात् उसी नारी से माता रूप उत्पत्ति होती है । इस प्रकार की मन की तरंगों का वर्णन महामाओं ने किया है ।

१* (धूँसा) ठेठ इस पद से बताया गया है । त्रिगुणावस्था क दूर होने पर गुणातीत का पद प्राप्त होता है, इसीको तुरीय पद और चौथा पद भी कहते हैं । चौथे पद को प्राप्त होने पर आत्मा का स्वरूप प्रकाश सामने आ जाता है । यही यहाँ पर “ चौथे पड़े अगर ” इस पद से अंगारा पदना बताया गया है ।

भावार्थ—त्रिगुणावस्था मन का है और चौथा पद आत्मा का है
 “ तीन लोक में है परम राजा, चौथे लोक में नाम निशान, एखे कोई
 मिला पद निर्गुन । ”

चार चरण नौ पख है, दो मस्तक है ताहि ।
 एक मुख सीप सँवारही, एक मुख भोजन खाहि ॥५५॥
 माता का शिर मूँडिये, पिता कुँ दीजै मार ।
 बन्धु मारि डारै कुआ, पड़ित करो विचार ॥५६॥
 करीर कोठी काठ की, चहुँ दिस छागी छार ।
 माही पड़े सो ऊवरे, दास्ये देखन डार ॥५७॥

५५ इस मन पक्षा के मन बुद्धि चित्त और अहंकार रूप चार चरण हैं, आर प्रवृत्ति तथा निवृत्ति रूप दो पाखे हैं । साकार और निराकार रूप दो मस्तक हैं । उनमें से निराकार रूपी मुख से यह शून्य रूपी सीप का सुख भोगता है और दूसरे साकार मुख से यह नाना प्रकार के भोग रूपी भोजन करता है ।

भावार्थ—मन पक्षी तमलग उडे, विपर्यय वासना माहि ।

ज्ञान बाज का झपट में, जब लग आयो नाहि ॥

५६ कन्नार साहेब कहते हैं कि हे पड़ितो ! आप लोग इस माखी के अर्थ का विचार करिये, सुनिये आर समझिये । माता रूप ममता का शिर मूड डालिये और पिता अज्ञान को मार डालिये, इसी प्रकार अहंकार रूपी बन्धुओं को भी मारकर कुर्य में डाल दीजिये । ऐसा करने से हा आप लोगों का कल्याण होगा ।

५७ करीर साहब कहते हैं कि ज्ञान विरही पुरुषों का ऐसा स्थिति होती है कि उनकी कामना रूपी काठ का कोठी के चारों ओर ज्ञान विरह का आग्न जलती रहती है । ऐसी स्थिति में उस आग्न के घेरे में आ जाने वाले ज्ञान विरही ससार की आच से बच जाते हैं । और दूर से देखने वाले सत्यसगी लोग जल मरते हैं, अर्थात् सत्यसगियों को भी ज्ञान विरह की लपट लग जाती है ।

दब लागी दरियाव में, नदिया कुइला होय ।
 मच्छी परबत चाढ़ि गई, बूझै विरला कोय ॥५८॥
 दब लागी दरियाव में, उठी अपरवल आग ।
 सल्लिता बहती रहि गई, मोन दिया जल त्याग ॥५९॥
 कीडी चली जु सासरे, नौ मन काजल लाय ।
 हस्ती लोन्हा गोद में, ऊँट लपेटे जाय ॥६०॥

५८ प्रेमियों के हृदय में ज्ञान निरह की अग्नि के लगते ही उनकी सांसारिक कामना रूप नदी जलकर कोयला बन गई । और उनकी सुरति रूप मछली पर्वत रूपी ऊँचे सद्गुरु के देश में पहुँच गई । इस रहस्य को कोई विरले ही पुरुष समझ पाते हैं ।

५९ प्रेमियों के हृदय में ज्ञान निरह की ऐसी प्रचंड अग्नि जल उठी कि उसकी ज्वाला चारों ओर फैल गई, इस कारण उनकी कामना रूप नदी का बहाव रुक गया और उनको सुरति रूप मछली भी समार समुद्र को छोड़ भागी ।

भावार्थ—ज्ञान निरही जनों के हृदय में सदैव ज्ञान निरह की ज्वाला उठनी रहती है । केवल सद्गुरु के दर्शन के अतिरिक्त उनके हृदय में किसी प्रकार की कामना नहीं रहता और उनकी सुरति भी ससार अलग हो जाती है ।

६० सद्गुरु की कृपा से ज्ञान निरही जनों की सुरति रूप चिड़ी ने सत्य लोक रूप ससुराल का रास्ता पकड़ लिया । उसके विचित्र शृंगार को सुनिये—उसने अपनी विप्रेक की आखों में नरधा भक्ति का काजल लगा लिया और मन रूपी हाथी को पकड़कर गोद में बैठा लिया अर्थात् मन को अपने वश में कर लिया । और अहंकार रूपी ऊँट की गर्दन पकड़कर उसकी हाथ में अधर लटका लिया ।

भावार्थ—नरधा भक्ति के धारण करने से तथा मन और अहंकार के दमन करने से ही प्रेमियों की सुरति सत्य लोक को पहुँच सकती है ।

रपट भैस पीपल चढी, पढि भांगे दो ऊंट ।
 गढ्ढे दीनी आंचकी, भये भैस दो दूट ॥६१॥
 भैरू लागि सायर तरी, तरी नेह विन नीर ।
 प्रीतम कुं प्यारी मिली, यौ कहि दास कबीर ॥६२॥
 तत्त समाना तत्त में, अनहद समाना जाप ।
 ब्रह्म समाना ब्रह्म में, आप समाना आप ॥६३॥

६१ इस साखी में त्रिकदशा और और अत्रिकदशा का उल्लेख किया गया है । त्रिकस्थिति में प्रकृति रूप भैस तत्काल ही पीपल रूप पुरुष पर आच्छादित हो जाता है, अर्थात् प्रकृति का पुरुष में लय हो जाता है । और राजस तथा तामस अकार रूपी दोनों उट भी भंग जाते हैं । अर्थात् दोनों का अभाव हो जाता है । इसके विरुद्ध अत्रिक दशा में अत्रिक रूपी गढ्ढा प्रकृति रूप भैस को ऐसा झटका मारता है कि उसके दो टुकड़े हो जाते हैं । इन दोनों टुकड़ों का नाम सायशास्त्र में प्रकृति और विकृति है ।

‘ मूलप्रकृतिरविकृति गहदाया प्रकृतिविकृतयः सप्त ।

षोडशकस्तु विकारो न प्रकृति न विकृति पुरुष ” (सांख्यकारिका)

६२ प्रेमियों की मुक्ति प्रेम की नौका पर चढ़ कर ससार समुद्र को तर जाती है । यह ससार समुद्र अपना स्नेह के पना का है । कपूर सोहेन कहते हैं कि इस प्रकार समर से पार पहुँच कर प्यारी मुरानि अपने प्रियतम सोहेन से मिल जाती है ।

६३ जानियों का मुक्तिदशा में उनके पञ्च भौतिक तत्त्व (कार्य) पञ्च तत्त्व में मिल जाते हैं । और उनका जाप अनहद में समा जाता है । इसी प्रकार कार्य ब्रह्म और कारण ब्रह्म का भी ब्रह्म में लय हो जाता है । ऐसी स्थिति के प्राप्त होने पर उनका स्वरूप अपने आनन्द में स्थित हो जाता है । अर्थात् सर्वों में विलीन होकर अलित हो जाता है । इसी को केवल्य मुक्ति कहते हैं ।

आग लगी आकास में, जरि जरि पड़े अंगार ।
 कहैं कबीर उठ जाग रे, जलन लगा संसार ॥६४॥
 भेरै चढ़िया सरप के, भौसागर के मांढि ।
 जो छहै तो बूढ़ि है, गहि तो दसि है वांढि ॥६५॥
 हम जाये ते भी सुआ, हम भी चालनहार ।
 हमरे पीछे पूंगरा, तिन भी बांधा भार ॥६६॥
 साथी हमरे चलि गये, हम भी चालन हार ।
 कागद में बाकी रही, ताते लागी वार ॥६७॥

रस को अंग ।

कबीर हरि रस जिन पिया, अंतरगत लौ लाय ।
 रोम रोम म रमि रहा, और अमल बया खाय ॥ १ ॥
 कबीर हरि रस भरि पिया, कोय न पीवै नीर ।
 भाग बढ़ा सो पीवसी, भरि भरि पियै कबीर ॥ २ ॥
 कबीर हरि रस बहत है, सरवन दोना ओढि ।
 राम चरन काँठा गहो, मति करहु धौं छोढि ॥ ३ ॥
 कबीर हरिरस जिन पिया, माँगै सीस कलाल ।
 दिल ओछा जिन दूबला, बहुत बिगूचै माल ॥ ४ ॥

हरिरस मँगा जन पिये, देवै सीस कलाल ।
 घट ओछा दिन दुबला, बँटेगा बहु काल ॥ ५ ॥
 हरिरस पीया जानिये, उतरै नॉहि खुमारि ।
 मतवाला धूपत फिरै, नहि जो तन की सारि ॥ ६ ॥
 हरिरस मँगा पीजिये, छाँडि जीवकी वानि ।
 सिर के साटे हरि मिले, तबलग मुँगा जानि ॥ ७ ॥
 सिर दीये जो पाइये, देव न कीजै कानि ।
 सिर के साटे हरि मिले, तबलग मुँगा जानि ॥ ८ ॥
 पिया पियाला भेमका, अन्तर लिया लगाय ।
 रोम रोम में रमि रहा, दूजा रस क्या प्याय ॥ ९ ॥
 भेम पियाला भरि पिया, जरा न किया जतन ।
 आवै छकि तब जानिये, रंका धड़ा रतन ॥ १० ॥
 थोरे ही से छाकिया, भौंटा पीया धोय ।
 फूल पियाला जिन पिया, रहे कलालों सोय ॥ ११ ॥
 राता माता नाम का, पीया प्रेम अयाय ।
 मतवाला दीदार का, माँगी मुक्ति बलाय ॥ १२ ॥
 राता माता नाम का, मद का माता नॉहि ।
 मद का माता जो फिरै, सो मतवाला काहि ॥ १३ ॥

१०. हृदय में प्रेम की मल्ली का आना रस के घड़े में रत्नों का भर जाना है ।

मतवाला घूँपत फिरै, रोम रोम रस पूर ।
 छँटे आस सरीर की, देखै राम हजूर ॥१४॥
 महयंता अविगत रता, आसा अकल अजीव ।
 नाम अमल माते रहे, जीवन मुक्त अतीत ॥१५॥
 महयंता नहि बिन चरे, सालै चित्त सनेह ।
 चारिज बंधा कलाल के, डारि रहा सिर खेह ॥१६॥
 आठ गौंठि कोपीन के, साधु न मानै संक ।
 नाम अमल माता रहे, गिनै इन्द्र को रंक ॥१७॥
 दावै दाज्ञन होत है, निरदावै निहसंक ।
 जो जन निरदावै रहे, कहै इन्द्र को रंक ॥१८॥
 पिया पिया सब कोय कहै, हरिजन माता एक ।
 फूल कटावा जे पिये, पटा कलेजे छक ॥१९॥

मन को अंग ।

कबीर मन तो एक है, भावै तहां लगाय ।
 भावै गुरु की भक्ति कर, भावै विषय कमाय ॥ १ ॥
 कबीर यह मन मसखरा, कहूँ तो मानै रोस ।
 जा मारग साहिव मिले, तहाँ न चालै कोस ॥ २ ॥
 कबीर मन परबन भया, अरु पै पाया जान ।
 टाँकी, लागी प्रपकी, निकसी कंचन खान ॥ ३ ॥

कवीर मन गाफिल भया, सुमिरन लाग नौहि ।
 यनी सहेगा सासना, जम की दरगह भौहि ॥ ४ ॥
 कवीर यह मन लालची, समझै नहीं गँवार ।
 भजन करन को आलसी, खाने को तैयार ॥ ५ ॥
 कवीर मन हि गयंद है, आंकुम दे दे राखु ।
 विष की बेली परिहरो, अमृत का फल चाखु ॥ ६ ॥
 कवीर मन परकट भया, नेक न कहूँ ठहराय ।
 सत्तनाम बाँधै बिना, जित भावै तित जाय ॥ ७ ॥
 कवीर सेरी सांकरी, चंचल मनुवा चोर ।
 गुन गावै लौलीन है, कलु इक मनमें और ॥ ८ ॥
 कवीर बैरी सबल है, एक जीव रिपु पाँच ।
 अपने अपने म्वाट को, बहुत नचावै नाच ॥ ९ ॥
 कवीर यह मन कित गया, जो मन होता काल ।
 हुँगर चडा मेह ज्यों, गया निर्वाना चाल ॥ १० ॥
 कवीर मनका मॉहिला, अवला वरै असोस ।
 देखत ही दह में परै, देय किसी को टोम ॥ ११ ॥

१०. निगान—तालाब या नदिया । वर्षा के समय ऐसा मालूम होता है कि मानों पहाड मेघजल से डूब गया है, परन्तु थोड़े काल में पानी गहकर तालाब या नदियों में चला जाता है । इसी प्रकार कथाप्रसंग में मन हान-निमान हो जाता है; परन्तु थोड़े ही काल में फिर विषयों में चला जाता है ।

११. अवला—उल्टा । असोस—निर्मय । दह—गढ़वा ।

१. पा० सौ सौ नाच नचाय । २. पा० वृथों ।

कबीर छहरि समुद्र की, वेती आवै जाँहि ।
 कलिहारी वा दास की, उलटि समाधि माँहि ॥१२॥
 कबीर यह गत अटपटी, चटपट लखी न जाय ।
 जो मन की खटपट मिटै, अधर भये ठहराय ॥१३॥
 अघट भया खटपट मिटै, एक निरन्तर होय ।
 कहै कविर तब जानिये, अन्तर पट नहि दोय ॥१४॥
 मन के मते न चालिये, मनके मते अनेक ।
 जो मन पर असवार है, सो साधु कोय एक ॥१५॥
 मन के मने न चालिये, छाँडि जीव की वानि ।
 'कतवारी' के सूत उषौ, उलटि अपूठा आनि ॥१६॥
 मन पाँचों के वस पड़ा, मन के वस नहि पाँच ।
 जित देखूँ तित दौं लगी, जित भागूँ तित आँच ॥१७॥
 मन के मारे बन गये, बन तजि वरती माँहि ।
 कहै कविर क्या कीजिये, यह मन ठहरै नाँहि ॥१८॥
 मन मुरीद संसार है, गुरु मुरीद कोय साध ।
 जो मानै गुरु वचन को, ताका मता अगाध ॥१९॥
 मन को मारुँ पटकि के, टुक टुक है जाय ।
 विष की बपारी बोय के, लुनता क्यों पछिताय ॥२०॥

१६. कतवारी—कातनेवाली । अपूठा—उल्टा । १९. मुरीद—शिष्य ।

१. पा० ताका केरा तार ज्यू ।

मन को मारूँ पटक के,	टुक टुक हूँ जाय ।
टूटै पीछै फिरि जुरै,	बीच गाँठि परि जाय ॥२१॥
मन ही को परपोधिये,	मन ही को उपदेस ।
जो यह मन को बसि करै,	सीप होय सब देस ॥२२॥
मन गोरख मन गोविंदा,	मन ही औघड़ सोय ।
जो मन राखै जतन कारि,	आपै करता होय ॥२३॥
मन मोटा मन पातरा,	मन पानी मन लाय ।
मन के जैसी ऊपजै,	तैसी ही हूँ जाय ॥२४॥
मन दाता मन लालची,	मन राजा मन रंक ।
जो यह मन गुरु सों मिलै,	तो गुरु मिले निसंक ॥२५॥
मन के बहुतक रंग हैं,	छिन छिन बदलेसोय ।
एक रंगमें जो रहे,	ऐसा विरला कोय ॥२६॥
मनुवा तो पंछी भया,	उड़ि के ^१ चला अकास ।
ऊपर ही ते गिरि पड़ा,	मन माया के पास ॥२७॥
मन पंछी तबलगि उड़ै	विषय वासना माँहि ।
प्रेम बाज की झपट में,	जब लगि आवै नाँहि ॥२८॥
मन कुंजर महमन्त था,	फिरता गहिर गँगीर ।
दुहरी तिहरी चौहरी,	परि गई प्रेम जँजीर ॥२९॥
मन के हारै हार है,	मन के जीतै जीत ।
कहँ कविर गुरु पाइये,	^२ मन के प्रेम प्रतीत ॥३०॥

मन नहि छाड़ै विषय रस, विषय न मन को छाड़ि ।
 इनका यही सुभाव है, पूरी लागी आड़ि ॥३१॥
 मन से मन मिलता नही, तन को करता भंग ।
 मन अब भया जु कामरी, चढ़े न दूजा रंग ॥३२॥
 मन दीजै मन पाइये, मन विन मान न होय ।
 मन उनमुन ता अँड ज्यौ, अलल अकासा जोय ॥३३॥
 मन जो गया तो जान दे, दृढ़ करि राख सरीर ।
 विना चढ़ाय कमान के, कैसे लागे तीर ॥३४॥
 मनवा तो फूला फिरै, कहे जो करूँ धरम ।
 कोटि करम सिर पर चढ़े, चेति न देखै मरम ॥३५॥
 मन नहि मारा मन करि, सका न पाँच प्रहारि ।
 सील सौँच सरधा नही, अजहूँ इन्दि उघारि ॥३६॥
 मन की घाली हूँ गई, मन की घाली जाँव ।
 संग जो परी कुसंग के, हाटै हाट बिकाऊँ ॥३७॥
 मन चलताँ तन भी चलै, ताते मन को घेर ।
 तन मन दोऊ वसि करै, होय राइ सँ मेर ॥३८॥
 मना मनोरथ छाँड़ि दे, तेरा किया न होय ।
 पानी में घी नोकसै, रुखा खाय न कोय ॥३९॥
 मनुष्य तो अंतर बसा, बहुतक झीना होय ।
 अमर लोक सुधि पाइया, कबहुँ न न्यारा होय ॥४०॥

मन निरमल गुरु नाम सों, कै साधन के भाय ।
 कोइला दूनी कालिमा, सौ मन साधुन जाय ॥४१॥
 मन जानै सब बात, जानि बुझि औगुन करै ॥
 काहे की कुसलात, ले दीपक कूँये परै ॥४२॥
 महमंता मन मारि ले, घट ही माँहीं घेर ।
 जब ही चालै पीठ दे, आंकुस दे दे फेर ॥४३॥
 मन मनसा को मारि ले, घट ही माँहीं घेर ।
 जब ही चालै पीठ दे, आंकुस दे दे फेर ॥४४॥
 मन मनसा को मारि करि, नन्हा करि ले पीस ।
 तब मुख पावै सुन्दरी, पदुमा झलकै सीस ॥४५॥
 मन मनसा जब जायगी, तब आवैगी और ।
 जब ही निहचल होयगा, तब पावैगा ठौर ॥४६॥
 यह मन फटकि पछोरि ले, सब आपा मिटि जाय ।
 पिंगुला हँ पिव पिव करै, ताको काल न खाय ॥४७॥
 यह मन को विसमिल करूँ, दीठा करु अदीठ ।
 जो सिर राखूँ अपना, पर सिर जलौ अंगीठ ॥४८॥
 यह मन तो मिरगा भया, खेत विराना खाय ।
 सूला करि करि सेकसी, धनी पहुँचै आय ॥४९॥
 यह मन तो मैला भया, यामें बहुत विकार ।
 या मन कैसे धोइये, सन्तो करो विचार ॥ ५० ॥

यह मन मेवासी भया,	बसि करि सकै न कोय ।
सनकादिक रिसि सारिखे,	दिन के गया विगोष ॥ ५१ ॥
यह मन वीकारै पडा,	गया स्वाद के साथ ।
गटका खाया बरजतां,	अब क्यों आवै हाथ ॥ ५२ ॥
यह मन साधू ले मिलो,	नहि तो लेगा जान ।
मन मुनसिफ को पूछि ले.	नीकी है तो मान ॥ ५३ ॥
यह मन नीचा मूल है,	नीचा करम सुहाय ।
अमृत छाड़ै मान करि,	विष हि पीत करि खाय ॥ ५४ ॥
जेती लहर समुद्र की,	तेवी मन की दौड़ ।
सहजै हीरा नीपजै,	जो मन आवै ठौर ॥ ५५ ॥
दौडत दौडत दौडिया,	जेती मन की दौर ।
दौडि थके मन धिर भया,	वस्तु ठौर की ठौर ॥ ५६ ॥
खैचू तो आवै नहीं,	जो छाहू तो जाय ।
कबीर मन को पूछरे,	मान टट्टीवा खाय ॥ ५७ ॥
पहिले यह मन काग था,	करता जीवन घात ।
अब तो मन हंसा भया,	मोती चुनि चुनि खात ॥ ५८ ॥
अपने उरझै उरझिया,	दीखै सब संसार ।
अपने सुरझै सुरझिया,	यह गुरु ज्ञान विचार ॥ ५९ ॥

५१. मेवासी-डाकू । ५२. गटका-मिठाई । (निषय मुख)

५३. मुनसिफ-इन्साफ करनेवाला ।

५७. पूछरे-पूछे ।

ट्टीवा-चक्र ।

चंचल मनुवा चेतरे, सोधै कह अनजान ।
 जम धर जव ले जायगा, पडा रहेगा म्यान ॥ ६० ॥
 चिन्ता चित्त विसारिये, फिरि बुझिये नहि आन ।
 इन्ट्री पसारा मेटिने, सहज मिले भगवान ॥ ६१ ॥
 तन माँहीं जो मन धरै, मन धरि ऊजल होय ।
 साहिव सों सनमुख रहे, तो अमरापुर जोय ॥ ६२ ॥
 पय पानी की भीतडी, पडा जु कपटी लौन ।
 खंड खंड न्यारे मये, ताहि मिलावै कौन ॥ ६३ ॥
 कबहुँक मन गगनहि चढै, कबहुँ गिरै पताल ।
 कबहुँक मन उनमुनि लगै, कबहुँ जावै चाल ॥ ६४ ॥
 कोटि करम करै पलक में, या मन विषया स्वाद ।
 सतगुरु सब्द न मानही, जनम गँवाया बाद ॥ ६५ ॥
 कागद केरी नावरी, पानी केरी गंग ।
 कहै कविर कैसे तिरै, पाँच कुसंगी संग ॥ ६६ ॥
 इन पाँचोंसे बंधिया, फिर फिर थरै सरीर ।
 जो यह पाँचो वसि करै, सोई लागै तीर ॥ ६७ ॥
 निहचिन्त है करि गुरु भजै, मन में राखै साँघ ।
 इन पाँचो को वसि करै, ताहि न आवै आँच ॥ ६८ ॥
 पाँचो वैरी जीव के, दलै इनै इक चित्त ।
 एक देखै एक ध्यावही, औगुन बहुत अमित ॥ ६९ ॥

पाँच सहाई जीव के, जो गुरु पूरा होय ।
 कोय व्यान कोय नाम रत, काज न बिगडै सोय ॥ ७०॥
 इन्द्रो पोषत्र चाह सुँ, मन में संका नाहि ।
 भाव भक्ति को यों कहै, निह करमा क मांदि ॥ ७१ ॥
 काटी कूटी मालुरी, छोकै धरी चहोरि ।
 कोय इक औगुन मन बसा, दह में परी बहोरि ॥ ७२ ॥
 काया कजरी बन अहे, मन कुंजर महमन्त ।
 अंकुम ज्ञान रतन है, फेरै साधू सन्त ॥ ७३ ॥
 काया देवल मन धजा, विषय लहर फहराय ।
 मन चलते देवल चले, ताका सरवस जाय ॥ ७४ ॥
 काया कसो कमान ज्यौ, पाच तरव कर वान ।
 मारो तो मन मिरगला, नहि तो मिथ्या जान ॥ ७५ ॥
 विना सीख का मिरग है, चहुँ दिस चरने जाय ।
 बाँधि लाओ गुरु ज्ञान सुँ, राखो तत्व लगाय ॥ ७६ ॥
 तीन लोक चोरी भई, सब का धन हरि लीन्ह ।
 विना सीस का चोरवा, पडा न काहु चीन्ह ॥ ७७ ॥
 चोरवा भल हम चीन्हिया, चोरवा हम न चीन्ह ।
 कहै कबीर विचारि के, हम ही दीच्छा दीन्ह ॥ ७८ ॥
 अपने अपने चोर को, सब कोय डारे मार ।
 मेरा चोर मुझ को मिलै, सरवस हाँसु वार ॥ ७९ ॥

तन तुरंग असवार मन, करम पियादा साथ ।
 तृष्णा चली सिकार को, विषय वान लिये हाथ ॥८०॥
 जहा वाज वासा करे, पंछी रहै न और ।
 जा घट भेष परगट भया, नहीं करम को ठौर ॥८१॥
 कहत सुनत सब दिन गये, दरशि न सुरक्षा मज ।
 कहै कविर चेता नहीं, अजहूँ पहला दिन ॥८२॥
 पंडित मूल विनासिया, कह वयो विग्रह कीज ।
 ज्यों जल में प्रतिबिम्ब है, सकल राम जानीज ॥८३॥
 सो मन सोनो सो विषय, त्रिभुवन पति कहु कम ।
 कहै कविर वैदा नरा, जल परा सकल रस ॥८४॥
 सो सो सेरी हैं तर्कों, जो जो मूँदी आव ।
 नख सिख पाखरि मनहि के, करूँ कहाँ जो घाव ॥८५॥
 अकथ कथा या मनहि की, कहै कविर समुझाय ।
 जो याको समझा परै, ताको काल न खाय ॥८६॥
 समुद्र लहरि जो थोरिया, मन लहरै धनियाय ।
 केती आय समाय है, केति जाय विसराय ॥८७॥

८४. वैदानरा-हे अज्ञानी पुरुष ।

कबीर साहब कहते हैं कि हे अज्ञानी नर, इस मन का मैं किप प्रकार वर्णन करूँ । यह मन तीन लोक का स्वामी और सोने के समान आकर्षक है । और जिस प्रकार जल में सपूर्ण रस विद्यमान रहते हैं, इसी प्रकार मन में भी सर्व विषय भरे रहते हैं ।

८५. सेरी—गली, उपाय । पाखरि—गिलाफ, झूल ।

यह तो गति है, अटपटी,
 जो मन की खटपट मिटे,
 चंचल मन निहचल करै,
 तन मन होऊ बसि करै,
 मेरा मन मकरंद था,
 मूषा है मारग चला,
 सुन नर मुनि सब को ठगै,
 जो कोई याते बचे,
 कुंभ बांधा जल रहै,
 ज्ञाने बांधा मन रहै,
 मन फाटे चित ऊचटै,
 पलकों की टाटी दई,
 मन मानिक जब ऊचटै,
 जो कंचन की भूमि है,
 थरती फाटे मेघ मिलै,
 नन फाटे को औषधि,
 मेरे मनमें परि गई,
 फाटा फटिक पपान उग्यै,
 मन फाटे वायक बुरै,
 जैसे दूध तिवास को,

सटपट लखै न कोय ।
 चटपट दरसन होय ॥८८॥
 फिर फिर नाम लगाय ।
 ताका कलु नहि जाय ॥८९॥
 करता बहुत विगार ।
 हरि आगे हम लार ॥९०॥
 मन हि लिया औतार ।
 तीन लोक ते न्यार ॥९१॥
 जल बिनु कुंभ न होय ।
 मन बिनु ज्ञान न होय ॥९२॥
 नैना नाहि समाय ।
 टेढ़ा टेढ़ा जाय ॥९३॥
 नेक नहीं ठहराय ।
 हरियल धरै न पाय ॥९४॥
 कपड़ा फाटे और ।
 मन फाटे नहि ठौर ॥९५॥
 ऐसी एक दरार ।
 मिलै न जी वार ॥९६॥
 मिटे सगई साक ।
 उलटि दुआ जो आक ॥९७॥

९०. मकरंद—हार्थी ।

९७. वायक—वाक्य, वचन । तिवास—डंडा, गृहर । शृङ्खल का दूध फटने से आक के समान कड़वा हो जाता है ।

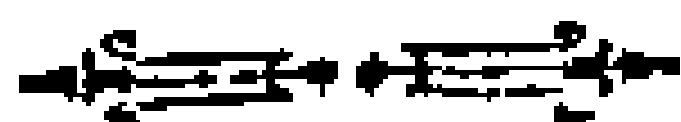
चंदन भांगा गुन करै, जैसे चोली पान ।
 दुइ जो भांगा ना मिलै, इक मोती इक मान ॥९८॥
 मोती भांग्यो वेधतां, मन भांग्यो कुबोल ।
 बहुत सयाना पचि गया, परि गइ गांठी गोल ॥९९॥
 बात बनाई जग उग्यो, मन परपोथा नाहि ।
 कहै कश्मिर मन लै गया, लख चौरासी मांढि ॥१००॥
 मनुषा तू क्यौ बावरा, तेरी सुध क्यौ खोय ।
 मौत आय सिर पै खड़ी, ढलने नेर न होय ॥१०१॥
 मन अपना समुझाय ले, आया गाफिल होय ।
 विन समुझे उठि जायगा, फोगट फेरा तोय ॥१०२॥
 बाघ चिड़टा मिरगला, तिहि जनि मारो कोय ।
 आपे ही मरि जायगा, डामा डूला होय ॥१०३॥
 मनुषा तो पंखी भया, जहां तहां उठि जाय ।
 नहँ जैमी संगति करै, तहँ तैसा फल खाय ॥१०४॥
 मन पंखी विन पंखका, लख जोजन उठि जाय ।
 मन भावे ताको मिले, घट में आन समाय ॥१०५॥
 सात समुद्र की एक लहर, मन की लहर अनेक ।
 कोई एक हरिजन ऊवरा, डूबी नाव अनेक ॥१०६॥

१०६. एक लहर—सब समुद्रों में एक ही प्रकार की लहर उठती है, परन्तु मन में तो अनेक प्रकार की तरंगें उठा करती हैं ।

पहिले राखि न जानिया,
 पही गया राता घुरा,
 मन सब पर असवार है,
 मन ही पर असवार रहै,
 कबीर मन मिरतक भया,
 पीछे लगा हरि फिरे,
 मन चाले तो चलन दे,
 मन चञ्चने तन शंभ है,
 यह मन अट्कयो वावरो,
 मन ममता में गलि चले,
 मन मारी मैदा करूं,
 जिम्मा का टुकड़ा करूं,
 तनकूं मन मिलता नहीं,
 रहता काला वोर व्युं,
 तन का बैरी कोइ नहीं,
 तूं आपा को डारि दे,
 मन राजा मन रंक है,
 सून्य सिखर पर मन रहै,
 तेरि जोतिमें मन धरा,
 आपा खोवे हरि मिले,
 अब क्युं आवे हाथ ।
 वैपागी के साथ ॥१०७॥
 पैदा करे अनंत ।
 कोइक विरला संत ॥१०८॥
 दुर्लभ भया सरीर ।
 यूं कहि दास कबीर ॥१०९॥
 फिर फिर नाम लगाय ।
 ताका कछु न जाय ॥११०॥
 राख्यो घटमें घेर ।
 अंकुस दै दै फेर ॥१११॥
 तन की काढ़ूं खाल ।
 हरि विन काढे खाल ॥११२॥
 होता तन का भंग ।
 चढै न दूजा रंग ॥११३॥
 जो मन सीतल होय ।
 दया करे सब कोय ॥११४॥
 मन कापर मन सूर ।
 मस्तक पावे नूर ॥११५॥
 मन धरि होहु पतंग ।
 तुझ लगा रहे रंग ॥११६॥

यह मन थाकी थिर मया, पग बिन चले न पथ ।
 एकै अक्षर अलख का, थाके कोटि गिरंथ ॥११७॥
 यह मन हरि चरने चला, माया मोह से छट ।
 बेहद माहीं घर किया, काल रहा सिर कूट ॥ ११८॥
 मिरनक को धीजों नहीं, मेरा मन धीवै ।
 बाने वाच बिकार की, मूवा भी जीवै ॥११९॥
 कवीर मन कुं मारि ले, सब आपा मिटि जाय ।
 पगला है पिउ पिउ करै, पीछे काल न खाय ॥१२०॥
 मन मेवासी मारि करि, दुरजन ठावै दूर ।
 आन फिरे सत नाम की, नगर बसै भर पूर ॥१२१॥
 कवीर मन ताजी भया, लौ की करी लगाम ।
 सब्द गुरु का ताजना, पहुंचे संत सुजान ॥१२२॥

माया को अंग ।



कवीर माया मोहनी, माँगी मिले न हाथ ।
 मना उतारी जूठ करु, लागी ढोलै साथ ॥ १
 कवीर . माया पापिनी, फँद ले बैठी हाट ।
 सब जग तो फँदै पडा, गया कबीरा काट ॥ २

कबीर माया पापिनी, लोभ भुलाया लोग ।
 पूरी किनहु न भोगिया, इस का यहो विनोग ॥ ३ ॥
 कबीर माया पापिनी, हरि सों करै हराव ।
 मुख कडिपाली कुबुधि की, कहन न देई राम ॥ ४ ॥
 कबीर माया बेसवा, दोनूं की इक जात ।
 आवत को आदर करै, जात न बूझै वात ॥ ५ ॥
 कबीर माया मोहिनी, मोहै जान सुजान ।
 भागै हू छूटै नहीं, भरि भरि मरै वान ॥ ६ ॥
 कबीर माया मोहिनी, जैसी मीठी खांड ।
 सतगुरु की किरपा भई, नातर करतो भांड ॥ ७ ॥
 कबीर माया मोहिनी, सब जग घाला घानि ।
 कोइ एक साधू करार, तोडो कुल की कानि ॥ ८ ॥
 कबीर माया मोहिनी, भइ अंधियारी लोय ।
 जो सोये सो मुसि गये, रहे वस्तु को रोय ॥ ९ ॥
 कबीर माया डाकिनी, सब काहु को खाय ।
 दाँत उपाहुं पापिनी, सन्तो नियरै जाय ॥ १० ॥
 कबीर माया रुखड़ी, दो फल की दातार ।
 'खावत' खरचत मुक्ति भय, संचत नरक दुवार ॥ ११ ॥
 कबीर माया भूप की, देखन ही का लाड ।
 जो 'बाँधे' नौडी घटे, तो हरि सोई हाड ॥ १२ ॥

कवीर माया जात है, सुनो सब्द निज मोर ।
 सखियों के घर साधजन, मूर्खों के घर चोर ॥ १३ ॥
 कवीर या संसार की, झूठी माया मोह ।
 जिहि घर जिता बधावना, तिहि घर नेता दोह ॥ १४ ॥
 कवीर माया यों कहे, तू मति देई धीठि ।
 और हमारै बसि पडा, रह्या कवीरा रुठि ॥ १५ ॥
 माया आगे जीव सब, ठहि रहे कर जोरि ।
 जिन सिरजै जल धुँद सों, तासों बैठा तोरि ॥ १६ ॥
 माया करक कदिम है, या भौसागर मॉहि ।
 जंबूक रूपी जीव है, खँचत ही मरि जॉहि ॥ १७ ॥
 माया झोला मारिया, नाभि न बैठे साँस ।
 जिवरा तो समै गला, राम कहन की आसना ॥ १८ ॥
 माया सेती माते मित्रो, जो सोवरिया देहि ।
 नारद से मुनिवर गले, क्या हि भरोसा तहि ॥ १९ ॥
 माया दीपक नर पतंग, भ्रमि भ्रमिमॉहि परन्व ।
 कोड एक गुरु ज्ञान तें, उरै साधू सन्त ॥ २० ॥
 माया दोय प्रकार की, जो कोय जानै खाय ।
 एक मिलावै राम को, एक नरक ले जाय ॥ २१ ॥

१३. सखी दाता ॥ १४ - बधावना - उत्सव । दोह - दुःख, शोक ।

१७ करक अरि पजर । कृदीम सदासे । १८ ज्ञाल्य झपाटा ।

१९ सोवरिया देह चाह सोने के समान शरार क्यों न हा ।

माया मेरे राम की, मोदी सब संसार ।
 जाको चीठी ऊतरी, सोई खरचन द्वार ॥ २२ ॥
 माया संचै संग्रहै, वह दिन जानै नाँहि ।
 सहस वरस की सब करै, परै मूहुरत माँहि ॥ २३ ॥
 माया छाया एक सी, विरला जानै कोय ।
 भगता क पाछे फिरै, सनमुख भागै सोय ॥ २४ ॥
 माया मन की मोहिनी, सुर नर रहे लुभाय ।
 इन माया सब खाइया, माया कोय न खाय ॥ २५ ॥
 माया दासी साधु की, ऊभी देइ असीस ।
 विछसि और छाते छरी, सुमिरि सुमिरि जगदीस ॥ २६ ॥
 माया तो ठगनी भई, ठगत फिरै सब देस ।
 जा ठगने ठगनी ठगी, ता ठग को आदेस ॥ २७ ॥
 माया सुई न मन सुआ, मरि मरि गया सरीर ।
 आसा तृप्ता ना सुई, यों कयि कहै कबीर ॥ २८ ॥
 माया मरि मन मारिया, राख्या अमर सरीर ।
 आसा तृप्ता मारि के, धिर है रहै कबीर ॥ २९ ॥
 माया काल का खानि है, धरै त्रिगुन विपरीत ।
 जहाँ जाय तहाँ सुख नहीं, या माया की रीत ॥ ३० ॥
 माया तख्तर त्रिविधि का, सोक दुःख संताप ।
 सोतलना सुपने नहीं, फल फीका तन ताप ॥ ३१ ॥

जग हटवारा स्वाद टग,	माया वैस्या लाय ।
राम नाम गाढा गहो,	जनि जहु जनम गँवाय ॥३२॥
मैं जानूँ हरिम् मिलूँ,	मो मन मोटी आस ।
हरि बिच द्वारै अन्तरा,	माया बढी पिताच ॥३३॥
मोटी माया सब तजै,	झोनी तजी न जाय ।
पीर पैगंबर औलिया,	झोनी सब को खाय ॥३४॥
झोनी माया जिन तजी,	मोटी गई बिलाय ।
ऐसे जन के निकट सैं,	सब दुख गये हिराय ॥३५॥
खान खगच बहु अन्तरा,	मन में देखु बिचार ।
एक खवावै साधु को,	एक मिलावै छार ॥३६॥
आंधी आइ प्रेम की,	ढही भरम की भीत ।
माया टाटी उडि गई,	लगी नाम सों प्रीत ॥३७॥
पीठा सब कोय खात है,	बिष है लागै धाय ।
नीम न कोई पीवसी,	सवै रोग मिटि जाय ॥३८॥
राम हि थोरा जानि के,	दुनिया आगे दीन ।
जीवन को राजा कहै,	माया के आधीन ॥३९॥
सांकर हू ते सबल है,	माया या संसार ।
अपने बल छूटे नहीं,	छुड़वै सिरजनहार ॥४०॥
या माया के कारनै,	हरि सों बैठा तोरि ।
माया करक कदीम है,	केवा गया चंचोरि ॥४१॥

पूत पियारा बाप को,	गोहन लगा धाय ।
लोभ मिठाई हाथ दे,	आपन गया मुछाय ॥४२॥
दीन्ही खाँड पट्टकि कर,	मन में रोस उपाय ।
रोवत रोवत मिलि गया,	पिता पियारे जाय ॥४३॥
मोती उपजे सीप में,	सीप समुन्दर होय ।
रंचक सँचर रहि गया,	ना कछु हुआ न होय ॥४४॥
भूले थे संसार में,	माया के संग आय ।
सनगुरु राह बताइया,	फेरि मिलै तिहि जाय ॥४५॥
हसा तू तो सबल है,	हल की अपनी चाल ।
रंग कुरंगै रंगिया,	किया और लगार ॥४६॥
रंग तो कुरँग हुआ,	अंग न खाये वान ।
केने मारे जाहिंगे,	इस जाजरी कमान ॥४७॥
जिन को साँई रंग दिया,	कबहु न होय कुरँग ।
दिन दिन बानी आगरी,	चढ़ै सवाया रंग ॥४८॥
सब रंग पानी ते भया,	सब रंग पानी सोय ।
जा रंग ने पानी भया,	सो रंग कैसो होय ॥४९॥
सब रंग पानी ने भया,	सब रंग पानी होय ।
जा रंग ते पानी भया,	सत्त सब्द है सोय ॥५०॥
सो पापन को मूल है,	एक रुपैया रोक ।
साधुजन संग्रह करै,	हारै हरि सो थोक ॥५१॥

साधु ऐसा चाहिये, आई देई चलाय ।
 दोम न लागै तासु को, सिर की टो बलाय ॥५२॥
 सन्तो खाई रहत है, चोरा छीन्धी जाय ।
 कहै कबीर विचारि के, दरगह मिलि है आय ॥५३॥
 सुकन लागै साधु की, वादि विमुख की जाय ।
 कै तो तल गाड़ी रहे, कै कोथ औरै खाय ॥५४॥
 या मारा जग भरमिया, सब को लगी उपाय ।
 येहि तारन के कारने, जग में आये साध ॥५५॥
 कबीर माया सांपिनी, जनता ही को खाय ।
 ऐसा मिठा न गारुडी, पकडि पिढारे बाँय ॥५६॥
 माया का सुख चार दिन, कहँ तू गहै गमार ।
 सपने पायो राज धन, जात न लागे बार ॥५७॥
 करँक पदा मैदानमें, कुकर मिले लख कोट ।
 दावा कर कर लड़ि मुए, अंत चले सब छोड ॥५८॥
 माया मायै सींगडॉ, लंवे नौ नौ हात ।
 आगे मारे सींगडॉ, पाछे मारे लात ॥५९॥
 माया ऐसी संखनी, सामी मारे सोय ।
 आपन तो , रीते रहे, दे औन को बोध ॥६०॥
 गुरु को चेला शीप दे, जो गांठी होय दाम ।
 पृत पिना को मारसी ये माया के काम ॥६१॥

ऊंची डाली पेय की, हरिजन बैठा खाय ।
 नीचे बैठी बाघिनी, गीर पडे तिहि खाय ॥६२॥
 माया दासी संत की, साकुट की सिर ताज ।
 साकुट की सिर मानिनी, संतो सहेलि लाज ॥६३॥
 एक हरी इक मानिनी, एक मगत इक दाम ।
 देखो माया क्या किया, भिन भिन किया प्रकास ॥६४॥
 माया माया सब कहै, माया लखे न कोय ।
 जो मनसे ना ऊतरे, माया कदिये सोय ॥ ६५ ॥
 माया छोरन सब कहै, माया छोरि न जाय ।
 छोदन की जो बात करु, बहुत तमाचा खाय ॥ ६६ ॥
 मन मते माया तजी, थूं करि निकस बहार ।
 लागी रहि जानी नहीं, भटकी भयो खुवार ॥ ६७ ॥
 माया सप नहि मोहिनी, मन समान नहि चोर ।
 हरिजन सप नहि पारखी, कोइ न दीसे ओर ॥ ६८ ॥
 छोडै विन छूटै नहीं, छोदनदारा राम ।
 जीव जनन बहुतहि करे, सरे न एको काम ॥ ६९ ॥
 कबीर माया दाकिनी, खाया सब संसार ।
 खाइ न सकै कबीर को, जाके नाम अवार ॥ ७० ॥
 माया षटी हि दाकिनी, करे काल की चोट ।
 कोइ एक हरिजन ऊवरा, पारब्रह्म की ओट ॥ ७१ ॥

माया चार प्रकार की, इक धिलसे इक खाय ।
 एक मिलावे नाम को, एक नरक लै जाय ॥ ७२ ॥
 भसुरी माया आर ही गढ़ै परे न लूट ।
 प्रत की सो परमाथी, संत न धाले मूठ ॥ ७३ ॥
 माया जुगवे कौन गुन, अंत न आवे काज ।
 सो सतनाम जोगाबहु, भय परमारथ साज ॥ ७४ ॥
 माया संखा पटुम लौं, भक्ति बिहुन जो होय ।
 जम लै ग्रासै सो तेहि, नरक पडे पुनि सोय ॥ ७५ ॥
 मन ते माया ऊपजै, माया तिरगुन रूप ।
 पांच तत्त्व के मेल में, बांधे सकल सरूप ॥ ७६ ॥
 रंक जीव जोइ सोई, होय सोइ धनवंत ।
 धनवंता जो हरि मजे, हरि मिले भगवंत ॥ ७७ ॥
 रंक जु धन को ना चहे, चाहे भेष मतीत ।
 गुरु भक्ता मोहि भावहीं, कहै कबीर अतीत ॥ ७८ ॥

कनक कामिनी को अंग ।

चलो चलो सब को कहै, पहुँचै विरला कोय ।
 एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥ १ ॥
 एक कनक अरु कामिनी, ये लम्बी तरवार ।
 धाले थे हरि मिलनको, बीच हि लीन्हा मार ॥ २ ॥

एक कनक अरु कामिनी, दोउ अगिन की झाल ।
 देखत ही ते परजरै, परसि करै पैमाल ॥ ३ ॥
 एक कनक अरु कामिनी, बिप फल लिया उपाय ।
 देखत ही ते बिप चटै, चाखत ही मरि जाय ॥ ४ ॥
 एक कनक अरु कामिनी, तजिये भजिये दूर ।
 गुरु बिच पाडै अन्तरा, जम देसी मुख धूर ॥ ५ ॥
 जो या घाटी लंगहीं, सो जन उतरै पार ।
 या घाटी तें आखडै, ताको वार न पार ॥ ६ ॥
 अविनासी बिच धार तिन, कुल कंचन भरु नारि ।
 जो कोइ इन ते बचि चले, सोई उतरै पार ॥ ७ ॥
 नारी की झाँई पड़त, अंग होत भुजंग ।
 कबीर तिन की कौन गति, नित नारीके संग ॥ ८ ॥
 नारि पराई आपनी, भोगै नरकै जाय ।
 आग आग सब एक सी, हाथ दिये जरि जाय ॥ ९ ॥
 जहर पराया आपना, खायेसँ मरि जाय ।
 अपनी रच्छा ना करै, कहै कविर समुझाय ॥ १० ॥
 कृप पराया आपना, गिरे इन्नि सो जाय ।
 ऐमा भेद विचार के, तूं मति गोहा खाय ॥ ११ ॥
 छुरी पराई आपनी, मारै दर्द जु होय ।
 बहुविध कहूँ पुकारि के, कर छुवो मति कोय ॥ १२ ॥

नारी निरखि न देखिये,	निरखि न कीमै दौर ।
देखत ही ने बिप चढै,	मन भावै बलु और ॥१३॥
नारि नसावै तीन गुन	जो नर पासे होय ।
भक्ति मुक्ति निज ध्यानमें,	पठि न सकही कोय ॥१४॥
नारी नदी अथाह जल,	बूढि मुवा भंसार ।
ऐसा साधू ना मिला,	जा संग उतरै पार ॥१५॥
नारी कहूँ कि नाहरी,	नख सिल सें यह खाय ।
जल बूझा तो ऊबै,	भग बूझा बहि जाय ॥१६॥
नारी नाहीं नाहरी,	करै नैन की चोट ।
कोइ काइ साध ऊबै,	ले सतगुरु की ओट ॥१७॥
नारी नाहीं जम अहै,	तू मति राच जाय ।
मजारी ज्यों बोलि के,	काढि करेजा खाय ॥१८॥
नारी नदिया सारखी,	बहै अपरबल पूर ।
साहिब सों न्यारा रहै,	अन्त परै मुख घूर ॥१९॥
नारी नदिया सारखी,	और जु मगटे काल ।
सब कालनते वाचि है,	नारी जम का जाल ॥२०॥
नारि पुरुष की इस्तरी,	पुरुष नारि का पूत ।
याही ज्ञान विचारि के,	छाडि चला अवधूत ॥२१॥
नारी नजरि न जोरिये,	अंस हि खिस ह जाय ।
जाके चित नारी बसै,	चागि अस ले जाय ॥२२॥

नारी कुंडी नरक की,	विरला थामै वाग ।
कोड साधू जन ऊवरा,	सब जग मूआ लाग ॥ २३ ॥
नारी केरे राचने,	औं गुन है गुन नौंहि ।
खार समुन्दर माछली,	केती बहि बहि जाँहि ॥ २४ ॥
नारि पुरुष सब ही सुनो,	यह सतगुरु की साख ।
विष फल फलें अनेक है,	मति कोइ देखो चाखि ॥ २५ ॥
जिन खाया सोई मुआ.	गन गंधर्व बड भूप ।
सतगुरु कहै कवार सो,	जगमें जुगति अनूप ॥ २६ ॥
नारी सेती नेह,	बुधि विवेक सब ही हरै ।
कहा गँवावै देह,	कारज कोई ना सरै ॥ २७ ॥
कामिनी काली नागिनी,	तीनों लोक भँझार ।
नाम सनेही ऊवरे,	विषयी खाये झार ॥ २८ ॥
कामिनी सुंदर सर्पिनी,	जो छेटे तिहि खाय ।
जो गुरु चरनन राचिया,	तिन के निकट न जाय ॥ २९ ॥
इक नारी इक नागिनी,	अपना जाया खाय ।
कबहुँ सरपट नीकसे,	उपज नाग बलाय ॥ ३० ॥
नैनो वाजर देय के,	गाढे बांधे केस ।
हाथों बेहदी लाय के,	वाघिनि खाया देस ॥ ३१ ॥
परनारी पैनी छुरी.	मति कोइ करो प्रसंग ।
रावन के दस तिर गये,	परनारी के संग ॥ ३२ ॥

परनारी पैनी छुरी, विरला बँचै कोय ।
 कबहुँ छेडि न देखिये, हसि हसि खावै रोय ॥ ३३ ॥
 परनारी पैनी छुरी, विरला बाधै कोय ।
 ना वह पेट सँचारिये, जो सोना की होय ॥ ३४ ॥
 परनारी के राचनै, सीधा नरकै जाय ।
 तिन को जम छाँडै नहीं, कोटिन करै उपाय ॥ ३५ ॥
 परनारी का राचेना, ज्यूँ लहसुन की खान ।
 कोनै बैठे खाइये, परगट होय निदान ॥ ३६ ॥
 परनारी राता रहै, चोरी बैठत खाय ।
 दिवस च्यारि सरसा रहै, अन्त ममूला जाय ॥ ३७ ॥
 परनारी पर सुन्दरी, जैसे सून्नी साल ।
 नित कलेस भुगतै सही, वह न छोडै खाल ॥ ३८ ॥
 छोटी मोटी कामिनी, सब ही बिप की बेल ।
 बैरी मारै दाव सँ, यह मारै हँसि खेल ॥ ३९ ॥
 देखत ही दह में परै, कनक कामिनी भाय ।
 कहै कविर कौतुक भया, मन को रहा समाय ॥ ४० ॥
 जो कबहुँ के देखिये, चीर बहिन के भाय ।
 आठ पहर अलगा रहै, ताको काल न खाय ॥ ४१ ॥

३६ खान-खाना । निदान-अन्त में ।

४१ स्त्री को पापदृष्टि से न देखे, अधिक आयुवारी को माता और समयस्क को बहिन के भाव से देखना चाहिये । जो इस प्रकार पवित्र व्यवहार से रहता है वह काल के चक्र से बच सकता है ।

सरव सोने की सुन्दरी, आवै वास सुवास ।
 जो जननी है आपनी, तऊ न बैठे पास ॥४२॥
 गाय रोय हँसि खेलि के, हरत मयन के प्रान ।
 कहै कविर या घात को, समझै संत सुजान ॥४३॥
 गाय मैस घोड़ो गरी, नारि नाम है तास ।
 जा मंदिर में ये बसै, तहाँ न कोजै वास ॥४४॥
 जग में भक्त कहावई, चुश्की चून न देय ।
 सिप जोरु का है रहा, नाम गुरु का लेय ॥४५॥
 सेवक अपना करि लिया, आझा भेटै नाँहि ।
 भग मंतर दे गुरु भई, सिप है सबै कपॉहि ॥४६॥
 फाटे कानों बाधिनी, तीन लोक को खाय ।
 जीवत खाय कलेजरा, मुये नरक ले जाय ॥४७॥
 कविर नारि की प्रीति से, केतै गये गडन्त ।
 केतै औरै जाहिंगे, नरक हसन्त हसन्त ॥४८॥
 जोरु जूठनि जगत की, भले बुरे के बीच ।
 उत्तम सो अलगा रहै, मिलि खेलै सो नीच ॥४९॥
 सुन्दरी ते सूलो भलो, धिरला बाँचै कोय ।
 लोहलुहालै अगिनिमें, जरि वरि कुइला होय ॥५०॥
 रज वीरज की कोठरी, तापर साज्यो रूप ।
 एक नाम बिन बूढ़ी, कनक कामिनी कृप ॥५१॥

जहाँ जराई सुन्दरी, तूँ जनि जाय कवीर ।
 उडि के भमम जो लागसी, मृना होय सरीर ॥५३॥
 नागिन के तो दोय फन, नारी के फन बीस ।
 जाका दसा न फिर जियै, मरि है यिसरा बीस ॥५३॥
 जगमें डोढी कामिनी, पीवै सब संसार ।
 सोफी है करि जो पिये, ताहि उतारै पार ॥५४॥
 दीपक झोला पवन का, नरका झोला नारि ।
 साधू झोला सब्दका, बोले ताहि विचार ॥५५॥
 केता बहाया बहि गया, केता बहि बहि जाय ।
 ऐसा भेद विचारि के, तुं मति गोता खाय ॥५६॥
 कपास विनूठा कापडा, रुदे सुरंग न होय ।
 कवीर त्यागो ज्ञान करि, कनक कामिनी दोय ॥५७॥
 नारी काली ऊनली, नेक विषासी जोय ।
 सब ही डारे फंदयै, नीच लिये सब कोय ॥ ५८ ॥
 नारी मदन तलावडी, भव सागर की पाल ।
 नर मच्छा के कारने, जीवत मांडो जाल ॥ ५९ ॥

५३. इस साखी में सुन्दरी की सोस अगुनियों को सर का फन बताया गया है, क्यों कि कामाजिन उनको देखकर मोहित हो जाते हैं ।

५४ डोढी—पोस्ते का छतरा । सोफी—हल्का नशा करनेवाला । भाव यह है कि जो गृहस्थी अपनी स्त्री के साथ अनासक्ति व्यवहार करता है, वह क्रमशः मुक्ति मार्ग पर जाता है ।

५७. कपास विनूठा—खराब कपास से बना हुआ ।

नारी नरक न जानिये, सब संतन की खान ।
 जायें हरिजन ऊपजे, सोइ रतन की खान ॥ ६० ॥
 कबीर मन मिरतक भया, इंद्री अपने हाथ ।
 सोभी कबहु न कीजिये, कनक कापिनी साथ ॥ ६१ ॥
 मांस मांस सब एक है, क्या हरनी क्या गाय ।
 नारि नारि सब एक है, क्या मेहरी क्या माय ॥ ६२ ॥
 त्रिषा कृतघ्नी पापिनी, तासों भीति न जोड ।
 पछी चढिया आखडै, लागे मोटी खोड ॥ ६३ ॥
 सात दीप नव खंड में, सबमें फगुवा लीन ।
 ठाढी कहै कबीर सों, तुमने कछु न दीन ॥ ६४ ॥

काल को अंग ।

काल जीव को ग्रासई, बहुत कयो समुझाय ।
 कहै कविर मैं क्या करूँ, कोई नहि पतियाय ॥ १ ॥
 काल हमारे संग है, कस जीवन की आस ।
 दस दिन नाम सँभार ले, जब लग पिंजर साँस ॥ २ ॥
 काल चिचाना है खड़ा, जाग पियारे मीत ।
 नाम मनेही बाहिरा, क्यों सोवै निहचीत ॥ ३ ॥

अठ्ठा सुख को सुख कहै, मानत है मन मोद ।
 जगत चवेना काल का, कछु मूठी कछु गोद ॥ ४ ॥
 आज काल पल छिनक में, मारग मेला द्वित ।
 काल चिचाना नर चिड़ा, औजह औ अवाचित ॥ ५ ॥
 सब जग सूना निंद भरि, मोहि न आवै निंद ।
 काल खड़ा है वारनै, (ज्यों) तोरन आया बिंद ॥ ६ ॥
 छालै दूलै दिन गयो, व्याज बढ़ता जाय ।
 ना हरि भजा न खत कटा, काल पहुँचा आय ॥ ७ ॥
 कबीर दुग दुग चोयतां, पल पल गई बिहाय ।
 जिव जंजाले पड़ि रहा, दिया दमाया आय ॥ ८ ॥
 मैं अकेल वह दो जना, सेरी नहीं कोय ।
 जो जम आगे ऊवरो, तो जरा बैरि होय ॥ ९ ॥
 जरा आय जोरा किया, पिय अपना पहिचान ।
 अन्त कछु पल्ले पड़े, ऊठत रे खलिशन ॥ १० ॥
 जरा आय जोरा किया, नैनन दीनी पेट ।
 आँखौ ऊपरि आगुली, वीष भरै पछ नीट ॥ ११ ॥
 जीवन सिकंदारी तजी, चला निमान बजाय ।
 सिर पर सेव सिरायचा, दिया बुढ़ाये आय ॥ १२ ॥

५. चिड़ा—चिड़िया । ६. वारनै—द्वार पर । बिंद—दुल्हा, घर ।

८. दुगर चौवता—दुख २ देखते ।

११. वीष—विष । आँखों पर अगुलियों की लापा बन्ने से एक निम्न तक मुश्किल से देखने में आता है ।

१२. सिकंदारी—सरदार । सेत सिरायचा—सफेद पगटे ।

कान लगी सुनहा कहै, कालै पानी हार ।
 राज विराजी होत है, सकै तो नाम सम्हार ॥१३॥
 राम कहा जिन कहि लिया, जरा पहुँची आय ।
 मंदर लागो द्वार सों, अब कह्यु कही न जाय ॥१४॥
 बिरिया बीती बल घटा, केस पलटि भये और ।
 विगरा काज सँभारि लै, करि छूटन की ठौर ॥१५॥
 बिरिया बीती बल घटा, औरौ बुरा कपाय ।
 हरिजन छाँडा हाथ तें, दिन नोरा ही आय ॥१६॥
 जरा कुत्ता जोवन ससा, काल अहेरी निज ।
 दो बैरी बिच झोंपडा, कुसल कहाँसों भित्त ॥१७॥
 कुसल कुसल जो पूछा, जग में रहा न कोय ।
 जरा मुई ना भय सुभा, कुसल कहाँ ते होय ॥१८॥
 बड़ि जो बाजै राज दर, सुनता है सब कोय ।
 आयु घटे जीवन खिसै, कुसल कहाँ ते होय ॥१९॥
 कै कुसल अनजान के, अथवा नाम जपन्त ।
 जनम मरन होवा नहीं, तो बूझो कुसलन्त ॥२०॥
 कुसल जो पूछो असल की, आसा लागी होय ।
 नाम बिहूना जग सुआ, कुसल कहाँ ते होय ॥२१॥
 माला आवत देखि के, कलियाँ करे पुकार ।
 फूली फूली खुनि लई, काल हमारी वार ॥२२॥

बढही आवत पेखि के, तरुवर रुदन कराय ।
 मै अपग संसै नहीं, पचडी वसते आय ॥२३॥
 फागन आवत देखि के, वन रोना मन माँहि ।
 ऊँची डारी पात था, पिपरा है ह जॉहि ॥२४॥
 पात जो तरुवर सो कहै, विलंब न मानै मोर ।
 आय रितु जो वसंत की, जहँ जाओ तहँ तोर ॥२५॥
 तरुवर पात सों यों कहै, सुनो पात इक बात ।
 या घर याही रीति है, इक आवन इक जान ॥२६॥
 पात झरन्ता यों कहै, सुन तरुवर वनराय ।
 अब के बिलुड़े ना मिले, दूर पढ़ेंगे जाय ॥२७॥
 कहै पात वा झाड सो, कडा पढ़ी अब तोहि ।
 ज्यों वा तरुवर ही तजो, चलो जान दे मोहि ॥२८॥
 पीपल पान झरनिया, हँसी आय को घेरि ।
 यॉही बसिया होयगा, अपनी अपनी बैरि ॥२९॥
 मेरा बार लुहारिया, तू मति जारै मोहि ।
 इक दिन ऐसा होयगा, मै जारौगी तोहि ॥३०॥
 जारनहारा भी मुआ, मुआ जलावनहार ।
 है है करते भी मुये, कासों करूँ पुकार ॥३१॥
 जो ऊँगे सो आयमे, फूँटै सो कुम्हिलाय ।
 जो चूँतै सो ढाँहि पढ़े, जाँवै सो मरि जाय ॥३२॥

निश्चय काल गरामही, बहुत कहा समुझाय ।
 कहै कवीर मैं का कहूं, देखत ना पतियाय ॥३३॥
 कवीर जीवन कुछ नही, गिन खारा खिन मीठ ।
 कालिह अलहजा मारिया, आज मसाना दीठ ॥३४॥
 कवीर मंदिर आपने, नित उठि करता आल ।
 सरहट देखी डरपता, चौडै दीया जाल ॥३५॥
 कवीर पगरा दूरि है, बीच पड़ी है रात ।
 ना जानौं क्या होयगा, ऊगन्ता परभात ॥३६॥
 कवीर गाफिल क्यों फिरै, क्यों सोता घन घोर ।
 तेरे सिराने जप खड़ा, ज्युं अंधियारे चोर ॥३७॥
 कवीर हरि सों हेत कर, कोरै चित न लाय ।
 बांध्यो वारि खटीक के, ता पसु कैतिक आय ॥३८॥
 कवीर सब सुख राप है, और हि दुख की रासि
 सुर नर मुनि अरु असुर सुर, पड़े काल की फांसि ॥३९॥
 धंमन धपती रहि मई, बूझि गया अंगार ।
 अहरन का ठमका रहा, जब उठि चला लुहार ॥४०॥
 पैथी ऊमा पंथ सिर, बगुचा बांस पूंठ ।
 परना मुंह आगे खड़ा, जीवन का सब झूठ ॥४१॥

३४. अलहजा=आलोजा, घोर । ३८. वारि=दरवाजे । खटीक=कसाई ।

४०. धमन=धूमनी । ४१. बगुचा=गट्टी ।

यह जीव आया दूर ते, जाना है बहु दूर ।
 बिच के वासै बसि गया, काल रहा तिर पुर ॥४२॥
 काचो काया मन अथिर, थिर थिर करम करन्त ।
 ज्यों ज्यों नर निधडक फिरै, त्यों त्यों काल हसन्त ॥४३॥
 हम जाने थे खादिने, बहुत निर्मी बहु माल ।
 ज्यौ का त्यों ही रहि गया, पकडि ले गया काल ॥४४॥
 चहुँ दिस पाका कोट था, मन्दिर नगर मँझार ।
 खिरकि खिरकि पाहरू, गन बंधा दरबार ॥४५॥
 चहुँदिस ठाढ़े सूरमा, हाथ लिये धारियार ।
 सब ही यह तन देखताँ, काल ले गया मार ॥४६॥
 आस पास जोधा खड़े, सबै बजावै गाल ।
 मंझ महल तेँ ले चला, ऐसा परवल काल ॥४७॥
 धरती करते एक पग, कते समुद्र फाल ।
 हाथों परबत तोलने, तेभी खाये काल ॥४८॥
 हाथों परबत फाड़ने, समुद्र घूट भराय ।
 ते मुनियर धरती गले, का कोय गरब कराय ॥४९॥
 ताजी छटा सहरते, कसबै पड़ी पुकार ।
 दरवाजा जडा दि रहा, निकस गया असवार ॥५०॥
 बेरा जाये क्या हुआ, कटा बजावै थाल ।
 आवन जावन है रहा, ज्यों कीडी का नाल ॥५१॥

जाया जाया सब कहै, आया कहैं न कोय ।
 जाया नाम जनम का, रहन कहाने होय ॥५२॥
 बालपना भोले गया, और जुवा महमंत ।
 वृद्धपने आलस भयो, चला जरनै अन्त ॥५३॥
 संसै काल सरीर में, विषम काल है दूर ।
 जाको कोइ जानै नहीं, जारि करै सब धूर ॥५४॥
 जारि वारि मिस्सी करै, मिस्सी करि है छार ।
 कहै कविर कोइला करै, फिर दे दै औतार ॥५५॥
 ऐसे साँच न मानई, तिल ही देखो जोय ।
 जारि वारि कोइला करै, जमत। देखा सोय ॥५६॥
 संसै खाया सकल जग, संसा किनहु न बढ़ ।
 जो बंधा गुरु अच्छरा, संसा चुनि चुनि खड्ड ॥५७॥
 संसै काल सरीर में, जारि करै सब धूर ।
 काल से वाचै दास जन, जिनपै बाल इजूर ॥५८॥
 घाट जगाती धर्मराय, सब का झारा लेय ।
 सत्त नाम जानै विना, उलटि नरक में देय ॥५९॥
 जिनके नाम नितान है, तिन अटकावै कौन ।
 पुरुष खजाना पाइया, मिटि गया आवा गौन ॥६०॥
 घाट जगाती धर्मराय, गुरुमुख ले पहिचान ।
 छाप विना मननाम कै, माकट रहा निर्दान ॥६१॥

५३. जुवा—जवानो । महमंत—मन्ता । ५९. घाट जगाती—महमूर
 लेनेवाला, चूगी उगादनेवाला ।

गुरु जहाज हम पावना,	गुरुमुख पारि पडै ।
गुरु जहाज जानै बिना,	रोवे घाट खडै ॥६२॥
खुलि खेलो संसार में,	बांधि न सकै कोय ।
घाट जगाती क्या करै,	सिर पर पोट न होय ॥६३॥
जम्पन जाय पुकारिया,	ढंडा दीया डार ।
संत मवासी हूँ रहा,	फासि न पडे हमार ॥६४॥
जाता है जिस जान दे,	तेरी दसी न जाय ।
केवटिया की नाव ज्यौ,	घना चढेगा आय ॥६५॥
चाकी चली गुपाल की,	सब जग पीसा झार ।
रुडा सब्द कबीर का,	डारा पाट उगार ॥६६॥
चलती चाकी देखिके,	दिया कबीरा रोय ।
ढो पाटन बिच आयके,	साबुत गयान कोय ॥६७॥
आसै पासै जो फिरै,	निपट पिमावै सोय ।
कीला सों लागा रहै,	ताको विप्रन न होय ॥६८॥
सब जग हरपै काल सो,	ब्रह्मा विष्णु महेस ।
सुर नर मुनि औ लोक सब,	सात रसातल सेस ॥६९॥
चंद्र मूर घर पवन लौं,	खंड ब्रह्मंड प्रोस ।
जम डरै काल कपूर सों,	जै जै तू आदेस ॥७०॥

६४. मवासी—वगा । ६५. डसी—डसी, फन्दा । ६६. रुडा—
बड़ा ककर ।

१. पा० उगार । २. पा० बचा ।

मूसा डरपे काल सुं,	कठिन काल का जोर ।
स्वर्ग भूमि पातालमें,	जहा जाव तहँ घोर ॥७१॥
फागुन आवत देखि के,	मन झूरे बनराय ।
जिन डाली हथ केलि किय,	सोही ब्यारे जाय ॥७२॥
पान झरता देखि के,	हसती कुशलियां ।
हथ चाले तुम चालियो,	धीरी बापलियां ॥७३॥
काल पाय जग उपजो,	काल पाय सब जाय ।
काल पाय सब बिनसि है,	काल काल कहँ स्वाय ॥७४॥
काल काल सब कोइ कहे,	काल न चीन्हे कोय ।
जेती मन की कल्पना,	काल कहावे सोय ॥७५॥
काल फिरँ फिर ऊपरै,	हाथों धरी कपान ।
कहँ कविर गहु नाम को,	छोड़ सकल अभिमान ॥७६॥
जाय झरोखे सोवता,	फूलन सेज बिलाय ।
सो अब कहँ दीखै नहीं,	छिनमें गयो बिलाय ॥७७॥
अधम कला सब काल की,	देखहु उलटी रीत ।
करै प्रतीति दृढ़ चोर सों,	साहब से नहि प्रीत ॥७८॥
कवीर पगरा दूर है,	आय पहुँची सांझ ।
जन जन को मन राखतां,	बेस्या रहि गई वांझ ॥७९॥

समरथ कौ अंग ।



साहिव सों सब होत है, बंदे सें कुछ नाँहि ।
 राई सें परबत करै, परबत राई माँहि ॥ १ ॥
 साहिव सम समरथ नहीं, गरुआ गहिर गँभीर ।
 औगुन छाडै गुन गहै, छिनक उतारै तीर ॥ २ ॥
 बहन बहन्ता थल करै, थल कर बहन बहोय ।
 साहिव हाथ बढाइया, जस भावै तस होय ॥ ३ ॥
 बहन बहन्ता थिर करै, थिरता करै बहैन ।
 साहिव हाथ बढाइया, जिस भावै तिस दैन ॥ ४ ॥
 ना कुछु किया न करि सका, (नहि)करने जोग शरीर ।
 जो कुछु किया साहिव किया, ताते भया कधीर ॥ ५ ॥
 जो कुछु किया सो तुम किया, मैं कुछु कीया नाँहि ।
 कहँ कहीं जो मैं किया, तुम ही थ मुझ माँहि ॥ ६ ॥
 कीया कुछु न होत है, अन कीया ही होय ।
 कीया जो कुछु होत तो, करता औरै कोय ॥ ७ ॥
 ना कुछु किया न करि सका, ना कुछु करने जोग ।
 मैं मेरी जो ठानि के, दूजी थापै लोग ॥ ८ ॥

इत कूवा उत बावडी, इत उत थाह अथाह ।
 दह दिसा फनि फन कहै, समरथ पार लगाह ॥ ९ ॥
 घट समुद्र लखि ना परै, ऊँठे लहरि अपार ।
 दिल दरिया समरथ बिना, कौन लगावै पार ॥ १० ॥
 धन धन सौँई तू बडा, तेरी अनुपम रीत ।
 सकल भवन पति सौँइया, है करि रहे अतीत ॥ ११ ॥
 सौँई मै तुझ बाहरा, कौडो हू नहि पाउँ ।
 जो सिर उपर तुम धनी, मंहगे मोल बिकाउँ ॥ १२ ॥
 सौँई मेरा चानिया, सहज करै व्योपार ।
 बिन हाँडी बिन पालडे, तोलै सब संसार ॥ १३ ॥
 सौँई केरा बहुत गुन, औगुन कोई नाँहि ।
 जो दिल खोजूँ आपना, सब औगुन मुझ माँहि ॥ १४ ॥
 तेरे बिन जोर जुल्म है, मेरा होय अकाज ।
 विरद तुम्हारे नाम की, सरन पड़े की लाज ॥ १५ ॥
 वाटरिया दूबर भई, मति कोय कायर होय ।
 जिन यह भार उठाइया, निरवाहेगा सोय ॥ १६ ॥
 हाथी अटवयो कीचमें, काँहै को समरथ ।
 की बल निकलै आपनै, की साई पसारै हथ ॥ १७ ॥
 जिस नहीं कोय तिस हि तू, जिस तू तिस सब होय ।
 दरगह तेरी साँइया, भेटि न सकै कोय ॥ १८ ॥

जिसके ; कोई संग नहीं, तिसका तू सब होय ।
 सब पर तेरा हुक्म है, सकै नहि कोय ॥१९॥
 मेरा किया न कछु भया, तेरा कीया होय ।
 तू करता सब कुछ करै, करता और न कोय ॥२०॥
 अंगुन हारा गुन नहीं, मनका बढा कठोर ।
 ऐसे समर्थ साइया, ताहि लगावै और ॥२१॥
 तुम तो समर्थ साइया, गहि करि पकड़ो वाँह ।
 धूरहि ले पहुँचाइयो, मत छोड़ो मग माँहि ॥२२॥
 बालक रूपी साइया, खेलै सब घट माँहि ।
 जो चाहै सो करत है, मय काहूका नाँहि ॥२३॥
 एक खडा ही ना लहै, एक ऊमा बिललाय ।
 समर्थ मेरा साइया, सूता देय जगाय ॥२४॥
 समर्थ धोरी कंध दै, रथ को दे पहुँचाय ।
 मारग माहि न छाँडिये, पिय विन विरद लजाय ॥२५॥

२४. ना लहै—नहीं पाता है । ऊमा—खडा । बिललाय—बिनाप करता है ।

जिस पर मालिक की दया नहीं होती वह सदैव तत्पर रहने पर भी स्वामिष्ट को नहीं पाता और कोई तो उसकी प्रतीक्षा में वरुण—ऋतु भी करने लगता है । और जिस पर समर्थ की कृपा होती है उसको वस्तु अचानक मिल जाती है ।

२५ धोरी—धुरीण, आगे चलनेवाला, तैल ।

वारी हरिके नाम पर, कीया राई छौन
जिसै चलावै पंथ तूं, तिसै मुलावै कौन ॥२६॥

मुझमें औगुन तुझहि गुन, तुझ गुन औगुन मुझ ।
जो मैं बिसरूं तुझ को, तूं मात बिसरै मुझ ॥२७॥

साहिव तुम जनि बीसरो, लाख लोग मिलि जाहि ।
हम से तुमको बहुत हैं, तुम सम हम को नाहि ॥२८॥

तुम्है बिसरै क्या बने, किसके सरनै जाय ।
सिव विरंचि मुनि नारदा, हिरदे नाहि समाय ॥२९॥

मेरा मन जो तुझसें, तेरा मन कही और ।
कहे कविर कैसे बने, एक चित्त दुइ ठौर ॥३०॥

जो मैं भूल विगाडिया, ना करु मैला चित्त ।
साहिव गरुवा चाहिये, नफर विगाडै निच ॥३१॥

कबीर भूल विगाडिया, करि करि मैला चित्त ।
नफर तो दीन अधीन है, साहिव राखै हित ॥३२॥

मुझमें गुन एकौ नहीं, सुनो सन्त सिर मौर ।
तेरे नाम प्रतापसें, पाऊँ आदर ठौर ॥३३॥

अन्तरजामी एक तूं, आत्म के आधार ।
जो तुम छाँडो हाथ तें, कौन चतारे पार ॥३४॥

भौसागर भारी भया, गहिरा अगम अथाह ।
 तुम दयाल दाय करो, तब पाकं कुछ थाह ॥३५॥
 सतगुरु बड़े दयाल है, सन्तन के आधार ।
 भौसागर अथाह सों, खेद उतारै पार ॥३६॥
 साहिब तुम हि दयाल हो, तुम लग मेरी दौर ।
 जैसे काग जहाज को, धुँझ और न दौर ॥३७॥
 मेरा मन जो तोहि धूँ, यों जो तेरा होय ।
 अहरन ताता छोड़ ज्यों, संधि लखै नहि कोय ॥३८॥
 कबीर करत है चिन्ती, भौसागर के ताई ।
 बन्दे जोरा होत है, जम को वरजु गुसाई ॥३९॥
 धर्मराय दरबार में, दई कबीर तलाक ।
 भूले चूके हंस को, मति कोइ रोको चाक ॥४०॥
 बोलै पुरुष कबीर सें, धर्मराय कर जोर ।
 तुझरे हंस न चंपि हो, दुहाइ लाख करोर ॥४१॥
 जो जाकी शरनै गहे, ताको ताकी लाज ।
 छलटि मीन जल चढ़त है, बहो जात गजराज ॥४२॥
 और पुरुष सब कूप है, तू है सिंधु समान ।
 मोहि टेक तुव नाम की, सुनिये कृपा निधान ॥४३॥
 चिडिया प्यासी समुँद गई, नीर न घटिया जाय ।
 ऐसा वासन ना घना, जामें समुँद समाय ॥४४॥

अजगर करै न चाकरी, पंखी करै न काम ।
 दास कवीरा यूँ बहै, सब के दाता, राम ॥४५॥
 यदपि हम कायर कुटिल, खेर चाकरी चोर ।
 तदपी कृपा न छुड़िये, चितै आपनी ओर ॥४६॥
 जाको रखै साइया, मारि न सकै कोय ।
 बाल न बाँका करि सके, जो जग बैरो होय ॥४७॥
 साँई करे बहुत गुन, लिखे जु हिरदै मांदि ।
 पिऊँ न पानी डरपता, मत वे धोये जांदि ॥४८॥
 अनेक बंधनसे बांधिया, एक विचार जीव ।
 अपने बल छूटे नहीं, जो न छुडानै जीव ॥४९॥
 तन की जानै मन की जानै, जानै चित की चोरी ।
 वह मादिव से क्या छिपावै, जिनके हाथमें डोरी ॥५०॥
 जो जाको बाँधी लगो, ताही के सिर भार ।
 हलकी कदवी, तूबरी, लेई उतारै पार ॥५१॥

चानक की अंग ।

कवीर तस्ना दोकना, लीये डोलै स्वाद ।
 रामनाम जाना नहीं, जनम भँगाया बाद ॥ १ ॥
 कवीर कलियुग कठिन है, साधु ने मानै कोय ।
 कामी, क्रोधी, मसखरा, तिनका आदर होय ॥ २ ॥

नाचै गावै पद कहै, नौही गुरु सौ हेत ।
 कहै कविर कथो नीपजै, बीज बिहना खेत ॥ ३ ॥
 कै खाना कै सीवना, और न कोई चित्त ।
 हरि सा प्रीतम बीसरा, बालपन का मित्त ॥ ४ ॥
 उस उदर के कारनै, जग जाच्यो निसि जाय ।
 स्वापिनो सिर पर चढ्यो, सख्यो न एको काम ॥ ५ ॥
 कलि का स्वामी लोभिया, मनसा रहे बंधाय ।
 देव पैसा व्याज को, लेख करत दिन जाय ॥ ६ ॥
 कलि का स्वामी लोभिया, पीतल धरे खदय ।
 राजदुवारै यो फिरै, ज्यों हरियाई गाय ॥ ७ ॥
 राज दुवारै रापजन, तीन वस्तु को जाय ।
 कै भीठा कै मान को, कै माया की चाय ॥ ८ ॥
 हरि सुभिरन साँची कथा, कोय न सुनि है कान ।
 कलिजुग पूजा दंभ की, बाजारी का मान ॥ ९ ॥
 तारा मंडल बैठ के, चाँद बढाई खाय ।
 उदै भया जब सूर का, तब तारा छिपि जाय ॥ १० ॥
 देखन का सब कीय भला, जैसे सिव का कोट ।
 रवि के उदय न दीसही, बंधे न जलकी पोट ॥ ११ ॥
 पद गावै मन हरिपि के, साखी कहै अनंद ।
 सचनाम नहि जानिया, गलम परिगा फंद ॥ १२ ॥

करता दीसै कीरतन, ऊँचा करि करि दंम ।
 जानै बूझै कहु नहीं, यौही अंग रंभ ॥१३॥
 स्वामी होना सेव का, पैसे केर पचास ।
 राम नाम धन बेचि कं, करै सीप की आस ॥१४॥
 राम नाम जाना नहीं, जपा न अजपा जाप ।
 स्वामिपना माथे पड़ा, कोइ पुरवळे पाप ॥१५॥
 स्वामी के सहमी पड़ी, माया की मुँह मार ।
 मान दि में राता रहे, बूडै पम् गँवार ॥१६॥
 महंत तो पाया गळा, समझै नहीं गँवार ।
 भेष बनाया भोंड का, घर घर जाचा द्वार ॥१७॥
 सकल स्वामी सँ कहो, सुनरे चेत अचेत ।
 पीतल ही का पारखू, हरि सँ नाही हेत ॥१८॥
 कबीर स्वामी कोय नहीं, स्वामी सिरजन हार ।
 स्वामी है करि बैठही, बहुत सहेगा मार ॥१९॥
 जो मन कागा एक सों, तौ निरुवारा जाय ।
 तुरा दो मुख बाजता, न्याय तमाचा स्वाय ॥२०॥
 कबीर बंय टोकनी, लीया फिरै सुमाय ।
 राम नाम चीन्हे नहीं, पीतल ही की चाय ॥२१॥
 कबीर व्यास कथा कहै, भीतर मेदे नाहि ।
 औरों कूँ परमोधतां, गये मुहरका माहि ॥२२॥

कबीर कहहिं पीर को, सपझावै सब कोय ।
 संसय पड़ेगा आपहुं, और कहै का होय ॥२३॥
 कबिर सुनावत दिन गये, उलझि न सुलझ्या मन ।
 कहै कबिर चेता नहीं, अजहुं पडला दिन ॥२४॥
 अमरापुर को जात हों, सबसे कहौ पुकार ।
 आवन होय तो आयो, मूरी ऊपर यार ॥२५॥
 कहै कबीर धर्मदास सों, परदा दर्द उधार ।
 जब सेवक स्वामी मये, संतो करो विचार ॥२६॥
 चित चटकी लागी नहीं, क्यों पावै करतार ।
 कीट भिरंगी होत है, नरको केतिक धार ॥२७॥
 नर नारायण होत है, जो करि बूझै कोय ।
 कीट भिरंगी होत है, गुरु बलिहारी तोय ॥२८॥
 इन्द्रो एको बस नहीं, छोड़ चले परिवार ।
 दुनिया पीछै यों फिरै, जैसे चाक कुम्हार ॥२९॥

आत्म अनुभव को अंग ।

आत्म अनुभव सूख की, जो कोई बूझै बात ।
 कै जो कोई जानई, कै अपनो ही गात ॥ १ ॥
 आत्म अनुभव जब भयो, तब नहि हर्ष विपाद ।
 चित्र दीप सम है रहे, तमि करि वाद विवाद ॥ २ ॥

आत्म अनुभव ज्ञान को, जो कोय पूछे बात ।
 सो गूंगा गुड़ खाय के, कहै कोन मुख स्वाद ॥ ३ ॥
 ज्यों गूंगा के सेन को, गूंगा ही पहिचान ।
 त्यों ज्ञानी के मुख को, ज्ञानी हे सो जान ॥ ४ ॥
 नर नारी के मुख को, खसी नहीं पहिचान ।
 त्यों ज्ञानी के मुख को, अज्ञानी नहि जान ॥ ५ ॥
 ताको लच्छन को कहै, जानो अनुभव ज्ञान ।
 साथ असाध न देखि, क्यों करि करुं बखान ॥ ६ ॥
 कागद लिखै सो कागदी, की ब्योहारी जीव ।
 आत्म दृष्टि कहाँ लिखै, जित देखै तित पीव ॥ ७ ॥
 लिखा लिखी को है नहीं, देखा देखी बात ।
 दुलहा दुलहिन मिलि गये, फीकी पढ़ी बरात ॥ ८ ॥
 स्याम सबज विधि पंच जे, पीवै अरुन अरु सेव ।
 चक्षुमान अचक्षु को, ज्यों नहि उपमा दैत ॥ ९ ॥
 ज्ञान भक्ति वैराग्य सुख, पीव ब्रह्म लौं धाय ।
 आत्म अनुभव सज सुख, तेंहों न दूजा जाय ॥ १० ॥
 ज्ञानी जुक्ति सुनाइया, को सुनि करै विचार ।
 मुरदास की इस्नरी, कां पर करै सिंगार ॥ ११ ॥
 ज्ञानी भूले ज्ञान कथि, निकट रहा निज रूप ।
 बाहिर खोजे वापुस, भीतर वस्तु अनूप ॥ १२ ॥

भीतर तो भेदा नहीं, बाहिर कथै अनेक ।
जो पै भीतर लाख परै, भीतर बाहिर एक ॥ १३ ॥
नैन समाने नैन पै, नैन समाने नैन ।
जीव समाने ब्रह्म पै, रहै ऐन कै ऐन ॥ १४ ॥
झारी फासी कूप में, भभकी पानी माँहि ।
सहै भभकी सब मिटि गई, अव कहु कहनी नाँहि ॥ १५ ॥
भरा होय तो रीतई, रीता होय भराय ।
रीता भरा न पारये, अतुभव सोय कहाय ॥ १६ ॥
कहा सिखापन देखि हो, समुझि देख मतु माँहि ।
सबै हरफ है दात महँ, दात न हरफन माँहि ॥ १७ ॥
सुखपत माँहि सब गले, मन बुद्धि चित परेकास ।
छिनक माँहि परलै भया, को ठाकुर को दास ॥ १८ ॥
जागृत जागृत साँच है, सोवन सपुनी साँच ।
देह गये दोऊ गये, ज्यों भगली का नाच ॥ १९ ॥
अंधरे को हाथी ज्यों, सब काहु को ज्ञान ।
अपनी अपनी कहत है, काँको धरिये ध्यान ॥ २० ॥
अंधे मिलि हाथी लुभा, अपने अपने ज्ञान ।
अपनी अपनी सब कहै, किसको दीजै फान ॥ २१ ॥

—१४. ऐन—एक—१७. हरफ—अक्षर—

१८. सुखपत—सुपुष्टि अवस्था । १९. भगली—जादूगरी ।

अँधरन को हाथी सही, हैं साचे सघरें ।
 हाथन की रोई बटै, आँखिन के अँधरे ॥२२॥
 अँधों का हाथी सही, हाथ टटोल टटोक ।
 आँखों सँ नहि देखिया, ताते भिन भिन बोल ॥२३॥
 दूजा है तो बोलिये, दूजा झगरा सोरि ।
 दो अँधों के नाच में, कापै चाको मोहि ॥२४॥
 निरजानी सों कहिये कदा, कहत कबीर लजाय ।
 अँधे आगे नाचते, कला अकारय जाय ॥२५॥
 वचन वेद अनुभव जुगति, आनंद की परछाँहि ।
 बोध रूप पुरुष अवाँडित, कदवे में कहु नाहि ॥२६॥
 बूझ सरीखी बात है, कइन सरीखी नाहि ।
 जेते ज्ञानी देखिये, तेते संसै माँहि ॥२७॥
 ज्ञानी तो निरमय भया, पानै नाहीं संक ।
 इन्द्रिन धरे वासि पडा, भुगते नरक निसंक ॥२८॥
 ज्ञानी मूछ गँवाइया, आप भये करता ।
 ताते संसारी भला, जो सदा रहै डरता ॥२९॥

सहज को अंग ।



सहज सहज सब कोय कहै,	सहज न चीन्है कोय ।
जा सहजै साद्वि मिलै,	सहज कहावै सोय ॥ १ ॥
सहज सहज सब कोय कहै,	सहज न चीन्है कोय ।
पाँचौ राखै पसरती,	सहज कहावै सोय ॥ २ ॥
सहज सहज सब कोय कहै,	सहज न चीन्है कोय ।
जा सहजै विषया तनै,	सहज कहावै सोय ॥ ३ ॥
सहजै सहजै सब भया,	यन इन्द्रो का नास ।
निहकामी सौ मन मिला,	कटी करम की फाम ॥ ४ ॥
सहजै सहजै सब गया,	सुन बिन काम निकाम ।
एक मेक है मिलि रटा,	दास कबीरा राम ॥ ५ ॥
काहे को कलपत फिरै,	दुखी होत बेकाम ।
सहजै सहजै होयगा,	जा बहु रचिया राम ॥ ६ ॥
जो कलपै तो दूरि है,	अनकलरै है सोय ।
सतगुरु मेटी कलपना,	सहज होय सो होय ॥ ७ ॥
जो कहु आवै सहज में,	सोई मीठा जान ।
बहुना लागै नीम सा,	जामैं ऐचातान ॥ ८ ॥

२. पसरती=पली गइ । पचज्ञानेन्द्रियों के अपने २ विषयों में रहने पर भी चित्त की एकाग्रता होना सहज-वस्था है ।

५. सुन बिन काम-निकाम-निष्काम । २ पुरंगमा, त्रितीयणा और लोकैयणा को धीरे २ छोड़कर निष्काम हो जाना ही सज्जन-वस्था है ।

मध्य को अंग ।



मध्य अंग लगा रहै,	तरत न लगै वार ।
दो दो अंग सो लागता,	यो बूझा संसार ॥ १ ॥
कवीर दुविधा दरि कर,	एक अंग है लाग ।
वा सीतल वा तैपत है,	दोऊ कहिये आग ॥ २ ॥
अनल अकासै घर दिया,	मध्य निरंतर वास ।
वसुधा वास विरक्त रहै,	बिना ठौर विस्वास ॥ ३ ॥
अनलपंख आवै नहीं,	सुत अपने को लैन ।
वह अलीन यह लीन है,	उलटि मिलै ते चैन ॥ ४ ॥
अनलपंख का चेटवा,	गिरने किया विचार ।
सुरति बांधि चेतन भया,	जाय मिला परिवार ॥ ५ ॥
वासर गम नहि रैन गर,	नहि सपनेतर गाम ।
'तहाँ कवीर विलंबिया,	जहाँ छँड नहि घाम ॥ ६ ॥
नर्क स्वर्ग ते में रहा,	सतगुरु के परसादि ।
चरन कमल की मौज में,	रहसी अंत रु आदि ॥ ७ ॥
कावा फिर कासी भया,	राम जु भया रहीष ।
मोटा चुन मैदा भया,	बैठ कवीरा जीष ॥ ८ ॥
दास कबिर काढ़ी भली,	दोऊ राह बिच राह ।
अंधे लोग अचरज करै,	सारेँ करै सराह ॥ ९ ॥

धरती और अकास में, दो तुंवरी अवद्ध ।
 पट्ट दरसन धोखे पड़े, औ चौरासी सिद्ध ॥१०॥
 सुरति निरति दो तुंवरी, आशा गवन अवद्ध ।
 अन समझा धोखे पड़ा, समझा सोई सिद्ध ॥११॥
 प्रगट गुप्त की संधिमें, जो यह भस्थिर होय ।
 ज्यौ देहल का दीवला, अंदर बाहर सोय ॥१२॥
 पाया कहे ते बावरे, खोया कहें ते कूर ।
 पाया खोया कलु नहीं, ज्यों का त्यों भरपूर ॥१३॥
 मज्जू तो को है भजन को, तज्जू तो को है आन ।
 भजन तजन के मध्यमें, सो कबीर मन मान ॥१४॥
 लेऊँ तो महा प्रतिग्रह, देऊँ तो भोगन्त ।
 लेन देन के मध्य में, सो कबीर निज सन्त ॥१५॥
 दुआ देऊँ तो दोऊख जाऊँ, बद दुआ भी नाँहि ।
 दुआ बददुआ किसको देऊँ, साहिव है सब माँहि ॥१६॥
 मँडि रहना मैदान में, सनमुख सहना तीर ।
 जमरा औ जगदीस के, मधिमें वसै कबीर ॥१७॥
 गुरु नहीं चेला नहीं, मुरीद हू नहि पीर ।
 एक नहीं दूजा नहीं, बिलमै दास कबीर ॥१८॥

१०. दो तुंवरी-साहब और साधु । ये दोनों किसी के बन्धन में नहीं पड़ते ।

११. पट्ट दर्शन=जोगी, जंगम, सनडा, संन्यासी, दरवेश और ब्राह्मण ।

१२. देहल—देहली । १५. प्रातग्रह—दान । १६. बददुआ शाय ।

हिन्दू ध्यावै देहरा, मुसलमान मसीत ।
 दास कबिर तहँ ध्यावही, दोनों को परतीत ॥ १९ ॥
 हिन्दू तुरक के बीच में, मेरा नाम कबीर ।
 जिव मुक्तावन कारनै, अविगत धरा सरीर ॥ २० ॥
 हिन्दू तुरक के बीच में, सब्द कहँ निरवान ।
 बंधन काहँ जगत का, मैं रहित रहमान ॥ २१ ॥
 हिन्दू मुआ राम कहि, मुसलमान खुदाय ।
 कहँ कबिर सो जीवता, दोउ के संग न जाय ॥ २२ ॥
 हिन्दू कहँ तो मैं नहीं, मुसलमान भी नाहि ।
 पांच तत्व का पूतला, गैबी खेलै माँहि ॥ २३ ॥
 गैबी आया गैब ते, इहाँ लगाया ऐव ।
 उलटि समाना गैब में, (तब) कहाँ रहेगा ऐव ॥ २४ ॥
 गैबी तो गलियाँ फिरै, अज गैबी कोय एक ।
 अज गैबी ह जो लखै, जाके हियै विवेक ॥ २५ ॥
 आगे खोजी पचि मुआ, पीछै रहा भुलाय ।
 मध्य माँहीं वासा करै, ताको काल न खाय ॥ २६ ॥
 सौचै कोई न मानई, झूठ कहा - नहि जाय ।
 सौच झूठ के मध्य में, रहा कबीर समाय ॥ २७ ॥

अतिका भला न दोलना, अति की भली न चूप ।
 अतिका भला न बरसना, अति की भली न घूब ॥ २८ ॥
 सबही भूमि बनारसी, सब निर गंगा तोय ।
 ज्ञानी आत्म राम है, जो निर्मल बट होय ॥ २९ ॥

भेद को अंग ।



कबीर भेदी भक्त सों, मेरा मन पतियाय ।
 सेरी पावै सब्द की, निरभय आवै जाय ॥ १ ॥
 भेदी जानै सर्व गुन, अन्भेदी क्या जान ।
 कै जानै गुरु पारग्वी, कै जिन लागे बान ॥ २ ॥
 भेद ज्ञान तौ लौ भलो, जौ लौ मुक्ति न होय ।
 परम जोति प्रगटे जहाँ, तहँ विकल्प नहि कोय ॥ ३ ॥
 भेद ज्ञान मातुन भया, सुमिरन निरमल नीर ।
 अंतर धोई आत्मा, धोया निरगुन चीर ॥ ४ ॥
 समझे को सेरी घनी, अन समझे को नौहि ।
 द्वार न पावै सब्द का, फिर फिर गोताँ खाँहि ॥ ५ ॥
 समझा समझा एक है, अन समझे सब एक ।
 समझा सोई जानिये, जाँके दिये विवेक ॥ ६ ॥

समझा समझा एक है, अनसमझे सों मौन ।
 बातें बहुत मिलावई, तासों झीखै कौन ॥ ७ ॥
 समझा सोई जानिये, समझ समानी माँहि ।
 जब लग कछु न आवही, तब लग समझा नाँहि ॥ ८ ॥
 कोटि सयाने पचि मुये, कथे विचारै लोय ।
 समझा बट तब जानिये, रहित विचार जु होय ॥ ९ ॥
 भारी कहूं तो बहु डरूं, हलका कहूं तो झीठ ।
 मैं क्या जानूं राम को, नैना कछु न दीठ ॥ १० ॥
 दीठा है तो कस कहूं, कहूं तो को पतियाय ।
 हरि जैसा तैसा रहै, हरपि हरपि गुन गाय ॥ ११ ॥
 ऐसी अदभुत मति कथो, कथो तो धरो छिपाय ।
 वेद कुराना नहि लिखा, कहूं तो को पतियाय ॥ १२ ॥
 जो देखै सो कहै नहि, कहै सो देखै नाँहि ।
 सुनै सो समुझावै नहि, रसन स्वन द्विग काहि ॥ १३ ॥

१०. झीठ-तुच्छ ।

१३. आख देखती है, परन्तु वह कह नहीं सकती और जीभ कहती है, परन्तु वह देख नहीं सकती । इसी प्रकार कान सुनता है, परन्तु वह समझा नहीं सकता, क्यों कि कान के जीभ और जीभ के कान नहीं हैं । इसी प्रकार जीभ के आख और आख के जीभ भी नहीं हैं । भाव यह है कि वह तत्त्व अदृश्य, अग्राध्य और अश्राव्य है ।

“ श्रोत्रस्य श्रोत्र मनसा मनो यद्वाचोहवाचय स उ प्राणस्य प्राण-
 धक्षुपथश्चक्षुरतिमुच्य धीराः प्रेत्यास्माह्लोकादमृता भवन्ति ” (केनोपनिषद्)

जो पकरै सो चलै नहि,	चलै सो पकरै नाहि ।
कहै कविर या साखि को,	अरथ समुझ मन मांहि ॥१४॥
जो पकरै सो चले नहि,	चलै सो पकरै नाहि ।
कर पद को तुम कहत हो,	समुझि लीन मन मांहि ॥१५॥
जानि के अनजान हुआ,	तत्त्व लिया पहिचानि ।
गुरु किये ते लाभ है,	चेला किये न हानि ॥१६॥
बाद विवादे विष घना,	बोले बहुत उपाधि ।
मौन गहि हरि सुमिरिये,	जो कोय जानै साध ॥१७॥
पंडित सेती कहि रहा,	कहा न मानै कोय ।
वह अगाध ये क्यों कहै,	भारी अचरच होय ॥१८॥
बमे अपिंडी पिंड में,	ताको लखै न कोय ।
कहै कवीरा संतजन,	बड़ा अचंभा होय ॥१९॥
घटमें है मूर्ख नहि,	कर सो गहा न जाय ।
मिट्ठा रहे ओ न मिलै,	तासों कहा बपाय ॥२०॥
आठ पहर चौबिस घड़ी,	मो मन यही अंदेस ।
या नगरी प्रीतम बसे,	मैं जानूं परदेस ॥२१॥
प्रीतम को पतिया लिखूं,	जो वह है परदेस ।
तनमें मनम नैन में,	ताको कहा सँदेस ॥२२॥
समदर्शी सतगुरु किया,	भरम भया सब दूर ।
भया उजारा ज्ञान का,	निरमल ऊगा मूर ॥२३॥

समदर्सी सतगुरु किया,	भरम किया सब दूर ।
दूजा कोय दीखै नहि,	राम रहा भरपूर ॥ २४ ॥
* समदर्सी सतगुरु किया,	दीया अविचल ज्ञान ।
जहँ देखो नहँ एक ही,	दूजा नाँही आन ॥ २५ ॥
समदर्सी सतगुरु किया,	मेदा भरम विकार ।
जहँ देखो तहँ एक ही,	साहब का दीदार ॥ २६ ॥
समदर्सी सतगुरु किया,	पाया मन विसराम ।
जो हमको दिन घालता,	सो गप ब्रह्म के धाम ॥ २७ ॥
समदर्सी तब जानिये,	मीतल समता होय ।
सब जीवन की आत्मा,	लखै एक सी सोय ॥ २८ ॥
जो मन समझै ज्ञान में,	ज्ञान दि होय सहाय ।
सो फिर तोही ना रुचै,	जाकूँ तू कहै माय ॥ २९ ॥
समझै का घर और है,	अन समझै का और ।
जा घट में साहब बसै,	सो विरला जानै ठौर ॥ ३० ॥
समझै का मत और है,	अन समझै का और ।
समझै पीछे जानिये,	राम बसै सब ठौर ॥ ३१ ॥
भटकि मुआ भेदी बिना,	बौन बतावे धाम ।
चलते चलते जुग गया,	पाव कोस पर गाम ॥ ३२ ॥
जा वारन हम दूढ़ने,	करते आस उमेद ।
सो तो अंतर गत मिला,	गुरु मुख पाया भेद ॥ ३३ ॥

जो देखा सो तीन में,	चौथा मिले न कोय ।
चौथे कुं परगट करै,	हरिजन कहिये सोय ॥३४॥
जो वह एक न जानिया,	बहु जाने क्या होय ।
एके ते सब होत है,	सबने एक न होय ॥३५॥
दौड़ धूप छोड़ो मखी,	छोड़ो कथा पुरान ।
उलटि वेद को भेद गहु,	सार सबद गुरु ज्ञान ॥३६॥
ईलम से उद्योग खिले,	खिले नेकि से नूर ।
ईलम विन संसार में,	समुझ अंधेरो धूर ॥३७॥
मुख में रहे सो मानवी,	मनसे रहे सो देव ।
सुरत रहे सो संन है,	इस विधि जानो भेव ॥३८॥
बोलत ही विष बाढ है,	पूछन ही है वाद ।
ऐसे मन में समुझि के,	चूप रहे सोड साथ ॥३९॥
अंतर कमल प्रकासिया,	ब्रह्म वास तहं होय ।
मन भौरा जहं लुवधिया,	जानेगा जन कोय ॥४०॥
जिन पाया तिन सुगह गहा,	रसना लागी स्वाद ।
रतन निराला पाइया,	जगत ढंढोला वाद ॥४१॥
कबीर दिल् साविन भया,	फल पाया समर्थ ।
सापर मांदि ढंढोरतां,	हीरा पड़ि गया इथ्य ॥४२॥
चार ईट चौरासि कुवा,	सौलह सो पनिहार ।
भट पंडित खोजत मुवे,	संतन किया विचार ॥४३॥

४३. चार ईट—चार अनकरण । चौरासीकूया—चौरासी योनियों ।

सोल सो पनिहार—सोडशकर्म ।

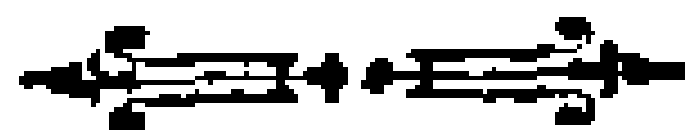
कहने जैसी बात नहि, कहै कौन पतयाय ।
जहँ लागे तहँ लगि रहे, फिर पूछेगा काय ॥४४॥

साक्षी भूत को अंग ।

जा घट में साँई बसै, सो क्यों छाना होय ।
जतन जतन करि दाविये, तउ उजियारा सोय ॥ १ ॥
सब घट मेरा साँईया, सुनो सेज न कोय ।
बलिहारी वा घट की, जा घट परगट होय ॥ २ ॥
जा घट में संसै बसै, ता घट राय न होय ।
राम सनेही साधु विच, तिना न संचर जोय ॥ ३ ॥
जो माजौ तो भय नहिं, सनमुख रहा न जाय ।
सूना सिंग न जगाइये, जो छेरै तिहि खाय ॥ ४ ॥
राय राय जिन ऊचरा, छिन छिन बांवार ।
ते मुग्व भये जु ऊजला, कहै कबीर विचार ॥ ५ ॥
कबीर पछै राम सों, सकल भवन पतिराय ।
सबही करि न्यारा रहै, सोई देहु बताय ॥ ६ ॥
जिहि विरियां साहिव मिले, ता सपान नहि और ।
सब कुं सुख दे सबद करि, अपनी अपनी ठौर ॥ ७ ॥

साहिब तेरी साहिबी, सब घट रही समाय ।
 ज्यं मेंदीके पातों, लाली लखी न जाय ॥ ८ ॥
 म्नास सुरति के मयही, न्यारा कमी न होय ।
 ऐसा साखी रूप है, सुरति निरतिमें जोय ॥ ९ ॥

एकता को अंग ।



अलख इलाही एक है, नाम धराया दीय ।
 कहें कविर दो नाम सुनि, भरम पड़ो मति कोय ॥ १ ॥
 राम रहीमा एक है, नाम धराया दीय ।
 कहें कविर दो नाम सुनि, भरम पड़ो मति कोय ॥ २ ॥
 कृष्ण करीमा एक है, नाम धराया दीय ।
 कहें कविर दो नाम सुनि, भरम पड़ो मति कोय ॥ ३ ॥
 कासी कावा एक है, एकै राम रहीम ।
 मैदा इक पकवान बहु, बैठि कवीरा जीम ॥ ४ ॥
 राम कवीरा एक है, दूजा कबहुँ न होय ।
 अंतर टाटी भरम की, ततै देखै दीय ॥ ५ ॥
 राम कवीरा एक है, कहन सुनन को दीय ।
 दो करि सोई जानई, सतगुरु मिला न होय ॥ ६ ॥

एक वस्तु के नाम बहु, लीजै वस्तु पिछानि ।
 नाम पच्छ नहि कीजिये, सार तत्त ले जानि ॥ ७ ॥
 नाम भनन्त जो ब्रह्मका, तिनका चार न पार ।
 मन मानै सो लीजिये, कहै कबीर विचार ॥ ८ ॥
 सब काहु का लीजिये, साचा सब्द निहार ।
 पच्छपात ना कीजिये, कहै कबीर विचार ॥ ९ ॥
 हरिका बना सरूप सब, जेता यह आकार ।
 अन्तर अर्थ यौ भाखिये, कहै कबीर विचार ॥ १० ॥
 देखन ही की बात है, कइने को कहु नहि ।
 आदि अन्त को मिलि रहा, हरिजन हरि हि माँहि ॥ ११ ॥
 सबै हमारे एक है, जो सुमिरै हरि नाम ।
 वस्तु लही पहिचानि के, बसन सो क्या काम ॥ १२ ॥
 खँड खिलौना ठो नही, खँड खिलौना एक ।
 तैमे सब जग देखिये, किये कबीर विचार ॥ १३ ॥
 खँड खिलौना तुम कहो, एक अहै नहि दोय ।
 नाम रूप दोसै पृथक्, हस्ती वोडा सोय ॥ १४ ॥
 उपजै एकै खँड त, हस्ती वोडा जंट ।
 खँड विचारै पाइया, नाम रूप सब झूठ ॥ १५ ॥
 कबीर लोहा एक है, घडने में है फेर ।
 ताहोका बखतर बना, ताही की समसेर ॥ १६ ॥

त्योंही एकै ब्रह्म ते, जीव ईस जग जान ।
 ब्रह्म विचारि पाइया, नाम रूग को हान ॥१७॥
 जीव ब्रह्म व्यौरा नहीं, जीव ब्रह्म एक अंग ।
 ज्यों कनक कुँडल मृदुघट, सारा फेन तरंग ॥१८॥

व्यापक को अंग ।



जेता घट तेता मता, बहु बानी बहु भेख ।
 सब घट व्यापक साँझ्या, अगप अपार अलेख ॥ १ ॥
 पारब्रह्म सूभर भरा, जाका बार न पार ।
 खालिकु विन खाली नहीं, सुइ जेता संचार ॥ २ ॥
 जाति जानि के पाहुने, जाति जाति के जाय ।
 साहिव सब की जाति है, घट घट रहा समाय ॥ ३ ॥
 ज्यों नैनों में पूतली, त्यों खालिकु घट मांदि ।
 मूरख लोग न जानहीं, बाहिर दूँढन जांदि ॥ ४ ॥
 ज्यों तिल मांही तेल है, चक्रमक मांही आग ।
 तेरा भीतप तुझ में, जागि सकै तो जाग ॥ ५ ॥
 पुहुप मय्य ज्यों वास है, व्यापि रहा जग मांदि ।
 सन्तो मांहीं पाइये, और कहीं कलु नांदि ॥ ६ ॥

भूला भूला क्या फिरै, सिर पर बधि गइ बेल ।
 तेरा साँई तुझ हि में, ज्यों तिल मांहीं नेल ॥ ७ ॥
 पावक रूपी साइया, सब घट रहा समाय ।
 चित्त चकमक लागै नहीं, ताँनै बुझि बुझि जाय ॥ ८ ॥
 काया कफ चित चकमकै, झारों वारं वार ।
 तीन बार धूँआ भया, चौथे पडा अंगार ॥ ९ ॥
 जैसी लकड़ी ढाक की, ऐसा यह तन देख ।
 वामे केसू छिपि रहा, यामे पुरुष अलेख ॥ १० ॥
 तेरा साँई तुझ में, ज्यों पुहुपन में वास ।
 कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि हूँदै वास ॥ ११ ॥
 कस्तूरी नाभी वसै, मिग हूँदै बन माहि ।
 ऐसे घटमें पीव है, दुनिया जानै नाहि ॥ १२ ॥
 कस्तूरी नाभी वसै, नाभि कमल हरि नाम ।
 नर हूँदै पावै नहीं, गुरु बिन ठाम हि ठाम ॥ १३ ॥
 सो साहिव तनमें बसै, मरम न जानै तास ।
 कस्तूरी का मिरग ज्यों, फिरि फिरि हूँदै वास ॥ १४ ॥
 जा कारन जग हूँदिया, सो तो घट हि माहि ।
 परदा दीया भरम का, ताँनै मूझै नाहि ॥ १५ ॥
 समझै तो घर में रहै, परदा पलक लगाय ।
 तेरा साहिव तुझमें, अन्त कहूँ मति जाय ॥ १६ ॥

मैं जानूँ हरि दूरि है, हारे हिरदै भरपूर ।
 मानुष हूँ बाहिरा, नियरै होकर दूर ॥१७॥
 तिलके ओटे राम है, परबत मेरे माय ।
 सतगुरु भिलि परिचै भया, तब पाया घट माँय ॥१८॥
 कबीर खोजी रामका, गया जु सिंगल दीप ।
 साहिब तो घटमें बसै, जो आवै परतीत ॥१९॥
 घट बढ कहं न दखिये, प्रेम सकल भरपूर ।
 जानै ही ते निकट है, अनजानै ते दूर ॥२०॥
 कबीर बहुत भटकिपा, मन ले विषय विराम ।
 हँदत हँदत जग फिग, तिनका ओटे राम ॥२१॥
 राम नाम तिहं लोक में, सकल रहा भरपूर ।
 जो जानै तिहि निकट है, अन जानै तिहि दूर ॥२२॥
 सबै खिलौने खँड के, खँड खिलौना माँहि ।
 तैसे सब जग ब्रह्म में, ब्रह्म जान क माँहि ॥२३॥
 ज्यों ही एकै महल में, प्रतिभा विविध प्रकार ।
 कहै कबिर त्योंही बसै, ब्रह्म मध्य संसार ॥२४॥
 दाह मध्य ज्यौ पूतरी, पूतरी मध्य दाह ।
 कहै कबिर त्यों ब्रह्म में, भासत जग व्योहा ॥२५॥
 ज्यों मृत्तिका घर मध्यमें, मृत्तिका मध्य जोय ।
 त्यों जग मध्य ब्रह्म है, ब्रह्म मध्य जग सोय ॥२६॥

ज्यों बधूरा वाव मध्य,	मध्य बधूरा वाव ।
त्यों ही जग मधि ब्रह्म है,	ब्रह्म मधि जगत सुभाव ॥२७॥
ज्यों मृत्तिका घट फेन जल,	कुंडल कनक सो आय ।
त्यों कबीर जग ब्रह्म ते,	भिन्न कहूँ न दिखाय ॥२८॥
जैसे तरुवर बीज महुँ,	बीज तरुवरै माँहि ।
कहै कबीर विचारि के,	जगत् ब्रह्म के माँहि ॥२९॥
जैसे मूरज धूप मधि,	मूरज मध्ये धूप ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म मध्य जग रूप ॥३०॥
जैसे स्याही अंक मधि,	स्याही मध्ये अंक ।
त्यों ही जग मधि ब्रह्म है,	ब्रह्म मधि जगत निसंक ॥३१॥
भूषण मध्ये कनक ज्यों,	भूषण कनक मंझार ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म मधि जग निरधार ॥३२॥
दरिया मध्ये लहर ज्यों,	लहर मध्य दरियाव ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत सुभाव ॥३३॥
देह मध्य ज्यों अंग है,	अंगे मध्य सरीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत् कबीर ॥३४॥
नीर मध्य ज्यों बुदबुदा,	बुदबुद मध्ये नीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत् कबीर ॥३५॥
चीर मध्य ज्यों तंतु है,	तंतु मध्य ज्यों चीर ।
त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,	ब्रह्म में जगत् कबीर ॥३६॥

आँधो यथा समीर मयि,
 त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,
 तम मय मोत न पाइये,
 जीव इस जग जोइले,
 ईश्वर में अरु जीव में,
 तिरविधि भेद न देखिये,
 कवीर भिन्न न देखिये,
 सब ही मध्ये ब्रह्म है,
 व्योम मध्य ज्यों घट मठ,
 कहै कविर यों ब्रह्म में,
 हथियार में लोह ज्यों,
 कहै कविर त्यों देखिये,
 पानी मध्ये लीक ज्यों,
 त्यों जग मध्ये ब्रह्म है,
 अहज स्वदेज उदभिज,
 कहै कवीर विचारि के,
 पावक एक अनेक जो,
 कहै कविर त्यों जानिये,
 मोमें तोमें सरबमें,
 राम विना छिन एक ही,

आँधो मध्य समीर ।
 ब्रह्म में जगत कवीर ॥३७॥
 ज्यों पावक विस्तार ।
 त्यों ही ब्रह्म विचार ॥३८॥
 ब्रह्म मध्य कवीर ।
 सिंधु बुदबुदा नीर ॥३९॥
 जगत इस अरु ब्रह्म ।
 ब्रह्म मध्य सब भर्म ॥४०॥
 अरु चिदाकास आकास ।
 जीव इस जग भास ॥४१॥
 लोह मध्य हथियार ।
 ब्रह्म मध्य संसार ॥४२॥
 लोक मध्य ज्यों पानि ।
 ब्रह्म जगत में जानि ॥४३॥
 पिंडज आतम रूप ।
 यो ज्यों सूरज धूप ॥४४॥
 दीपक और मसाल ।
 ब्रह्म मध्य जग जाल ॥४५॥
 जहँ देखूँ तहँ राम ।
 सरै न एकौ काम ॥४६॥

खालिक विन खाली नहीं, सूइ धरन को ठौर ।
 आगे पीछे राम है, राम विना नहि और ॥४७॥
 घट विन कहूं न देखिये, राम रहा भरपूर ।
 जिन जाना तिस पास है, दूर कहा उन दूर ॥४८॥
 बाहिर भीतर राम है, नैनन का अभिराम ।
 जित देखूं तित राम है, राम विना नहि ठाम ॥४९॥
 ज्यों पत्थर में आग है, यों घट में करतार ।
 जो चाहो दीदार को, चकमक होके जार ॥५०॥
 साई तेरा तुझहि में, ज्युं पत्थर में आग ।
 जोत सखी राम है, चित चकमक हो लाग ॥५१॥

जीवित मृतक को अंग ।



जीवित मिरतक है रहै, तमै खच्छक की आस ।
 रच्छक समरथ सतगुरु, मति दुख पावै दास ॥ १ ॥
 जीवित में मरना मला, जो मरि जानै कोय ।
 मरना पहिले जो मरै, अजर अमर सो होय ॥ २ ॥
 मरने मरते जग मुआ, औसर मुआ न कोय ।
 दास कबीरा यों मुआ, बहुरि न मरना होय ॥ ३ ॥

वैद सुआ रोगी सुआ, सुआ सकल संसार ।
 एक कवीरा ना सुआ, जाके नाम अधार ॥ ४ ॥
 कवीर मन मिरतक मया, दुरवल भया सरीर ।
 पाछे लागै हरि फिरै, कहै कवीर कवीर ॥ ५ ॥
 काया माँहि समुद्र है, अन्त न पावै कोय ।
 मिरतक है करि जो रहै, मानिक लावे सोय ॥ ६ ॥
 मैं मरजीवा समुँदका, हुनकी मारी एक ।
 मूढी लाया ज्ञान की, जामे वस्तु अनेक ॥ ७ ॥
 हुनकी मारी समुँद में, जाय निकस आकास ।
 गगन भँडलवें घर किया, हीरा पाया दास ॥ ८ ॥
 हरि हीरा क्यों पाडये, जिन जीवै की आस ।
 गुरु दरियाँस काढसी, कोइ मरजीवा दास ॥ ९ ॥
 गुरु दरिया सुमर भरा, जामे मुक्ता लाल ।
 मरजीवा ले नीकमे, पहिरि छिपाकी खाल ॥ १० ॥
 मैं मरजीवा समुँद का, पैठा सात पताल ।
 लाज कानि कुछ मेटिके, गडि ले निकसा लाल ॥ ११ ॥
 तन समुद्र मन मरजीवा, एक वार धमि लेय ।
 कै लाल लड़ नीकमै, कै लालच जिव देय ॥ १२ ॥
 मोती निरजै सीप में, सीप समुँदर माँहि ।
 कोय मरजीवा काढसी, जीवन की गम नाँहि ॥ १३ ॥

मन को मिरतक देखि के, मति मानै विमवास ।
 साध तहाँ लौ भय करै, जबलग पिंजर सॉस ॥१४॥
 मैं जानूं मन मरि गया, मरि करि हूआ भूत ।
 मूये पीछै उठि लगा, ऐसा मेरा पूत ॥१५॥
 मनकी मनसा मिटि गई, अहं गई मव छट ।
 गगन मंडलमें घर किया, काल रहा सिर कट ॥१६॥
 मोहि मरन की चाव है, मरूं तो राम दुवार ।
 मति हरि घूँझै वानरी, दास मुआ दरवार ॥१७॥
 मोहि मरन की चाव है, मरूं तो राम दुवार ।
 की तनका कुटका करूं, की ले उतरूं पार ॥१८॥
 जा मरना सों जग डरै, मेरे मन आनंद ।
 कब मरि हों कब भेटि हों, पूरन परमानंद ॥१९॥
 उंचा तरुवर गगन फल, विरला पंछी खाय ।
 इस फल को तो सो चखै, जो जीवत मरि जाय ॥२०॥
 जब लग आस सरीर की, मिरतक हुआ न जाय ।
 काया माया मन तजै, चौडै रहै बजाय ॥२१॥
 खरी कसौटी राम की, खोटा टिकै न कोय ।
 राम कसौटी सो टिकै, जीवत मिरतक होय ॥२२॥
 राम कदो तो मरि रहो, जीवत मिले न राम ।
 जबलग जीवत राम है, तब लव काचा काम ॥२३॥

मूयें को क्या रोइयें, जो अपने घर जाय ।
 रोइये बंदीवान को, हाटै हाट विकाय ॥२४॥
 भक्त परे क्या रोइये, जो अपने घर जाय ।
 रोइये साकिट वापुरे, हाटों हाट विकाय ॥२५॥
 मिरतक को धीजों नही, मेरो मन वह वाज ।
 बाजै बाव विकार की, कब फिर जीवै आज ॥२६॥
 मिरतक को दावा किसा, अहं रहे नहि कोय ।
 सुआ मसाना पाजलै, यह कहु अचरज होय ॥२७॥
 कबीर परि मरघट गया, किनहूँ न बूझी सार ।
 हरि आगे आदर लिया, गऊ बन्हा की लार ॥२८॥
 पैडा मांहि पडि रहो, दुरवळ मिरतक होय ।
 जिहि पैडे जम लूटिया, बात न बूझै कोय ॥२९॥
 मरना मला विदेसका, जहँ अपना नहि कोय ।
 जीव जन्तु भोजन करै, सहज महोछा होय ॥३०॥
 कबीर चेरा सन्त का, दासन हू का दास ।
 अब तो ऐसा है रहु, पाव तले का घास ॥३१॥
 रोडा है रहु बाट का, तजि आपा अभिमान ।
 लोभ मोह तृष्णा तजै, ताहि मिले भगवान ॥३२॥

२७. मुआ मसाना—धार्मिक बलिदान ससार में आत्म प्रकाश
 कर देता है । अह—अहकार । ३०. महोछा—मृतकभोज ।

रोदा है तो क्या भया, पंथी को दुख देह ।
 साधू ऐसा चाहिये, जस पैदे की खेह ॥३३॥
 खेह भई तो क्या भया, उडि उडि लागे अंग ।
 साधू ऐसा चाहिये, जैसा नीर निपग ॥३४॥
 नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा होय ।
 साधू ऐसा चाहिये, हरि ही जैसा होय ॥३५॥
 हरी भया तो क्या भया, करता हरता होय ।

कवीर मिरतक देखकर	मति धारो विश्वास ।
कवहं जागै भूत होय,	करे पिंड को नास ॥४३॥
मिरतक तो नव जानिये,	आपा धरे उठाय ।
सहज सुन्न में घर करे,	ताको काल न खाय ॥४४॥
सहज सुन्न में पाइये,	जहँ मरजीवा मन ।
कवीर चुनि चुनि ले गया,	भीतर राम रतन ॥४५॥
फूले थे सो गिर पडे,	चरन कमल से दूर ।
कलियों की गति अगम है,	ताते राम हजूर ॥४६॥
पांचौ इन्द्री छठा मन,	सत संगति सूचंत ।
कहै कविर जम क्या करें,	सातों गांठि निचंत ॥४७॥
सब्द विचारी जो चले,	गुरु मुख होय निहाल ।
काम क्रोध व्यापै नही,	कबू न ग्रसे काल ॥४८॥
सूर सती का सहल है,	घड़ी इक का घमसान ।
मरे न जियै मरजीवा,	धमकत रहे मसान ॥४९॥

सजीवन को अंग ।



जरा पीच व्यापै नहीं,	मुथा न सुनिये कोय ।
चल कविर वा देस को,	वैद रमेया होय ॥ १ ॥
भौसागर ते यौं रहो,	ज्यों जल कमल निहाल ।
मनुवा वहाँ ले राखिया,	जहां नहीं जम काल ॥ २ ॥

रोडा है तो क्या भया, पंथी को दुख देह ।
 साधू ऐसा चाहिये, जस पैदै की खेह ॥३३॥
 खेह भई तो क्या भया, उडि उडि लागे अंग ।
 साधू ऐसा चाहिये, जैसा नीर निपग ॥३४॥
 नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा होय ।
 साधू ऐसा चाहिये, हरि ही जैसा होय ॥३५॥
 हरी भया तो क्या भया, करता हरता होय ।
 साधू ऐसा चाहिये, हरि भजि निरमल होय ॥३६॥
 निरमल भया तो क्या भया, निरमल मांगै ठौर ।
 मल निरमल सौ रहित हैं, ते साधु कोइ और ॥३७॥
 जिन पाँवन भुँई बहु फिरा, देखा देस बिदेस ।
 तिन पाँवन थिति पकड़िया, आंगन भया बिदेस ॥३८॥
 मन उलटी दरिया मिला, लगा मल मल न्दान ।
 याहत याह न पावई, तूं पूरा रहमान ॥३९॥
 अजहूँ तेरा सब मिटे, जो जग मानै हार ।
 घरमें झगरा होत है, सो घर दारो जार ॥४०॥
 अजहूँ तेरा सब मिटे, जो मन राखे ठौर ।
 गम हो ते मग छोड़ दे, अगम पथऊँ दौर ॥४१॥
 मैं मेरा घर जालिया, लिया पलीता हाथ ।
 जो घर जारो अपना, चलो हमारे साथ ॥४२॥

कवीर मिरतक देखकर,	मति धारो विश्वास ।
कवहूँ जागै भूत होय,	करे पिंड को नास ॥४३॥
मिरतक तो नव जानिये,	आपा धरे उठाय ।
सहज सुन में घर करे,	ताको काल न खाय ॥४४॥
सहज सुन में पाइये,	जहँ मरजीवा मन ।
कवीर चुनि चुनि ले गया,	भीतर राम रतन ॥४५॥
फूले ये सो गिर पडे,	चरन कमल सँ दूर ।
कलियों की गति अगम है,	ताते राम हजूर ॥४६॥
पांचौ इन्द्री छटा मन,	सत संगति सूचंत ।
फहँ कविर जम क्या करें,	सातों गांठि निचंत ॥४७॥
सब्द विचारी जो चले,	गुरु मुख होय निहाल ।
काम क्रोध व्यापै नहीं,	कबू न ग्रासे काल ॥४८॥
सूर सती का सहल है,	घड़ी इक का धमसान ।
मरै न जियै मरजीवा,	धमकत रहै मसान ॥४९॥

सजीवन को अंग ।



जरा मीच व्यापै नहीं,	मुआ न सुनिये कोय ।
चल कविर वा देस को,	बैद रमैया होय ॥ १ ॥
भौसागर ते यौ रहो,	ज्यौ जल कमल निहाल ।
मनुवा वहाँ ले राखिया,	जहाँ नहीं जम काल ॥ २ ॥

कबीर जोगी वन बसा, खनि खाया कंद मूल ।
 ना जानौ किस जडीसैं, अमर भया अस्थूल ॥ १ ॥
 कबीर तो पिव पै चला, माया मोह सैं तोरि ।
 गगन मंडल आसन किया, काल रहा मुद मोरि ॥ ४ ॥
 कबीर मन तीखा किया, लाय विरह खरसान ।
 चित चरनोंसों चपटिया, (का)करै काल का वान ॥ ५ ॥
 काची रती मति करो, दिन दिन बढ़ै बियाध ।
 राम कबीरा रुचि भई, याहि औषधि साध ॥ ६ ॥
 मनुष्य भया दिसन्तरी बोलै सब्द रसाल ।
 वात दिसावर की कहै, तहाँ नहीं जम काल ॥ ७ ॥
 ऐसी ताखी सुरति है, फोडि गई ब्रह्मंड ।
 राम निराला देखिया, सात दीप नौ खंड ॥ ८ ॥
 राम रमत अस्थिर भया, ज्ञान कथत मय लीन ।
 सुरनि सब्द एकै भया, जल ही हमा मीन ॥ ९ ॥
 राम मरै तो हम मरै, नातर मरै बलाय ।
 अविनासी के चेटवा, मरै न मारा जाय ॥ १० ॥
 कबीर ससय जीव में, कोय न कहि समुझाय ।
 विधि विधि बानी बोलता, सो कित गया बिलाय ॥ ११ ॥
 कबीर संसय दूरि कर, जनम मरन अरु भरम ।
 पंच तत्त्व तत्त्वो मिला, सुन समाना परम ॥ १२ ॥

जप जौरा तो नही, सवे राम का खूब ।
 संसै खाई पिरपवी, रटा कवीरा कूक ॥१३॥
 तरुवर तासु विलंविथा, वारह पास फन्त ।
 सीतल छाया सवन फर, पंजी कैलि करन्त ॥१४॥
 मुक्ता वाये दाहिने, मुक्ता आगै पीठि ।
 मुक्ता घरनि अकासमें, मुक्ता मेरी दीठि ॥१५॥
 मुक्ता पैदा जब भया, भान मुक्ति निरवान ।
 रूप मुक्ति तब जानिये, देखै दृष्टि पिछान ॥१६॥

वेहद को अंग ।

हृद छोड़ा वेहद गया, लिया ठीकरा हाथ ।
 भया भिखारी नाम का, दरसन पाय सनाथ ॥ १ ॥
 हृद वेहद दोऊ वजी, अवरन किया मिलान ।
 कहै कविर वा दास पर, वारों सकल जहाँन ॥ २ ॥
 हृद छाड़ी वेहद गया, अवरन किया मिलान ।
 दास कविरा मिलि रहा, सो कहिये रहिमान ॥ ३ ॥
 हृद छाड़ी वेहद गया, सुन किया अस्थान ।
 मुनिजन महल न पावहीं, तहाँ लिया विसराम ॥ ४ ॥

इरफ सोक का घर नहीं, नही लाभ नहि हान ।
 ऐसा परमानंद मैं, धरै पुरुष को ध्यान ॥२४॥
 नहि देवी नहि देव हैं, नहि पट्ट करम अचार ।
 नहि तीरथ नहि वरद हैं, नहीं वेद उधार ॥२५॥
 जगपति परछै लई नहीं, नहीं पुन्य नहि पाप ।
 ऐसा परमानंद मैं, सुमिरे सबसुख आप ॥२६॥
 नहि सागर संसार है, नहीं पवन नहि पानि ।
 नहि धरती आकास है, नहि अस्त्रा न निसानि ॥२७॥
 समस्त सूर का घर नहीं, नहीं करम नहि काल ।
 समस्त होय नाम दि गहै, छुटि गयो जंमाल ॥२८॥
 देवी माँहि बिदेह है, साहब सुरति सरूप ।
 भक्त लोक में रमि रहा, जाको रंग न रुच ॥२९॥
 कबीर गुरु है हृदय, वेद का गुरु नाहि ।

गगन महल भाठी रुपी, चुबै अगर की धार ।
 जिन , रहनी पाथै रहै, पीवत संत सुधार ॥३३॥
 गंगा जमुना सुरसती, हो तिरवैनी तीर ।
 साहिब कबिर बेहद छके, अम्पर होत सरीर ॥३४॥
 सरगुन की सेवा करो, निरगुन का करु ज्ञान ।
 निरगुन सरगुन के परै, तहाँ हमारा न्यान ॥३५॥
 निरालंम की खोज में, सब जग पडो मुझाय ।
 जब सतगुरु दाया करै, तब ही पडै लखाय ॥३६॥

अविहङ्ग को अंग ।



अविहङ्ग अखँडित पीव है, ताका निरभय दास ।
 तीनों गुन को मेलि के, चौथे किया निवास ॥ १ ॥
 कबीर साथी सोइ किया, दुख सुख जाहि न कोय ।
 हिलमिल के संग खेलै, कबहु विछोइ न होय ॥ २ ॥
 आदि अन्त अरु मध्य छौ, अविहङ्ग सदा अभग ।
 कबीर उस करतार का, कभी न छाडै संग ॥ ३ ॥
 जेहि घट जान बिजान, तेही घट अवटन बना ।
 बिन खांडे संग्राम, नित उठि मनमूँजूझना ॥ ४ ॥
 कबीर सिरजन हार बिन, मेरा हित न कोय ।
 गुन औगुन बेहै नहीं, स्वारथ बंधा लोय ॥ ५ ॥

अनहद बाजे निझर झरै, उपजे ब्रह्म गियान ।
अविगनि अंतर परगटै, लागे परम गियान ॥ ६ ॥

भ्रमविध्वंस को अंग ।



पाहन केरी पूरौ, करि पूजै करतार ।
याहि मरोसे मति रहो, बूडो काली धार ॥ १ ॥
पाहन को कया पूजिये, जो नहि देव जयाय ।
अंधा नर आसा मुखी, यौही खोवै आव ॥ २ ॥
पाहन पूजै हरि मिलै, तो मैं पुजुँ पछार ।
ताने तो चक्की भली, पीसि खाय संसार ॥ ३ ॥
पाहन पानि न पूजिये, सेवा जासी बाढ ।
सेवा कीजै साधु की, सत्तनाथ कर याद ॥ ४ ॥
पाहन ही का देहा, पाहन ही का देव ।
पूजनद्वारा आंधरा, क्यों करि पानै सेव ॥ ५ ॥
पाहन पानी पूजि के, पचि मूभा संसार ।
भेद अलहदा रहि गया, भेदबंध सो पार ॥ ६ ॥
पाहन ले देवल - चुना, मोटी मूर्ति मौहि ।
विह फूटि परबम रहै, सो ले तारे काहि ॥ ७ ॥

कवीर पाहन पूजि के,	होन चहै मौ पार ।
भीजि पानि बैरै नदी,	बूढ़े जिन तिर मार ॥ ८ ॥
कवीर दुनिया देखै,	सौस नवानन जाय ।
दिरदै मांहीं हरि बसै,	तू ताही लो लाय ॥ ९ ॥
कवीर जेता आतमा,	तेता सालिंग राम ।
चोलनद्वारा पूजिये,	नहि पाहन सों काम ॥ १० ॥
कवीर सालिंग रामका,	मोहि भरोसा नाँहि ।
काल कहर की चोटमें,	बिनसि जाय छिनमाँहि ॥ ११ ॥
पूजै सालिंगराम को,	मन की भ्रांति न जाय ।
सीतलता सपनै नहीं,	दिन दिन अधिकी लाय ॥ १२ ॥
सैरै सालिंगराम को,	माया सेती हेन ।
पहिरै काली कामली,	नाम धरावै सेन ॥ १३ ॥
काजर केरी कोठरी,	मसिके किये कपाट ।
पाहन भूली पिरथवी,	पंडित पाही बाट ॥ १४ ॥
हम भी पाहन पूजने,	होते बनके रोज ।
सतगुरु की किरपा भई,	डारा सिरका बोज ॥ १५ ॥
मूर्ति धरि यंरा रचा,	पाहन का जगदीस ।
मोल लिया बोलै नहीं,	खोटा बिसवा बीस ॥ १६ ॥
धरि गिरिवर करता किया,	सो क्यों रहै अपून ।
पाहन फोडि देखु रचा,	परमेश्वर सों दून ॥ १७ ॥

कागद केरी नावरी,	पाहन गहवा भार ।
कहे कबीर विचारि के,	भव बूझा संसार ॥१८॥
मन मथुरा दिल द्वारिका,	काया कासी जान ।
दम छरै का देहरा,	तामै जोति पिछान ॥१९॥
कांकर पाथर जोरिके,	मसजिद लई चुनाय ।
ता चढि मुछा वांग दे,	बहिरा हुभा खुदाय ॥२०॥
मुछा चढि किलकारिया,	अलह न बहिरा होय ।
जिहि कारन तू वांग दे,	दिल ही अंदर जोय ॥२१॥
तुरक मसीते देहरै हिन्दू,	आप आप को धाय ।
अलख पुरुष घट भीतरै,	ताका पार न पाय ॥२२॥
पूजा ; सेवा नेम बन,	गुडियन का सा खेल ।
जबलग पिव परसै नहीं,	तबलग संसै मेल ॥२३॥
कबीर या संसार को,	समझायो मौ बार ।
पूछ जु पकडै भेड की,	उतरा चाहै पार ॥२४॥
जप तर . दोखै थोथरा,	तीरथ व्रत विश्वास ।
सुआ सँभल सँझा,	यौ जग चला निरास ॥२५॥
तीरथ व्रत करि जग सुआ,	जूड़े पानी न्हाय ।
सचनाम जानै बिना,	काल जुगन जुग खाय ॥२६॥
तीरथ चालै दुइ जना,	चिन चंचल मन चोर ।
एकौ पाप न काढ़िया,	लायें दस मन और ॥२७॥

न्हाये धोये क्या भया,	जो मन मैल न जाय ।
पीन सदा जल में रहे,	धोये वास न जाय ॥२८॥
मछरी तुरकै पकड़िया,	वैसे गंग के तीर ।
धोय कुलाधि न भाजही,	राम न कहै सरीर ॥२९॥
तीरथ कांठे घर करै,	पीवै निरमल नीर ।
मुक्ति नहीं हरि नाम विन,	यों कथि कहै कबीर ॥३०॥
निरमल गुरु के नाम सों,	निरमल साधू माय ।
कोइला होय न ऊतला,	सौ मन साधुन लाय ॥३१॥
मनही में फूला फिरै,	करता हूँ मैं धर्म ।
कोटि करम निरपर चढै,	चेति न देखै धर्म ॥३२॥
और धरम सब करम है,	भक्ति धरम निह कर्म ।
नादे इतियारी को कहे,	कुवा बावरी धर्म ॥३३॥
करम हमारे काटि हैं,	कोइ गुरुमुख कलि माँहि ।
कहे हमारी वासना,	गुरुमुख कहियत नाँहि ॥३४॥
अहिरन मारै कांख में,	करै मूढ़ का दान ।
ऊँचै चढ़ि के देखई,	केतिकु दूर विमान ॥३५॥
मरती विरियाँ दान दे,	जीवत बड़ा कठोर ।
कहैं कबिर क्यों पाइये,	खांडा का वै चोर ॥३६॥
बहुत दान जो देत है,	करि करि बढ़तै आस ।
काहू के गज होयंगे,	खैंहैं सेर पचास ॥३७॥

मुफ्त दान जो देत हैं, मुफ्त ही लेत असीस ।
 ऊँट काहू के होयगे, लादेंगे मन वीस ॥३८॥
 सब वन तो तुलसी भई, परबत सालिगराय ।
 सब नदियें गंगा भई, जाना आत्म राय ॥३९॥
 पाँच तत्त्व का पूतरा, रज वीरज की वृंद ।
 एकै घाटी नीमरा, ब्राह्मन छत्री सूद ॥४०॥
 अकिल बिहूना आदमी, जानै नही गँवार ।
 जैसे कपि परवस पर्यो, नाचै घा घर वार ॥४१॥
 अकिल 'बिहूना' सिंघ ज्यूं, गयो ससा के मंग ।
 अपनी प्रतिमा देखि नें, कीयो नन को भंग ॥४२॥
 अकिल बिहूना आंधरा, गज फंदे पड़ो आय ।
 ऐसे सब जग बंधिया, काहि कहू समुझाय ॥४३॥
 पंख होत परवम पर्यो, सूआ के बुधि नाँहि ।
 अकिल बिहूना आदमी, यौ 'ंधा' जग माँहि ॥४४॥
 अकिल अरस सों ऊतरी, विधना दीन्ही वांट ।
 एक अभागी रहि गया, एकन लई उछांट ॥४५॥
 अलछ अकिल जानै नहीं, जीव जहदम लोय ।
 हरदम हरि जाना नहीं, मिस्त कहौ ते होय ॥४६॥
 बिना बसीले चाकरी, बिना बुद्धि की देह ।
 बिना ज्ञान का जोगना, फिरै लताये खेह ॥४७॥

पंडित सेती कहि रहा, भीतर बेधा नाहि ।
 औरन को परमोधताँ, गया मोहरका माँहि ॥४८॥
 दुविधा जाके मन बसै, दयावंत जिय नाहि ।
 कबीर त्यागो ताहि को, भूलि देइ जनि बाँहि ॥४९॥
 सत्तनाम कहु भा लौ, पीठा लागै दाम ।
 दुविधा में दोऊ गये, माया मिली न राम ॥५०॥
 चिऊँटी चावल ले चली, बिच में मिलि गई दार ।
 कहै कबिर दो ना मिलै, इक ले दूजी डार ॥५१॥
 आगा पीछा दिऊ करै, सहनै मिलै न आय ।
 सो वासी जम लोक का, बांधा जमपुर जाय ॥५२॥
 कै तूं लोरै मुकदमी, कै तूं साहिव लोर ।
 दो दो घोड़ा मति चढ़ै, तेरे घर है चोर ॥५३॥
 तकत तकावत रहि गया, सका न बेझी पार ।
 सबै तीर खाली पडा, चला कमाना डार ॥५४॥
 बेझा पारै थिर रहै, खरा महीना खाय ।
 साहिव के दरवार में, भागि न कबहुं जाय ॥५५॥
 पढ़ा सुना सीखा सभी, मिटी न समै सुल ।
 कहै कबिर कासों कहूं, यह सब दुख का मूल ॥५६॥

५१. चिऊँटी से अभिप्राय सुरति से है । चावल से अभिप्राय राम से और दार से माया अभिप्रेत है ।

५३. लोरै—चाहना । मुकदमी—ससार । ५४. बेझी—निशाना ।

नगर चैन तब जानिये, एकै राजा होय ।
 याहि दुराजी राज में, सुखी न देखा कोय ॥५७॥
 तेरे हिरदै राम है, ताहि न देखा जाय ।
 ताको तो तब देखिये, दिल की दुविधा जाय ॥५८॥
 देह निरंतर देहरा, तामें परतछ देव ।
 राम नाम सुमिरन करो, कह पाथर की सेव ॥५९॥
 पाथर मुख ना बोलही, जो सिर डारी कूट ।
 राम नाम सुमिरन करो, दूजा सबही झूठ ॥६०॥
 कुबुधी को सूझै नहीं, उठि उठि देवल जाय ।
 दिल देहरा की खबर नहि, पाथर ते कहँ पाय ॥६१॥
 मक्के मदिने मै गया, बहँ भी हरिका नाम ।
 मै तुझ पूछे हे सखी, किन देखा किस ठाम ॥६२॥
 सिदक सवूरी बाहिरा, कहा हज्ज को जाय ।
 जिन का दिल साबित नहीं, तिन को कहाँ खुदाय ॥६३॥
 आत्म दृष्टि जानै नहीं, न्हावै मात हि काल ।
 लोक लाज लीया रहे, लागा भरम कपाल ॥६४॥
 जप तप तीरथ सब करै, घड़ी न छाड़े ध्यान ।
 कहै कबीरा भक्ति विन, कबहु न है कल्याण ॥६५॥

५७. दुराजी—दो राजाओं का राज्य ।

६३. सिदक—सत्य । सवूरी—सन्तोष ।

सुख को सागर में रचा, दुख सुख मेला पाव ।
 धिति ना पकड़े आपनी, चले रंक औ राव ॥६६॥
 लिखा पढ़ी में सब पढ़े, यह गुन नजै न कोय ।
 सबै पढ़े भ्रम जाल में, डारा यह जिय खोय ॥६७॥
 सत्तनाम निजमूल है, कहै कविर समुझाय ।
 दोइ दीन खोजत फिरै, परम पुरुष नहि पाय ॥६८॥

सारग्राही को अंग ।



साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय ।
 सार सार को गहि रहे, देइ असार बहाय ॥ १ ॥
 सत संगति है मूप ज्यों, त्यागै फटकै असार ।
 कहै कविर गुरु नाम ले, परसै नाहि विकार ॥ २ ॥
 पहिले फटकै छाज के, पोथा सब उडि जाय ।
 उत्तम भाँटे पाइया, जो फटकै ठहराय ॥ ३ ॥
 औंगुन को तो ना गहे, गुन ही को ले वीन ।
 घट घट महकै मधुप ज्यों, परमात्म ले चीन ॥ ४ ॥
 हंसा पय को काढि ले, छीर नीर निस्वार ।
 ऐसे गहे जु सार को, सो जन उतरै पार ॥ ५ ॥

छीर रूप सतनाम है, नीर रूप व्योहार ।
 हंस रूप कोइ साधु है, तन का छांननहार ॥ ६ ॥
 पारा कंचन काढि ले, जो रे मिलावै आन ।
 कहै कबीरा सारमत, परगट किया बखान ॥ ७ ॥
 चुंवक काढै सार कूं, जो रे मिलावै रेत ।
 साधू काढे जीव को, उर अन्तर के हेत ॥ ८ ॥
 रक्त छांड़ि पय को, गहै, ज्यौ रे गज का वच्छ ।
 औगुन छाड़ै गुन गहै, सार गिराही लच्छ ॥ ९ ॥
 वसुधा वन बहु भांति है, फूलै फूल अगाध ।
 मिष्ट वास कबिरा गहै, विषम गहै कोइ साध ॥ १० ॥
 कबीर सब घट आत्मा, सिरजी सिरजन हार ।
 राम कहै सो राम सप, रहता ब्रह्म विचार ॥ ११ ॥

असारग्राही को अंग ।

कबीर कीट सुगंध तजि, नरक गहै दिनरात ।
 असार गिराही मानवा, गहै असार हि वत ॥ १ ॥
 पच्छी मल को गहत है, निरमल वस्तु हि छांड़ि ।
 कहै कबीर असार मत, पाँड़ि रइ मन पाँड़ि ॥ २ ॥
 आश्र तजि भूसी गहै, चलनी देखु निहार ।
 कबीर साग हि छांड़िके, गहै असार असार ॥ ३ ॥

रस छाँडै छूटी गई, कोल्हू परगट देख ।
 गई असार असार को, हिरदै नाँहि विवेक ॥ ४ ॥
 रस छाँडै छूटी गई, सो कोल्हू का काम ।
 गई असार हि सार तजि, निस दिन आठों जाय ॥ ५ ॥
 दूध त्यागि रक्त हि गई, लगी पयोधर जोक ।
 कहें कबीर असार मति, छलना राखे पोख ॥ ६ ॥
 लोहू गहि दूधै तजै, जोक सुभाव परख ।
 ऐसा ही नर आंधरा, सार तें जाय सरक ॥ ७ ॥
 बूटी बाटी पान करै, कहै दुःख जो जाय ।
 कहें कबीर सुख ना गई, यही असार सुभाय ॥ ८ ॥
 पापी पुन न भावई, पाप हि बहुन सुहाय ।
 माखि सुगंधी परिहरै, जहँ दुरगंध तहँ जाय ॥ ९ ॥
 निर्मल छाँडै मल गई, जनम असारै खोय ।
 कहें कबीर सार तजि, आन गये विगोय ॥ १० ॥

पारख को अंग ।



कबीर देखी परखि ले, परखी के मुख खोल ।
 साधु असाधु जानि ले, सुनि सुनि मुख का बोल ॥ १ ॥
 कबीर देखी परखि ले, परखि के मुखों बुलाय ।
 जैसी अन्तर होयमी, मुख निकसैगी आय ॥ २ ॥

पहिले सब्द पिछानिये, पीछे कीजै मोल ।
 पारख परखै रतन को, सब्द का मोल न तोल ॥ ३ ॥
 हीरा तहाँ न खोलिये, जहँ खोटी है हाट ।
 कसि करी बांधो गाँठरी, उठि करि चालो बाट ॥ ४ ॥
 हीरा परखै जौहरी, सब्द हि परखै साध ।
 कबीर परखै साधु को, ताका पता अगाध ॥ ५ ॥
 हरि हीरा जन जौहरी, ले ले माँडी हाट ।
 जब रे मिलेगा पारखी, तब हीरा की साट ॥ ६ ॥
 हरि हीरा मन जौहरी, परखि निरखि हिय लेय ।
 लै लुहार करि गहन में, ज्ञान चोट धन देय ॥ ७ ॥
 हरि हीरा सन मेहटा, पटन प्रान सुभट ।
 गाहक बिना न खोलिये, हीरा केरी दृष्ट ॥ ८ ॥
 हरि मोतियन की माल है, पोई काचै धाग ।
 जतन करो झटका घना, दूटेगी कहूँ लग ॥ ९ ॥
 राम रतन धन मोटरी, गाहक आगे खोल ।
 जबही मिलेगा पारखी, लेगा महंगे मोल ॥ १० ॥
 राम रसायन प्रेम रस, अमृत सब्द अपार ।
 गाहक बिना न नीकमै, मानिक कनक कुठार ॥ ११ ॥

६. साट—मोल तोल । ११. कनक कुठार—मोने का गडार ।

१. पा० कुजरी का ।

तन संदूक मन रतन है,	चुपकी दे हट तालं ।
गाहक विन नहि खोलिये,	पूँजी सब्द रसाल ॥१२॥
जो जैसा उनमान का,	तैसों तासों बोल ।
पोता को गाहक नहीं,	हीरा गांठि न खोल ॥१३॥
जब गुन को गाहक मिलै,	तब गुन लाख बिकाय ।
जब गुन को गाहक नहीं,	कौड़ी बदले जाय ॥१४॥
एक ही बार परखिये,	ना बा बारं बार ।
बालू तौह किरकिरी,	जो छानै सौ बार ॥१५॥
ज्ञानी जन हैं जौहरी,	करमी सकल मजूर ।
देह भार का टोकरा,	लिये सीम भरपूर ॥१६॥
कवीर जग के जौहरी,	घट की आँखी खोल ।
तुला सम्हारि विवेक की,	तोलै सब्द अमोल ॥१७॥
गाहक मिले तो कुछ कहं,	नातर झगडा होय ।
अन्धों आगे रोइये,	अपना दीदा खोय ॥१८॥
जो हंसा मोती चुगै,	कांकर क्यों पतियाय ।
कांकर माथा ना नवै,	मोती मिले तो खाय ॥१९॥
मोती है विन सीप का,	जगर मगर उजियार ।
कहें कविर जब पावई,	भोजन मिले हप्तर ॥२०॥
हंसा देस सुदेस का,	पड़ै कुदेसा आय ।
जाका चारा मोतिया,	घोंघै क्यों पतियाय ॥२१॥

१३. पोता—काच का पौत ।

हंसा वगुला एक सा,	मान सरोवर साँहि ।
वग डिंदोरै माछरी,	हंसा मोती खाँहि ॥२२॥
गावनिया क मुख वसूं,	स्रोता के पै कान ।
ज्ञानी के हिरदै वसूं,	भेदी का निज मान ॥२३॥
किरतनिया पे कोस बिस,	संन्यासी सों तीस ।
बिरहा के हिरदै वसु,	बैरागी के सीस ॥२४॥
जो कह्यु है तो कुछ कहू,	कहौं तो झगडा सोढ ।
दो अन्गो का नाचना,	कहिये काको मोह ॥२५॥
उत्तर दन्डिन पूरव पच्छिम,	चारों दिसा ममान ।
उत्तम देव कबीर का,	अमरापुर अस्थान ॥२६॥
हड्डी पारि हारा लहा,	नौ करोड को हीर ।
जा मारग हारा लहा,	सो रयौं तजै करीर ॥२७॥
मंसै नहि साधु मिलै,	मिलि मिलि करै विचार ।
बोला पीछै जानिये,	जो जाको बेवहार ॥२८॥
पारख कीजै साधु की,	साधु हि परखै कौन ।
गगन मंडल में घर करै,	अनदृढ़ राखै मौन ॥२९॥
चंदन गया बिदेसरे,	सब कोय कहै पलास ।
ज्यो ज्यो नूहै झोंकिया,	त्यौं त्यौं अधिक सुवास ॥३०॥
चंदन रोषा रात भरि,	मेरा हित न कोय ।
जिस को राख्या पेट में,	सो फिर बेरी होय ॥३१॥

चंदन काटा जड़ खनी,	बांधि लिया सिर भार ।
कालि जो पंछी बसि गया,	तिसका यह उपकार ॥३२॥
पौष पदारथ पेलिया,	कांकर लीन्हा हाथ ।
जोड़ी बिलहरी हस की,	चला बुगों के साथ ॥३३॥
हसा तो महा रान का,	आया थलिया पौंहि ।
बगुला बगि करि मारिया,	मरम जु जानै नाँहि ॥३४॥
हंस बुगा के पावना,	कोइ एक दिन का फेर ।
बगुला काहे गरविया,	बैठा पंगव विलेर ॥३५॥
बगुला हंस मनाय ले,	नीरां रकां बहोर ।
या बैठा तू ऊजला,	वासो भीति न तोर ॥३६॥
एक अचंभो देखिया,	हीरा हाट बिकाय ।
परखनदारा बाहरी,	कौड़ी बदले जाय ॥३७॥
पायो पर पायो नहीं.	हीरा हड्डी मार ।
कहै कविर यौ ही गयो,	परखे बिना गँवार ॥३८॥
कविरा चुनता कन फिरै.	हीरा पाया वाट ।
ताको मरम न जानिया,	ले खलि खार्ट हाट ॥३९॥
हीरा का कलु ना घटा,	घटा जु बेचनदार ।
जनम गँवायो आपनो,	अंधे पसू गँवार ॥४०॥
हिरदे हीरा ऊपजै,	नाभि बँवल के बीच ।
जो कबहू हीरा लखै,	कदै न आवै मीच ॥४१॥

हीरा साहिब नाम है, हिन्दै भीतर देख ।
 बाहर भीतर भरि रहा, ऐसा आप अलेख ॥४२॥
 बाट वकै दम जात है, सुरति निरति ले बोल ।
 निन प्रति हीरा सब्द का, गाहक आगे खोल ॥४३॥
 मान उनमान न तोलिये, सब्द न मोल न तोल ।
 मूरख लोग न जानसी, आपा खोयो बोल ॥४४॥
 कबीर गुदरी बीखरी, सौदा गया विकाय ।
 खोटा बांधा गांठरी, खरा लिया नहि जाय ॥४५॥
 कबीर खांड हि छांडि के, कांकर चुनि चुनि खाय ।
 रतन गंवाया रेतमें, फिर पाछे पछिताय ॥४६॥
 कबीर ये जग आंधरा, जैसी अंधी गाय ।
 बलरा या सो भरि गया, ऊभी चाम चटाय ॥४७॥
 पप्पा सों परिचै नहीं, ददा गहिगा दूर ।
 लल्ला लौ लागी रहै, नन्ना सदा हजूर ॥४८॥
 पैड़े मोती बीखरा, अंधा निकसा आय ।
 जोति बिना जगदीस की, जगत उलौंढा जाय ॥४९॥
 सागर में मानिक बसै, चीन्हत नहि कोय ।
 या मानिक कुं सो लखै, जाको गुरुगम होय ॥५०॥

अनजाने का कूकना, कूकर का सा सोर ।
 ज्यों अंधियारी रैन में, साह न चीन्है चोर ॥५१॥
 ये भारन सब ज्ञानिया, कथत वक्त दिन जाय ।
 साह चोर चीन्है नहीं, काग हंस लगाय ॥५२॥
 कोई कुरंग जब चित मिलै, रहै सब्द लौ लाय ।
 मैस के आगे चीन ज्यों, वह बैठी पगुराय ॥५३॥
 हंस काग की परख को, सतगुरु दई बताय ।
 हंसा तो मोती चुगै, काग नरक पर जाय ॥५४॥
 परदेसाँ खोजन गया, घर होरा की खान ।
 काच मनी का पारखी, क्यों पावै पहिचान ॥५५॥
 मैं जानू हरि दूर है, हरि है हिरदै माँहि ।
 आढी टाटी कपट की, तासे टीसतू नॉहि ॥५६॥
 जाको आटा अंतरा, ताको दिसै न कोय ।
 जान बूझ जड़ है रहे, बळ तजि निरबळ होय ॥५७॥
 कोई एक ज्ञानी पारखी, परखै खरा रु खोट ।
 कहै कविर तब बांचही, रहै नाम की ओट ॥५८॥
 वक्ता ज्ञानी जगन में, पंडित कवि अनंत ।
 सत्य पदारथ पारखी, बिट्या कोई संव ॥५९॥
 ज्ञान जीव को धर्म है, धर्म त्रास जो भेट ।
 साँध पंथ पावै परखि, जब तिहि सतगुरु भेट ॥६०॥

हीरा पड़ा जु गैल में, दुनिया जायें डोळ ।
 जहाँ हीरा का पारखी, तहाँ हीरा का मोल ॥६१॥
 अंधे औघट जात है, चारों लोचन नाँहि ।
 संत उपकारी ना मिला, छोड़े वस्ती माँहि ॥६२॥
 गौ को अंधी मति कहो, गौ है स्याम सुपेन ।
 बलुवा था सो मरि गया, तऊ न छाड़ै हेत ॥६३॥
 रंक कनक चुनता फिरै, वस्तू आई हाथ ।
 ताका मरम न जानिया, ले देखाया हाट ॥६४॥
 जवलग लाल समुद्र में, तवलगिलखौ न जाय ।
 निकमि छाल बाहिर भया, मंहगे मोल विकाय ॥६५॥
 हीरा बनिजै जौहरी, ले ले मांडा हाट ।
 जवहि मिलेंगे पारखी, तब हीरों की साट ॥६६॥
 नाम हिरा धन पाइया, औ हीरा धन मोल ।
 चुनि चुनि बांधो गांठरी, पल पल देखो खोल ॥६७॥
 लाखों में दीसै नही, कोटिन में जाय देख ।
 कोटिन में कोई एक है, जो जानै कोइ लेख ॥६८॥
 साधु परखिये सब्द में, रहनी तैसी भास ।
 नाना विधि के पुहुप हैं, फूले तैसी वास ॥६९॥

वेली को अंग ।



आंगन वेलि अकास फल,	अनव्याही का दूध ।
समा सिंग के धनुस को,	खैच बाझ सुत मूध ॥ १ ॥
आंगन वेली अलख है,	फल करना अभिलास ।
गगन मंडल में सोधि ले,	सतगुरु बोलै साख ॥ २ ॥
अनव्याही आकास है,	सुपमनि सुरति त्रिलोप ।
अहनिसि तो तारी लगी,	मेम दूर जरि होय ॥ ३ ॥
छाया माया रहित है,	सुन्दर है अनसूत ।
आव गवन सो रहित है,	सोड बाझ का पूत ॥ ४ ॥
ससा सिंग के धनुस का,	पाया सन्द विवेक ।
भय छटा निरभय भया,	सब घट देखा एक ॥ ५ ॥
सहज सुन्न में खर पड़ी,	वन में लागी लाय ।
कवीर दाधा होय तब,	आस पास मिटि जाय ॥ ६ ॥
पारप्रिया वन लाडया,	जला जु वन खंड यास ।
बीज जला वेली जली,	नहीं उगन की आस ॥ ७ ॥
मूल जला वेली जली,	हुआ बीज का नास ।
सुरति समानी सन्द में,	नहि उगन की आस ॥ ८ ॥
जो उगै तो ब्रह्म में,	अन्त कहै नहि जोय ।
हरिरस सींची वेलडी,	कधी न कडवी होय ॥ ९ ॥

जो मन में तो ब्रह्म में, अनंत न कहूं समाय ।
 हरिरस सींची बेलही, कौद न निस्फल जाय ॥१०॥
 सिद्ध सहज ही खिर पड़ी, अगन जु लागी साँहि ।
 सिद्धि बेलि दोऊ जरी, अब फिर ऊँ नहि ॥११॥
 जो काटै तो डहडही, सीचै तो कुम्हिलाय ।
 इस गुनवंती बेलि का, कछु गुन कहा न जाय ॥१२॥
 बिना बीज का वृक्ष है, विन धरती अंकुर ।
 विन पानी का रंग है, तहाँ जीव का मूर ॥१३॥

कथनी को अंग ।



कथनी कथै तो क्या हुआ, करनी ना ठहराय ।
 कलावूत का कोट ज्यों, देखत ही ढहि जाय ॥ १ ॥
 कथनी काची है गई, करनी करी न सार ।
 सोता बक्ता मरि गया, मूरख अनैत अपार ॥ २ ॥
 कथनी मीठी खांड सी, करनी बिप की लोय ।
 कथनी से करनी करै, बिप से अमृत होय ॥ ३ ॥
 कथनी बदनी छांड दे, करनी सोंचित लाय ।
 नर को जल प्याये बिना, कबहुं प्यास न जाय ॥ ४ ॥

१३. बिना बीज का वृक्ष—अविनाशी पुरुष । विनधरती अंकुर—ज्ञान ।
 विन पानी का रंग—माया ।

कथनी कथि फूला फिरै,	मेरे द्वियै उचार ।
भाव भक्ति समझै नहीं,	अंधा मूढ़ गँवार ।
कथनी थोथी जगत में,	करनी उत्तम सार ।
कहै कविर करनी मली,	उतरै मौजल पार ॥ ६ ॥
कथनी के गीजूं नहीं,	करनी मेरा जीव ।
कथनी करनी दोउ पकी,	महल पवार पीव ॥ ७ ॥
कथनी के मुरे घने,	थोथे बावे तीर ।
विरह वान जिनके लगा,	तिनके विकल सरीर ॥ ८ ॥
कथनी को तो भानि के,	करनी देय बहाय ।
दास कवीरा यों कहै,	ऐसा है तो आय ॥ ९ ॥
कथते हैं करते नहीं,	मुँह के बड़े लवार ।
मुँह काळा तो होयगा,	साहिव के दरवार ॥ १० ॥
बधते हैं करते सही,	साँच सरोतर सोय ।
साहिव के दरवार में,	आठ पहर सुख होय ॥ ११ ॥
कुकस कूटै कन बिना,	बिन करनी का ज्ञान ।
ज्यों बडुक गोली बिना,	भडक न मारै आन ॥ १२ ॥
आप राखि परमोधिये,	सुनै ज्ञान अकरायि ।
तुस कूटै कन बाहिरी,	बहु न आवै हाथि ॥ १३ ॥
मट जोरै साखी कहै,	सावन पड़ि गइ रोस ।
काढा जल पीवै नहीं,	काढि पीवन की होस ॥ १४ ॥

मारग चलते जो गिरै, ताको नहीं टोस ।
 कहैं कबिर बैठा रहै, ता सिर करै कोस ॥१५॥
 सोता तो बरही नही, बक्ता बकै सो वाद ।
 सोता बक्ता एक घर, तब कथनी का स्वाद ॥१६॥
 कथते बकते पचि सुये, मूरख कोटि हजार ।
 कथनी काची पड़ि गई, रहाने रहै सो सार ॥१७॥
 कुल करनी छूटै नहीं, ज्ञान हि कथै अगाध ।
 कहैं कबिर वा दास को, मुख देखै अपराध ॥१८॥
 रहनी के भेदान में, कथनी आवै जाय ।
 कथनी पीसै पीसना, रहनी अमल कमाय ॥१९॥
 जैसी करनी आपनी, तैसा ही फल लेय ।
 कुरे करम कमाय के, साईं दोष न देय ॥२०॥
 राम झरुखै बैठि के, सब का मुजरा लेय ।
 जैसी जाकी चाकरी, तैसा तिन को देय ॥२१॥
 साहेब के दरबार में, क्यों करि पावै दाद ।
 पहिले बुरा कमाय के, वाद करै फरियाद ॥२२॥
 दाता नदिया एक सम, सब काहु को देत ।
 हाथ कुंभ जिसका जिसा, तैसा ही भरि लेत ॥२३॥
 कबीर हमने घर किया, गलकटों के पास ।
 करेगा सो पाइगा, तुम क्यों भये उदास ॥२४॥

१. पा० कबीर का घर चौक में । २. पा० भरेगा । ३. पा० तू
 क्यों फिर उदास ।

एक हमारी सीख सुन, जो तू हुआ सीप ।
 करुं करुं तो क्या कहे, कीया है सो देख ॥२५॥
 जब तू आया जगत में, लोग हँसे तू रोय ।
 ऐसी करनी ना करो, पिछै इसे सब कोय ॥२६॥
 जैसी कथनी पै कथी, तैसी कथे न कोय ।
 करनी से साहिव मिले, कथनी झूठी होय ॥२७॥
 पशु की होती पनहिया, नरका कछू न होय ।
 नर उत्तम करनी करै, नर नारायन होय ॥२८॥
 स्रप ही ते सब कछु बनै, विन स्रप मिले न काहि ।
 सीधी अंगुली धी जम्प्यो, कबहुं निकसै नहि ॥२९॥
 कैसा भी सामर्थ हो, विन उद्यम दुख पाय ।
 निकट असन विन कर चले, वैसे मुख में जाय ॥३०॥
 स्रप ही ते सब होत है, जो मन राखै धीर ।
 स्रप ते खोदत कूप ज्युं, थल में प्रगटे नीर ॥३१॥
 कथनी कथे अगाध की, ज्यों अकास का गीध ।
 चारा वाका भूमि पर, उडे भया क्या सीध ॥३२॥
 करनी करै सो पूत हमारा, कथनी कथे सो नाती ।
 रहनी रहे सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी ॥३३॥

लगनी को अंग ।



लौ लागी तव जानिये,	छूटि न कबहुं जाय ।
जीवत लौ लागी रहै,	मूये तहाँ समाय ॥ १ ॥
लौ लागी तो डर किसा,	आप विसरजन देह ।
अमृत पीवै आत्मा,	गुरु सों जुडै सनेह ॥ २ ॥
लौ लागी तव लौ लगूं,	कहुं न आऊं जाँव ।
लै बूझूं तो लै तरुं,	लै लै तेरा नाँव ॥ ३ ॥
जैसी लौ पहिले लगी,	तैसी निवहै ओर ।
अपने देह को को गिनै,	वारै पुरुष करोर ॥ ४ ॥
लै पाऊं तो लै रहूं,	लेन कहुं नहि जाँव ।
लै बूडै सो लै तिरै,	लै लै तेरो नाँव ॥ ५ ॥
जैसी लौ प्रथमहि लगी,	तैसी ही रहि जाय ।
जाके हिरदै लौ बसै,	मो मोहि माँहि समाय ॥ ६ ॥
लागी लागी क्या करै,	लागी बुरी बलाय ।
लागी सोई जानिये,	बार बार है जाय ॥ ७ ॥
लागी लागी क्या करै,	लागी नांही एक ।
लागी सोई जानिये,	पडे कलेजे छेक ॥ ८ ॥
लागी लागी क्या करै,	लागी सोइ सराह ।
लागी तव ही जानिये,	उठे कराह कराह ॥ ९ ॥

लगी लगन छूटै नहीं, जीभ चोंच जरि जाय ।
 मीठा कहा अंगार में, जाहि चकोर चबाय ॥१०॥
 जो तू पिय की प्यारनी, अपना करि ले गी ।
 कलह कल्पना भेटि कर, चरनो चित दे गी ॥११॥
 सोऊं तो सुपनै मिलूं, जागू तो मन मॉहि ।
 लोयन राता सुधि हरी, विछुरत कबहुं नॉहि ॥१२॥
 और मुरति विसरी सकल, लौ लागी रहै संग ।
 आव जाव कासों कहूँ, मन राता हरि रग ॥१३॥
 जबलग कयनी हम कथी, दूर रहा जगदीस ।
 लौ लागी कल ना पडै, अब बोलै न हदीस ॥१४॥
 ग्रंथन माहीं अर्थ है, अर्थ मॉहि है भूल ।
 लौ लागी निरभय भया, मिटि गया सँसै मूल ॥१५॥
 गग जमुन के बीच में, महज मुन लौ पाट ।
 तहाँ कवीरा मठ रचा, मुनिजन जोवै वाट ॥१६॥
 जिहि पुन सिंघ न संचरै, पच्छी उडि ना जाय ।
 रैन दिवस की गप नहीं, तहाँ कविर लौ लाय ॥१७॥
 काय कपंडल भरि लिया, ऊजल निरमल नीर ।
 पीवत तृषा न भाजई, तिरपावत कवीर ॥१८॥

१४ हदीस-कुरान । अर्थात् शिक्षा की आवश्यकता नहीं ।

१६. गगजमुन-इगला पिंगला । १७ सिंह से तात्पर्य जीन । औ पच्छी से मन है ।

सुरति दीकुली नेज लौ, मन नित ढोलन हार ।
 कमल कृप में बह जल, पीवै वारंवार ॥१९॥
 मन उलटा दरिया मिला, लगा मलि मलि न्हान ।
 थाहत थाह न पावई, सो पूरा रहमान ॥२०॥
 नाम न जानै गाँव का, पीछै लगा जाय ।
 कालिह जो कांठ भांगसी, पहिले क्यों न खुराय ॥२१॥
 सीख भई संसार सो, चला जु साई पास ।
 अविनासी मोहि ले चला, पुरई मेरी आस ॥२२॥
 इन्द्र लोक अचरज भयो, ब्रह्मा पडा विचार ।
 कबीर चाला राम पै, कौतिकहार अपार ॥२३॥
 सद पानी पाताल का, काढि कबीरा पीव ।
 वासी पावक पडि मुआ, विषय विलंबा जीव ॥२४॥
 कबीर हरि का डरपता, ऊन्हा धान न खाव ।
 हिम्मा भीतर हरि बसै, दाशन ते जुडराव ॥२५॥
 अब तो मैं ऐसा भया, निरमोलिक निजनाम ।
 पहिले काच कथीर था, फिरता ठाम हि ठाम ॥२६॥
 भौसागर जल विष भरा, मन नहि बाँवै धीर ।
 सबल सनेही हरि मिला, उतरा पार कबीर ॥२७॥
 भला सुहेला ऊतरा, पूरा मेरा भाग ।
 सत्तनाम बाँका गहा, पानी पग नहि लाग ॥२८॥

१९. नेज-रस्ती । मन को डोल बनाकर सुरती की ढेकली और लव की रस्ती बनानी चाहिये । २८. सुहेला-अब देशवालों का एक मांगलिक तारा ।

सुपना में साँई मिला, सोवत लिया जगाय ।
 आंखि न मीचौं हरपता, पति सुपना है जाय ॥२९॥
 कवीर कैसो को दया, संसे मेला खोय ।
 जो दिन गया हरि भजन दिन, सो दिन सालै मोय ॥३०॥
 कवीर जांचन जाय था, आगे मिला अजाच ।
 आप सरीखा करि लिया, भारी पाया साच ॥३१॥
 लौं लागी निरमय भया, भरप भया सब दूर ।
 वन वन में कहँ दृढ़ता, राम इहां भरपूर ॥३२॥

निजकर्ता को अंग ।

अछै पुरुष एक पेड़ है, निरँजन बाकी द्वार ।
 तिरदेवा साखा भये, पात भया संसार ॥ १ ॥
 नाद बिंदु ते अगम भगोचर, पांच तत्त्व ते न्यार ।
 तीन गुनन् ते भिन्न है, पुरुष अलेख अपार ॥ २ ॥
 तीन गुनन की भक्ति में, भूलि पड़ा संसार ।
 कहँ कविर निजनाम बिन, कैसे उतरै पार ॥ ३ ॥
 हरा होय मुखै मही, यौ तिरगुन विस्तार ।
 प्रथमहि ताको सुमिरिये, जाका सकल पसार ॥ ४ ॥
 सब्द सुरति के अंतरै, अलेख पुरुष निरवान ।
 लखनेहारै लखि लिया, जाको है गुरु ज्ञान ॥ ५ ॥

राम क्रिष्ण औनाग हैं,	इन की नाहीं मांड ।
जिन साहिव सृष्टि किया,	किनहु न जाया रांड ॥ ६ ॥
राम क्रिष्ण को जिन किया.	सो तो करता न्यार ।
अंग ज्ञान न बूझई,	कहै कबार विचार ॥ ७ ॥
संपुट साहि समाझया,	यो साहिव नहि होय ।
सकल मांड में रमि रहा.	मेरा साहिव सोय ॥ ८ ॥
साहेब मेरा एक है,	दूजा कहा न जाय ।
दूजा साहिव जो कहै.	साहेब खरा रिसाय ॥ ९ ॥
जाके मुँह पाथा नहीं,	नाहीं रूप अरूप ।
पुहुप वास ते पातला,	ऐसा तत्व अनूप ॥ १० ॥
बूझो करता अपना,	मानो बचन हमार ।
पाच तत्व के भीतर,	जाका यह मंसार ॥ ११ ॥
निबल सबल जो जानि के,	नाम धरा जगदीस ।
कहै करि जन्मै मरै,	ताहि रहै नहि सीस ॥ १२ ॥
जन्म परन से रहित है,	मेरा साहिव सोय ।
बलिहारो वही पीव की,	जिन सिरजा सब कोय ॥ १३ ॥
समुँद पायी लका गयो.	सीता को भरतार ।
ताहि अगस्त अचै गयो,	इन में को करतार ॥ १४ ॥
गिरिवर धार्यो कृष्णजी,	टोना गिरि हनुमंत ।
सेसनाग रानी धरी,	इन में को भगवत ॥ १५ ॥

अविगति	पीसै	पीसना,	गौसा	बिनै	खुदाय ।
निरँजन	तो	रोटी करै,	गैवी	बैठा	खाय ॥१६॥
तीन देव को सब कोइ ध्यावै,	चौथे	देव का मरम न पावै ।			
चौथा छोड पंचम चित लावै,	कहैं	कविर हमरै ढिग भावै ॥१७॥			
जो ओंकार निश्चय किया,	यह	करता पति जान ।			
साचा सन्द कवीर का,	परदे में	पहिचान ॥१८॥			
अलख अलख सब कोउ कहै,	अलख	लखै नहि कोय ।			
अलख लखा जिन सब लखा,	लखा	अलख नहि होय ॥१९॥			
कथत कथत जुग थाकिया,	धाकी	सवै खलक ।			
देखत नजरि न आइया,	हरि को	कहा अलख ॥२०॥			
तीन लोक सब राम जपत,	जानि	मुक्ति को धाम ।			
रामचंद्र के वसिष्ठ गुरु,	काह	सुनायो नाम ॥२१॥			
जग में चारों राम हैं,	तीन	राम ब्याँहार ।			
चौथा राम निज सार है,	ताका	करो विचार ॥२२॥			
एक राम दसरथ घर डोलै.	एक	राम घट घट में बोलै ।			
एक राम का सकल पसारा,	एक	राम तिरगुन ते न्यारा ॥२३॥			
कौन राम दसरथ घर डोलै,	कौन	राम घट घट में बोलै ।			
कौन राम का सकल पसारा,	कौन	राम तिरगुन ते न्यारा ॥२४॥			

१६. अविगति—माया । गौसा—कडा । गैवी—अगम पुरुष ।

अर्थात्—माया, ईश्वर और निरजन जगत के कारणकलाप हैं और गैवी साक्षी पुरुष है ।

भाकार राम दसरथ घर डोलै,
 बिंदु राम का सकल पसारा,
 जाकी थापी मांड है,
 जो थापा है मांड का,
 रहे निराला मांड ते,
 कबीर सेवै तासुको,
 चार भुजा के भजन में,
 कबीर मुझै तासु को,
 काटे बंधन विपति में,
 चीन्हो ते नर मानिया,
 कहै कविर चित चेतहु,
 राम हि करता कहत हैं,
 जाहि रोग उत्पन्न भया,
 वैद्य ब्रह्म बाहिर रहा,
 असुर रोग उत्पति भया,
 कहै कबीर या साखि को,
 कबीर कारज भक्ति के,
 कहै कबीर विचारि के,
 हम कर्ता सब सृष्टि के,
 कहै कविर हमही चीन्है,

निराकार घट घट में बोलै ।
 निरालंब सबही ते न्यारा ॥२५॥
 ताकी करहु सेव ।
 सो नहिं हमरा देव ॥२६॥
 सकल मांडतिहि मांदि ।
 दूजा सेवै नांदि ॥२७॥
 भलि पड़े सब संत ।
 जाके भुजा अनंत ॥२८॥
 कठिन किया संग्राम ।
 गरुड बड़े की राम ॥२९॥
 सब्द करो निरुवार ।
 भुलि पर्यो संसार ॥३०॥
 औषधि देय जु ताहि ।
 भीतर धसा जु नाहि ॥३१॥
 औतार औषधि दोन्ह ।
 अरथ जु लीजो चीन्ह ॥३२॥
 भुक्ति हि दीन्ह पठाय ।
 ब्रह्म न आवै जाय ॥३३॥
 हम पर दूसर नांदि ।
 नहि चौरासी मांदि ॥३४॥

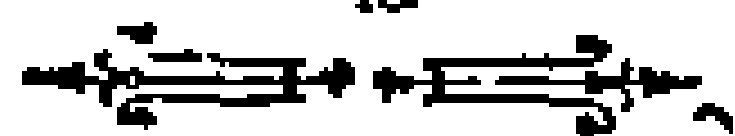
अनैत कोटि ब्रह्मंड का, एक रती नहि भार ।
 साहब पुरुष कबीर है, कुल का सिरजनहार ॥३५॥
 साहब सब का बाप है, वेदा किसीका नाहि ।
 वेदा होकर ऊतरा, सो तो साहब नाहि ॥३६॥
 पिंड मान नहि तासु के, दप देही नहि सीन ।
 नाद बिन्द आवै नहीं, पांच पचोस न तीन ॥३७॥
 राम राम तुम कहत हो, नहि सो अकथ सरूप ।
 वह तो आये जगत में, भये दसरथ घर भूप ॥३८॥
 रेख रूप विनु वेद में, औ कुरान बेचून ।
 आपस में टोक लहै, जाना नहि दोहन ॥३९॥
 सहज सुन्न में सांझा, ताका वार न पार ।
 धरा सकल जग धरि रहा, आप रहा निरधार ॥४०॥
 देखन सरिखी बात है, कहने सरखी नाहि ।
 अदभुत खेला पेखि के, समुझि रहो मन माँहि ॥४१॥

कसौटी को अंग ।

संत सरवस दे मिले, गुरु कसौटी खाय ।
 राप दोहाइ सत कहूँ, फेरि न उदर समाय ॥ १ ॥
 खरी कसौटी राम की, काचा टिकै न कोय ।
 राप कसौटी जे सहै, जीवत पिरतक होय ॥ २ ॥

खरी कसौटी तोलताँ, निकसि गई सब खोट ।
 सतगुरु सेना सब हनी, सब्द बान की चोट ॥ ३ ॥
 हीरा पाया पारखी, बन महुँ ढोन्हा आन ।
 चोट सही फूटा नही, तब पाई पहिचान ॥ ४ ॥
 सोने रूपे घाह दइ, उत्तम हमरी जात ।
 बन ही में की घूबची, तोली हमरे साथ ॥ ५ ॥
 तोल बराबर घूबची, मोल बराबर नाँहि ।
 मेरा तेरा पत्ररा, ढीज आगी मौहि ॥ ६ ॥
 विपति भलि हरि नाम लेत, काय कसौटी दूख ।
 नाम बिना किस कामकी, पाया संपति मूख ॥ ७ ॥
 कांच कथीर अथीर नर, ताहि न उपजै भेम ।
 कहै कविर कसनी सहै, कै हीरा कै हेम ॥ ८ ॥
 कसत कसौटी जो टिके, ताको सब्द सुनाय ।
 सोड हमारा बस है, कहै कविर समुझाय ॥ ९ ॥

सूक्ष्म मार्ग को अंग ।



कवीर मारग कठिन है, रिपि मुनि बैठे थाक ।
 तहाँ कवीरा चहि गया, गा सतगुरु की साक ॥ १ ॥
 सुर नर थाके मुनिजना, तहाँ न कोई जाय ।
 मोटा भाग कवीर का, तहाँ रहा लौ लाय ॥ २ ॥

मुर नर थाके मुनिजना, थाके विस्तु महेस ।
 तहाँ कबीरा चढ़ि गया, सतगुरु के उपदेस ॥ ३ ॥
 अगम हूँ ते जो अगम है, अपरम पार अपार ।
 वहँ मन धीरज क्यों धरै, पंथ स्वरा निरधार ॥ ४ ॥
 अगम पंथ मन धिर करै, बुद्धि करै परवेस ।
 तन मन धन सब छोड़ि कै, तब पहुँचै वा देस ॥ ५ ॥
 अगम हटा सो गम किया, सतगुरु दिया बताय ।
 कोटि कल्प का पंथ था, पलमें पहुँचा जाय ॥ ६ ॥
 भव हम चले अमरापुरी, टारै टरै टाट ।
 आवन होय सो आइयो, मूली ऊपर बाट ॥ ७ ॥
 मूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार ।
 ताको काल कहा करै, आठ पहर हुसियार ॥ ८ ॥
 गागर ऊपर गागरी, चोली ऊपर हार ।
 मूली ऊपर साथी, जहाँ बुलावै यार ॥ ९ ॥
 यार बुलावै भाव सों, मो पै गया न जाय ।
 धन मैली पिव ऊजळा, लागि न सकि है पाय ॥ १० ॥
 जिस कारन मैं जाय था, सो तो मिलिया आय ।
 साँई तो सनमुख खडा, लाग कबीरा पाय ॥ ११ ॥

७. टारे — प्रपंच को हटाकर । ८. मूली ऊपर — कठिन मार्ग है ।

९. गगनमंडल में सुरति लगाकर हृदय में सत्यगुण को धारण करे ॥

१०. धन — प्रिया, सुरति । पिव — साह्व ।

जो आवै तो जाय नहि, जाय तो कहँ सयाय ।
 अकथ कहानी प्रेम की, कैसे बूझी जाय ॥१२॥
 जो आवै तो जाय नहि, जाय तो आवै नाँहि ।
 अकथ कहानी प्रेम की, समुझि लेहु मन मॉहि ॥१३॥
 कौन देस कहाँ आइया, जानै कोई नाँहि ।
 चढ़ पारग पावै नही, भूलि परै जग मॉहि ॥१४॥
 नाँव न जानै गाँवका, बिन जानै कहँ जाँव ।
 चलता चलता जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥१५॥
 सतगुरु दीन दयाल है, दया करि मोहि आय ।
 कोटि जनम का पंथ था, पछ में पहुँचा जाय ॥१६॥
 उत ते कोई न आइया, जासों बूझूं धाय ।
 इत ते सब कोय जात है, भार लदाय लदाय ॥१७॥
 उत ते सतगुरु आइया, जाकी बुधि है धीर ।
 भौसागर के जीव को, खेइ लगावै तीर ॥१८॥
 सब को पूछन मैं फिरा, रहनि कहै नहि कोय ।
 प्रीति न जोड़े नाम सों, रहनि कहाँ से होय ॥१९॥
 चलन चलन सब कोय कहै, मोहि अंदेसा और ।
 साहिव सों परिचै नहीं, पहुँचेंगे किस ठौर ॥२०॥
 जानै की तो गम नही, रहने को नहि ठौर ।
 कहै कविर सुन साधवा, अविगत की गति और ॥२१॥

जहां न चिऊंटी चढ़ि सकै,	राई ना ठहराय ।
मनुवा तहां ले राखिपा,	सोई पहुँचा जाय ॥२२॥
बह मारग कित को गया,	मारग पहुँचे साद ।
मैं तो दोऊ गहि रहा,	लोभ बढ़ाई वाद ॥२३॥
बिन पाँवन की राह है,	बिन बस्ती का देस ।
बिना पिंड का पुरुष है,	कहे कबिर संदेस ॥२४॥
घाट हि पानी सब भरै,	औघट भरै न कोय ।
औघट घाट कबीर का,	भरै सो निरमल होय ॥२५॥
चलते चलते पगु धके,	निपट करारी कोस ।
बिन दयाल झलका परै,	काको दीजै दोस ॥२६॥
जहाँ चतुरकी गम नहीं,	तहाँ मुख किमि जाय ।
बाह विधाता नाथ है,	काग कपूर हि खाय ॥२७॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे,	बाहि देस की सीच ।
अवही कहाँ तिगाडिये,	बेढी पायन बीच ॥२८॥
करता की गति अगम है,	चल गुरुके उनमान ।
धीरे धीरे पाँव दे,	पहुँचेंगे परमान ॥२९॥
पहुँचेंगे तब कहेंगे,	अब कछु कहा न जाय ।
सिंधु समाना बुँदमें,	दरिया लहर समाय ॥३०॥

२५. घाट—वेद, मत, वर्ण और आश्रम की मर्यादा । औघट—सनागत, त्रिगुणातीत ।

२७. काग कपूर—अनधिकारी सत्य मार्ग को पकड़ना चाहते हैं ।

२८. तिगाडना—रनो चौड़ी बाते बनाना ।

मान पिंड को तजि चला, सुआ कहे सब कोय ।
 जीव लता जामै मरै, सून्डप लखै न कोय ॥३१॥
 मान पिंड को तनि चला, छुटि गया जंजार ।
 ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥३२॥
 सूक्ष्म सुरति का मरम है, जीवन जानत जाल ।
 कहे कबीरा दूरि कर, आत्म आदि हि काल ॥३३॥
 अंतःकरण ही मन महीं, मन हि मनोरथ पाँहि ।
 उपजत उपजत जानिये, 'बिनसत जानै नाँहि ॥३४॥
 साखी सैन सही करो, श्रवण सुनी ना जाय ।
 जैमे तेजी वायको, नाद हि कब लै जाय ॥३५॥
 हती साईं सब सुन लई, सैन सुनी नहि जाय ।
 नैन बैन दोइ थके, सैन हि माहि लखाय ॥३६॥

३१. स्थूल जन्म और मरण से सारा संसार परिचित है; परन्तु सूक्ष्म जन्म और मरण को कोई नहीं जानता । वह सूक्ष्म जन्म और मरण मनुष्य के जीते जी प्रतिदिन ही होता है । नई २ वासनाओं को प्रतिदिन हृदय में स्थान देना ही सूक्ष्म जन्म और मरण है ।

३२. दिन में सौ सौ बार—अनेक प्रियों में चित्त को अटकाना ही दिन में सौ सौ बार मरना है ।

३५. जिस प्रकार हवा का शपाटा शब्द को उड़ा ले जाता है, इसी प्रकार मन की चंचलता श्रवण इन्द्रिय से पूरा ज्ञान नहीं होने देती, इस लिये साखी में बताई हुई सैन से निजानुभव करना चाहिये ।

सुरज किरन रोकी रहै, कुंभ नीर ठहराय ।
 सुरति जु रोकी ना रहै, जहाँ पुरुष तहँ जाय ॥३७॥
 कवीर दीपक जोइये, देखा अपरं देव ।
 चार वेद की गम नहीं, तहाँ कवीरा सेव ॥३८॥
 पहुँचेंगे तो कहेंगे, मीलेंगे उस टाय ।
 अजहँ मेरा समुँद में, बोलि धिगूचे काय ॥३९॥
 अगम पंथ कुं पग धरै, सो कोइ बिरला संत ।
 मत वाडा में पडि गये, ऐसे जीव अनंत ॥४०॥
 मत वाडा में पडि गये, मूरख वारै वाट ।
 ऐसा कबहुं ना मिले, उलटे घाटे घाट ॥४१॥

भाषा को अंग ।



संस्कृत है कूप जल, भाषा बहता नीर ।
 भाषा सतगुरु सहित है, सत पत गहिर गँभीर ॥ १ ॥
 संस्कृत हि पंडित कहै, बहुत करै अभिमान ।
 भाषा जानि तरक करै, ते नर मूढ़ अजान ॥ २ ॥
 संस्कृत हि संसार में, पंडित करै बखान ।
 भाषा भक्ति हठावही, न्यारा पद निरवान ॥ ३ ॥

पूरन बानी वेद की, सोहत परम अनूप ।
 आधी भाषा नेत्र बिन, को लखि पावै रुर ॥ ४ ॥
 बानी नो पानी भरै, चारों वेद मजूर ।
 चुका सेवक बंदगी, किया चाकरी दूर ॥ ५ ॥
 वेद कहै मैं कहूँ न जानूँ, स्वाँसा के संग आय ।
 दरस हेत कहूँ बंदगी, गुन अनेक मैं गाय ॥ ६ ॥
 चेद हमारा भेद है, हम वेदोंके माँहि ।
 जौन भेद में मैं वसूँ, वेदो जानत नाँहि ॥ ७ ॥

पंडित को अंग ।



पंडित और पसालची, दोनों सूझत नाँहि ।
 औरन को करै चाँदना, आप अंधेरे माँहि ॥ १ ॥
 पंडित केरी पोथियाँ, ज्यों तीतर का ज्ञान ।
 औरन सगुन बतावहीं, आपन फंद न जान ॥ २ ॥
 पंडित पोथी बांधि के, दे सिरहाने सोय ।
 वह अच्छर इन में नहीं, हसि दे भावै रोय ॥ ३ ॥
 पंडित बोडौ पातरा, कानी छाँड कुरान ।
 वह तारीख बताय दे, थे न जिमी असमान ॥ ४ ॥

पढ़ि पढ़ि तो पत्थर भया, लिखि लिखि भया जु चोर ।
 जिस पढ़ने सादिव मिले, सो पढ़ना कहु और ॥ ५ ॥
 पढ़ै गुनै सीखै सुनै, मिट्टी न संसै सूल ।
 कहै कविर कासों कहूँ, येही दुख का मूल ॥ ६ ॥
 पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पढ़ित हुआ न कोय ।
 'एकै अच्छर प्रेम का, पढ़ै सो पंडित होय ॥ ७ ॥
 कवीर पढ़ना दूर कर, पोथी देहु बहाय ।
 वाचन अच्छर सोधि कै, सत्तनाय लौ लाय ॥ ८ ॥
 कवीर पढ़ना दूर कर, अति पढ़ना संसार ।
 पीर न ऊपजै जीव की, क्यों पावै करतार ॥ ९ ॥
 मै जानौ पढ़ना मला, पढ़ने ते भल जोग ।
 सत्तनाय सौ प्रीति कर, भावै निंदो लोग ॥ १० ॥
 नहि कागड नहि लेखनी, निह अच्छर है सोय ।
 बांचहीं पुस्तक छोडि कं, पढ़ित कहिये सोय ॥ ११ ॥
 धरती अंबर ना दता, को पढ़ित था पास ।
 कौन मुहरम थापिया, चाँट सुरज आकास ॥ १२ ॥
 कवीर ब्राह्मण की कथा, सो चोरन की नाव ।
 सब अंधे बिळि बैठिया, भावै तहँ ले जाव ॥ १३ ॥
 कवीर ब्राह्मण बूडिया, जनेऊ केरे जोर ।
 लख चौरासी माँगि लइ, सतगुरु सेती तोर ॥ १४ ॥

ब्राह्मन गुरु है जगत का, संतन के गुरु नाँहि ।
 अरुशि परुझिके मरि गये, चारौ वेदौ माँहि ॥१५॥
 ब्राह्मन गढ़हा जगत का, तीरथ लादा जाय ।
 यजमान कहि मै पुन किया, वह महेनत का खाय ॥१६॥
 ब्राह्मन ते गढ़हा भला, आन देव ते कुत्ता ।
 मुलना ते मुरगा भला, सदर जगावै सुत्ता ॥१७॥
 कलि का ब्राह्मन पमखरा, ताहि न दीजै दान ।
 कुटुब सहित नरकै चला, माथ लिया यजमान ॥१८॥
 पढ़ै पढ़ावै कलु नहीं, ब्राह्मन भक्ति न जान ।
 व्याहै श्राद्धै कारनै, बैठा मूँडा तान ॥१९॥
 पारोसीमं रूठना, तिल तिल मुखकी दान ।
 पंडित भया सरावगी, पानी पीवै छान ॥२०॥
 चारि अठारह नव पढ़ी, छौ पढ़ि खोया मूल ।
 कबीर मुल जानै बिना, ज्यों पंछी चंडूल ॥२१॥
 लिखना पढ़ना चातुरी, यह संसारी जेव ।
 जिस पढ़ने सों पाइये, पढ़ना किसी न सेव ॥२२॥
 चारि वेद पढ़वो करै, हरि से नाही हेत ।
 माल कबीरा ले गया, पंडित हूँदे खेत ॥२३॥
 पढ़ी गुनी पाठक भये, समुझाया संसार ।
 आपन तो समुझै नहीं, वृथा गया अवतार ॥२४॥

पढी गुनी ब्राह्मन भये, कीर्ति भई संसार ।
 वस्तु की तो समुझ नहीं, ज्युं खर चंदन भार ॥२५॥
 पढत गुनत रोगी भयो, बढा बहुत अभिमान ।
 भीतर ताप जु जगत का, बढी न पडती सान ॥२६॥
 पढे गुने सब वेद को, समुझे नहीं गमार ।
 आसा लागी भरमकी, ज्युं करोल की जाल ॥२७॥
 पंडित पढने वेद को, पुस्तक इसती लाद ।
 भक्ति न जाने राम की, सबे परीक्षा बाद ॥२८॥
 पढते गुनते जनम गया, आसा लागी हेत ।
 बोधा बीज हि कुपतिने, गया जु निर्मल खेत ॥२९॥
 पाहि पढि और समुझावइ, खोजि न आपं सरीर ।
 आपहि संशयमें पेड़, युं कहि दास कवीर ॥३०॥
 चतुर्गई पोपट पढी, पाहि सो पिंजर मॉहि ।
 फिर परमोधे और को, आपन समुझै नॉहि ॥३१॥
 हरि गुन गावे हरपिके, हिरदय कपट न जाय ।
 आपन तो समुझै नहीं, और हि ज्ञान सुनाय ॥३२॥
 ज्ञानी ज्ञाता बहु मिले, पंडित कवी अनेक ।
 राम रता इंद्री जिता, कोटी मध्ये एक ॥३३॥
 कुल मारग छोड़ा नहीं, रह मायामें मोह ।
 पारस तो परसा नहीं, रहा लोड का लोड ॥३४॥

आत्म तत्व जानै नहीं, कोटिक कथे जु ज्ञान ।
 तारे तिमिर न भागहीं, जब लग उगे न भान ॥३५॥
 अजहं तेरा सब मिटे, गुरु मुख पावे भेद ।
 पंडित पास न बैठिये, बैठि न सुनिये वेद ॥३६॥

निंदा को अंग ।



निंदक एकहु मति मिलै, पापी मिलै हजार ।
 इक निंदक के सीस पर, लाख पाप का भार ॥ १ ॥
 निंदक ते कुत्ता भला, हट कर मांढै शर ।
 कुत्ते से क्रोधी बुरा, गुरु दिलावै गार ॥ २ ॥
 निंदक तो है नाक विन, सोहै नकटों माहि ।
 साधुजन गुरु भक्त जो, तिनमें सोहै नाहि ॥ ३ ॥
 निंदक तो है नाक विन, निस दिन विष्टा खाय ।
 गुन छँडै औगुन गहै, तिसका यही सुभाय ॥ ४ ॥
 निंदक नेरै राखिये, आंगन कुटी छाया ।
 विन पानी साबुन बिना, निरमल करै सुभाय ॥ ५ ॥
 निंदक दूर न कीजिये, कीजै आदर मान ।
 निरमल तन मन सब करै, बकै आन ही आन ॥ ६ ॥

निंदक हमरा जनि मरो,
कवीर सतगुरु पाइया,
कवीर निंदक मरि गया,
ऐसा कोई ना मिले,
सातों सायर में फिरा,
परनिंदा नहीं करै,
दोष पराया देखि करि,
अपना याद न आवई,
तिनका कबहुँ न निन्दिये,
कबहुँ उहि आँखों पड़े,
माखी गहै कुवास को,
मधु माखी है साधुजन,
कवीर मेरे साध की,
जो पै चंद्र कलक है,
जो कोय निन्दै साध को,
नरक जाय जनमै परै,
जो तू सेवक गुरुन का,
निंदक नेरै आय जब,
काहु को नहि निन्दिये,
फिर फिर ताको बन्दिये,
ऐसा कोई जन एक है,
निन्दा बन्दा क्या करै,

जीवो भादि जुगाटि ।
निंदक के परसाटि ॥ ७ ॥
अब क्या कहिये जाय ।
बीडा लेय उठाय ॥ ८ ॥
जंबुदीप है पीठ ।
सौ कोय विरछा दीठ ॥ ९ ॥
चछै हसन्त हसन्त ।
जाका आदि न अन्त ॥ १० ॥
पाँव तलै जो होय ।
पीर घनेरी सोय ॥ ११ ॥
फूल वास नहि लेय ।
गुनहि वास चित देय ॥ १२ ॥
निंदा करो न कोय ।
तउ उजियारी होय ॥ १३ ॥
संकट आवै सोय ।
मुक्ति कबहुँ नहि होय ॥ १४ ॥
निंदा की तज वान ।
कर आदर सनमान ॥ १५ ॥
चाहै जैसा होय ।
साधु लच्छ है सोय ॥ १६ ॥
दूजे मेय अनेक ।
जो नहि हिरदा एक ॥ १७ ॥

निन्दा कीजै आपनी, बंदन सतगुरु रूप ।
 औरन सों क्या काम है, देख न रंक न भूप ॥१८॥
 आपन को न सराहिये, पर निन्दिये नहि कोय ।
 चढ़ना लंबा धौहरा, ना जानै क्या होय ॥१९॥
 आपन पो न सराहिये, और न कहिये रंक ।
 क्या जानौं किहि रूप तर, कूरा होय करंक ॥२०॥
 लोग विचारा निन्दही, जिनहु न पाया ज्ञान ।
 सत्तनाम जानै नहीं, वके आनही आन ॥२१॥
 निन्दक न्हाय गगन कुहखेत, अरु नारि सिंगार समेत ।
 चौसठ कूवा बाय दिखावै, तोभी निन्दक नरक हि जावै ॥२२॥
 अडपठ तीरथ निन्दक न्हाइके, दहे पलोसे मैल न जाहि ।
 छपान नोटि धरती फिरि आवै, तोभी निन्दक नरकहि जावै ॥२३॥
 निंदा हमरी जो करै, मित्र हमारा सोय ।
 विन साबुन विन पानिसै, मैल हमारा धोय ॥२४॥
 काहुको नहि निन्दिये, सबको कहिये संत ।
 करनी अपनी से तरे, मिलि भजिये भगवंत ॥२५॥
 कंचन को तजवो सदल, महल त्रिया को नेह ।
 निंदा केरो त्यागवो, बडो कठिन है येह ॥२६॥
 कबीर यह तो राम है, निंदने को कलु नाहि ।
 कोइ विधि गोविंद सेविये, राम बसा सब माँहि ॥२७॥

आनदेव को अंग ।

आनं देव की आस करि, मुख मेले पट मांस ।
जाके जन भोजन करै, निश्चय नरक निवास ॥ १ ॥
होम कनागत कारनै, साकुट राधा खाय ।
जीवत विष्टा खान की, मूआ नरकै जाय ॥ २ ॥
आरा नारा कारनै, जेता रलमल खाय ।
जीवत जनम हि खान का, पीछै नरकै जाय ॥ ३ ॥
साकुट हित कुं जाय के, सरमा सरमी खाय ।
कोटि जनम नरकै पड़े, तऊ न पेट अधाय ॥ ४ ॥
कन्या बल अरु कारनै, आनदेव को खाय ।
सो नर होले बाजते, निश्चय नरकै जाय ॥ ५ ॥
कामी तिरै क्रोधी तिरै, लोभी की गति होय ।
सलिल भक्त संसार में, तरत न देखा कोय ॥ ६ ॥

प्रकृति गुन को अंग ।

पहिले सेर पचीस का, सन्तो करो अहार ।
गुरु सब्दै लागे रहो, दुख न होय लगार ॥ १ ॥
सुपमन दिव्बी पीत करि, दीन्ही आगि चढाय ।
सेर पांच को रांघि करि, सन्त होय सो खाय ॥ २ ॥

सेर पांच को खाय करि, सेर तीन को खाय ।
 सेर तिन खाड ना सकै, सेर दुई को खाय ॥ ३ ॥
 सेर दुई को खाय करि, पाया अगम अलेख ।
 सतगुरु सर्वद यों कहा, जाके रूप न रेख ॥ ४ ॥
 दुख महल को ढाहने, सुख महल रहु नाय ।
 अभि अन्तर है उनमुनी, तामे रहो समाय ॥ ५ ॥
 कालज तजे न स्यामता, मुखटा तजे न स्वेत ।
 दुर्जन तजे न कुटिलता, सज्जन तजे न हेत ॥ ६ ॥
 दुर्जन की करुणा बुरी, भलो सज्जन को नास ।
 सूरज जब गरपी करे, तब बरसन की आस ॥ ७ ॥
 कलु कहि नीच न छेड़िये, भलो न बाको संग ।
 पत्थर ढारे कीच में, उछलि विगाड़े अंग ॥ ८ ॥
 चंद्रा सूरज चलत न दीसे, बढत न दीसे बेल ।
 हरिजन हरिभजता ना दिसे, ये कुदरत का खेल ॥ ९ ॥
 जो जाको गुन जानता, सो ताको गुन लेत ।
 कोयल आमही खात है, काग लिबोगी लेत ॥ १० ॥
 इक खुन्नस खांसि जो, औ पीवे मदपान ।
 ये छपाया ना छुपे, परगट होय निदान ॥ ११ ॥

काम को अंग ।



कामी का गुरु कामिनी,	लोभी का गुरु दाम ।	} १ ॥ १ ॥ २
कबीर का गुरु सन्त है,	संतन का गुरु राम ।	
कामी कबहुँ न गुरु भजै,	मिटै न संसै मूल ।	
और गुनह सब बलिह है,	कामी डाल न मूल ॥ २ ॥	
कामी कुत्ता तीस दिन,	अन्तर होय उदास ।	
कामी नर कुत्ता सदा,	छह रितु बारह मास ॥ ३ ॥	
कामी क्रोधी लालची,	इन से भक्ति न होय ।	
भक्ति करै कोय सूरमा,	जाति वरन कुछ खोय ॥ ४ ॥	
कामी लज्जा ना करै,	मन माहीं अहलाद ।	
नींद न मांगै साथग,	भूख न मांगै स्वाद ॥ ५ ॥	
कामी तो निरभय भया,	करै न काह संक ।	
इन्द्री करे वसि पदा,	मुगतै नरक निभंक ॥ ६ ॥	
कामी अमी न भावई,	विष को लेरै तोय ।	
कुबुधि न भाजै जीव की,	भावे ज्यों पयोय ॥ ७ ॥	
कामी करम की केंचुली,	पहरि हुआ नर नाग ।	
सिर फोड़ै मूत्र नहीं,	कोइ पूरवला भाग ॥ ८ ॥	

सह कामी दीपक दसा, - सोखै तेल निवास ।
 कबीर हीरा संतजन, सहजै सदा प्रकास ॥ ९ ॥
 दीपक सुंदर देखि करि, जरि जरि मरे पतंग ।
 बड़ी लहर जो विषय की, जरत न मोरै अंग ॥ १० ॥
 भक्ति बिगाड़ी कामिया, इन्द्रिय करे स्वाद ।
 हीरा खोया हाथ सों, जनम भँवाया बाद ॥ ११ ॥
 काम काम सब कोय कहै, काम चीन्है कोय ।
 जेती मन की कल्पना, काम कहावै सोय ॥ १२ ॥
 जहाँ काम तहाँ नाम नहि, जहाँ नाम नहि काम ।
 दोनों कबहु ना भैलै, रवि रजनी इक ठाम ॥ १३ ॥
 काम क्रोध मद लोभ की, जब लग घटमें खान ।
 कबीर मूरख पंडिता, दोनों एक समान ॥ १४ ॥
 कहता हूँ कहि जात हूँ, मानै नहीं भँवार ।
 वैरागी गिरही कहा, कायो वार न पार ॥ १५ ॥
 काम कहर असवार है, सब को भारै घाय ।
 कोई एक हरिजन ऊवरा, जाके नाम सहाय ॥ १६ ॥
 कबीर कामी पुरुषका, संसै कबहु न जाय ।
 साहब्य सो अलगा रहै, वाके हिरदै लाय ॥ १७ ॥

कामी से कुचा भला, रितु सर खोलै काछ ।
 राम नाम जाना नहीं, बाधी जाय न वाच ॥१८॥
 बुंद खिरी नर नारि की, जैसी आतम घात ।
 अक्षानी मान नहीं, येहि वान उत्पात ॥१९॥
 भग भोगै भग ऊपनै, भगते वचै न कोष ।
 कहै कबिर भगते वचै, भक्त रुहावै सोय ॥२०॥
 तन पन लज्जा ना रहे, काम वान उर साल ।
 एक काम सब वश किये, सुर नर सुनि बेहाल ॥२१॥

क्रोध को अंग ।



क्रोध अगनि घर घर बढो, जलै सकल संसार ।
 दीन लीन निज भक्त जो, तिन के निकट उबार ॥ १ ॥
 कोटि करम लागे रहै, एक क्रोध की लार ।
 किया कराया सब गया, जब आया हुंकार ॥ २ ॥
 जगत माहि रोखा घना, अह क्रोध अह काल ।
 पौरी पहुँचा मारिये, ऐसा जप का जाल ॥ ३ ॥
 दसौं दिमा से क्रोधकी, उठी अपरबल आग ।
 सीतल संगति साधकी, तहाँ उचारिये भाग ॥ ४ ॥

१८. काछ खोलना—भोग करना ।

१९. बुन्द-वीर्य । ३ पौरी-शुक्ति का द्वार, प्रियकादिक ।

यह जग कोठी काठकी, चहुँदिस लागी आग ।
 भीतर रहै सो जलि मुये, साधू उबरे भाग ॥ ५ ॥
 गार अंगारा क्रोध झल, निंदा धूँवाँ होय ।
 इन तीनों को परिहरै, साधु कहावै सोय ॥ ६ ॥

लोभ को अंग ।



जब मन लागे लोभ सों, गया विषय में भोय ।
 कहै कबीर विचारि के, केहि प्रकार धन होय ॥ १ ॥
 जोगी जंगम सेवदा, ज्ञानी गुनी अपार ।
 पट दरसन से क्या वनै, एक लोभ की लार ॥ २ ॥
 कबीर औधी खोपड़ी, कबहुं धापै नाँहि ।
 तीन लोक की संपदा, कब आवै घर माँहि ॥ ३ ॥
 मूष खैली अरु खान भग, दोनों एक समान ।
 घालत में मुख ऊपरै, काढन निकसै प्रान ॥ ४ ॥
 बहुत जतन करि कीजिये, सब फल जाय नसाय ।
 कबीर संचै मूष धन, अन्त चोर ले जाय ॥ ५ ॥

मोह को अंग ।

मोह फंद सब फंदिया, कोय न सकै निवार ।
 कोइ साधू जन पारखी, विरला तत्व विचार ॥ १ ॥
 मोह मगन संसार है, कन्या रही कुमारि ।
 काहु सुरति जो ना करी, ताते फिरि औतारि ॥ २ ॥
 मोह सलिल की धार में, बहि गये गहिर गंभीर ।
 मूछप मछली सुरति हैं, चढ़ती उलटी नीर ॥ ३ ॥
 जब घट मोह समाइया, सबै भया अंधियार ।
 निर्मोह ज्ञान विचारि कें, साधू उतरे पार ॥ ४ ॥
 जहाँ लगि सब संसार है, पिरग सवन को मोह ।
 सुर नर नाग पताल अरु, ऋषि मुनिवर सब जोह ॥ ५ ॥
 अष्ट सिद्धि नव निद्धि लों, तुष सों रहे निनार ।
 पिरग हि बांधि बिडारहु, कहै कबीर विचार ॥ ६ ॥
 प्रथम फंदे सब देवता, बिलसै स्वर्ग निवास ।
 मोह मगन सुख पाइया, मृत्यु लोक की आस ॥ ७ ॥
 दूजे ऋषि मुनिवर फँसे, तासों रुचि उपजाय ।
 स्वर्ग लोक सुख मानही, धरनि परत है आय ॥ ८ ॥
 सुरनर ऋषि मुनि सब फँसे, मृग त्रिम्ना जग मोह ।
 मोह रूप संसार है, गिरे मोहनिधि जोह ॥ ९ ॥

कुरुक्षेत्र सब मैदिनी, खेती करै किसान ।
 मोह मिरग सब चरि गया, आसन रहि खलिहान ॥१०॥
 काहु जुगति ना जानिया, किहि धिधि बचै सुखेन ।
 नहि बंदगी नहि दीनता, नहि साधू संग हत ॥११॥
 अष्ट सिद्धि नव निद्धि लौ, सबही मोह की खान ।
 त्याग मोह की वासना, कहै कबीर सुजान ॥१२॥
 अपना तो कोई नहीं, हम काहु के नॉहि ।
 पार पहुची नाव जब, मिलि सब विछुडे जाहि ॥१३॥
 अपना तो कोई नहीं, देखा ठोकि बजाय ।
 अपना अपना क्या करै, मोह भरम लिपटाय ॥१४॥
 मोह नदी विकराल है, कोई न उतरै पार ।
 सतगुरु केवट साथ ले, हंस होय जम न्यार ॥१५॥
 एक मोह के कारनै, भरत धरी दो देह ।
 ते नर कैसे छूटि हैं, जिनके बहुत सनेह ॥१६॥

जहाँ आपा तहाँ आपदा, जहाँ संसै तहाँ सोग ।
 कहैं कविर कैसे मिटै, चारों दीरघ रोग ॥ २ ॥
 अहं भई जो इस्तरी, माया हुआ मान ।
 यों बसि पड़े खटोक के, पकड़ी आनी कान ॥ ३ ॥
 हरिजन हरि तो एक है, जो आपा मिट जाय ।
 जा घट में आपा वसै, साक्षि कहाँ समाय ॥ ४ ॥
 अइता नहि आनिये, हरि सिंहासन देय ।
 जो दिक् राखै दीनना, सांइ आप करि लेय ॥ ५ ॥
 कबीर गर्व न कीजिये, रंक न हसिये कोय ।
 अजहू नाव समुद्र में, ना जानों क्या होय ॥ ६ ॥
 आपा सब हो जात है, किया कराया सोय ।
 आपा तजि हरि को भजै, लाखन मध्ये कोय ॥ ७ ॥
 दीप कुं झोला पवन है, नरकु झोला नारि ।
 ज्ञानी झोला गर्व है, कहैं कबीर पुकारि ॥ ८ ॥
 अभिमानी कुंजर भये, निज सिर लोन्हा भार ।
 जम द्वारै जम कूटहीं, लोहा घटै लुहार ॥ ९ ॥
 मद अभिमान न कीजिये, कहैं कविर समुझाय ।
 जा सिर अहं जु संचरै, पहुँचौ रासी जाय ॥ १० ॥

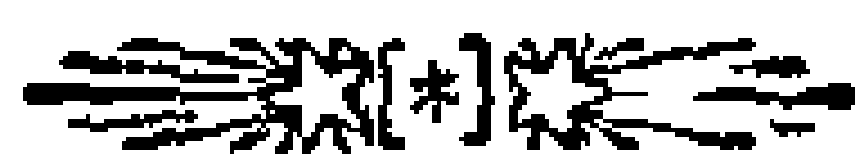
मान को अंग ।



मान	बड़ाई	कूकरी,	धर्मराय	दरवार ।
दीन	लकुटिया	बाहिरै,	सब जग	खाया फार ॥ १ ॥
मान	बड़ाई	कूकरी,	संतन	खेदी जान ।
पांडव	जग	पावन भया,	सुपच	विराजै आन ॥ २ ॥
मान	बड़ाई	जगत में,	कूकर	की पहिचान ।
प्यार	किये	मुख चाटई,	वैर किये	तन दान ॥ ३ ॥
मान	बड़ाई	ऊरपी,	ये जग	का व्यवहार ।
दीन	गरीबी	बढ़गी,	सतगुरु	का उपकार ॥ ४ ॥
मान	बड़ाई	देखि कर,	भक्ति	करै संसार ।
जब	देखै	कछु हीनता,	अवगुन	धरै गँवार ॥ ५ ॥
मान	दिया	मन हरषिया,	अपमाने	तन छीन ।
कहे	कविर	तब जानिये,	माया	में लौ लीन ॥ ६ ॥
मान	तजा	तो क्या भया,	मन का	मता न जाय ।
संत	वचन	मानै नहीं,	ताको	हरि न सुहाय ॥ ७ ॥
कंचन	तजना	सहज है,	सहज	तिरिया का नेह ।
मान	बड़ाई	ईरपा,	दुरलभ	तजना येह ॥ ८ ॥
माया	तजी	तो क्या भया,	मान	तजा नहि जाय ।
मान	बड़े	मुनिवर गले,	मान	सवन को खाय ॥ ९ ॥

काळा मुख कर मान का,	आदर लावो आग ।
मान बढ़ाई छाँडि के,	रहौ नाम लौ लाग ॥१०॥
कबीर अपने जीवते,	ये दो बातें धोय ।
मान बढ़ाई कारनै,	अछता मूल न खोय ॥११॥
खंभा एक गयंद टो,	क्यों करि बंधू वारि ।
मान करुं तो पिव नहीं,	पिव तो मान निवारि ॥१२॥
बड़ी बढ़ाई ऊंट की,	छादे जहँ लग सोंस ।
मुहकम सलिता लादि के,	ऊपर चढ़ै फरास ॥१३॥
बड़ा बढ़ाई ना करै,	बड़ा न बोलै बोल ।
हीरा मुख से ना कहै,	लाख हमारा मोल ॥१४॥
बड़ी विपति बढ़ाई है,	नन्हा करम से दूर ।
तारे सब न्यारे रहें,	गहै चंद्र औ सूर ॥१५॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ,	जैसे पेड़ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं,	फल लागे अति दूर ॥१६॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ,	जो रे बड़ मति नाँहि ।
जैसे फूल उगाड़ का,	मिथ्या ही झड़ि जाँहि ॥१७॥
हरिजन को ऊंचा नवै,	ऊंट जनम का होय ।
तीन जगह देहा मया,	ऊंचा ताँकै सोय ॥१८॥
ऊँचे कुल में जनमिया,	देह धरी अस्थूल ।
पार ब्रह्म को ना चढ़ै,	वास बिहना फूल ॥१९॥

मान को अंग ।



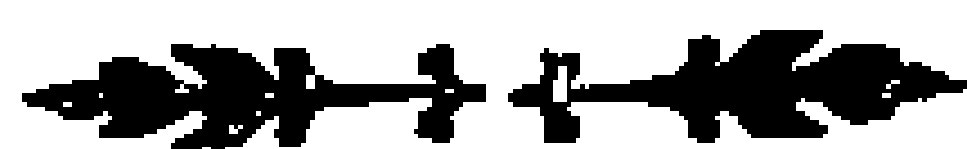
मान बड़ाई कूकरी,	धर्मराय दरवार ।
दीन लकुटिया बाहिरै.	सब जग खाया फार ॥
मान बड़ाई कूकरी,	संतन खेदी जान ।
पाँहव जग पावन भया,	सुपच विराजै आन ॥
मान बड़ाई जगत में,	कूकर की पहिचान ।
प्यार किये मुख चाटई,	वैर किये तन हान ॥
मान बड़ाई ऊरपी,	ये जग का व्यवहार ।
दीन गरीबी बढ़गी.	सतगुरु का उपकार ॥
मान बड़ाई देखि कर,	भक्ति करै संमार ।
जब देखै कछु हीनता,	अवगुन धरै गँवार ॥
मान दिया मन हरपिया,	अपमाने तन छीन ।
कहे कविर तब जानिये,	माया में लौ लीन ॥
मान तजा तो क्या भया,	मन का पता न जाय ।
संत वरन मानै नहीं,	ताको हरि न सुहाय ॥ ७
कंचन तजना सहज है,	सहज तिरिया का नेह ।
मान बड़ाई ईश्या,	दुखलभ तजना येह ॥ ८
माया नजी तो क्या भया,	मान तजा नहि जाय ।
मान बड़े मुनिवर गले,	मान सबन को खाय ॥ ९

काला मुख कर मान का,	आदर लावो आग ।
मान बढ़ाई छाँडि के,	रहौ नाम लौ लाग ॥१०॥
कवीर अपने जीवने,	ये दो बातों धोय ।
मान बढ़ाई कारनै,	अछुता मूल न खोय ॥११॥
खंभा एक गयंद दो,	क्यों करि बंधु वारि ।
मान करुं तो पिय नहीं,	पिय तो मान निवारि ॥१२॥
बड़ी बढ़ाई ऊंट की,	लादे जहाँ लग साँस ।
मुहकम सलिला लादि के,	ऊपर चढ़ै फरास ॥१३॥
बड़ा बढ़ाई ना करै,	बड़ा न बोलै बोल ।
हीरा मुख से ना कहै,	लाख हमारा मोल ॥१४॥
बड़ी विपति बढ़ाई है,	नन्हा करम से दूर ।
तारे सब न्यारे रहें,	गहै चंद्र औ सूर ॥१५॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ,	जैसे पेठ खजूर ।
पंथी को छाया नहीं,	फल लागे अति दूर ॥१६॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ,	जो रे बड़ मति नाँहि ।
जैसे फूल उजाड़ का,	मिथ्या ही झड़ि जाँहि ॥१७॥
हरिजन को ऊँचा नवै,	ऊँट जनम का होय ।
तीन जगह टेढ़ा मया,	ऊँचा ताँकै सोय ॥१८॥
ऊँचे कुल में जनमिया,	देह धरी अस्थूल ।
पार ब्रह्म को ना चढ़ै,	वास बिहना फूल ॥१९॥

ऊँच कुल नीचा पता, नहीं हरि सों हैर ।
 गिन गिनै हरि भक्त को, खासी खता अनेक ॥२०॥
 ऊँचै कुल के कारनै, भूलि रहा संसार ।
 तब कुल की क्या लाज है, जब तन होगा छार ॥२१॥
 ऊँचै कुल की कापिनी, भजै न सारंग पान ।
 कुल ही लजवान औतरी, सुधी सापिन जान ॥२२॥
 कबीर ऊँची नाक को, ऐठत है संसार ।
 जातै हरि हाथी किया, नाक दिया गज चार ॥२३॥
 हाथी चढ़ि के जो फिरै, ऊपर चँवर दुराय ।
 लोग कहैं सुख भोगवै, सीधे दोजख जाय ॥२४॥
 कबीर हरि जाना नहीं, जाना कुल परिवार ।
 गदहा हूँ करि औतरे, भांडा ज़ादि कुम्हार ॥२५॥
 ऊँचा देखि न राचिये, ऊँचा पेड़ खजूर ।
 पंखि न बैठे छाँपड़े, फल लगा पै दूर ॥२६॥
 ऊँच पानी ना टिकै, नीचै ही ठहराय ।
 नीचा हूँ सो भरि पिये, ऊँच पियासा जाय ॥२७॥
 नर मूरख ते खर भला, जिहि मुख नहीं राम ।
 सुकुन बतावै और को, पंथ चलैता गाव ॥२८॥
 प्रभुता को सब कोइ भजै, प्रभु को भजै न कोय ।
 कहै कबीर प्रभु को भजै, प्रभुता चेरी होय ॥२९॥

लघुता में प्रभुता वसै, प्रभुता से प्रभु दूर ।
 कीटी सो मिसरी चुगै, हाथी के सिर धूर ॥३०॥
 जौन मिला सो गुरु मिला, चेला मिला न कोय ।
 चेला को चेला मिलै, तब कलुह तो होय ॥३१॥
 बड़ा बड़ाई ना करै, छोटा बहु उतराय ।
 ज्यों प्यादा फरजी मया, टेढ़ा टेढ़ा जाय ॥३२॥
 बग ध्यानी ज्ञानी घने, अरथी मिले अनेक ।
 मान रहित कजीर कहैं, सो लाखन में एक ॥३३॥
 भक्त रु भगवत एक है, बूझत नहीं अजान ।
 सीस नैवावत संत को, बड़ा करै अभिमान ॥३४॥
 लेने को सतनाम है, देने को अँनदान ।
 तरने को है दीनता, बूडन को अभिमान ॥३५॥

आसा तूरना को अंग ।



आसा तो गुरुदेव की, दूजी आस निराम ।
 पानी में घर घीन का, सो क्यों मरै पियास ॥ १ ॥

३२. प्यादा—सिपाही । फरजी—वजीर । शतरंज के खेल में वजीर को चाल टेढ़ी और प्यादा की सीधी होती है । जब वजीर के घर में जाने से प्यादा वजीर को मारकर वजीर बन जाता है तब वह सीधी चाल छोड़ कर टेढ़ी चाल पकड़ लेता है ।

आसा एक जु नाम की, दुजि आस निवार ।
 दुजो आसा मारसी, ज्यों चौपर की सार ॥ २ ॥
 आसा एक हि नाम की, जुग जुग पुरबै आस ।
 ज्यों पंडल कोरो रहै, वसै जु चदन पास ॥ ३ ॥
 आसा जोबै जग भरै, लोग भरै भरि जाहि ।
 धन संचै ते भी भरै, उबरै सो धन खाहि ॥ ४ ॥
 आस बास जग फंदिया, रहै उरध लपगय ।
 नाम आस पूरन करै, सकल आस मिटि जाय ॥ ५ ॥
 आसा बेछी करम बन, गरजै मत के साथ ।
 तृप्ता फूल चौगान में, फल करता के हाथ ॥ ६ ॥
 आसा तृप्ता सिंधु गति, तहाँ न मन ठहराय ।
 जो कोइ आसा में फसा, लहर तमाचा खाय ॥ ७ ॥
 आसा तृप्ता दो नदी, तहाँ न मन ठहराय ।
 इन दोनों को लंघ करि, चौडै बैठे जाय ॥ ८ ॥
 चौडै बैठे जाय के, नाँव घर रनजीत ।
 सादेच न्वारा देखिया, अन्तर गति की प्रीत ॥ ९ ॥
 आसा तरकस बाधिया, नै नै गये सुजान ।
 घने परेरु मारिया, झाझरि जोरि कमान ॥ १० ॥
 आसा को ईधन करुं, मनसा करुं भभूत ।
 जोगी फिरि फेरि करुं, यों वनि अवि सूत ॥ ११ ॥

कवीर जोगी जगत गुरु, तजै जगत की आस ।
 जो जग की आसा करै, जगत गुरु वह दास ॥१२॥
 जोगी है जग जीतता, वहि रत है संसार ।
 एक अंदेसा रहि गया, पीछे पड़ा अहार ॥१३॥
 बहुत पसारा जनि करै, कर थोड़े की आस ।
 बहुत पसारा जिन किया, तेई गये निरास ॥१४॥
 आसन पारै कह भयो, मरी न मनकी आस ।
 लेली केरे बैल ज्यौ, घर ही कोस पचास ॥१५॥
 सब आसन आसा तनै, निवरत कोई नाँहि ।
 निवृत्ति को जानै नही, प्रवृत्ति परपंच पाँहि ॥१६॥
 बाड चढन्ती बैलरी, उरझी आसा फंद ।
 टूटे पर जूटे नहीं, मई जो वाचा बंध ॥१७॥
 कवीर जग को कह कहं, मौजल बूडे दास ।
 सतगुरु सय पति छाँडि के, करै मनुष की आस ॥१८॥
 आस आस घर घर फिरै, सहै दुखारी चोट ।
 कहै कबिर भरमत फिरै, ज्यौ चौरस की गोट ॥१९॥
 आसा तो गुरुदेव की, और गले की फांस ।
 चंदन ढिग चंदन मये, देखौ आक पलास ॥२०॥
 कवीर सो धन संचिये, जो आगे को होय ।
 सीस चढाये गाठरी, जात न देखा कोय ॥२१॥

राम हि छोटा जानि के, दुनिया आगे दीन ।
 जीवन को राजा कहै, तृप्ता के आधोन ॥२२॥
 कबीर तृप्ता पापिनी, तासों मोति न जोर ।
 पैह पैह पाछे पदै, लागै मोटी खोर ॥२३॥
 तृप्ता सीची ना बुझै, दिन दिन बहती जाय ।
 जावासा का खव ज्यौ, घन मेहा कुम्हिलाय ॥२४॥
 आस आस जग फदिया, गले भरम की फांस ।
 जन्म जन्म भरमत फिरे, तबहु न छूटी आस ॥२५॥

कपट को अंग ।



कबीर तहाँ न जाइये जहाँ कपट का हेत ।
 जानो कली अनार को, तन राता मन सेत ॥ १ ॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ न चोखा चीत ।
 परपृष्ट औगुन बना, मुंहडे ऊपर भीत ॥ २ ॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ जु नाना भाव ।
 लागे ही फल ढहि पडे, बाजै कोई कुवाव ॥ ३ ॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट को हेत ।
 नौ मन बीज जु थोयके, खाली रहिगा खेत ॥ ४ ॥

४. नववा भाक्ति के करने पर भी चित कपटो का हृदय खाली ही रह जाता है ।
 १ पा० माया ।

हेत भीति सों जो मिले, तासों मिलिये धाय ।
 अन्तर साखी जो मिलै, तासों मिलै बलाय ॥ ५ ॥
 चित कपटी सब सों मिलै, माहीं कुटिल कठोर ।
 इक दुरजन इक आरसी, आगै पीछै और ॥ ६ ॥
 दिल ही पर जो दिल मिलै, तो दिळ दगा न होय ।
 सो दिळ कबहुँ न बीसै, कोटि करै जो कोय ॥ ७ ॥
 ठिकली का नमना कहा, यह ना बहुरै वीर ।
 पहिले चरनों लागि के, पीछै सोखै नीर ॥ ८ ॥
 नमन नँवा तो क्या हुआ, मूधा चित्त न ताहि ।
 पारधिया दूना नँवै, मिरग दि टूकै जाहि ॥ ९ ॥
 नमन नमन बहु अन्तरा, नमन नमन बहु वान ।
 ये तीनों बहुतै नँवै, चीता चोर कमान ॥ १० ॥
 कपटी का गुरु चातुरी, गुरु गुन छन छन जाय ।
 औगुन केरी कांकरी, रही कलेजै छाय ॥ ११ ॥
 कैसं भँवर न बैठही, जो अति फूले फूल ।
 खार कपट हिरदै वसै, मधुकर तजै समूल ॥ १२ ॥
 कहा बनावै बाहिरै, भीतरिया सों काम ।
 छानै छिप कै तू करै, सारा जानै राम ॥ १३ ॥

६. दर्पण का आगे का भाग उजल्य और पीछे का मैल्य होता है
 इसी प्रकार दुर्जन भी सामने सीधा और पीछे कुटिल होता है ।

आगे दर्पण ऊजला, पीछे विषम विकार ।
 आगे पीछे आरसी, क्यों न पड़े मुख छार ॥१४॥
 कपटी कधी न ऊधरे, सौ साधुन के संग ।
 मुंज पखालै गंग में, ज्यों भीजै त्यों तंग ॥१५॥
 कपटी मित्र न कीजिये, पेट पैठि बुधि लेत ।
 आगे राह दिखाय के, पीछे धक्का देत ॥१६॥
 कपटी के मन कपट है, साधू के मन राम ।
 कायर तो सब भगि चले, मूरा के मैदान ॥१७॥
 अंत कतरनी जीभ रस, नैनौं उपला नेह ।
 ताकी संगति रामजी, सपनेहु मति देह ॥१८॥
 दिये कतरनी जीभ रस, मुख बोलन का रंग ।
 आगे भल पीछे बुरा, ताको तजिये संग ॥१९॥
 कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ पुराना भाव ।
 लागत ही फीके पड़े, कोइ लगायो दाव ॥२०॥
 ऊजल वस्तर सिर जडा, एक चित्त सँ ध्यान ।
 फुंकि फुंकि पाँव उठि धरै, तामे कपट निदान ॥२१॥

१४. दर्पण को साफ करने के लिये उस पर छार डाला करते हैं ।
 जिस पुख्य का आगा और पीछा दर्पण के समान हो—अर्थात् सामने
 -निर्मलता दिवानेवाला और पीछे से कपटाचार करनेवाला हो उसके
 मुंह में लोग अवश्य घूर डालते हैं ।

सरस मखा ऊजल वरन, एक पगा मूं ध्यान ।
 मैं जाना कुल हंस है, कपटी मिला निदान ॥२२॥
 जानी नमि गुरु मुख नमै, नमै चतुर मुजान ।
 दगाबाज दूना नमै, चित्ता चोर कमान ॥२३॥

दुख को अंग ।

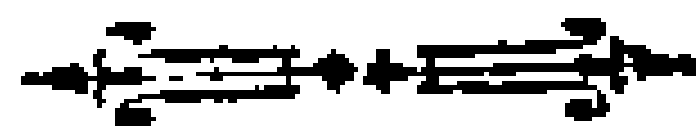


जा दिन ने जिव जनमिया, कबहु न पाया सुख ।
 डालै डालै मैं फिरा, पातै पातै दुख ॥ १ ॥
 कधीर सुख मूं जाय था, बिचमें मिलि गया दुख ।
 सुख जाहू वर आपने, मैं अरु मेरा दुख ॥ २ ॥
 सुखिया हंइत मैं फिहं, सुखिया मिलै न कोय ।
 जाके आगे दुख कहू, पहिले ऊठै रोय ॥ ३ ॥
 जाके आगे इक कहू, सो कश्ये इकवीस ।
 एक एक ते दासिया, कहां ने काहें बीस ॥ ४ ॥
 बिपका खेत जु खेडिया, बिप का बोया झाड ।
 फल लागे अंगार से, दुखिया के गल हार ॥ ५ ॥
 झल बाँयें झल टाहिने, झल ही में व्यवहार ।
 आगे पीछे झल हि है, राखै सिरजन हार ॥ ६ ॥

मैं रोऊँ संसार कूं, मुझ न रोवै कोय ।
 मुझ को रोवै सो जना, नाम सनेही होय ॥ ७ ॥
 कबीर दरिया परजला, दासै जल थल झोळ ।
 वस नहीं गोपाल सूं, बिनसै रतन अमोल ॥ ८ ॥
 संख समुंदा वीछुरा, लोग कहैं बाजंत ।
 पीतम आपन कारनै, घर घर धाह दयंत ॥ ९ ॥
 करनि विचारी क्या करै, हरि नहि होय सहाय ।
 जिहि जिहि डाली पग धरूं, सों सो नमि नमि जाय ॥ १० ॥
 सात दीप नौ खंड में, तीन लोक ब्रह्मंड ।
 कहै कविर सब को लगै, देह धरै का दंड ॥ ११ ॥
 देह धरै को दंड है, सब काहू को होय ।
 ज्ञानी भुगतै ज्ञान करि, अज्ञानी भुगतै रोय ॥ १२ ॥
 भूप दुखी अवधूत दुखि, दुखी रंक विपरीत ।
 कहै कविर ये सब दुखी, सुखी संत मनजीत ॥ १३ ॥
 वासर सुख नहि रैन सुख, ना सुख धूप न छांह ।
 कै सुख सरनै राय के, कै सुख सन्तों मांह ॥ १४ ॥
 भुवर्ग मृत्यू पाताल में, पूर तीन सुख नांहि ।
 सुख साहिव के भजन में, अरु संतन के मांहि ॥ १५ ॥
 संपति देखि न हरिये, विपति देखि पति गेय ।
 संपति है तहाँ विपति है, करता करै सो होय ॥ १६ ॥

संपत्ति तो हरि मिलन है, विपत्ति जु राम वियोग ।
 संपत्ति विपत्ति राम कहूँ, आन कहै सब लोग ॥१७॥
 लछमी कहै मैं नित नवी, किसकी न पूरी आस ।
 किते सिंहासन चढ़ि चले, कितने गये निरास ॥१८॥
 दुख नहि था संसार में, नहि था सोग वियोग ।
 सुख ही में दुख ला दिया, बोली बोळें लोग ॥१९॥

कर्म को अंग ।



करम कचोई आत्मा, निज कन खाया सोधि ।
 अंकुर विना न ऊगसी, भावै ज्यों परमोधि ॥ १ ॥
 मोह कुटी में जलि मुआ, करम किंवाड़ी वारि ।
 कोइ एक हरिजन ऊवरा, भागा राम पुकारि ॥ २ ॥
 काया खेत किसान मन, पार पुन तो वीथ ।
 बोया लूँ अपना, काया कसकै जीव ॥ ३ ॥
 काला मुँह करुं करमका, आदर लावूँ आग ।
 लोम बडाई छाँडि के, राचो गुरु के राग ॥ ४ ॥
 जीव करम में जलि गया, कहै कहां ते राम ।
 कंचन जला कथोर में, जाको ठौर न डाम ॥ ५ ॥
 मरम करम की जेवरी, बळ बंधा संसार ।
 वे क्यों छूटे वापुरे, जो बांधे करतार ॥ ६ ॥

कबीर सजड़ै ही जड़ा, झूठा मोह अपार ।
 अनेक लुहारे पचि सुये, उझड़त नहीं लगार ॥ ७ ॥
 कहा करुं मैं जलि गया, अन्तर लागी आग ।
 राम नाम काठी करी, गया कबीरा भाग ॥ ८ ॥
 कबीर चंदन परजला, तीतर बैठा मोहि ।
 हय तो दासत पैख विन, तुम दासत हो काहि ॥ ९ ॥
 कबीर कमाई आपनी, कबहु न निष्फल जाय ।
 सात समुद्र आड़ा पड़े, मिले अगाड़ी आय ॥ १० ॥
 करै बुगई सुख चरै, कैसे पावै कोय ।
 रोपै पेड़ वबूल का, आम कहां ते होय ॥ ११ ॥
 पूरब का रवि पश्चिमै, गर जो उगै प्रभात ।
 लिखा पिटै नहि कर्म का, लिखा जु हरि के हाथ ॥ १२ ॥
 बूंद पड़ी जा पलक में, उस दिन लिखिया लेख ।
 मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूट अनेक ॥ १३ ॥
 जई यह जियरा पगु धरै, बखत बराबर साथ ।
 जो है लिखा नसीब में, चलै न अविचल बात ॥ १४ ॥
 जाको जितना निर्माण किय, ताको तितना होय ।
 मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटो कोय ॥ १५ ॥
 पराख्य पहिले बना, पीछे बना सरीर ।
 कबीर अर्चना है यही, मन नहि बांये धीर ॥ १६ ॥

कवीर रेखा करम की, कबहु न मिटि है राम ।
 भेटनहार समर्थ है, समझि किया है काम ॥१७॥
 कवीर घर में राम है, रजक मौत जिव साथ ।
 कहा जु चारा मनुष का, कलम धनी के हाथ ॥१८॥
 बखत कहो या करम कहू, नसिब कहो निरवार ।
 सहस नान हैं करम के, मनही सिरजनहार ॥१९॥
 बाहिर सुख दुख देने को, हुकुम करै मन माँय ।
 जब ऊठे मन बखत को, बाहिर रूप धरि आय ॥२०॥
 बखत बलै मौजल तिरै, निबल मया विकार ।
 यह सब किया नसीब का, रह निश्चय निरवार ॥२१॥
 करम आपना परखि ले, मन नाहि कीजै रीस ।
 हरि लिखिया सोइ पाइये, पाथर फोडै सीस ॥२२॥
 कीन्हे बिना उपाय कहु, देव कबहु नाहि देत ।
 खेत बीज बोवै नहीं, तो क्यों जायै खेत ॥२३॥
 दुख लेने जावै नहीं, आवै आचा वृच ।
 सुख का पहरा होयगा, दुख करेगा कूच ॥२४॥
 होनहार सोइ होत है, बिसर जात सब सुख ।
 जैसी लिखी नसीब में, तैसी उकलत बुद्ध ॥२५॥
 रे मन भाग्य हो भूळ मत, जो आया मन भाग ।
 सो तेरा टलता नहीं, निश्चय संसै त्याग ॥२६॥

कबीर सजड़ै ही जड़ा, झूठा मोह अपार ।
 अनेक लुहारे पचि मुये, उझड़त नहीं लगार ॥ ७ ॥
 कढ़ा करुं पै जलि गया, अन्तर लागी आग ।
 राय नाम काठी करी, गया कबीरा भाग ॥ ८ ॥
 कबीर चंदन परजला, तीतर बैठा माहि ।
 हम तो दासत पंख बिन, तुम दासत हो काहि ॥ ९ ॥
 कबीर कमाई आपनी, कबहु न निष्फल जाय ।
 सात समुद्र आढ़ा पटे, मिले अगाड़ी आय ॥ १० ॥
 करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोय ।
 रोपै पेड़ बबूल का, आप कहाँ ते होय ॥ ११ ॥
 पूरब का रवि पश्चिमै, गर जो उगै प्रभात ।
 लिखा मिटै नहि करम का, लिखा जु हरि के हाथ ॥ १२ ॥
 बूंद पड़ी जा पलक में, उस दिन लिखिया लेख ।
 मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूट अनेक ॥ १३ ॥
 जई यह भियरा पगु धरै, बखत बराबर साथ ।
 जो है लिखा नसीब में, चलै न अविचल बात ॥ १४ ॥
 जाको जितना निर्मान किय, ताको तितना होय ।
 मासा घटै न तिल बढ़ै, जो सिर कूटो कोय ॥ १५ ॥
 पराखर पहिले बना, पीछे बना सरीर ।
 कबीर अचंभा है यही, मन नहि बांधे धीर ॥ १६ ॥

कबीर रेखा करम को, कबहु न मिटि है राम ।
 मेटनहार समर्थ है, समझि किया है काम ॥१७॥
 कबीर घट में राम है, रजक मौत जिव साथ ।
 कहा जु चारा मनुष का, कलम धनी के हाथ ॥१८॥
 बखत कहो या करम कहु, नसिव कहो निरधार ।
 सहस नाम हैं करम के, मनही सिरजनहार ॥१९॥
 बाहिर सुख दुख देन को, हुकुम करै मन माँय ।
 जब ऊठे मन बखत को, बाहिर रूप धरि आय ॥२०॥
 बखत बलै भोजल तिरै, निबल मया विकार ।
 यह सब किया नसीब का, रह निश्चय निरधार ॥२१॥
 करम आपना परखि ले, मन नहि कीजै रीस ।
 हरि लिखिया सोइ पाइये, पाथर फोडै सीस ॥२२॥
 कीन्हे बिना उपाय कलु, देव कबहु नहि देत ।
 खेत बीज बोवै नहीं, तो क्यों जामै खेत ॥२३॥
 दुख लैने जावै नहीं, आवै आचा बूच ।
 सुख का पहरा होयगा, दुख करेगा कूच ॥२४॥
 होनहार सोइ होत है, विसर जात सब सुद्ध ।
 जैसी लिखी नसीब में, तैसी उकलत बुद्ध ॥२५॥
 रे मन भाग्य ही भूळ मत, जो आया मन भाग ।
 सो तेरा टलता नहीं, निश्चय संसै त्याग ॥२६॥

मन की संका मेटि कर, निसंक रहु निरधार ।
 निश्चय होय सो होयगा, जो करसी करतार ॥२७॥
 दुनी कहे मैं दोरंगी, पल में पलटि जु जाउँ ।
 सुख में जो सूता रहै, वाको दुखी बनाउँ ॥२८॥
 तेरा बैरी कोइ नहीं, तेरा बैरी फैल ।
 अपने फैल मिटाय ले, गली गली कर सैल ॥२९॥
 अकास जा पाताल जा, फोड़ि जाहु ब्रह्मंड ।
 कहैं कबिर मिटिहै नहि, देह धरे का दंड ॥३०॥
 लिखा मिटै नहि करमका, गुरु कर भज हरिनाम ।
 सीधै मारग नित चलै, दया धर्म बिसराम ॥३१॥

स्वाद को अंग ।

खट्टा मीठा चरपरा, जिभ्या सब रस लेय ।
 चोरोँ कुतिया मिळि गई, पहरा किसका देय ॥ १ ॥
 खट्टा मीठा देखि के, रसना मेलै नीर ।
 जब लग यन पाको नहीं, काचो निपट कथीर ॥ २ ॥
 जीभ स्वाद के कूप में, जहाँ हलाहल काम ।
 अंग अविद्या ऊपजै, जाय द्विये ते नाम ॥ ३ ॥
 अहार करै मन भावता, जिभ्या केरे स्वाद ।
 नाक तलक पूरन भरै, वयो कहिये वे साध ॥ ४ ॥

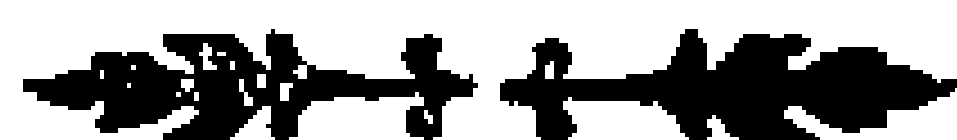
माखी गुह में गडि रहा, पंख रहा लपटाय ।
 तारी पीटै सिर धुनै, लालच बुरी बढाय ॥ ५ ॥
 मुंड मुंडाया मुक्ति को, सालन कुं पछिताय ।
 गोडा फूटै जोग विन, लोगन सों सिथलाय ॥ ६ ॥
 रुखा सुखा खाय के, ठंडा पानी पीव ।
 देखि पराई चुपडी, मत ललचावै जीव ॥ ७ ॥
 आधी औ रुखी भली, सारी सोग सँताप ।
 जो चाहैगा चुपडी, बहुत करैगा पाप ॥ ८ ॥
 कवीर साईं मूझ को, रुखी रोटी देय ।
 चुपडी मांगत मैं हरुं, मत रुखी छिन लेय ॥ ९ ॥
 अँन पानी का हार है, स्वाद संग नहि जाय ।
 जो चाहै दीदार को, चुपडी चरै बढाय ॥ १० ॥
 जिभ्या कर्म कछोटरी, तानों गुह में त्याग ।
 कवीर पहिले त्यागि के, पीछे ले त्रेराग ॥ ११ ॥
 जिभ्या कर्म कछोटरी, जो तीनों बम होय ।
 राजा परजा जमपुरी, गंजि सकै नहि कोय ॥ १२ ॥
 खाश मीठा खाय कर, करे इन्द्रियाँ मोग ।
 सो कैमे जा पहुँचही, साहिबजी के लोग ॥ १३ ॥

६. सालन—मधुरव्यजन । गोडा ... दिम्बाऊ आसनोंसे ।

१०. हार—आहार । ११. जिम्प्या—स्वाद । कर्म—कुर्म ।

कछोटरी—विषय ।

मासाहार को अंग ।



मांसाहारी	मानवा,	परतछ राछस अग ।
ताकी संगति मति करो,		पडत भजन में भंग ॥ १ ॥
मांसाहारी	मानवा,	परतछ राछस जान ।
ताकी संगति मति करै,		होय भाक्ति में हान ॥ २ ॥
मांस खाय ते ढेड सब,		मद पीवै सो नीच ।
कुल की, दुरमति परिहरे,		राम कहै सो ऊंच ॥ ३ ॥
मांस मछलियाँ खात हैं,		सुरा पान सो हेत ।
ते नर नरके जाहिगे,		माता पिता समेत ॥ ४ ॥
मांस मछलियाँ खात हैं,		सुरा पान सो हेत ।
ते नर जड से जाहिगे,		ज्यों मूरी का खेत ॥ ५ ॥
मांस भक्षै मदिरा पिबै,		धन बेन्वासो खाय ।
जूआ खेलि चोरी करै,		अन्त समूला जाय ॥ ६ ॥
मांस मांस सब एक है,		मुरगी हिरनी गाय ।
आँख देखि नर खान हैं,		ते नर नरक हि जाय ॥ ७ ॥
यह कूकर को भक्ष है,		मनुष देह क्यों खाय ।
सुख में आमिष मेलिहै,		नरक पडे मो जाय ॥ ८ ॥
ब्राह्मन राजा वरन का,		औरों कौम छनीस ।
रोटी ऊपर माछली,		सबही चरन खरीस ॥ ९ ॥

कलियुग केरे ब्राह्मना,	मांस मछलियाँ खाय ।
पाँच लगेँ सुख मानही,	राम कहै जरि जाय ॥१०॥
पाँच पुजावै बैठि के,	भखै मांस मद द्योय ।
तिनकी दीच्छा मुक्ति नहीं,	कोटि नरक फल होय ॥११॥
सकल वरन एकत्र है,	सक्ति पूजि मिलि खँदि ।
हरि दासन की भ्रान्ति करि,	केवल जमपुर जॉहि ॥१२॥
विष्ठा का चौका दिया,	हांडी सीझै हाड ।
छत बरावै चाम की,	ताका गुरु है रांड ॥१३॥
जीव इनै हिंसा करै,	प्रगट पाप सिर होय ।
पाप सवन जो देखिषा,	पुन न देखा कोय ॥१४॥
जीव इनै हिंसा करै,	प्रगट पाप सिर होय ।
निगम सुनी अस पाप ते,	भिस्त गया नहि कोय ॥१५॥
इनिया सोई हंसी,	भावै जान बिजान ।
कर गहि चोटी तानसी,	साहिव के दीवान ॥१६॥
तिष्ठ भर मछली खाय के,	कोटि गऊ दे दान ।
कासी करवत ले मरै,	तौ भी नरक निदान ॥१७॥
काटा कूटी जो करै,	तै पाखंड को भेष ।
निश्चय राम न जानहीं,	कहै कविर संदेस ॥१८॥
बकरी पाती खात है,	ताकी काढ़ी खाल ।
जो बकरी को खात है,	तिनका कौन हवाल ॥१९॥

आठ बाट बकरी गई,	मांस मुल्लों गय खाय ।
अजहूँ खाल खटोक के,	भिरन कहाँ ते जाय ॥२०॥
अंडा किन विसमिल किया,	घुन किन किया हलाल ।
मछली किन जबहै करी,	सब खाने का खयाल ॥२१॥
अँडे किन विसमिल किये,	मछली किया हलाल ।
जिभ्या के रस स्वाद में,	यह नर भया बेहाल ॥२२॥
मुलना तुझ करीम का,	कब आया फरमान ।
दया भाव हिरदै नहीं,	जबह करै हैवान ॥२३॥
काजी तुझ करीम का,	कब आया फरमान ।
घट फोड़ा घर घर किया,	साहिब का नोसान ॥२४॥
काजी का बेटा मुआ,	उरमें मालै पीर ।
बह माहेब सबका पिता,	मला न मानै बीर ॥२५॥
पीर मवन को एकसी,	मूरख जानै नाँहि ।
अपना गला कटाय के,	भिस्त बसै क्यों नाँहि ॥२६॥
सुरगी मुलना सो कहै,	जबह करत है मोहि ।
साहिब लेखा मांगसी,	संकट पडि है तोहि ॥२७॥
कबीर काजी स्वाद बस,	जीव हनत है मोय ।
बहि पमीन एकै कहै,	दरगह सांचा होय ॥२८॥
काजी मुलना भरमिया,	चले दुनी के साथ ।
दिल सों दीन निवारिया,	करद लई अब हाथ ॥२९॥

काका मुँह करि करद का, दिल सों दुई निवार ।
 सबही रुह सुभान की, अहमक मुला न मार ॥३०॥
 जोर करी जिबहै करै, मुख सों कहै हलाल ।
 साहिब लेखा मांगसी, होसी कौन हवाल ॥३१॥
 जोर किये ते जुलुम है, माँगै जवाब खुदाय ।
 खालिक दर सूनी पहा, मार सुँही मुँह खाय ॥३२॥
 गला काटि कलमा भरै, कीया कहै हलाल ।
 साहिब लेखा मांगसी, तबही कौन हवाल ॥३३॥
 गला काटि विसमिल करै, ते काफिर बेवृत्त ।
 औरन को काफिर कहै, अपना कुफर न सूझ ॥३४॥
 गला गुसा को काटिये, मियाँ कहर को मार ।
 जो पांचौं विसमिल करै, तब पाँच दीदार ॥३५॥
 यह सब झूठी बंदगी, बिरिया पाच निमाज ।
 सौच हि मारै झूठ पढ़ि, काजी करै अकाज ॥३६॥
 कबीर चाला जाय था, आगे मिले खुदाय ।
 मीरां तुझ सो कब कही, कब फरमाई गाय ॥३७॥
 सेख सवूरी बाहिरा, हाँका जम के जाय ।
 जिन का दिल साबुत नहीं, तिन को कहा खुदाय ॥३८॥

३०. सुभान—खुदा। रुह—जीव । ३२. खालिक—मानिक ।

३३. कुफर—अपराध ।

कबीर तेई पीर हैं, जे जानै पर पीर ।
 जे पर पीर न जानहीं, ते काफिर बेपीर ॥३९॥
 खुश खाना है खीचड़ी, माँहि पडा दुक लौन ।
 मास पराया खाय के, गला कटावै कौन ॥४०॥
 कहना हू कहि जात हू, कहा जु मान हमार ।
 जाका गल तुम काटिहो, सो फिर काटि तुम्हार ॥४१॥
 हिन्दू के दाया नही, मिहर तुरक के नाँहि ।
 कहै कबिर दोनों गये, लख चौरासी माँहि ॥४२॥
 मुसलिम मारै करद सों, हिन्दू मार तरवार ।
 कहै कबिर दोनों मिली, जै हैं जम के द्वार ॥४३॥
 अजामेध गोमेध जग, अश्वमेध नरमेध ।
 कहै कबीर अधर्म को, धर्म बतावै वेद ॥४४॥
 अंकुर भवै सो मानवा, मांस भखै सो स्वान ।
 जीव वधै सो काल है, सदा नरक परमान ॥४५॥
 जीव जीव सब एक हैं, जिव का करो विचार ।
 विन सांसा का जीव है, ताका करो अहार ॥४६॥
 जो जाको काटे, सो फिर ताहे बाटे ।
 कहै कबिर ना छूटे, सामा सामी साटे ॥४७॥

नशा को अंग ।



कलियुग काल पठाइया,	भांग तमाखू फीम ।
ज्ञान ध्यान की सुधि नही,	वसै इन्हीं की सीम ॥ १ ॥
भांग तमाखू छतरा,	आफू और सराव ।
कौन करेगा बंदगी,	ये तो भये खराव ॥ २ ॥
अमल मांढि औगुन कठा,	कहो मोहि समुझाय ।
उत्तर प्रश्न हि में सुनो,	मन की संसै जाय ॥ ३ ॥
भांग भलै बल बुद्धि को,	आफू अहमक होय ।
दोय अमल औगुन कठा,	ज्ञानवंत नर जोय ॥ ४ ॥
औगुन कहं सराव का,	ज्ञानवंत सुनि लेय ।
मानुष सों पसुवा करै,	द्रव्य गांठि का देय ॥ ५ ॥
काम हरकत बल घटै,	तृष्णा नाहीं ठौर ।
ढिग हैं बैठे दीन के,	एक चिलम भर और ॥ ६ ॥
पानी पिरथी के हते,	धूँवा सुनि के जीव ।
हुके में हिंसा घनी,	क्यों करि पावै पीव ॥ ७ ॥
छाजन भोजन हक है,	और अनाहक लेय ।
आपन दोजख जात है,	औरों दोजख देय ॥ ८ ॥
गड जो बिष्टा भच्छई,	विष तमाखू भंग ।
सस्तर बांधै दरसनी,	यह कलियुग का रंग ॥ ९ ॥

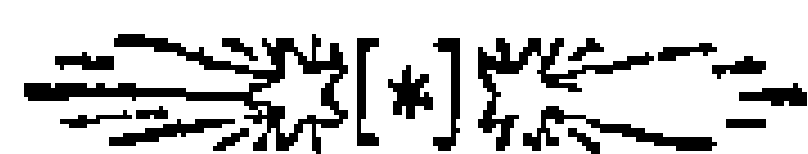
९. दरसनी—साधु ब्राह्मण ।

अमल अहारी आनमा, कचहुं न पावै पार ।
 कहैं कबीर पुकारि के, त्यागो नाहि विचार ॥१०॥
 मद तो बहुतक भाति का, नाहि न जानै कोय ।
 तन मद मन मद जाति मद, माया मद सब लोय ॥११॥
 विद्या मद औ गुन हि मद, राज मद उन मद ।
 इतने मद को रट करै, तव पावै अनहद ॥१२॥
 मैं मतवाला नाम का, मद मतवाला नाँहि ।
 माय पियाला जो पिये, सो मतवाला भाहि ॥१३॥
 भांग तमाखू छूतरा, जन कबीर जे खाँहि ।
 योग यज्ञ जप तप किये, सबै रसातल जाँहि ॥१४॥
 भांग तमाखू छूतरा, सुरापान लै घूट ।
 कहैं कबिर ता जीव का, धर्मराय सिर कूट ॥१५॥
 भांग तमाखू छूतरा, इनसे करै पियार ।
 कहैं कबिर सो जीयरा, बहुत सहै सिर मार ॥१६॥
 भांग तमाखू छूतरा, परनिदा परनार ।
 कहैं कबिर इनको तजे, तव पावै दीदार ॥१७॥
 भांग तमाखू फीम को, दौड दौड करि लेहि ।
 कहैं कबिर हरि नाम को, पीछे ही पग देहि ॥१८॥
 भांग तमाखू गाढका, राम नाम के नाँहि ।
 कहैं कबिर जनमे मरै, लख चौरासी माँहि ॥१९॥

सुरापान अचबन करै,	पिये तमाखू भंग ।
कहै कवीरा राम जन,	तामैं दंग कुदंग ॥२०॥
सुरापान अचबन करै,	पिये तमाखू भंग ।
कहै कवीरा राम जन,	ताको करो न संग ॥२१॥
राखें वरत एकादसी,	करै अन्न को त्याग ।
भाग तमाखू ना तजै,	कहै कवीर अभाग ॥२२॥
हरिजन को सोहै नही,	हुका हाथ के माँहि ।
कहै कवीरा रामजन,	हुका पीवै नाँहि ॥२३॥
हुका तो सोहै नहीं,	हरिदासन के हाथ ।
कहै कवीर हुका गई,	ताको छोडो साथ ॥२४॥
अमली के बैठी मती,	एक पलक हू पास ।
संग दोष तोहि लागि है,	कहै कवीरा दास ॥२५॥
अपली हो बहु पापसे,	नमुझत नाहीं अंध ।
कहै कवीरा अपलि को,	काल चढ़ावै कंध ॥२६॥
जह लग अमल हराम सब,	दोउ दीन के माँहि ।
कहै कवीरा रामजन,	अमली हुई नाँहि ॥२७॥
मौँडी आवै बास मुख,	हिरदा होय मलीन ।
कहै कवीरा रामजन,	मांगि चिलम नहि लीन ॥२८॥
मुख में थूकन दे नहीं,	मूँहर कोइ जन देहि ।
कहै कवीर या चिलम को,	जूठ जगत मुख छेहि ॥२९॥

आन अमल मव त्यागि के, राम अमल जब खाय ।
 जन कबीर भाजै भरम, और न कछु मुहाय ॥३०॥
 नाम अमल को छोड़ि के, और अमल जो खाय ।
 कहैं कविर नेहि परिहरो, गुरु के सङ्ग समाय ॥३१॥
 कबीर प्याला प्रेम का, अंतर लिया लगाय ।
 रोम रोम में रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥३२॥

विवेक को अंग ।



फूटी आंख विवेक की, लखै न संन असंत ।
 जाके मंग दस बीस हैं, ताका नाम महंत ॥ १ ॥
 जबलग नही विवेक मन, तब लग लगै न तोर ।
 भौसागर नामी तिरै, सतगुरु कहै कबीर ॥ २ ॥
 मगटे प्रेम विवेक दल, अप्रय निसान बजाय ।
 ऊग्र ज्ञान उर आव ते, जग का मोह नसाय ॥ ३ ॥
 गुरु पसु नरपसु नारि पसु, वेद पसू संसार ।
 मानुष ताको जानिये, जाको विमल विचार ॥ ४ ॥

कहैं कवीर पुकारि कै, स-त विवेकी होय ।
 जामें सब्द विवेक है, छत्र धनी है सोय ॥ ५ ॥
 जीव जन्तु जल हर बसै, गये विवेक जु भूल ।
 जल के जलचर यौ कहैं, हम उडगन सम दूल ॥ ६ ॥
 प्रान काल के जाल में, आय गये तिहि पाँहि ।
 जल के जलचर यौ कहैं, उडगन पति जु नाँहि ॥ ७ ॥
 हरिजन ऐसा चाहिये, जाके ज्ञान विवेक ।
 बाहर मिलवा सों मिलै, अन्तर सब सो एक ॥ ८ ॥
 राम राम सब कोइ कहै, कहने पाँहि विवेक ।
 एक अनेकै फिर मिलै, एक समाना एक ॥ ९ ॥
 साधू मेरे सब बडे, अपनी अपनी ठौर ।
 सब्द विवेकी पारखी, सो माधे की पौर ॥ १० ॥

विचार को अंग ।



कवीर सोच विचारिया, दूजा कोई नाँहि ।
 आपा पर जब चीन्हिया, उलटि समाना पाँहि ॥ १ ॥
 राम राम सब कोइ बहै, कहने पाँहि विचार ।
 सोइ राम जो सनि कहै, सोई कौतिकहार ॥ २ ॥

६. जलहर—नदी तालाब । ९. एक—वाचकज्ञानी । एक—तत्त्वज्ञानी ।

२. कौतिकहार—तमाशा देखनेवाले ।

आग कहै दासै नहीं, पाँव न दीसै माँहि ।
 जो पै भेद न जानहीं, राम कहा तो काहि ॥ ३ ॥
 पानी केरा पूतला, राखा पवन सँचार ।
 नाना बानी बोलता, जोति धरी करतार ॥ ४ ॥
 आधी माखी सिर कटै, जोरे विचारी जाय ।
 मन हि प्रतीत न ऊपनै, रात दिवस भर गाय ॥ ५ ॥
 आधी साखि कबीर की, जो निरुवारी जाय ।
 चंचल चित निश्चल करै, ज्ञान भक्ति फल पाय ॥ ६ ॥
 कबीर आधा साखि यह, कोटि ग्रंथ करि जान ।
 सत्तनाम जग झूठ है, सुरति सब्द पहिचान ॥ ७ ॥
 सत्तनाम जाना नहीं, पाना नहीं विचार ।
 कहै कबिर यह क्या लहै, मोक्ष मुक्ति का द्वार ॥ ८ ॥
 एक सब्द में सब कहा, सब ही अर्थ विचार ।
 भजिये निस दिन नाम को, तजिये विषय विकार ॥ ९ ॥
 कबीर भूला दगा में, लोग कहै यह भूल ।
 करम हि बाट बतावहीं, भूलत भूला भूल ॥ १० ॥
 नौ मन सूत अरुशिया, कबीर घर घर वार ।
 तिन मुखझाया बापुने, जानी मुक्ति सुरार ॥ ११ ॥

३. मुख की आगि की भाँति मुख का राम झूठा और सच्ची अग्नि की तरह हृदय का राम सच्चा होता है ।

ज्यों आवै त्यों ही कहै, बोलै नहीं विचार ।
 हते पराई आत्मा, जीभ लेय तरवार ॥१२॥
 सब काहु का लीजिये, सांचा सब्द निहार ।
 पक्षपात ना कीजिये, कहै कबीर विचार ॥१३॥
 बोली हमरी पलटिया, या तन याही देस ।
 खारी सों मीठी करी, सतगुरु के उपदेस ॥१४॥
 कबीर हम सब की कहै, हमरी कही न जाय ।
 पूरव की वाता कहै, पच्छिम जाय समाय ॥१५॥
 अपनी अपनी सब कहै, हमरी कहै न कोय ।
 हम अपनी आप हि कहै, करता करै सो होय ॥१६॥
 आज्ञा को घर अमर है, बेटा के सिर भार ।
 तीन लोक नाती ठगा, पड़ित करो विचार ॥१७॥
 जो कहु करै विचार के, पाप पुन ते न्यार ।
 कह कबीर इक जानि के, जाय पुरुष दरवार ॥१८॥
 आचारी सब जग पिछा, विचारी मिछा न कोय ।
 कोटि आनारी वारिये, एक विचारी होय ॥१९॥
 सोइ अच्छर सोई भनै, सोइ जन जावन ।
 अकिलमंद कोइ कोइ मिलै, अपि महारस हि पिवन ॥२०॥
 मेरा तो कोइ है नहीं, अरु मैं किमका नौहि ।
 अन्तर दृष्टि विचारतौ, राम बनै सब मॉहि ॥२१॥

नरपसु गुरुपसु वेदपसु, त्रिया पसु संसार ।
 कहै कबीर सो पसु नहीं, जाके विमल विचार ॥२२॥
 मानुष सोई जानिये, जाहि विवेक विचार ।
 जाहि विवेक विचार नहीं, सो नर दोर गँवार ॥२३॥
 आधी साखि कबीर की, सीखी सुनी न जाय ।
 रति इक घट में संचरै, अमर लोक ले जाय ॥२४॥

धीरज को अंग ।

धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कटु होय ।
 माली सीचै केवडा, रितु आये फल जोय ॥ १ ॥
 धीरे धीरे रे मना, धीरे सब कटु होय ।
 माली सीचै सौ घड़ा, रितु आये फल जोय ॥ २ ॥
 धीरा है धमका सहै, ज्यों अहरन सिर घाव ।
 मेघा परबत है रहो, इत उत कहं न जाव ॥ ३ ॥
 कबीर धीरज के धरे, हाथी मनभर स्वाय ।
 टुक एक के फारनै, स्वान घरै घर जाय ॥ ४ ॥
 कबीर तू काहे डरे, सिरपर सिरजन हार ।
 हाथी चढ़ि करि होलिये, कृकर भुखे हजार ॥ ५ ॥

कबीर भँवर में बैठिके, मौचक मना न जोय ।
 हवन का भय छाँडि दे, करता करै सो होय ॥ ६ ॥
 मैं मेरी सब जायगी, तव आवेगी और ।
 जब यह निहचल होयगा, तव पावेगा ठौर ॥ ७ ॥
 बहुत गई थोरी. रही, व्याकुल मन मत होय ।
 धीरज सब को मित्र है, करी कमाइ न खोय ॥ ८ ॥
 धीरज बुधि तव जानिये, समुझे सब की रीत ।
 उनका अवगुन आप में, कबहु न लावै मीत ॥ ९ ॥
 साहिव की गति अगम है, चल अपने अनुमान ।
 धीरे धीरे पांव धर, पहुँचेगा परमान ॥ १० ॥
 फिकिर (तो) सब को खा गई, फिकिर ही सबका धीर ।
 फिकीर का फाका करै, ताका नाम फकीर ॥ ११ ॥

क्षमा को अंग ।

। ॐ ॐ ॐ

क्षमा बडन को चाहिये, छोटन को उत्पात ।
 कहा विस्नु को घटि गयो, जो भृगु मारी लात ॥ १ ॥
 क्षमा क्रोधको छे करै, जो काहु पे होय ।
 कहै कविर ता दास को, गंजि सकै नहि कोय ॥ २ ॥

भली भली सब कोइ कहै, रही क्षमा ठहराय ।
 कहै कबिर सीतल भया, गई जु अगन बुझाय ॥ ३ ॥
 भली भली सब कोइ कहै, भली क्षमा का रूप ।
 जाके मन हि क्षमा नहीं, सो बूढ़ै भव कूप ॥ ४ ॥
 करगस सम दुर्जन बचन, रहै संतजन द्वार ।
 विजुली पड़े समुद्र में, कहा सकेगी जार ॥ ५ ॥
 काच कथीर अधीर नर, जतन करत है भंग ।
 साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रंग ॥ ६ ॥
 काचै को क्या ताइये, होत जतनमें भंग ।
 साधू कंचन ताइये, चढ़ै सवाया रंग ॥ ७ ॥
 बाद बिबादै विष घना, बोलै बहुत उपाध ।
 मौन गहै सब की सहै, सुमिरै नाम अगाध ॥ ८ ॥
 सबल क्षमी निर्गर्व, धनी, कोमल विद्यावंत ।
 भव में भूपन तीन हैं, औरों सबै अनंत ॥ ९ ॥

शील को अंग ।



शील क्षमा जब उपजै, अलख दृष्टि तब होय ।
 बिना शील पहुँचै नहीं, लाख कथे जो कोय ॥ १ ॥

सील गहे कोइ सावधान,	चेतन पहरे जाग ।
वासन वासन के खिसै,	घोर न सकई लाग ॥ २ ॥
सील मिलावै नाम को,	जो कोइ जानै राख ।
कहै कविर मैं क्या कहूं,	शुकदेव बोलै साख ॥ ३ ॥
सील हि राखि विरक्त मै,	हरि के मार्ग जाँहि ।
साखी गोरख नाथ जो,	अपर भये कलि माँहि ॥ ४ ॥
सीलवत सब सों बड़ा,	सब रतनों की खान ।
तीन लोक की संपदा,	रही सील में आन ॥ ५ ॥
सीलवंत निरमल दसा,	पाँव पड़े हैं चहुं खूट ।
कहै कविर ता दास की,	आस करै वैकुण्ठ ॥ ६ ॥
ज्ञानी ध्यानी संयमी,	दाता सूर अनेक ।
जपिया नपिया बहुत हैं,	सीलवत कोइ एक ॥ ७ ॥
घायल ऊपर घाव लै,	दोष्टे त्यागी मोय ।
भर जोवन में सीलवंत,	विरला होय तो होय ॥ ८ ॥
सुख का सागर सील है,	कोइ न पावै थाह ।
सब्द विना साधू नहीं,	द्रव्य बिन नहि साह ॥ ९ ॥
विषय पियारे प्रीति सों,	सतगुरु अंतर नाँहि ।
जब अन्तर सतगुरु बसै,	विषया सों रुचि नाँहि ॥ १० ॥
आव कहै सों औलिया,	बैठे कहै सो पीर ।
जा घर आव न बैठे है,	सो काफिर बेपीर ॥ ११ ॥

सन्तोष को अंग ।



संतोष हि सद्दिदान है,	सद्वद् हि भेद विचार ।
सतगुरु के परताप ते,	सहज सील मत सार ॥ १ ॥
गोधन गजधन वाजिधन,	और रतन धन खान ।
जब आवै सन्तोष धन,	सब धन धूलि समान ॥ २ ॥
साधु संतोषी सर्वदा,	जिन के निरमल बैन ।
जिन के दरसन परस ते,	जिय उपजै सुख चैन ॥ ३ ॥
चाह गई चिन्ता मिटी,	मनुष्य वे परवाह ।
जिन को कछु न चाहिये,	सो साहन पति साह ॥ ४ ॥
निज आमन संतोष में,	सहज रहनि की ठौर ।
गुरु भजने आमा भई,	ताते कछु न और ॥ ५ ॥
जग सारा दरिद्र भया,	धनवंता नहि कोय ।
धनवंता सोः जानिये,	राम पदार्थ होय ॥ ६ ॥
देनेदारा राम है,	जाय जंगल में बैठ ।
हरि को लेई ऊबरे,	सात पताले पैठ ॥ ७ ॥
कबहुं क मंदिर मालियां,	कबहुं क जंगल वास ।
सब ही ठौर सुहावना,	जो हरि होवै पाम ॥ ८ ॥

५. जिनका हृदय सन्तोष और सहज भाव में स्थिर हो गया वे गुरु भजन के अधिकारी हैं ।

साहेब मेरे मुझ को. लूखी रोटी देय ।
 चुपड़ी पांगत में डरु, लूखी छीन नहि लेय ॥ ९ ॥
 सात गांठ कौपीन की, मन नहि मानै संक ।
 नाप थपल माता रहे, गने इन्द्र को रंक ॥ १० ॥
 चिन्ता मत कर निचिन्त रह, पूरनहार सपर्य ।
 जल थल में जो जीव है, उनकी गांठि न अर्थ ॥ ११ ॥
 चिन्ता ऐसी डाकिनी, काटि करेजा खाय ।
 बेट विचारा क्या करै, कहांतक दवा लगाय ॥ १२ ॥

साच को अंग ।

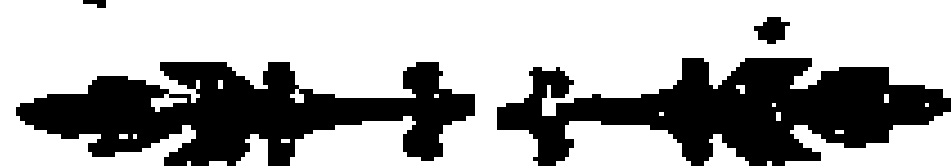


साँच सब्द हिरदै गहा. अलख पुरुष भरपूर ।
 प्रेम प्रीति का चोलना, पहिरै दास हजूर ॥ १ ॥
 साँच बिना सुमिरन नहीं, भय बिन भक्ति न होय ।
 पारस में पडटा रहे, कंचन किहि बिधि होय ॥ २ ॥
 साँचै कोइ न पतोजई, झूठे जग पतियाय ।
 पांच टका की धोपटी, सात टक विक जाय ॥ ३ ॥
 साँचै कोइ न पतोजई, झूठे जग पतियाय ।
 गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि विकाय ॥ ४ ॥

साँच कहै तो मारि है, यह तुरकानी जोर ।
 वात कहं सतलोक की, कर गहि पकडै चोर ॥ ५ ॥
 साँच कहं तो मारि है, झूठे जग पतियाय ।
 यह जग काली कुनरी, जो छेडै तो खाय ॥ ६ ॥
 साँचै को साँच मिलै, अधिका बढ़ै सनेह ।
 झूठै को साँचा मिलै, तड दे तूटै नेह ॥ ७ ॥
 साँच कहै अरु सच सुनै, सत्तनाम की आस ।
 सत्तनाम को जानि करि, जग से रहै उदास ॥ ८ ॥
 साँच हुआ तो क्या हुआ, नाम न साँचा जान ।
 साँचा है साँचै मिलै, साँचै माँहि समान ॥ ९ ॥
 साँई सो साँचा रहो, साँई साँच सुहाय ।
 भावै लंबे केस रख, भावै घोट मुँडाय ॥ १० ॥
 जाकी साची सुरति है, ताका साँचा खेल ।
 आठ पहर चौमठ घडी, है साँई सो मेल ॥ ११ ॥
 जिन नर साँच पिछानिया, करता केवल सार ।
 सो प्रानी काहे चलै, झूठे कुल की छार ॥ १२ ॥
 कबीर लज्जा लोक की, बोलै नाहीं साँच ।
 जानि बूझि कंचन तजै, क्यों तू पकडै काँच ॥ १३ ॥
 नरे अंदर साँच जो, बाहर नाहि जनाव ।
 जिननदारा जानि है, अन्तर गति का भाव ॥ १४ ॥

अब तो हम कंचन भये, तब हम होते काँच ।
 सतगुरु की किरपा भई, दिल अपने का साँच ॥१५॥
 कबीर पूंजी साहु की, तू मति खोवै ख्वार ।
 खरी विगुरचन होयगी, लेखा देती बार ॥१६॥
 कंचन केवल गुरुभजन, दूजा वाच कथीर ।
 झूठा आल जंजाल तजि, पकडा साँच कबीर ॥१७॥
 झूठ बात नहि बोलिये, जबलग पार बसाय ।
 अहो कबीरा साँच गहु, आवागवन नसाय ॥१८॥
 झूठ को झूठा मिलै, अधिका बढै सनेह ।
 झूठा को सीचा मिलै, तब ही हूँ नेह ॥१९॥
 साहेब के दरवार में, साँचे को सिरपाव ।
 झूठ तमाचा खायगा, क्या रंक क्या राव ॥२०॥
 कबीर झूठ न बोलिये, जबलग पार बसाय ।
 ना जानो क्या होयगा, पलके चौथै भाय ॥२१॥
 साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।
 जाके हिरदे साँच है, ताके हिरदे आप ॥ २२ ॥

दया को अंग ।



दया भाव हिरदै नहीं, ज्ञान कथै बेहद ।
 ते नर नरक हि जाहिगे, सुनि सुनि साखी सज्ज ॥ १ ॥

दया कौन पर कीजिये, कापर निर्दय होय ।
 हमतो भये तमाशगी, नाटक बाजी जोय ॥ २ ॥
 दया कौन पर कीजिये, का पर निर्दय होय ।
 साई के सब जीव है, कीडी कुंजर सोय ॥ ३ ॥
 दया दिल् में राखिये, तू क्यों निर्दय होय ।
 साई के सब जीव है, कीडी कुंजर सोय ॥ ४ ॥
 भावै जाओ बादरी, भावै जाय हु गया ।
 कहै कबीर सुनो भाइ साधू, सब ते वड़ी दया ॥ ५ ॥
 दाध कलापी अब दुखो, सुखी न देखी कोय ।
 को पुत्र को बान्धवा, को बनहीना होय ॥ ६ ॥
 दाध कलापी सब दुखी, सुखी न देखी कोय ।
 जहँ जहँ भक्ति कबीर की, तहँ तहँ धीरज होय ॥ ७ ॥
 वैरागी है घर तजा, पग पहिरै पैजार ।
 अन्तर दया न ऊपनै, बनी सहेगा मार ॥ ८ ॥
 वैरागी ह घर तजा, अपना राधा खाय ।
 जीव हते जौहर करै, बांश जमपुर जाय ॥ ९ ॥
 आग जलावै अँन दहै, मोटा आरंभ यह ।
 दीखै जम की जोट में, कीट पतंगा देह ॥ १० ॥
 पाकी ते डाकी भला, तिथि त्योंदारा लेय ।
 जीव सतावै राम का, नित उठि चौका देय ॥ ११ ॥

पाकी को मन पानरे, कै गोवर कै गार ।
 और जनम कहा पाइये, यह तो चाला 'हार ॥१२॥
 चौकै चिजंटी चूल्ह चुन, किरप बहुत जो नाज ।
 कहै कविर आचार यह, जिव को होय अक्राज ॥१३॥
 आचारी सब जग मिला, बीचारी नहि कोय ।
 जाके ठिरिदै गुरु नहीं, जिया अकारथ सोय ॥१४॥
 जहां दया बहै बर्म है, जहां लोभ तहै पाप ।
 जहां क्रोध बहै काल है, जहां क्षमा बहै आप ॥१५॥
 कुंजर मुख से कन गिरा, खुटे न चाको (आ) हार ।
 कीडी कन लेकर चली, पोषन दे परिवार ॥१६॥
 दाता दाता चलि गये, रहि गये मरखी चूप ।
 दान मान समुझे नहीं, लड़ने को मजबूत ॥१७॥
 दया का लच्छन भक्ति है, भक्ति में होवै ध्यान ।
 ध्यान से मिलता ज्ञान है, यह सिद्धांत डरान ॥१८॥
 दया दया सब कोड कहै, बर्म न जानै होय ।
 जात जीव जानै नहीं, दया कहां से होय ॥१९॥
 दया सब हि पर कोजिये, तू क्यों निटय होय ।
 जाको बुद्धि ब्रह्म में, सो क्यों खूनी होय ॥२०॥
 कवीर मोटे पीर है, जो जानै पर पीर ।
 जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर ॥२१॥

दया धर्म का मूल है, पाप मूल संताप ।
जहां क्षमा तहां धर्म है, जहाँ दया तहाँ आप ॥२२॥

दीनता को अंग ।



दीन गरीबी बंदगी, साधुन सों आधीन
ताके संग में यों रहूँ, ज्यौ पानी संग मीन
दीन गरीबी बंदगी, सब सों आदर भाव
कहैं कबिर सोई चढ़ा, जॉम बड़ा सुभाव
दीन गरीबी दीन को, दुंदर को अभिमान
दुंदर तो विष यों भरा, दीन गरीबी जान
दीन लखै सुख सबन को, दीन हि लखै न कोय
भली विचारी दीनता, नर हु देवता होय
इक बानी सो दीनता, सब कछु गुरु दरवार ।
यही भेट गुरु देव की, संतन कियो विचार
जल थल जीव जिने तिते, रहे सकल भरपूर ।
जो दिळ आवै दीनता, साई मिले हजूर ॥ ६ ॥
नहीं दीन नहि दीनता, संत नहीं मिहमान ।
ता घर जम देगा दिया, जीवत भया मसान ॥ ७ ॥

कविर नवै सो आप को,	पर को नवै न कोय ।
घालि तराजू तोलिये,	नवै सो भारि होय ॥ ८ ॥
आपा भेटे पिव मिलै,	पिव में रहा समाय ।
अकथ कहानी प्रेमकी,	कहे तो को पतियाय ॥ ९ ॥
नीचै नीचै सब तिरै,	संत चरन लौ लीन ।
जाति हि के अभिमान ते,	बूढ़े सकल कुलीन ॥ १० ॥
नीचै नीचै सब तिरै,	जिहि तिहि बहुत अधीन ।
चढ़ि वोदित अभिमान की,	बूढ़े ऊंच कुलीन ॥ ११ ॥
बुग जो देखन मै चला,	बुरा न मिलिया कोय ।
जो दिल्ख खोजो आपना,	मुझ सा बुरा न होय ॥ १२ ॥
कवीर सब ते हम बुरे,	हम ते भल सब कोय ।
जिन ऐसा करि बूझिया,	भीत हमारा सोय ॥ १३ ॥
दरसन को तो साधु है,	सुभिरन को गुरु नाम ।
तरवे को आधीनता,	इबन को अभिमान ॥ १४ ॥
नमन खमन अरु दीनता,	सब कूं आदर भाव ।
कहे कविर सोई बड़े,	जामें बढ़ो सुभाव ॥ १५ ॥
मिसरी बिखरी रेत में,	इस्ती चुनी न जाय ।
कीड़ी है करि सब चुनै,	तब साहिब कूं पाय ॥ १६ ॥

विनती को अंग ।



विनवत हूं करजोरि के,	सुन गुरु कृपा निधान ।
संतन को मुख दीजिये,	दया गरीबो ज्ञान ॥ १ ॥
क्या मुख ले विनती करूं,	लाज आवत है मोहि ।
तुम देखत औगुन किया,	कैसे भाऊ तोहि ॥ २ ॥
वनजारी विनती करै,	नरियर लाई हाथ ।
टांडा था सो लटि गया,	नायक नहीं साथ ॥ ३ ॥
औगुन किया तो बहु किया,	करत न मानी द्वार ।
भावे बंदा बख्शिये,	भावे गरदन मार ॥ ४ ॥
औगुन मेरे बापजी,	बख्शो गरीब निवाज ।
मैं तो पूत कपूत हूं,	तोहि पिता को लाज ॥ ५ ॥
मैं खोटा साईं खरा,	मैं गाया मैं गार ।
मैं अपराधी आत्मा,	साईं सरन उवार ॥ ६ ॥

३. टांडा—बेलों का झुंड । दूसरे पक्ष में शरीर । वनजारी से अभिप्राय सुरति से है । और नरियर से मन का अर्थ लिया गया है । और नायक से जीवात्मा का भाव है । ‘मन पतंग माने नहीं चले सुरती के साथ’ इस वचन के अनुसार मन सुरति के पीछे दौड़ता है । मन को बश में करने का एक मात्र साधन सुरति को स्थिर करना है । चौका आरती में नरियर चलाने के समय गाया जाता है कि—‘वनजारिन विनती करे सुनु साजना, नरियर लीन्हों हाथ सन्त मुनु साजना । इस शब्द में समाहित सुरति का वर्णन है जो कि सत्य लोक को ले जानेवाली है ।

मैं अपराधी जनपका, नख सिख भरा विकार ।
 तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो सम्हार ॥ ७ ॥
 सुरति करो मम सांझा, मैं हूँ भोजल माँहि ।
 आपै हि मरि जाऊंगा, जो नहि पकड़ो वाँहि ॥ ८ ॥
 और पतित तो कृप हैं, मैं हूँ समुँद समान ।
 एक डेक गुरु नाम की, मुनियों कृपा निधान ॥ ९ ॥
 औसर बीता अल्पनन, पीव रहा परदेस ।
 कलंक उतारो सांझा, भानो मरम अंदेस ॥ १० ॥
 साँई मेरा सावधान, मैं ही भया अचेत ।
 मन बच करम न गुरु भजा, ताते निष्फल खेत ॥ ११ ॥
 अथ की जो साँई मिले, सब दुख आखूँ रोय ।
 चरनों ऊपर सिर धरुं, कहूँ जो कहना होय ॥ १२ ॥
 कबीर माँई मिलहिंगे, पूछेंगे कुसलात ।
 आदि अन्त की सब कहूँ, उर अन्तर की बात ॥ १३ ॥
 कर जोरै बिनती करुं, भीसागर हि अपार ।
 बंदा ऊपर मिहर करी, आवा गवन निवार ॥ १४ ॥
 मेरा मुझ में कछु नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
 तेरा तुझ को सौंपते, क्या लागत है मोर ॥ १५ ॥
 तेरा तुझ में कछु नहीं, जो कुछ है सो मोर ।
 मेरा मुझ को सौंपते, दिल धडकंगा तोर ॥ १६ ॥

दरस दान मोहि दीजिये, गुरु देवन के देव ।
 और नहीं कलु चाहिये, निस दिन तेरी सेव ॥१७॥
 तुम गुरु दीन दयाल हो, दाता अपरम पार ।
 मैं बूढ़ मैं धार में, पकड़ि लगावो पार ॥१८॥
 अवरन को क्या वरनिये, मो पै वरनि न जाय ।
 अवरन वरनै बाहिरै, करि करि थका जपाय ॥१९॥
 मुझ में इतनी शक्ति क्या, गावूं गला पसार ।
 बन्दे को इतनी घनी, पड़ा रहूं दरबार ॥२०॥
 जब का माई जनमिया, कितै न पाया सुख ।
 डारी डारा मैं फिरूं, पात पात में दूख ॥२१॥
 कबीर मैं तब ही ठरूं, जो मुझ ही में होय ।
 पीच बुढापा आपदा, सब कह को जोय ॥२२॥
 कबीर करत है विनति, सुनो संत चितलाय ।
 मारग सिरजनहार का, दीजै मोहि बताय ॥२३॥
 कबीर यह विनती करै, चरनन चित बसाय ।
 मारग सांचा संत का, गुरु मोहि देव बताय ॥२४॥

जन कबीर वंदन करै,

किस विधि कीजै सेव ।

चार पार की गम नहीं,

नमो नमो निज देव ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

चौरासी अंग

की

साखी ।

॥ सम्पूर्ण ॥

ॐ नमो भगवते वासुदेवाय ॥

प्रश्नोत्तर को अंग ।



गुरु तुम्हाग कदा वसै,	चेला कहां वसाय ।
वयो करिके मिलना भया,	बिडुडे आवै जाय ॥ १ ॥
गुरु हमारा गगन मे,	चेला है चित मॉहि ।
सुरति सब्द मेला भया,	बिडुडन कवटू नॉहि ॥ २ ॥
कदा बुद सायर मिला,	किहि विधि कौन सनेह ।
यह मन में संसै भया,	समुझि अर्थ कहि देह ॥ ३ ॥
गगन बुद सायर मिला,	उत्तम परम सनेह ।
मन का संसै दूर कर,	समुझि अर्थ गहि येह ॥ ४ ॥
सब्द कहां ते उठत है,	कहु कहाँ जाय समाय ।
हाथ पाँव बाँके नहीं,	कैसे पकड़ा जाय ॥ ५ ॥
नाभि कमल ते उठत है,	सुन्न में जाय समाय ।
हाथ पाँव बाँके नहीं,	सुरति से पकड़ा जाय ॥ ६ ॥
सब्द कहां से आइया,	कहां सब्द का भाव ।
कहां सब्द का सोस है,	कहां सब्द का पाँव ॥ ७ ॥

सब्द ब्रह्मण्ड ते आड्या,	मध्य सब्द का भाव ।
ज्ञान सब्द का सीस है,	अज्ञान सब्द का पाँव ॥ ८ ॥
कौन सब्द की नावरी,	कौन सब्द असवार ।
कौन मब्द की डोर है	कौन उतारै पार ॥ ९ ॥
साँच सब्द की नावरी,	अकड़ सब्द असवार ।
सुरति सब्द की डोर है,	तुझै उतारै पार ॥ १० ॥
कौन सरोवर पानि विन,	कौन मीच विन काल ।
कौन सु परिमल वास विन,	कौन त्रिच्छ विन डाल ॥ ११ ॥
मान सरोवर पानि विन,	निंद मीच विन काल ।
मब्द सु परिमल वाम विन,	सुरति त्रिच्छ विन डाल ॥ १२ ॥
कौन कसै कसबाव को,	कौन जु लेय लुटाय ।
यह संसै जिय है रहा,	साधु कहीं समुझाय ॥ १३ ॥
काल कसै कसबाव करम,	सतगुरु लिया लुटाय ।
कहै कबीर पुकारि के,	सुनो मंत चित लाय ॥ १४ ॥
कबीर मन मैला भया,	याँपे बहुत विकार ।
यह मन कैसे धोइये,	साधू करो विचार ॥ १५ ॥
गुरु धोवी सिप कापडा,	साधुन सिरजनहार ।
सुरति सिला पर धोइये,	निकसे रंग अपार ॥ १६ ॥
कबीर काया को झगो,	साँई साधुन नाम ।
राम हि, राम पुकारता,	धोया पाँचों ठाम ॥ १७ ॥

इस तन में मन कहँ वसै,
 गुरुगम है तो परखि ले,
 नैनो माहीं मन वसै,
 गुरु गम भेद बताइया,
 दूध फाटि घृत कहँ गया,
 तन छूटै मन कहाँ रहै,
 दूध फाटि घृत दूध मिला,
 तन छूटै मन तहँ गया,
 कौन पवन घर संचरै,
 नाद बिंदु जब ना हता,
 हुलस पवन घर संचरै,
 नाद बिंदु जब ना हता,
 सकल पसारा पवन का,
 कौन नाम उस पवन का,
 सकल पसारा पवन का,
 सोहं नाम उस पवन का,
 कौन पवन धरती वसै,
 कौन पवन मध्ये वसै,
 धीर पवन धरती वसै,
 मधुर पवन मध्ये वसै,

निकसि जाय किहि ठौर ।
 नातर कर गुरु और ॥१८॥
 निकसि जाय नौ ठौर ।
 सब संतन सिर मोर ॥१९॥
 कांसा फूटी नाद ।
 जानै विरला साध ॥२०॥
 नाद मिली आकास ।
 जहाँ धरी मन आस ॥२१॥
 कहाँ किया परकास ।
 तब कहँ किया निवास ॥२२॥
 पंचम किय परकास ।
 तत्त्व हि किया निवास ॥२३॥
 सात दीप नौ खंड ।
 जो गरजै ब्रह्मंड ॥२४॥
 सात दीप नौ खंड ।
 जो गरजै ब्रह्मंड ॥२५॥
 कौन पवन आकास ।
 कौन पवन परकास ॥२६॥
 अगह पवन आकास ।
 अगर पवन परकास ॥२७॥

कौन पवन ले आवई,	कौन पवन ले जाय ।
कौन पवन भरमत फिरै,	सो मोहि देहु बताय ॥२८॥
सहज पवन ले आवई,	सुरति पवन ले जाय ।
जीव पवन भरमत फिरै,	कहैं कविर समुझाय ॥२९॥
तन का मंजन नीर है,	नीर हि मंजन पौन ।
कहैं कविर सुन पंडिता,	पौन का मंजन कौन ॥३०॥
तन का इन्दी मैल है,	मन पवना ले धोय ।
ज्ञान जु गुरु सों पाइये,	पौन का मंजन सोय ॥३१॥
कौन देस ते आइया,	कौन तुम्हारा ठाम ।
कौन तुम्हारी जाति है,	कौन पुरुष को नाम ॥३२॥
अमर लोक ते आइया,	सुखसागर है ठाम ।
जाति अजाति मेरी है,	सत्त पुरुष का नाम ॥३३॥
कौन तुम्हारी जाति है,	कौन तुम्हारा नाँव ।
कौन तुम्हारा इष्ट है,	कौन तुम्हारा गाँव ॥३४॥
जाति हमारी आत्मा,	मान हमारा नाँव ।
अलख हमारा इष्ट है,	गगन हमारा गाँव ॥३५॥
कहां से आया जीव यह,	किस में जाय समाय ।
कौन डोर से चढ़ि चला,	कहो मुखे समुझाय ॥३६॥
सुरगुन आया जीव यह,	निगुन जाय समाय ।
सुरति डोरि ले चढ़ि चला,	सतगुरु दिया बताय ॥३७॥

कौन सुरति ले आवई,
 कौन सुरति द अस्थिरी,
 वास सुरति ले आवई,
 परिचय सुरति अस्थिरी,
 कौन राम दशरथ घर डोलै,
 कौन राम का सकल पसारा,
 आकार राम दसरथ घर डोलै,
 हुंद राम का सकल पसारा,
 धरती तो रोटी भई,
 पुछो अपन गुरु को,
 धीरज तो रोटी भई,
 कहे कबीरा बैठि कै,
 कौन साधू का खेल है,
 कौन अमी का रूप है,
 छिमा साधू का खेल है,
 सतगुरु अमृत रूप है,
 धरती अन्न जायंगे,
 एकमेक है जायंगे,
 एकामेकी । होन दे,
 धरती अन्न जान दे,

कौन सुरति ले जाय ।
 सो गुरु देहु बताय ॥३८॥
 सबद सुरति ले जाय ।
 सो गुरु दिया बताय ॥३९॥
 कौन राम घट घट में बोलै ।
 कौन राम त्रिगुन से न्यारा ४०
 निराकार घट घट में बोलै ।
 निरालंब सब ही सो न्यारा ४१॥
 कागा लीया जाय ।
 कछो बैठि के खाय ॥४२॥
 कुदृष्टि कागलिय जाय ।
 बाद वृक्ष पर खाय ॥४३॥
 कौन सुरति का दाव ।
 कौन वज्र का घाव ॥४४॥
 सुमति सुरति का दाव ।
 सबद वज्र का घाव ॥४५॥
 बिनसैगा कैलास ।
 तब कहै रहेंगे दास ॥४६॥
 बिनसन दे कैलास ।
 मोमें मेरे दास ॥४७॥

कै रती भर सुरति है, कै रती भर काम ।
 कै रती भर माया है, कै रती निज नाम ॥४८॥
 सोरा रतिभर सुरति है, छत्तीस रति भर काम ।
 माया महम रती भरै, एक रती निज नाम ॥४९॥
 कौन जगावै ब्रह्म को, कौन जगावै जीव ।
 कौन जगावै सुरति को, कौन मिलावै पीव ॥५०॥
 विरह जगावै ब्रह्म को, ब्रह्म जगावै जीव ।
 जीव जगावै सुरति को, सुरति मिलावै पीव ॥५१॥
 जीवत जीव कहँवाँ बसै, सुये वसै किहि ठौर ।
 कै नो याको अर्थ कर, नातर गुरु कर और ॥५२॥
 जीवत जीव हिरदै बसै, सुये पुरुष के पास ।
 दया भड जव कबीर की, तब पायो उमदाम ॥५३॥
 कै मासे भर नाम है, कै मासे भर पान ।
 कै मासे भर पुरुष है, जाको धरिये ध्यान ॥५४॥
 अठ मासे भर नाम है, नौ मासे भर पान ।
 सोरा मासे पुरुष है, जाको धरिये ध्यान ॥५५॥

५३ नामजप वा जपयोग आठ मासा है अर्थात् आठ फल का देनेवाला है । और अमृत पान नव मासा अर्थात् उससे कुछ अधिक फलदायक है । और पुण्य साक्षात्कार तो सोरह मासा है अर्थात् पूर्णवद को देनेवाला है । “ पुरुषाज पर किंचिन् सा काष्ठा सा परा गति ”

श्रोता वक्ता कौन घर,	जब नर आवै नींद ।
सब्द विराजै कौन घर,	बूझौ कपिल सुनींद्र ॥५६॥
सब्द जाय दरवार में,	ब्रह्म रत्न के नीर ।
श्रोता वक्ता सब्द संग,	सुनि सों कहै कबीर ॥५७॥
नाद नहीं था बिंदु नहीं था,	करम नहीं था काया ।
अलख पुरुष के जीभ नहीं थी,	सब्द कहा ते आया ॥५८॥
नाद नहीं था बिंदु नहीं था,	करम नहीं था काया ।
अलख पुरुष के जीभ नहीं थी,	सब्द सुन ते आया ॥५९॥
बोलता बहु कहँ वसै,	केतिक रूप सरूप ।
कै पखुरि की सुरति है,	केतिक वस्तु अनूप ॥६०॥
बोलता मध्य द्वि में वसै,	हरा परन सरूप ।
सात पखुरि की सुरति है,	किंचित् वस्तु अनूप ॥६१॥
साखी सब्दी कब कही,	मौन रहै मन माँहि ।
बिदुग था कब ब्रह्म मो,	कहिवे को कहु नाँहि ॥६२॥
साखी सब्दी जब कही,	तब कहु जाना नाँहि ।
बिदुग था तब ही मिला,	अब कहु कहना काँहि ॥६३॥
हाथ पाँव सुख सीस धरि,	वेगर वेगर नाम ।
कहै कबीर विचारि के,	तोर नाम कहँ ठाय ॥६४॥
हाथ पाँव सुख सीस धरि,	वेगर वेगर नाम ।
कहै कबीर विचारि के,	मोर नाम सब ठाय ॥६५॥

सोई सीप समुद्र में,	सोइ सीप नदी नाल ।
मोती क्यों नहि नीपजै,	पंडित करो विचार ॥६६॥
सीप सीप सब एक है,	सब जग बरसै स्वांति ।
मोती यों नहि नीपजै,	कोह कुबुधि बहु भाति ॥६७॥
सीप भई जो गरमसी,	ढरकि जाय सब नीर ।
स्वांति सनेही ना मिलै,	यों कहै दास कवीर ॥६८॥
माटी में पाटी मिली,	मिला पवन सों पौन ।
में तोहि घुंघूं पंडिता,	दो में मूआ कौन ॥६९॥
कुमति हती सो मिटि गई,	पिटयो बाद हंकार ।
दोनों का भेला मुआ,	कहै कवीर विचार ॥७०॥
कुमति किसकी मिटि गई,	किसका मिटा हंकार ।
क्यों करिके भेला हुआ,	सो मोहि कहो विचार ॥७१॥
कुमति चित की मिटी गई,	मिटि गय मन हंकार ।
दोनों का झगडा मिटा,	कहै कवीर विचार ॥७२॥
काम क्रोध मृतक सदा,	मृतक लोभ समाय ।
ये मृतक संग देह के,	कहु कैसे करि जाय ॥७३॥
काम क्रोध मृतक सदा,	मृतक लोभ समाय ।
झील सरोवर न्हाइये,	तब यह मृतक जाय ॥७४॥

॥ सन्ध्याम ॥

श्री विचार साहेब
की
विरल टीका-टिप्पणी के सहित
सद्गुरु कबीर साहब
का
साखी-ग्रंथ ।

॥ समाप्त ॥

अनुक्रमणिका ।

(अकाशदिक्रमसे)

अ	अग ।	पृष्ठ ।	साखी ।
ॐकार निश्चै भया,	सुमिरन ।	११८,	२४
अकथ कथा या मन हि की,	मन ।	२४६,	८६
अकल अरस सों ऊतरी,	भर्मनिधिस ।	२७३,	४५
अकल बिहना आदमी,	”	”	४१
अकल बिहना आँधरा,	”	”	४३
अकल बिहना सिध ज्यों,	”	”	४२
अकास जा पाताल जा,	कर्म ।	४१८,	३०
अकास बेरी अमृत फल,	परिचय ।	१५०,	१३०
अगन नहीं जहँ तप करै,	”	१४४,	८३
अगम अगोचर गम नहीं,	”	१४१,	४०
अगम पथ कू पग बरे,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७९,	४०
अगम पथ को चालतों,	गुरु पारख ।	३२,	१०
अगम पथ को मन गया,	बेहद ।	३३९,	२०
अगम पथ मत थिर करै,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७५,	५
अगम हतासो सुगम किया,	”	”	६
अगम हुते जो अगम है,	”	”	४
अगर तिलक मर सोहइ,	भेष ।	७०,	८
अगह मरै र अगइ कहै,	बेहद ।	३३०,	१८

अगुवानी तो आइया,	परिचय ।	१४०,	३९
अघट मया खटपट मिटे,	मन ।	२६६,	१४
अचर चै चर परिहरै,	विपर्यय ।	२५४,	३९
बड़े पुरुष एक पेड़ है,	निजकर्ता ।	३६९,	१
अजगर करै न चाकरी,	समर्थ ।	३०६,	४५
अजर जु धान अतीत का,	भेष ।	८७,	८१
अजपा सुमिरन घट विषे,	सुमिरन ।	१३०,	१३४
अजहू तेरा सत्र मिटे,	गुरु मुख पाने भेद । पडित ।	३८४,	३६
” ” ” जो जग माने हार । जीवतमृतक ।	” ”	३३४,	४०
” ” ” जो मन रखै ठौर	” ”	”	४१
” “ ” ” जो मानै गुरु सीख । मोख ।	” ”	८८,	६
अजामेध गोमेय जग,	मासाहार ।	४१६,	४४
अठ मासे भर नाम है,	प्रश्नोत्तर ।	४४९,	५५
अडसठ तीरथ निंदक न्हाइ,	निन्दा ।	३८६,	२३
अतिका भला न बोलना,	मव्य ।	३१७,	२८
अति हठ मति कर बाबरे,	टपदेस ।	३०१,	८१
अग्रम कथ्य सब काल के,	काल ।	३००,	७८
अधिक सनेही माछी,	प्रेम ।	१५४,	४१
अनल अक्रासे घर किया,	मध्य ।	३१४,	३
अनल पखि आये नहीं,	”	”	४
अनल पखि का चेट्या,	”	”	५
अनहद बाजै निझर शेर,	अविहट ।	३४२,	६
अनजाने का कूकना,	पारख ।	३५७,	५१
अनमागा अन्तिम कहौ,	मोख ।	८८,	९

जनमागा तो ज्यति भला,	”	”	८
अनमिलता सों सग करे,	सगति ।	९७,	७५
अनराते सुख सोयना,	सेवक ।	१०१,	२७
अन वैरनव कोई नहीं,	साधु ।	६१,	७३
अनन्त कोटि ब्रह्मांड का,	निजकर्ता ।	३७३,	३५
अन-याही आकास है,	बेली ।	३५९,	३
अनेक बधन सें प्राधिया,	समर्थ ।	३०६,	४९
अपना तो कोई नहीं, देखा ठोकि बजाय ।	मोह ।	३९४,	१४
” ” ” हम काहू के नाहि ।	”	”	१३
अपनी अपनी सब कहैं,	विचार ।	४२३,	१६
अपने अपने चोर को,	मन ।	२७२,	७९
अपने उरसे उरझिया,	”	२७०,	५९
अपने पहरे जागिये,	सुमिरन ।	१२३,	७६
अब की जो साई मिले,	चिन्ती ।	४३७	१२
अब तू काहे को डरे,	विश्वास ।	२१३,	३३
अब तो ऐसी द्वे पडी, ना तुवरी ना बेलि ।	विपर्यय ।	२५४,	४२
” ” ” मन अति निरमल कीन्ह ।	सती ।	२१४,	१
अब तो जूझो हि बनें,	सुरमा ।	२२९,	३६
अब तो मैं ऐसा भया,	लगनी ।	३६८,	२६
अब तो हम कचन भये,	साच ।	४३१,	१५
अब हम चले अमरापुरी,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७५,	७
अवरन को क्या बरनिये,	चिन्ती ।	४३८,	१९
अवरन बरन अमूर्त जो,	गुरुदेव ।	११,	५९
अविहड अखडित पीय है,	अविहड ।	३४१,	१

अबुध सुबुध सुत मातपितु,
 अभिमानी कुजर भये,
 अमर कुज कुरलाइया,
 अमर लोक ते आइया,
 अमरापुर को जात हों,
 अमल अहारी मानवा,
 अमल माँहि अवगुन कहा,
 अमली के बैठो मति,
 अमली हो बहु पापसें,
 अमृत केरी मोटरी,
 अमृत पाने ते जना,
 अलख अलख सब कोइ कहै,
 अलख इलाही एक है,
 अलख पुरुष की आरसी,
 अलख लखा ललच लगा,
 अलठ अकिल जानै नहीं
 अकमस्त फिरै क्या होत है,
 अविगति पिसै पीसना,
 अविनासी की सेज का,
 अविनासी की सेज पर,
 अविनासी बिच धार तिन,
 अस औसर नहि पाइ हो,
 असुर रोग उत्पति भया,
 असुरी माया आप हि,

गुरुदेव ।	१५,	८०
मद ।	३९५,	१०
विरह ।	१६०,	२
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३३
चानक ।	३०९,	२५
नशा ।	४१८,	१०
„	४१७,	३
„	४१९,	२५
„	„	२६
प्रेम ।	१५६,	५३
„	„	५४
निजकर्ता ।	३७१	१९
एकता ।	३२३,	१
साधु ।	५९,	५५
परिचय ।	१३७,	२०
भर्मविषय ।	३४६,	४६
उपदेस ।	१९३,	६३
निजकता ।	३७१,	१६
विरह ।	१६९,	८४
„	„	८५
कनक-कामिनी ।	२८६,	७
सुमिरन ।	१२१,	५५
निजकर्ता ।	३७२,	३२
माया ।	२८५	७३

अंहार करे मन भावता,
 अहिरन की चोरी करे,
 अहिरन मारे काख में,
 अहं अग्नि हिरदै नरे,
 अहं भई - जो इस्तरी,
 अहंता नहि आनिये,
 अंक मरे भरि भेटिया,
 अंकुर भखै सो मानुवा,
 अँखियन तो झाँई पडी,
 अँखिया प्रेम कसाइया,
 अंडज स्येदज उदभिज,
 अंडा किन विसमिल किया,
 अंडा पाले काहुई,
 अंडे किन विसमिल किये,
 अन्त कतरनी जीम रस,
 अन्तर कमल प्रकासिया,
 अन्तर जपिये रामजी,
 अन्तर जामी एक तू,
 अन्तर याहि विचारिया,
 अन्तर हरि हरि होत है,
 अन्तःकरण मन मही,
 अँन पानी का हार है,
 अँदेसो नहि भागसी,
 अँवरन को हाथी - सही,

स्वाद ।	४१०,	४
चितावनी ।	१९१,	१८६
भर्मविध्वंस ।	३४५,	३५
मद ।	३९४,	१
मद ।	३९५,	३
मद ।	॥	५
विरह ।	१६८,	८०
मांसाहार ।	४१६,	४५
विरह ।	१६५,	५१
॥	॥	५५
व्यापक ।	३२९,	४४
मांसाहार ।	४१४,	२१
विश्वास ।	३११,	१२
मांसाहार ।	४१४,	२२
कपट ।	४०४,	१८
मेद ।	३२१,	४०
सुमिरन ।	१३३,	१६५
समर्थ ।	३०४,	३४
उपदेस ।	१९३,	२
सुमिरन ।	१३३,	१६४
सूक्ष्म मार्ग ।	३७८,	३४
स्वाद ।	४११,	१०
विरह ।	१६४,	३९
आत्म अनुभव ।	३१२,	२२

अंग्रे को हाथी उधौ,	॥	३११,	२०
अंधा ऊबट जात है,	सतगुरु ।	२७,	८२
अधा गुरु अधा जगत,	गुरु पारख ।	३१,	६
अधे औबट जात है,	पारख ।	३५८,	६२
अधे मिलि हाथी छुआ,	आत्म अनुभव ।	३११,	२१
अधौ का हाथी सही,	॥	३१२,	२३
अच्छर आदि जगत में,	सतगुरु ।	२९,	९९
अर्ध कपाले झलता,	चितावनी ।	१९०,	१८५
अर्ध पवन चढाय ले,	बेहद ।	३४०,	३२
अष्ट सिद्धि नव निद्धि लौ, तुमसों रहे निनार । मोह ।		३९३,	६
॥ ॥ ॥ सब हि मोह की छान । ॥		३९४,	१२

आ

आकार राम दशरथ घर डोलै,	निजकर्ता ।	३७२,	२५
॥ ॥ ॥ ॥	प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४१
आकासे औधा कुवा,	विपर्यय ।	२४८,	१५
आग कहै दाज्ञे नहीं,	विचार ।	४२२,	३
आग जलावै अँन दहै,	दया ।	४३२,	१०
आग जु लगी नीर में,	विपर्यय ।	२४६,	८
आग लगी आकास में, कहै कबिर उठ जागरे (३),		२६२,	६४
॥ ॥ कबीर जलि कंचन भया (३) विरह ।		१६९,	८७
आगा पीछा दिक करै,-	भर्मविवस ।	३४७,	५२
आगि औच सद्गुण सुगम,	प्रेम ।	१५७,	७२
आगे अधा कृप में,	गुरु पारख ।	३१,	८
आगे खोजी पविमुभा,	मध्य ।	३१६,	२६

आगे दरपन ऊंगेला,	कपट ।	४०४,
नागे पीछे हरि खड़ा,	विश्वास ।	२१२,
आचारी सब बग मिला, कौटि अचारी बारिघे (३) विचार ।		४२३,
आगे पीछे जाके हिरदे गुरु नहीं (३) दया ।		४२३,
आछे दिन पाछे गये,	चितावनी ।	१७७,
आज कहै मैं काल मजुंगा,	" "	
आज काल के बीच में,	"	१७६,
आज काल के भोग हैं ।	साधु ।	७०,
आज काल दिन पांच में,	"	७६,
आज काल पल छिनक में,	काल ।	२९३,
आजा को घर अमर है,	विचार ।	४२३,
आठा तनि भूसा गहे,	सारमहि ।	३५०,
आठ गांठ कौपीन के,	रस ।	३६४,
आठ पहर चौबिस घड़ी, मो मन यही भेदेस ।	भेद ।	३१९,
आठ पहर चौसठ घड़ी, भेरे और न कोष ।	पतिव्रता ।	२१९,
" " " लागि रहे अनुराग ।	प्रेम ।	१५९,
आठ पहर चौही गंवा,	चितावनी ।	१८५,
आठ बाट बकरी गई,	मांसाहार ।	४१४,
आत्म अनुभव जब भयो,	आत्म अनुभव ।	३०९,
" " सुखकी,	"	३०९,
" " ज्ञान की,	"	३१०,
आत्म दृष्टि जाने नहीं,	भयविषय ।	३४८,
आत्म पूजा जिय दया,	उपदेस ।	२००,
आदि अंत अब को नहीं,	गुरुशिष्य हेरा ।	४१,

आदि अन्त अरु मध्य लैं,
आदिनाम निज मूल है,
आदिनाम निज सार है,

आदिनाम पारस अहे,
आदिनाम बीरा अहे,

आदि हती सब आप में,
आध सन्द गुरु देव का,

आधी औ रखी भकी,

आधी साखि कबीर की, जो निरुवारी जाय ।-विचार ।

” ” ” सीखी सुनी न जाय । ”

आधी साखी सिर कटे,

आन अमल सब त्यागि के,

आन कया अन्तर पडे,

आन देव की आस करि,

आन भजे सो आधार,

आप राखि परमोधिपे,

आप साधु करि देखिये,

आप स्वार्थी मेदिनी,

आपन को न सराहिये,

आपन पै न सराहिये,

आपा भेटे पिय मिलै,

आपा भेटे हरि मिलै,

आपा सब ही जात है,

आपन सकि हो तोहि पै,

अविहड । ३४१, ३

सुमिरन । ११६, २६

” ” १४

” ११६, १३

” ” १२

गुरुशिष्यहेरा । ४२, २८

गुरुदेव । १५, ८३

स्वाद । ४११, ८

” ४२२, ६

” ४१४, २४

” ४२२, ५

नशा । ४२०, ३०

उपदेस । १९७, ४७

आनदेव । ३८७, १

बिभिचारिन । २२५, १९

कथनी । ३६१, १३

साधु । ६१, ७४

परमारथ । २४३, ६

निन्दा । ३८६, १९

” ” २०

दीनता । ४३५, ९

विपर्यय । २४५, ४

मद । ३०५, ७

विरह । १६४, ४०

आया अन आया भया,
 आया एक हि देस ते,
 आया था ससार में,
 आया प्रेम कहा गया,
 आया बबुला प्रेम का,
 आया बबुला प्रेम का,
 आये हैं ते जायगे,
 आरत सों गुर भक्ति करु,
 आरत है गुरुभक्ति करु,
 आरा नारा कारनै,
 आव कहै सो अलिखा,
 आव गया आदर गया,
 आवत गारी एक है,
 आवत माधु न हरिया,
 आस आन घर घर फिरै,
 आस आस जग बधिया,
 आस करे बैकुण्ठ को,
 आस पास योधा खडे,
 आस वास जग फरिया,
 आस वास मन मेहिया,
 आसन तो इकान्त करे,
 आसन मारै कहा भयो,
 आसा एक जो नाम की, दूजी आस निशर ।
 आसा एक हि नाम की, जुग जुग पुरै आस ।

चितावनी ।	१९१,	१८८
परिचय ।	१४७,	१०५
"	१४०,	४३
प्रेम ।	१५२,	२४
"	१५२,	२४
"	१५४,	४०
चितावनी ।	१८३,	११४
भक्ति ।	१११,	४१
"	"	४०
आनदेव ।	३८७,	३
शौल ।	४२७,	११
भोख ।	८८,	११
उपदेस ।	१९६,	३३
साधु ।	५८,	५१
आसातृत्ना ।	४०१,	१९
"	४०२,	२५
सैनक ।	१०१,	१८
काल ।	२९७,	४७
आसातृत्ना ।	४००,	५
सूरमा ।	२४१,	१५१
साधु ।	७३,	१७४
आसातृत्ना ।	४०१,	१५
"	४००,	"
"	"	३

आसा को ईधन करू,	आसातृस्ना ।	४००,	११
आसा जीवै जग मरै,	"	"	४
आसा तरकस बाधिया,	"	"	१०
आसा तजि माया तजै,	साधु ।	७२,	१६९
आसा तो इक नाम को,	सुमिरन ।	१२१,	५६
आसा तो गुरुदेव की, और गले को फास ।	आसातृस्ना ।	४०१,	२०
" " " दूजी आस निरास ।	"	३९९,	१
आसा तृस्ना दो नदी,	"	४००,	८
आसा तृस्ना सिंधुगती,	"	"	७
आसा बासा संत का,	साधु ।	६२,	८२
आसा 'बेली' कर्मफल,	आसातृस्ना ।	४००,	६
आसे 'पासे' जो फिरे,	'काल ।	२९९,	६८
आहेरी 'धौ' लाइया,	विपर्यय ।	२४७,	११
आँखडियाँ काजल मरि,	सती ।	२०६,	१८
आँखडियाँ रतनालियाँ,	चिन्तामनी ।	१८७,	१४०
आँखि नः देखे। बाहरा,	"	१९१,	१९१
आँखों देखा घी मला,	निगुरा ।	५१,	४६
आगन बेलि - अकास फल,	बेली ।	३५९,	१
आगन बेली अलख है,	"	"	२
आधी 'आई' प्रेमको,	माया ।	२८१,	३७
आधी यथा समीर मधि,	व्यापक ।	३२९,	३७
आत्म तरव जाने नहीं,	पंडित ।	३८४,	३५

इ . . .

इक नारी, इक नागिनी,	कनक कामिनी ।	२८८,	३०
इक बानी सो दीनता,	दीनता ।	४३४,	५

इक मरिचो इक मारिचो,
 इत कूना उत बाग्ली,
 इत परघर उत ह घरा,
 इन अटकाया ना रहै,
 इन पाचों से बधिया,
 इस उदर के कारने,
 इस तन में मन कहँ बसै,
 इन्द्र राज सुख भोग कर,
 इन्द्र लोक अचरज भयो,
 इन्द्रिय मन निग्रह करन,
 इन्द्रो एको प्रस नहीँ,
 इन्द्रो पोषत चाह सू,
 इक खुन्नस ग्वाँसि जो,
 इष्ट मिलै अरु मन मिलै,

सूरमा ।	२३४,	८४
समर्थ ।	३०२,	०
चितामर्नी ।	१८२,	१०१
साधु ।	५५,	१७
मन ।	२७१,	६७
चानक ।	३०७,	५
प्रश्नोत्तर ।	४४२,	१८
भक्ति ।	११३,	५६
लगनी ।	३६८,	२३
साधु ।	६६,	११३
चानक ।	३०९,	२९
मन ।	२७२,	७१
प्रकृति गुन ।	३८८,	११
उपदेश ।	१९६,	३०

ई

ईलम से उद्याग खिलै,
 ईश्वर में अरु जीव में,

भेद ।	३२१,	३७
व्यापक ।	३०९,	३०

उ

उगन मीन सुधाकरा,
 उत्पति परलय उहँ नही,
 उत त कोई न आइया,
 उत ते सनगुरु आइया,

साधु ।	६८,	१३३
वेहद ।	३४०,	२६
गूढमार्ग ।	३७६,	१७
		१८

उत्तिम भोग्य है अजगरी,	भोग्य ।	८८,	१३
उदर समाता अन्न ले,	"	"	७
उदर समाता भोगि ले,	"	"	५
उन्मुनि चढ़ी अकास को,	परिचय ।	१३८,	२५
उन्मुनि लागी सुन्न में,	"	"	२४
उन्मुनि सों मन लागिया, उन्मुनि नहीं मिलिगि ।	"	"	२७
" " " गगन हि पहुँचा जाय । "	"	"	२६
उपजे एकै खाड ते,	एकता ।	३२४,	१५
उलटा ज्ञान विचार के,	निर्पर्यय ।	२५२,	३१
उलटि समाना आप में,	परिचय ।	१३५,	४
उलटे सुलटे नचन के,	सेवक ।	१०३,	३५
उत्तर दक्षिण पूरव पच्छिम,	पारम्य ।	३५४,	२६

ऊ

ऊजड़ खेडे देवरी,	चितावनी ।	१७६,	४२
ऊजड़ घर में बैठि के,	निगुरा ।	५२,	५०
ऊनी आई बादरी,	निर्पर्यय ।	२५४,	४०
ऊजल देखि न धीजिये,	भेष ।	८,	१३
ऊजल देखि न भरमिये,	"	"	१२
ऊजल पहिनी कापडा,	चितावनी ।	१८१,	८३
ऊजड़ बुद अघाम की,	सगति ।	९३,	४०
ऊजल बस्तर मिर जटा,	कापट ।	४०४,	२१
ऊचा कुल नीचा मता,	मान ।	३०८,	२०
ऊचा चढि असमान को,	निर्पर्यय ।	२५५,	४४

ऊंचा तरवार गगन फल, पंखी मूआ शूर ।	सूरमा ।	२३७,	१०६
ऊंचा तरवार गगन फल, विरला पंछो खाय ।	जोवतमृतक ।	३३२,	२०
ऊंचा दोसै धौहरा,	चितावनी ।	१७७,	५६
ऊंचा देखि न राचिये,	मान ।	३९८,	२६
ऊंचा महल चुनाइया,	चितावनी ।	१७७,	५८
ऊंचा महल चुनावते,	"	१७८,	५९
ऊंचा मंदिर मेडिया,	"	१७७,	५७
ऊंची जाति पपीहरा,	पतिव्रता ।	२२१,	४६
ऊंचे कुल कह जनमिया,	संगति ।	९३,	४७
ऊंचे कुल की कामिनी,	मान ।	३९८,	२२
ऊंचे कुल के कारने, वांस बध्यौ हंकार ।	निगुरा ।	४८,	१९
" " " भूलि रहा संसार ।	मान ।	३९८,	२१
ऊंचे कुल में जनमिया,	मान ।	३९७,	१९
ऊंचे डाली प्रेम की,	माया ।	२८४,	६२
ऊंचे पानी ना टिकै,	मान ।	३९८,	२७
ऊंडा चित अरु समदसा,	साधु ।	६९,	१४१

ए

एक अनूपम । हम किया,	निगुरा ।	५१,	४९
एक अचंभो देखिया,	पारख ।	३५५,	५०
एक कनक अरु कामिनी, तजिये भजिये दूर ।	क०का० ।	२८६,	५
" " " दोउ अगनिकी झार ।	" "	"	३
" " " विष फल लिया उपाय ।	" "	"	८
" " " ये लंबी तरवार ।	"	२८५,	२

एक खड़ा ही ना लहे,	समर्थ ।	३०३,	२४
एक घड़ी आधी घड़ी,	सगति ।	९०,	९
एक चित होय न पित्र मिले,	पतिव्रता ।	२२०,	३६
एक जान एकै समझ,	"	२२१,	४४
एक दिन ऐसा होयगा, को काहु का नोहि । चितावनी ।		१८५,	१३५
" " " सब सें पडे विठोह । "		१७६,	४१
एक दिना नहि करि सबै,	साधु ।	५४,	४
एक दृष्टि दो नन हैं,	प्रेम ।	१५९,	८६
एक दोस्त हमहु किया,	विपर्यय ।	२४९,	२१
एक नाम को जानि कर, दूजा दिया बहाय । पतिव्रता ।		३२०,	३२
" " दूजा देइ बहाय । सुमिरन ।		१२०,	५०
" " " मेटु करम का अक । "		"	४९
एक हि पार परखिये,	पारख ।	३५३,	१५
एक बुद के कारने,	चितावनी ।	१९०,	१७७
एक बुद ते सब किया, नरनारी का नाम । "		१८८,	१५६
" " ये देह का विस्तार । "		"	१५७
एक मोह के कारने,	मोह ।	३९४,	१६
एक राम दशरथ घर डोले,	निजकर्ता ।	२७१,	२३
एक वस्तु के नाम बहु,	एकता ।	३२४,	७
एक सोम का मानवा,	चितावनी ।	१८४,	१२१
एक सन्द सुख खानि है,	सन्द ।	२०४,	१५
एक सन्द सुपियार है,	सन्द ।	२०९,	६८
एक सन्द में सत्र किया,	प्रिचार ।	४२२,	९
एक हमारी सोख सुन,	करनी ।	३६५,	२५

एकामेका	होन	दे,	प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४७
एक	साधे	सत्र सधे,	पतिव्रता ।	२२०,	३०

ऐ

ऐसा अदबुद मति कयो,	भेद ।	३१८,	१२
ऐसा अगिति अलख है,	परिचय ।	१४७,	१०१
ऐसा अगिति रूप है,	"	१४९,	१२३
ऐसा कोई जन ण्य है,	निंदा ।	३८५,	१७
ऐसा कोई ना मिला, अपना करि निरपा करै(३)गु शि हे ।		४०,	६
" " " घर दे अपन जराय ।	"	३९,	२
" " " जलना जोति बुझाय ।	"	४०,	८
" " " जामों कहैं दुख रोय ।	"	३९,	३
" " " जासों कहैं निसक ।	"	४०,	७
" " " जासों रहिये लग । गुरु पारख ।		३७,	५१
" " " ठौर मनका रोस । गुरुशिष्यहेरा ।		४०,	९
" " " ढाढ दमामा ना सुनै (३) "		३९,	५५
" " " सत्र विधि देय बताय । "		"	४४
" " " सत्तनाम का मीत । गुरुदेव ।		१०,	५२
" " " सब्द देखैं प्रतलाय । गुरुशिष्यहरा ।		४०,	१०
" " " हमका दे उपदेस । "		३९,	१
ऐसा कौन अभागिया,	निश्वास ।	२१३,	३६
ऐसा गुरु ना कानिये,	गुरुपारख ।	३५,	४१
ऐसा मारा सब्द का	सब्द ।	२०५,	२७
ऐसा साधू गानि के,	साधु ।	६९,	१४०
ऐसा गति समार का,	चितायना ।	१८४,	१२०
ऐसा ठाठा ठाठिये,	भेष ।	८१,	२७
ऐसी तोखी सुरति है,	मजीयन ।	३३६,	८

ऐसी जनी बोलिये,
ऐसी व्याई सो तुई,
ऐसी भाति जो सती है,
ऐसी मार कगीर की,
ऐसे तो सतगुरु मिले,
ऐसे महँगे मोल का,
ऐसे सौच न मानई,

उपदेस ।	१९५,	२६
विपर्यय ।	२५०,	२५
सती ।	२१५,	११
सूरमा ।	२३१,	५७
गुरु पारख ।	३७,	५२
सुमिरन ।	१३०,	१४०
काल ।	२९८,	५६

ओ

ओटा लिया न ऊगरे,
ओठ कठ हाले नहीं,

सूरमा ।	२३०,	४५
सुमिरन ।	१३३,	१६३

औ

औगुन वहू सराब का,
औगुन किया तो बहु किया,
औगुन को तो ना गहै,
औगुन मेरे बापजी,
औगुन हारा गुन नहीं,
और धर्म सत्र कर्म है,
और देव नहि चित बसै, मन गुरु चरन बसाया साधु ।
और देव नहि चित प्रसै, प्रिन प्रतीति भगवान । साधु ।
और धर्म सत्र कर्म है,
और पतित तो कूप हैं,
और पुरुष सब कूप हैं,
और सुरति बिसरी सफल,
औसर प्रीता अल्प तन,

नशा ।	४१७,	५
बिनती ।	४३६,	४
सारग्राही ।	३४९,	४
बिनती ।	४३६,	५
समरथ ।	३०३,	२१
भक्ति ।	११३,	५४
साधु ।	६६,	११४
साधु ।	,,	११५
भर्मविश्रस ।	३४५,	३३
बिनती ।	४३७,	९
समरथ ।	३०५,	४३
लगती ।	३६७,	१३

कवीर

कविर कुसग न कानिये, लाहा जल न तिराय ।	सगति ।	९२,	३६
कविर कुसग न कीजिये, जाका नौन न ठौव ।	सगति ।	,,	३७
कविर नै सो आपको,	दीनता ।	४३९,	८
कविर नारि की प्रीति से,	कनक कामिनी ।	२९०,	४८
कविर नैन झर लाइये,	सुमिरन ।	११९,	४१
कविर निर्भय नाम जपु,	सुमिरन ।	१२२,	६८
कविर भये हैं केनका,	दासातन ।	१०६,	२०
कविर सुनावत दिन गये,	चानक ।	३०९,	२४
कविर क्षुधा है कूकरी,	सुमिरन ।	१२४,	८०
कविरा चुनता कन फिर,	पारख ।	३५५,	३०
कवीर अन हुआ हुआ,	चितावनी ।	१७४,	२१
कवीर अपने जीवत,	मान ।	३९७,	११
कवीर आद् एक ह,	परिचय ।	१४९,	१२१
कवीर आधी साखि यह,	विचार ।	४२२,	७
कवीर आप ठगाइये,	उपदेस ।	१९३,	७
कवीर आपन राम कहि,	सुमिरन ।	११९,	३६
कवीर उलटा ज्ञान का,	निर्पर्यय ।	२५२,	३२
कवीर ऊँची नाक को,	मान ।	३९८,	२३
कवीर औँधी खोपड़ी,	लोभ ।	३९२,	३
कवीर कठिनाई खरी,	सुमिरन ।	१२०,	४२
कवीर कमठ प्रकासिया,	परिचय ।	१४१,	५२
कवीर कमलन जल वसै,	साधु ।	७०,	१४०
कवीर कमाई अपना,	कर्म ।	४०८,	१०
कवीर करत है जानती, भनसागर के ताड़ ।	समर्थ ।	३०५,	३०
” ” ” सुनो मत चित लाय	प्रियता ।	४३८,	- ३

कमीर करनी आपनी,
 कमीर करनी क्या करै,
 कमीर कहूँ रु कल्पना,
 कमीर कलियुग आई के,
 कमीर कलियुग कठिन है,
 कमीर कहते क्यौ बने,
 कमीर कहहि पीर को,
 कमीर काजी स्वाद बस,
 कमीर कामो पुरुष का,
 कमीर काया को झगो,
 कमीर काया पाहुनी,
 कमीर काज भक्ति के,
 कमीर काहे को डरे,
 कमीर कोट सुगव तजि,
 कमीर कुल सोही भला,
 कमीर केवल नाम कह,
 कमीर केवल नाम को,
 कमीर केसो को दया,
 कमीर कोठी काठ की,
 कमीर कचन भासिया,
 कमीर खाई कोट की,
 कमीर खाणिक जागिया,
 कमीर खेत किसान का,
 कमीर खोजी राम का,

करनी ।	३६२,	१
”	३६२,	२
सगति ।	९१,	२२
विभिचारिन ।	२२३,	१
चानक ।	३०६,	२
सगति ।	९३,	३९
चानक ।	३०९,	२३
मासाहार ।	४१४,	२८
काम ।	३९०,	१७
प्रश्नोत्तर ।	४४१,	१७
चिन्तामनी ।	१८९,	६८
निजकर्ता ।	३७२,	३३
उपदेस ।	१९५,	२५
असारग्राही ।	३५०,	१
दासातन ।	१०५,	१८
चिन्तामनी ।	१७५,	३४
”	१८८,	१६५
लगनी ।	३६९,	३०
विपर्यय ।	२५९,	५७
परिचय ।	१४२,	५८
सगति ।	९१,	२१
दासातन ।	१०४,	६
चिन्तामनी ।	१७४,	२०
व्यापक ।	३२७,	१९

करीर म्वाड हि छाडि के	पारख ।	३५६	४६
करीर गाफिल क्यों कर,	चिताननी ।	१७५,	३१
करीर गाफिल क्यों फिर,	काल ।	२९६,	३७
करीर गुदडी वीखरी,	पारख ।	३५६,	४५
करीर गुरु औ साधु कू,	सेनक ।	१०३,	३०
करीर गुरु की भक्ति कर,	भक्ति ।	१०९,	२२
करीर गुरु की भक्ति का,	" "	" "	२४
करीर गुरु की भक्ति निनु, नारि कूकरी होर ।	निगुरा ।	४७,	११
" " धिक् जीवन ससार ।	भक्ति ।	१०९,	२३
" " राजा रामम होय ।	निगुरा ।	४७,	१२
करीर गुरु की भक्ति सें,	भक्ति ।	१०९,	२५
करीर गुरु के देसमें,	सगति ।	९२,	३८
करीर गुरु के भाव ते,	दासातन ।	१०४,	५
करीर गुरु ने गम कहो,	गुरुदेव ।	९,	४२
करीर गुरु सत्र को चहै,	दासातन ।	१०४,	४
करीर गुरु हैं हृद का,	बेहद ।	३४०,	३०
करीर गुरु हैं घाट के,	गुरु पारख ।	३३,	२२
करीर गर्व न कीजिये, अस जीवन की आस ।	चिता० ।	१७२,	२
करीर गर्व न कीजिये, ऊचा देखि अपास ।	" "	" "	३
करीर गर्व न कीजिये, काल गह कर केम ।	" "	" "	१
करीर गर्व न कीजिये, चाम लपेटे हाड ।	" "	" "	४
करीर गर्व न कीजिये, देगा काल उखाड ।	" "	" "	५
करीर गर्व न कीजिये, देही देगि सुरग ।	" "	" "	६
करीर गर्व न कीजिये, रक न हभिये कोय ।	गद ।	३९५,	६
करीर घट में राम ह,	कर्म ।	४०९,	१८

कबीर घोडा प्रेम का,	सूरमा ।	२२६,	५
कबीर चडै सिकार को, मूरख नर सो रहि गये (३) ,,		२३९,	१२८
” ” मेरा मारा फिर उठै (३) ,,		”	१२९
कबीर चाला जाय या, आगे मिले खुदाय । मासाहार ।		४१५,	३७
” ” पूछि लिया एक नाम । वेहद ।		३३९,	२१
कबीर चित-चचल भया,	सुमिरन ।	१२७,	११३
कबीर चिनगी विरह को,	विरह ।	१६३,	३४
कबीर चेरा सत का,	जीतमृतक ।	३३३,	३१
कबीर चंदन के निरुट,	सगति ।	९१,	३३
कबीर चंदन के भिरै,	निगुरा ।	४८,	२०
कबीर चंदन परजला,	कर्म ।	४०८,	९
कबीर चंदन संग स,	सगति ।	८९,	७
कबीर चिंता क्या करू,	विश्वास ।	२१०,	९
कबीर चित चमाकिया	चितावनी ।	१७५,	३३
कबीर जग के जौहरी,	पारख ।	३५३,	१७
कबीर जग को क्या कहू,	आसातृस्ना ।	४०१,	१८
कबीर जब हम गावते,	परिचय ।	१४२,	५६
कबीर जाचन जाय या,	लगनी ।	३६९,	३१
कबीर जिन कछु जानिया,	विरह ।	१७०,	९५
कबीर जीवन कछु नहीं,	काल ।	२९६,	३४
कबीर जेता आत्मा,	भर्मनिग्रस ।	३४३,	१०
कबीर जो कोड सुदरा,	विभिचारिन ।	२२४,	११
कबीर जो दिन आज है,	चितावनी ।	१७३,	१७
कबीर जोगी जगत गुरु,	आमातृस्ना ।	४०१,	१२

कबीर जोगी बन बसा,	संजावन । ३३६, ३
कबीर जंत्र न बाजही,	चितावनो । १७५, ३०
कबीर झूठ न बोलिये,	सांच । ४३१, २१
कबीर दुग दुग चोयताँ,	काल । २९३, १८
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ जो कुल को हेत । उपदेस । १९५, २९	
” ” जहाँ सिद्ध को गाँव । ” ” ३०	
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ कपट का हेत । कपट । ४०२, १	
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ पुराना भाव । कपट । ४०४, २०	
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ जो नानाभाव । कपट । ४०२, ३	
कबीर तहाँ न जाइये, जहाँ न चोखा चित्त । कपट । ” - २	
कबीर तहाँ न जाइये, नी मन बीज जु बोइये(३) ” ” ४	
कबीर तासे प्रीति कर,	प्रेम । १५४, ३८
कबीर तासों संग कर,	संगति । ९०, १८
कबीर तुरी पछानिया,	सूरमा । २२६, ६
कबीर तूं काहे डरे,	धीरज । ४१४, ५
कबीर ते नर अंध हैं,	गुरुदेव । ८, ३९
कबीर तेई पीर हैं,	मांसाहार । ४१६, ३९
कबीर तेज अनंत का,	परिचय । १४१, ५०
कबीर तो पिय पै चला,	सजीवन । ३३६, ४
कबीर तोडा मान गढ़, मारे पांच गनीम । सूरमा । २२६, ८	
कबीर तोडा मान गढ़, छूटी पांची खान । सूरमा । २२७, १०	
कबीर तृस्ना टोकना,	चानक । ३०६, १
कबीर तृस्ना पापिनी,	आसातृस्ना । ४०२, २३
कबीर थोरा जीवना,	चितावनो । १७२, १

कत्तीर दरसन साधु का, करत न कीजै वान	साधु ।	५३,	२
कत्तीर दरसन साधु के, ग्वाली हाथ न जाय ।	साधु ।	५५,	२३
कत्तीर दरसन साधु के, बडे भाग दरसाय ।	साधु ।	५३,	४
कत्तीर दरसन साधु के, साहिब आये याद ।	साधु ।	,,	१
" दरिया परजला,	दुख ।	४०६,	८
" दिलदरिया मिला, पाया फल समर्थ ।	परिचय ।	१४१,	५५
" दिल दरिया मिला, बेठा दरगह आय ।	परिचय ।	१४२,	५७
" दिल सावित भया,	भेद ।	३२१,	४२
" दीपक जोइया,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७९,	३८
" दुनिया देहरै,	भर्मप्रिप्स ।	३४३,	९
" दुविधा दूर कर,	मध्य ।	३१४,	२
" दुख सुख सब गया,	परिचय ।	१४९,	१२५
" देखा एक अग,	परिचय ।	१४१,	५१
" देखिके परखि ले, परखिके मुखको खोल ।	पारख ।	३५१,	१
" देखिके परखि ले, परखिके मुखो बुलाय ।	पारख ।	"	२
" देवल हाड का,	चितावनी ।	१७२,	९
" देवल बहि पडा, ईट भई सहार ।	चितावनी ।	१७३,	१०
" देवल बहि पडा, ईट रही सगार ।	चितावनी ।	"	११
" धीरज के धरै,	धीरज ।	४२४,	४
" धूर सकेलि के,	चितावनी ।	१७३,	१२
" धधे धरि रहे,	चितावनी ।	"	१६
" नाव तो सासरि,	चितावनी ।	१७४,	२८
" नौबत आपनी,	चितावनी ।	१७२,	७
" निन्दक मरि गया,	निन्दा ।	३८५,	८

कबौर पगरा दूर है, आय पहुँची साझ ।	काल ।	३००,	७९
,, पगरा दूर है, बीच पड़ी है रात ।	काल ।	२९६,	३६
,, पड़ना दूर करु, आयि पडा ससार ।	पडित ।	३८१,	९
,, पड़ना दूर करु, पोथी देहु बहाय ।	पडित ॥	,,	८
,, परगट राम कहू,	सुमिरन ।	११९,	३५
,, पाहन पूजि के,	भर्मविद्यस ।	३४३,	८
,, पानी होज का,	चितावनी ॥	१७५,	१२
,, पौर पिरानना,	विरह ।	१७१,	१०९
,, पूछ राम सों,	साक्षोभूत ।	३२२,	६
,, पय निहारतों,	विभिचारिनि ।	२२४,	९
,, पाच पखेरुमा,	चितावनी ।	१७४,	२४
,, पाँचौ बलधिया,	दासातन ।	१०४,	७
,, पाचौ मारिये,	सूरमा ।	२२७,	११
,, पूजा साहु की, तू जिन करे खुमार ।	चितावनी ।	१७५,	३५
,, पूजा साहु की, तू मति खोने खार ।	सौँच ।	४३१,	१६
,, पैडा दूर है,	चितावनी ।	१७४,	२५
,, पन्न कारिनां,	चितावनी ।	१९१,	१८७
,, प्याला प्रेम का,	नशा ॥	४२०,	३२
,, पन पन में फिरा,	सगति ।	९०,	१७
,, बहुत भइकिया,	व्यापक ॥	३२७,	२१
,, बेडा जरजग,	चितावनी ।	१७४,	२३
,, बेडा सार का,	गुरु पारख ।	३५,	४०
,, नेद बुलाइया, जिहिर औषध गुरु मिले ।	गु.शि है ।	४३,	३१
,, नेद बुलाइया, पकरि के देखी ग्राह ।	विरह ।	१६३,	३७

कबीर वैद बुलाइया, जिहिर औषध हरि मिले ।	विरह ।	१६३,	३६
॥ घेरी सबल है,	मन ।	२६५,	९
॥ बंटा टोकनी,	चानक ।	३०८,	२१
॥ ब्राह्मण को कथा,	पंडित ।	३८१,	१३
॥ ब्राह्मण बूडिया,	॥ ॥	१४	
॥ भाठी प्रेम की,	प्रेम ।	१४४,	३६
॥ भूल बिगारिया,	समरथ ।	३०४,	३२
॥ भूला दगा में,	विचार ।	४२२,	१०
॥ भेदी भक्त सों,	भेद ।	३१७,	१
॥ भेरै बैठि के,	पतिव्रता ।	२१८,	१५
॥ भेष अतीत का,	भेष ।	७९,	१
॥ भेष भगवंत का,	॥	८७,	७६
॥ भँवर में बैठिके,	धीरज ।	४२५,	६
॥ भिन्न न देखिये,	व्यापक ।	३२९,	४०
॥ मनका माहिला,	मन ।	२६५,	११
॥ मन कुं मारि ले,	॥	२७७,	१२०
॥ मन गाफिल भया,	॥	२६५,	४
॥ मन ताजी भया,	॥	२७७,	१२२
॥ मन तीखा किया,	सजीवन ।	३३६,	५
॥ मन तो एक है,	मन ।	२६४,	१
॥ मन दीया नहीं,	विभिचारिन ।	२३३,	७
॥ मन निश्चल करो,	सुमिरन ।	१३३,	१६६
॥ मन परवत भया,	मन ।	२६४,	३
॥ मन पंछी भया,	संगति ।	९१,	२०

कत्रीर	मन मधुकर भया,	परिचय ।	१४१,	५३
"	मन मेरकट भया,	मन ।	२६५,	७
"	मन मिरतक भया, इन्डा अपन हाथ ।	ऊ०का० ।	२९२,	६१
"	" " कहै कत्रीर कत्रीर (४) जी० प्र० ।		३३१,	५
"	" " गृ कहि दाम कत्रीर (४)	मन ।	२७६,	१०९
"	मन मंठा भया,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,	१५
"	मन हि गयद हं,	मन ।	२६५,	६
"	मनमा मोर हं,	चिन्तामनी ।	१९२,	२०१
"	मरि मरघट गया,	जीवनमृतक ।	३३३,	२८
"	माया जात हं,	माया ।	२७९,	१३
"	माया डाकिनी, ग्वाया सत्र ससार ।	माया ।	२८४,	७०
"	माया डाकिनी, सत्र काहू को ग्वाय ।	माया ।	२७८,	१०
"	माया पापिनी, फट लै वेठी हाट ।	माया ।	२७७	२
"	माया पापिना, मागी मिले न हाथ ।	माया ।	२७७,	१
"	माया पापिनी, लोभ भूलाया लोग ।	माया ।	२७८,	३
"	माया पापिनी हरि सो करे हराम ।	माया ।	२७८,	४
"	माया बेसना,	माया ।	२७८,	५
"	माया मोहिनी, जग अधियारी लोय ।	माया ।	२७८,	९
"	माया मोहिनी, नैसी मीठी खाड ।	माया ।	२७८,	७
"	माया मोहिनी, मोहे जान सुजान ।	माया ।	२७८,	६
"	माया मोहिनी, सब जग धाला घानि ।	माया ।	२७८,	८
"	माया यौ कहं,	माया ।	२७९,	१५
"	माया रूमवडी,	माया ।	२७८,	११
"	माया सापिनी,	माया ।	२८३,	५६

कानौर	माया मृगको,	माया । २७८, १२
११	मारग कठिन हं,	मूक्षममार्ग । ३७४, १
११	माला काट का, पहरी मुगद डुलाय ।	सुमिरन । १३२, १५८
	माला काट की, बहुत जतन का फेर ।	सुमिरन । १३१, १४९
	मिरतक देखि कर,	जीवनमृतक । ३३५, ४३
	मुख से राम कहू,	सुमिरन । १२८, ११६
	मुख साई भला,	सुमिरन । ११९, ३७
११	मेरे साधु की,	निन्दा । ३८५, १३
११	मेरी सुमिरनी,	सुमिरन । १२७, ११४
११	मोतिन की लडी,	परिचय । १४१, ५४
११	मदिर आपने,	काल । २९६, ३५
११	मदिर लाख का,	चिन्तावनी । १७३, १३
११	मे तन ही डरू,	विनती । ४३८, २२
११	यह गन अटपट्टी,	मन । २६६, १३
११	यह चिन्तामनी,	चिन्तावनी । १८७, १५१
	यह तन जान है, सकै तो ठौर लगाय ।	चिन्ता । १७४, १९
११	११ ११ सकौ तो रासु बहोरि ।	उपदेस । १९५, २१
११	यह तन वन भया,	चिन्तावनी । १७४, २६
११	यह विनती कर,	विनती । ४३८, २४
११	यह मन मसखरा,	मन । २६४, २
११	यह मन लालची,	मन । २६५, ५
११	यह ससार है, जसा सैगल फल ।	चिन्तावनी । १७३, १५
११	यहै तो राम ह,	निन्दा । ३८६, २७
११	या ससार की,	माया । २७९, १४

- चक्रीर या संसार को, भर्मविध्वंस ।
 ११ या संसार ह, घना मनुस मति हीन । चिता० ।
 ११ ये जग आंधरा, पारख ।
 ११ रन में आय के, सूरमा ।
 ११ रसरो पॉव में, चितावनो ।
 ११ राम रिझाय ले, जिभ्या के रस स्वाद । सुमिरन ।
 ११ राम रिझाय ले, जिह्वा सों कर मोत । सुमिरन ।
 ११ राम रिझाय ले, मुख अमृत गुन गाय । सुमिरन ।
 ११ रामानंद को, सतगुरु ।
 ११ रेख सींदूर अरु, पतिव्रता ।
 ११ रेखा कर्म को, कर्म ।
 ११ लहरि समुद्र की, कभी न निष्फल जाय । संगति ।
 ११ लहरि समुद्र की, केतो आवै जाँहि । मन ।
 ११ लहरि समुद्र की, मोती बिखरै आय । निगुरा ।
 ११ लोहा एक है, एकता ।
 ११ लौंग इलायची, साधु ।
 ११ लज्जा लोक को, सौच ।
 ११ यह तो एक है, भेष ।
 ११ वह मन कित गया, मन ।
 ११ या दिन याद कर, चितावनो ।
 ११ विष धर बहु मिले, संगति ।
 ११ व्यास कथा करै, चानक ।
 ११ संजडे ही जडा, कर्म ।
 ११ सतगुरु सरन को, चितावनो ।

करीर सतगुरु मेप्रिये,	सगति ।	९६,	६५
" सतियों कसतियों,	सती ।	२१६	१६
" मय पट आनमा,	साग्राही ।	३५०,	११
मय जग निरधना,	सुमिरन ।	११९,	३३
मय जग हेरिया	साधु ।	७०,	१४५
सय ते हम बुरे,	दानता ।	४३५,	१३
मय सुख राम है,	काल ।	२९६,	३९
समझा कहत ह,	सतगुरु ।	२८,	९३
साकट मी सभा,	निगुरा ।	५१,	४२
सागी सा मिया,	अग्रिहट ।	३४१,	२
माधू दुरमति,	माधु ।	७७,	२०८
मालिग रामका,	भर्म पिघरस ।	३४३,	११
" सिरजन हार पिन,	अग्रिहड ।	३४१,	५
" सीतल जल नही,	साधु ।	६२,	७८
" सीप समुद्रकी, खारा जलनहि लेय ।	पतिव्रता ।	२१८,	१४
" " " रटै पियास पियास ।	"	,	१३
" सुखकु जाय था,	दग्ध ।	४०५,	२
" सुपन रैन के, उधरी आयै नैन ।	चिन्तायनी ।	१७३,	१४
" " ' पडा कलेजे छेक ।	प्रिह ।	१६३,	३५
" सुमिरन अग का,	सुमिरन ।	१३४,	१७७
" सुमिरन सार ह,	,	१२७,	१११
" सुरत मित्र की	प्रेम ।	१५८,	७९
" सूता क्या करे, उठिन भजो भगवान ।	सुमिरन ।	१२३,	७०
" " " उठि न रोयो दूख ।	'	'	७३

करीर सूता क्या करै, काहे न देखै जाग ।	सुमिरन	१२३	७५
" " ' गुन सतगुरुका गाय ।	'	'	७१
" " " जागन की कर चौप ।	'	"	७४
" " ' जागो जपो मुरार ।	"	१२२,	६९
" " " सूते होय अकान ।	"	१२३,	७२
' सेरी साकरी,	मन ।	२६५,	१८
" सेवा दाउ मला,	साधु ।	७३,	१७०
" सो धन सचिये,	आसा तृत्ता ।	४०१,	२१
" सोचि प्रिचारिया,	प्रिचार ।	४२१,	१
" सोई दिन भग,	साधु ।	५३,	३
" सोई पौर है,	दया ।	४३३,	२१
" मोई सूमा, जाके पाचौ हाथ ।	सूमा ।	२२६,	३
' ' " पाचौ राखा चूर ।	'		२
" " ' मन सा माटे जूझ ।		"	१
करीर सगति साधुकी, करहु न निरुपल जाय ।	सगति	८९,	२
" " " जो करि नाने कोय ।	'	"	६
करीर सगति साधु का, जो की भूखो गाय ।	सगति ।	"	३
करीर सगति साधु की, नित प्रति कीनै जाय ।	सगति ।	"	२
करीर सगति साधु की, निरुपल कभी न होय ।	सगति ।	"	५
करीर सगति साधु की, ज्यौ गधोका बाम ।	सगति ।	"	४
करीर सर्ग साधु का,	उपदेस ।	१९६,	३१
करीर ससे जाय में,	सनीयन ।	३३६,	११
करीर ससे दूर कर,	सनीयन ।	"	१२
करीर साई मिलहिगे,	प्रिनती ।	४३७,	१३

कवीर माई मूझ को,	स्वाद ।	४११,	९
कवीर सांचा सूरमा,	सूरमा ।	२३७,	१११
कवीर सुंदरि यों कहै,	विरह ।	१६३,	३२
कवीर सब्द सरीर में,	सब्द ।	२०२,	१
कवीर स्वामी कोय नहीं,	चानक ।	३०८,	१९
कवीर हृद के जोब मो,	बेहद ।	३३८,	१३
कवीर हम गुरु रस पिया,	प्रेम ।	१५४,	३७
कवीरे हम सब को कहै,	विचार ।	४२३,	१५
कवीर हमने घर किया,	करनी ।	३६४,	२४
कवीर हमरा कोई नहि,	साधु ।	७०,	१४३
कवीर हमरे नाम बल,	सुमिरन ।	११८,	३०
कवीर हरि जाना नहीं,	मान ।	३९८,	२५
कवीर हरि का डरपता,	लगनी ।	३६८,	२५
कवीर हरि के नाम में, बात चलावै और ।	सुमिरन ।	११८,	३२
कवीर हरि के नाम में, सुरति रहै करतार ।	सुमिरन ।	"	३१
कवीर हरिके मिलन की,	सुमिरन ।	११९,	३८
कवीर हरिके लुठते,	गुरुदेव ।	८,	४०
कवीर हरि रस जिन पिया अन्तरगत लो ल्याय ।	रस ।	२६२,	१
कवीर हरि रस जिन पिया, मांगे सीम कलाल ।	रस ।	"	४
कवीर हरिरस बल है,	रस ।	"	३
कवीर हरिरस बरपिया,	निगुरा ।	४८,	१७
कवीर हरिरस भरि पिया,	रस ।	२६२,	२
कवीर हरि मां हेत कर,	काल ।	२९६,	३८
" हरि हरि सुमिरि ले,	सुमिरन ।	१२७,	११२

कबीर हसना दूर कर,	विरह ।	१९३,	३३
कबीर हीरा बनिजिया, महंगे मोल अपार ।	सूरमा ।	२२६,	७
कबीर हीरा, बनिजिया, हिरदै प्रगटी खानि ।	सतगुरु ।	२५,	६३
कबीर हृदय कठोर के,	निगुरा ।	४७,	१४

रु

कई बार नहि करि सकै,	साधु ।	५३,	६ ।
कछु कहि नीच न छेड़िये,	प्रकृतिगुन ।	३८८,	८
कठिन कमान कबीर की,	मूरमा ।	२३२,	६१
कठिनाई कछु है नहा,	मूरमा ।	२३७,	११२
कडी कमान कबीर की, धरी रहै मैदान ।	सूरमा ।	२३२,	६२
कडी कमान कबीर को, न्यारे न्यारे तीर ।	सूरमा ।	"	६३
कडी कमान कबीर की, काचा टिकै न कोय ।	सूरमा ।	"	६४
कडी है धारा राम की,	मूरमा ।	"	६५
कथत कथत जुग थाकिया,	निजकर्ना ।	३७१,	२०
कथते हैं करते नहा,	कथनी ।	३६१,	१०
कथते हैं करते सही,	कथनी ।	"	११
कथते बरते पचि मुये,	करनी ।	३६४,	१७
कथनी कपि कृष्ण फिर,	कथनी ।	३६१,	५
कथनी कथे अगाध की,	करनी ।	३६५,	३२
कथनी कथे तो क्या हुआ,	कथनी ।	३६०,	१
कथनी काची है गई,	कथनी ।	"	२
कथनी कू धीजू नहीं,	कथनी ।	३६१,	७
कथनी के भूरे घने,	कथनी ।	"	८
कथनी को तो भानि के,	कथनी ।	"	९
कथनी थोथी जगत में,	कथनी ।	"	६

कथनी ब्रदनी छाड दे,	कथनी ।	३६०,	४
कथनी मीठी खाड मी,	कथनी ।	,,	३
कथा करो कर्तार को, निसदिन साझ सकार ।	उपदेस ।	१९७,	४४
कथा करो कर्तार को, सुनो कथा कर्तार ।	"	"	४७
कथा कीरतन करन को,	"	"	४१
कथा कीरतन कलि प्रिय, तरवे को उपकार ।	"	"	४८
कथा कीरतन कलि प्रिये, भीसागर को नाव ।	"	१९६,	४०
कथा कीरतन छाडि के,	"	१९७,	४२
कथा कीरतन रत दिन,	"	"	४३
कथा कीरतन सुनन को,	"	"	४९
कल कृपा गुरु हृदया,	गुरु पारख ।	३४,	२८
कपट कुटिलता दूर्वचन,	साधु ।	६६,	११८
कपट कुटिलता छाडि के,	"	"	११७
कपटी कदौ न ऊधरे,	कपट ।	४०४,	१५
कपटी का गुरु चातुरी,	कपट ।	४०३,	११
कपटी के मन कपट बसे,	कपट ।	४०४,	१७
कपटी मित्र न कीजिये,	कपट ।	४०४,	१६
कपास विनूठा कापडा,	कनक कामिनी ।	२९१,	९७
कफ काया चित चरुमका,	विपर्यय ।	२५७,	५२
कगहुँक मन गगन हि चढे,	मन ।	२७१,	६४
कगहुँक , मंदिर मालियों,	सन्तोष ।	४२८,	८
कनउ पत्र हैं साधु जन,	साधु ।	६७,	१२६
कर कनान सर साधि के,	सतगुरु ।	२५,	६६
कर गदन दुर्जन वचन,	सब्द ।	२०६,	४०

कर जोरै प्रियता करू,	प्रियता ।	४३७,	१४
जरगम सम दुर्जन पचन,	क्षमा ।	४२६,	५
करता की गति अगम है,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७७,	२९
करता था तो क्यों रहा,	उपदेश ।	१९९,	६७
करता दीसै कौरतन,	चानक ।	३०८,	१३
करना करनी सब कहै,	करनी ।	३६३,	७
करना कर मो पूत हमारा,	करनी ।	३६५,	३३
करना का रजमा नहीं, करनी कथै अपार ।	करनी ।	३६३,	५
करनी का रजमा नहीं, करनी मेर समान ।	करनी ।	३६३,	८
करना गर्व न काजिये,	करनी ।	३६३,	८
करनी प्रिय कथनी कथै, अज्ञानी दिनरात ।	करनी ।	३६२,	४
करना प्रिय कथनी कथै, गुरुपद तहै न भाय ।	करनी ।	३६२,	३
करना विचारी क्या करै,	दुख ।	४०६,	१०
कर्म कचोड़ आत्मा,	कर्म ।	४०७,	१
कर्म हमारे काटि है,	भर्मप्रियस ।	३४५,	३४
काहु छाड बुल जान,	मतगुरु ।	२९,	९८
करिये तो करि जानिये,	मेघ ।	८३,	४४
कर दूरि अज्ञानता,	गुरुद्वय ।	१५,	८४
करै बुराई सुख चाहै,	कर्म ।	४०८,	११
करै सुहाली लापसा,	प्रिभिचारिन ।	२२५,	२०
करक पडा मैदान में,	माया ।	२८३,	५८
कर्म अपना परखि ले,	कर्म ।	४०९,	२२
कर्म करीमा लिखि रहा, अत्र कहु लिखा न होय । विश्वा०	विश्वा०	२१२,	२८
“ “ नर सिर भाग अभाग । विश्वास ।	विश्वास ।	२१२,	२९

कर्म फट जग फदिया,	मन्द ।	२०८,	५५
कलि का ब्राह्मन मसग्वरा,	पटित ।	३८२,	१८
कलि का स्वामी लोभिया, पीतल धर खटाय ।	चानक ।	३०७,	७
“ “ मनसा रहै बधाय ।	चानक ।	३०७,	६
कलि के गुरुना लालची,	गुरु पारख ।	३२,	१३
कलियुग एके नाम है,	साधु ।	७१,	१५८
कलियुग काल पठाइया,	नशा ।	४१७,	१
कलियुग केरे ब्राह्मना,	मांसाहार ।	४१३,	१०
कवि तो कोटिन कोटि हैं,	भेष ।	८६,	६८
कसत कसौटी जो टिकै,	कसौटी ।	३७४,	९
कस्तूरी नाभी वसे, नाभि कमल हरि नाम ।	व्यापक ।	३२६,	१३
“ “ मिरग हूँ है वन मोहि ।	व्यापक ।	३२६,	१२
कह अकास को फेर है,	साधु ।	५९,	५९
कहत सुनत जग जात है,	चिन्तामनी ।	१८१,	००
कहत सुनत सत्र दिन गये,	मन ।	२७३,	८२
कहता हू कहि जात हू, कहा जो मान हमार ।	मासा०	४१६,	४१
“ “ कहू बजाये ढोल ।	सुमिरन ।	१३०,	३९
“ “ देता हू हेला ।	गुरु पारख ।	३८,	६७
“ “ मानै नहीं गमार ।	काम ।	३९०,	१५
“ “ सुनता है सत्र कोय ।	सुमिरन ।	१३२,	१५७
कहते को कहि जान दे,	उपदेस ।	१९५,	२८
कहना था गो कहि दिया, अत्र बछु कहा न जाय ।	परि०	१३७,	२१
“ “ “ अब कछु कहना नहि । ”		१४७,	१०४
कहने को चूम नहीं,	सब्द ।	२०९,	७३

कहने जसा बात नहीं,	भट ।	३२२,	४४
कहा करु में जलि गया,	कर्म ।	४०८,	८
कहा प्रिया हम आयके,	चिन्तामनी ।	१८०,	७८
कहा चुनारै मेटिया, चूना माटी छाय ।		१७८,	६१
‘ ‘ ‘ लखी भीत उत्तारि ।		”	६२
कहा बगौर नारि,	कपट ।	४०३,	१३
कहा बरनौ काति छत्रि,	बेहद ।	३३९,	२२
कहा भयो तन बाधुरे,	प्रेम ।	१५७,	६५
कहा भरासा देहका,	सुमिरन ।	१३०,	१३७
कहा बुद सायर मिला,	प्रश्नात्तर ।	४४०,	३
कहा स आया जीन यह,	”	४४३,	३६
कहै दरनारा बातरा	सूरमा ।	२३४,	७७
कहै पात वा झाट सा,	काल ।	२९५,	२८
कहै कनिर गुरु प्रेम बम,	सेवक ।	१०३,	३८
कहै कनिर चित चेतहु,	निजकर्ता ।	३७२,	३०
कहै कनिर तू द्रष्टि ले,	सुमिरन ।	१२४,	६७
कहै कनिर धर्मदाम सौ,	चानक ।	३०९,	२६
कहै कनिर गुरुसा मिर,	गुरुदेव ।	१५,	८१
कहै कनिर तनि भरम का,	”	१३,	६२
कहै कनिर पुनारि क, चेते नाहा काय ।	चिन्तामनी ।	१८५,	१३१
‘ ‘ ‘ तोय बात लगि लेय ।	उपदेस ।	१९४,	१४
‘ ‘ ‘ (कोय) सत निवका होय ।	निवक ।	४२१,	५
कहै कनिरा देह त,	उपदेस ।	१९४,	१५

का

काग साधु दरसन कियो,	साधु ।	७७, २१२
कागद केरी नागरी, पानी केरी गग ।	मन ।	२७१, ६६
कागद , पाहन गरुया भार ।	भर्मपिण्डस ।	३४४, १८
कागद लिख सो कागदा	आत्मारुभव ।	३१०, ७
कागा करव ढढोरिया,	प्रिरह ।	१६७, ७३
„ करक न चूथिरे,	„	१६८, ७५
„ काका धन हरे,	सब्द ।	२०९, ७१
„ ते हमा भयो,	साधु ।	७८, २१५
काच कथीर अधीर नर, नतन करत है भग ।	क्षमा ।	४२६, ६
काचा सेती मति मिलै,	सगति ।	९४, ४९
काची काया मन अधिर,	काल ।	२९७, ४३
काची रती मति करो,	सजीवन ।	३३६, ६
काचै का क्या ताइये,	क्षमा ।	४२६, ७
काचै गुरु के मिलन से,	गुरु पारख ।	३५, ३९
काज बनागत कारटा,	त्रिभिचारिन ।	२२५, २२
काजर केरी कोठरी, एसो यह ससार ।	टासतन ।	१०४, ८
„ „ काजर ह का कोट ।	„	९
„ „ ममिके किये कपाट ।	भर्मपिण्डस ।	३४३, १४
काजल तजे न स्यामना,	प्रकृतिगुन ।	३८८, ६
काजी का बेटा सुआ,	मासाहार ।	४१४, २५
काना तुझे करीम का,	मासाहार ।	४१४, २४
कानी मुलना भरमिया,	मासाहार ।	४१४, २९
काठट्ट जम के फट,	सुमिरन ।	१२५, ८७

काटा कटा जो कर,	मासाहार ।	४१३,	१८
काटा कटा माछरी,	मन ।	२७३,	७२
काट नधन विपति में,	निनकर्ता ।	३७२,	२९
काठ हि धुन नो खाइया,	गिरह ।	१६६,	५८
कान लगी सुनहा कहें,	काल ।	२०४,	१३
कान हसिया भुग्न नक्रिया,	सूरमा ।	२३८,	१२०
काका फिर कारी भया,	म य ।	३१४,	८
काम कथा सुनिये नहीं,	उपदेस ।	१९७,	५५
काम कहर असवार हं,	काम ।	३९०,	१६
काम काम सब काट रहे,	”	३९०,	१२
काम क्रोध तस्ना तनै,	उपदेस ।	२०१,	८७
काम क्रोध मट लोभ की,	काम ।	३९०,	१४
“ नाथ मूतक सदा, ये मूतक सग देहक (३) प्रश्ना० ।	८४७	७३	
“ “ “ सील सरोवर न्हाइये (३) “	“	७१	
“ हरकत बल घटै,	नशा ।	४१७,	६
कामिना कारी नागिनी,	कनक कामिनी ।	२८८,	२८
“ सुंदर सर्पिनो,	“	“	२९
कारि अमा न भाई,	काम ।	३८०,	७
“ नरहु न गुरु भनै,	“	“	२
“ का गुरु कामिनी,	“	“	१
“ बुत्ता तीस दिन,	“	“	३
“ कर्म का कैचुली,	“	“	८
“ तिर कारी तिरै, लोभ की गति होय ।	आनद ।	३८७,	६
“ “ “ “ ओमी तिरै अनत ।	त्रिभिचारिनि ।	२२५,	२ १

कामी तो निर्भय भया,
 ,, लज्जा ना करे,
 ,, सें कुत्ता भला,
 ,, क्रोधी लालची,
 ,, ,, ,,
 काय कमटल भरि लिया,
 कायन कागन काडिया,
 कायर कचरी . वठिके,
 कायर का काचा मना,
 कायर का घर फुसका,
 कायर काम न आये,
 कायर को कौतुक भला,
 कायर बहुत पमाये,
 कायर भया न छुटि हो,
 कायर भागा पीठ दे,
 कायर सेरी ताकि के,
 कायर हुआ न छुटि है,
 काया कजरी बन अहं,
 काया कफ चित चकमक,
 काया कसौ कमान च्यौ,
 काया खेत किसान मन,
 काया देखल मन घना,
 ,, मंजन क्या करे,
 ,, माहि समुद्र है,

काम ।	३८९,	६
,,	,,	५
,,	३९१	१८
,,	३८९,	४
भक्ति ।	११०,	३४
लगनी ।	३६७,	१८
चितावनी !	१७५,	३८
सूरमा ।	२३८,	११८
,,	,,	११७
,,	२३५,	८८
,,	२३९,	१३४
,,	२३५,	८७
,,	,,	८९
,,	,,	८६ .
,,	,,	९१
,,	,,	९०
,,	२३४,	८५
मन ।	२७२,	७३
व्यापक ।	३२६,	९
मन ।	२७२,	७५
कर्म ।	४०७,	३
मन ।	२७२,	७४
चितावनी ।	१८१,	९२
जीवनमृतक ।	३३१,	६

चाया सिप मसार में,	परिचय ।	१८४,	७४
„ मों कारज करे,	उपदेस ।	२०१,	८
काल करम तत्काल है,	उपदेस ।	१९३,	४
„ करे सो आज कर, आज करै सो अव्व । चिन्तामनी ।	१११७,	५३	
„ करे सो आज कर, सब हीं साज तुन साय । „	„	५२	
„ कैसे कसनाय कर्म,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,	१४
„ काल तत्काल है,	उपदेस ।	१९३,	३
„ काल मव कोट कहै,	काल ।	३००,	७५
„ के माथे पांन दे,	सतगुरु ।	२७,	७९
„ चिन्ताना है, म्बडा,	काल ।	२९२,	३
„ चक्र चक्की चले,	चिन्तामनी ।	१८४,	१२२
„ जीन को प्रासई,	काल ।	२९२,	१
„ जीन मानै नहीं,	उपदेस ।	१९९,	७०
„ पाय जग उपजो,	काल ।	३००,	७४
„ फिरे सिर ऊपरै, जीन हि नजरि न आय । सव्द ।	२०५,	२६	
„ फिरे सिर ऊपरै, हाथों धरी कमान ।	काल ।	३००,	७६
„ हमारे सग है,	काल ।	२९२,	२
काया मुख कर मानका,	मान ।	३९७,	१०
„ मुँह करि करड का,	मामाहार ।	४१५,	३०
„ मुँह करु करम का,	कर्म ।	४०७,	४
कासी काया एक है,	एकता ।	३२३,	४
काहू जुगति ना जानिया,	मोह ।	३९४,	११
„ को नहि निन्दिये, चाहे जैसा होय ।	निन्दा ।	३८५,	१६
„ को नहि निन्दिये, सबको कहिये सत्त ।	निन्दा ।	३८६,	२५

काहू को न संतापिये,	दासातन ।	१०६,	२१
काहे को कल्पत फिरे, काहे पावे दूख ।	विश्वास ।	२१३,	३२
,, को कल्पत फिरे, दुखी होत बेकाम ।	सहज ।	३१३,	६
क्रिये बिना मागे बिना,	विश्वास ।	२१३,	३७
किरतनियासैं काम बिस,	पारख ।	३५४,	२४
कीडी जु चाली सासरे,	विपर्यय ।	२६०,	६०
कीया कल न होत है,	समर्थ ।	३०१,	७
कुल करनी कुल करम गति,	परिचय ।	१४१,	४६
कुटिल वचन सब ते बुरा,	सब्द ।	२०६,	३९
कुटिल वचन नहि बोलिये,	,,	२०६,	४१
कुदरत पाडे खरी सों	सतगुरु ।	२६,	७३
कुबुद्धि कमानो चडि रहै,	सब्द ।	२०६,	३८
कुबुद्धि को मूझे नहीं,	भर्मविध्वंस ।	३४८,	६१
कुमति किर्मा की मिटि गई,	प्रश्नोत्तर ।	४४७,	७१
कुमति काँच चेला भरा,	गुरुदेव ।	४,	१२
कुमति चित की मिटि गई,	प्रश्नोत्तर ।	४४७,	७२
कुमति हती सो मिटि गई,	,,	,,	७०
कुल क्षेत्र सब मैदिनी,	मोह ।	३९४,	१०
कुल करनी के कारनै, डिगहि रहि गया राम ।	चि० ।	१८१,	८९
,, ,, ,, हसा गयो विगोय ।	,,	० ,,	८८
कुल करनी छूटे नहीं,	करनी ।	३६४,	१८
कुल खोये कुल ऊबरे,	चितावनी ।	१८१,	८७
कुल टूटे कारी पडी,	संगति ।	९४,	५१
कुल मारग छोडा नहीं,	पंडित ।	३८३,	३४

कुञ्जता कोटिक मिले,
कुसल कुसल जो पूछता,
कुसल जो पूछो अमल की,
कूकर बहु बहु जरि मुआ,
कूकस कूटै कन विना,
कूप पराया आपना,
कूसगति लागे नहीं,
केना जिन्या रस भवै,
केता बहाया वहि गया,
केते पडि गुनि पचि मुआ,
केता कहू दुशाय के,
केसन कहा विगारिया,
केसन कहि कहि कृकिये,
केसू भँवर न नैटहीं,
के कुसल अनजान के,

कै खाना कै सोनना, सतगुरु सब्द विसारिया । (३)चि० ।	साधु ।	७६, १९५,
„ „ हरिसा प्रातम बीसरा (३) चानक ।	काल ।	२९४, १८
के तू लोरै मुकदमी,	„	२१
कै विरहिनी को मीच दे,	विपर्यय ।	२५३, २६
कै मासे भर नाम है,	कयनी ।	३६१, १२
कै रती भर सुरति है,	कनक कामिनी ।	२८६, ११
कसा भा सामर्थ हो,	सगति ।	९६, ७०,
कोइ एक ज्ञानी पारखी,	साधु ।	७७, २११
कोइ कुरग चित जय मिले,	कनक कामिनी ।	२९१, ५६
	सतगुरु ।	२९, ९७
	चिताननी ।	१८७, १३३
	भेष ।	८१, २१
	सुमिरन ।	१२४, ७२
	कपट ।	४०३, १२
	काल ।	२९४, २०
	भर्मनिधयस ।	३०७, ४
	विरह ।	१६४, ४४
	प्रश्नात्तर ।	४४५, ५४
	„	४४५, ४८
	करनी ।	३६५, ३०
	पारख ।	३५७, ५८
	पारख ।	३५७, ५३

कोड मरि तिर तोय सू,
 वाइला मि ह्वे ऊनल,
 कोई अप्रै भाय ले,
 कोई न जम सों प्राचिया,
 कोटि करम वटि पलकमें, रचक अप्रै नाम ।
 कोटि करम कौरे पलक में, या मन प्रियया स्वाद ।
 कोटि करम लागे रहें,
 कोटि कोटि तारथ करे,
 कोटि नाम ससार में,
 कोटि सयान पचि सुये,
 कोटि सगरे काम,
 कोटिन चदा ऊगहों,
 कोट ऊपर दौटना,
 कोन पडा न छुटि है,
 कोतुक देखा देह प्रिना,
 कोन कमे कसनाय को,
 कोन जगप्रै ब्रह्म का,
 कोन तुम्हारा जालि हे,
 कोन देस कहाँ आइया,
 कोन देस ते आइया,
 कोन पवन घर मचरे,
 कोन पवन धरती उसै,
 ,, पवन ले आनई,
 ,, राम दसरथ घर डोलै,

सरमा ।	२४१,	१४८
सगति ।	९३	४४
साधु ।	६७,	१२२
सुमिरन ।	११८,	२८
सुमिरन ।	१२१,	५७
मन ।	२७१,	६५
क्रोध ।	३९१,	२
साधु ।	६२,	८१
सुमिरन ।	११७,	१६
भेद ।	३१८,	०
उपदेस ।	१९६,	३५
गुरुदेव ।	१३,	६४
चित्ताननी ।	१८२,	१०३
मूरगा ।	२३४,	८३
परिचय ।	१३९,	३५
प्रश्नोत्तर ।	४४१,	१३
प्रश्नोत्तर ।	४४७,	५०
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३४
सूक्ष्ममार्गी ।	३७६,	१४
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३०
प्रश्नोत्तर ।	४४२,	२२
प्रश्नोत्तर ।	,,	२६
,,	४४३,	२८
,,	४४४,	४०

कौन राम दसरथ घर डोलै,
 ,, सरोवर पानी मिनु,
 कौन साधु का खेल है,
 ,, सुरति ले आवई,
 कौन सब्द की नागरी,
 कौर माधु दरमन कियो,
 कचन को कछु ना लगे,
 कचन को तजयो सहल,
 कचन केवट गुरु भजन,
 कचन तनना सहज है,
 कचन दीया कन ने,
 कचन मेरु अरपही,
 ,, भी पारस पगमि,
 काकर पाथर जोडि के,
 काच कथीर अमीर नर, ताहि न ऊपजी प्रेम ।
 कासै ऊपर बीजुरी,
 कुनर मुख से कन गिरा,
 कुभे गांधा जल रह,
 कन्या नल अरु कारन,
 कृस्न करीमा एक है,
 क्या करिये क्या जोडिये,
 क्या मुख ले निनती करु,
 क्यों खोवै नर तन प्रिया,
 क्यों छूटे जम जाल,

निजवर्ता ।	३७१,	२४
प्रश्नोत्तर ।	४४१,	११
प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४४
,,	,,	३८
प्रश्नोत्तर ।	४४१,	९
साधु ।	७७,	२१४
उपदेश ।	२००,	७४
निन्दा ।	३८६,	२६
माच ।	४३१,	१७
मान ।	३९६,	८
साधु ।	५६,	२७
निगुरा ।	४९,	२५
मगति ।	९५,	६३
भर्मप्रिन्स ।	३४४,	२०
कसीटी ।	३७४,	८
नेहट ।	३३९,	१७
दया ।	४३३,	१६
मन ।	२७४,	९२
आनदेव ।	३८७,	५
एकता ।	३२३,	३
चितावनी ।	१८९,	१७४
निनती ।	४३६,	२
चिनावनी ।	१९१,	१९२
सुमिरन ।	१२५,	८६

क्यों नृप नारी निन्दिये,
क्रिया करे अगुरि गिने,
क्रोध अग्नि घर घर बढी,

साधु । ६०, ६६
सुमिरन । १३१, १५०
क्रोध । ३९१, १

ख

खर कृकर की भीख जो,
खरी कसौटी तोलता,
खरी कसौटी रामकी, काचा टिकै न कोय ।
" " " खोटा टिकै न कोय । जीयतमृतक
खलक मिला खाली हुआ,
खसम उलटि बेठा भया,
खसम कहाँ नैन,
खद्ग मीठा चपरा,
खद्ग मीठा देखिके,
खाख लपेटे जो रहै,
खाटा मीठा खाय कर,
खान खरचन बहु अन्तरा,
खाय पकाय लुटाय के,
खाय पकाय लुटाय ले,
खाला नाला हीम जल,
खालिक बिन खाली नहीं,
खाला माधु न प्रिदा करु,
खुली खेलो ससार में,
खुश खाना है खोचडी,

भीख । ८८, १५
कसौटी । ३७४, ३
" " " ३७३, २
जीयतमृतक । ३३२, २२
चितायनी । - १८४, १२७
त्रिपर्यय । २५७, ५०
निगुरा । ५१, ४८
खाद । ४१०, १
" " २
उपदेश । २०१, ९०
खाद । ४११, १३
माया । २८१, ३६
उपदेस । १९३, १०
" " ९
परिचय । १४७, १०७
व्यापक । ३३, ४७
साधु । ५५, १९
काल । २९९, ६३
मासाहार । ४१६, ४०

खेत न छाड़ै सुरमा,	सुरमा ।	२२९,	३५
खेत विगार्यो खलुआ,	भक्ति ।	११२,	४७
खेल जु मँडा खिलाडि सों,	प्रेम ।	१५७,	७१
खेळ मचा खेलाडि सों,	सतगुरु ।	२८,	९०
खेह भई तो क्या भया,	जीवितमृतक ।	३३४,	३४
खोजि धरि विश्वास गहु,	विश्वास ।	२११,	१४
खोजी को डर बहुत है,	सुरमा ।	२३३,	७४
खोजी हुआ सन्द का,	सन्द ।	२०४,	१८
खोद खाद धरती सहे,	॥	२०६,	४३
खेभा एक गयंद दो,	मान ।	३९७,	१२
खांड खिलौना एक है,	एकता ।	३२४,	१३
खांड खिलौने तुम कहो,	॥	॥	१४
खांडा तिसको बाहिये,	सुरमा ।	२३४,	८२
खैचूं तो आनि नहीं,	मन ।	२७०,	५७

ग

गगन गरजि बरयै अभी,	परिचय ।	१४२,	५९
गगन दमामा बाजिया, पडत निसानै चोट ।	सुरमा ।	२२७,	१२
॥ ॥ ॥ पडत निसानै धाव ।	॥	॥	१३
॥ ॥ ॥ हनहनिमा के कान ।	॥	॥	१४
गगन बुंद सायर मिला,	प्रश्नोत्तर ।	४४०,	४
गगन मंडल के बीच में, जहाँ सोहंगम डोर ।	परिचय ।	१४२,	६४
॥ ॥ ॥ झलकै सतका मूर ।	॥	॥	६०
॥ ॥ ॥ तहयों झलकै मूर ।	निगुरा ।	४७,	१३

गगन मडल के नीचेमें, तुरी तत्त इक गात्र। परिचय ।	१४२,	६३
" " " विना कलम की छाप । "	"	६२
" " " महल पडा इक चीन्हि । "	"	६१
गगन महल भाठा रुपी,	बेहद ।	३४१, ३३
गरजै गगन भमा चुनै, तहा कबीरा बदगो(३)परिचय ।	१४३,	६६
" " " तहाँ कबीरा सतजन(३) "	१४२,	६५
गरभ जागेश्वर गुरु विना,	निगुरा, ।	४६, ४
गला काटि कऊमा भरे,	मासाहार ।	४१५, ३३
गला काटि विसमिल करै,	" "	३४
गला गुसाँ को काटिये,	" "	३५
गलों तुम्हारे नाम पर,	बिरह ।	१६७, ६९
गहरी प्रीति सुजान की,	प्रेम ।	१५८, ७८
गहै सब्द निज मूल,	सब्द ।	२०८, ६३
गागर ऊपर गागरी,	सूक्ष्म मार्ग ।	३७५, ५
गाय भैंस घोड़ी गधी,	कनक कामिनी ।	२९०, ४४
गाय रोय हसि खेलिके,	" "	४३
गाया निन पाया नहीं,	विश्वास ।	२११, १७
गार अगारा कोष झल,	क्रोध ।	३९२, ६
गारी मोटा ज्ञान,	उपदेस ।	१९६, ३४
गारी हो सैं ऊपरै,	"	३६
गात्रनिया के मुख बस	पारख ।	३५४, २३
गात्रन ही में रोना,	विश्वास ।	२११, १८
गाहक मिले तो कुछ कहू,	पारख ।	३५३, १८
गिरही का दुकटा घुरा,	सुमिरन ।	१२४, ८१

गिरही-का चिन्ता धना,	भेष ।	८७,	७७
गिरही द्वारे जाय के,	भेष ।	८४,	४७
गिरही सेवै साधु को, भाव भक्ति आनद ।	भेष ।	,,	५४
गिरही सेवै साधु का, साधू सुमरै नाम ।	भेष ।	,,	५३
गिरिये परमत मिश्र ते,	सगति ।	९३,	४२
गिरिवर धायो वृक्षनी,	निनमर्ता ।	३७०,	१५
गु अधियारी जानिये,	गुरु पारख ।	३६,	४३
गुन इन्द्रो महजे गये,	परिचय ।	१४६,	९२
गुन गाये गुनना कटे,	सुमिरन ।	१२४,	८४
गुनगता ओ द्रव्य को,	प्रेम ।	१५६,	६४
गुरु आज्ञा ले-आनई,	सेवक ।	१०३,	३७
गुरु आज्ञा ते जो री,	भेष ।	८५,	५८
गुरु आज्ञा मानै नहीं,	सेवक ।	१०१,	१०
गुरु किया है देह का,	गुरु पारख ।	३३,	२८
गुरु को आज्ञा आनई,	गुरुदेव ।	४,	९
गुरु को महिमा को कहै,	गुरुदेव ।	७,	३१
गुरु को सूना आत्मा,	गुरुपारख ।	३५,	३८
गुरु कीन जानि के,	गुरुशिष्यहेरा ।	४५,	४९
गुरु कुम्हार सिष कुम है,	गुरुदेव ।	५,	१४
गुरु के सन्मुख जो रहे,	भेष ।	८५,	५९
गुरु को कोजै दडगत,	गुरुदेव ।	३,	१
गुरु को चेला बोध दे,	माया ।	२८३,	६१
गुरु को दाप रती नहीं,	गुरु शिष्य हेरा ।	४३,	३५
गुरु को पूजै गुरु मुग्गी,	उपदेस ।	२०२,	९४
१७ गुरु का मानुष जो मिले,	गुरुदेव ।	५,	२०

गुरु को मानुष जानते,	गुरुदेव ।	५	२१
गुरु को सिर पर राखिये,	गुरुदेव ।	,,	१९
गुरु गोविंद करि जानिये,	गुरुदेव ।	३,	३
गुरु गोविंद दोऊ एक है,	गुरुदेव ।	,,	५
गुरु गोविंद दोऊ खडे,	गुरुदेव ।	,,	४
गुरु जहाज हम पावना,	काल ।	२९९,	६२
गुरु जो बसै बनारसी,	गुरुदेव ।	५,	१७
गुरु तुम्हारा कहाँ बसै,	प्रश्नोत्तर ।	४४०,	१
गुरु तो ऐसा कीजिये, (सत्र)वस्तु व्यापक होय ।	गुरु०पा०	३५,	३६
" " " तत्व दिखावै सार ।	"	"	३७
गुरु तो ऐसा चाहिये, छिप सौ कछु न लेय ।	गु०शि०हे०	४५,	५०
गुरु दरिया सूभर भरा,	जीवनमृतक ।	३३१,	१०
गुरु दाज्ञा चेला जला,	विपर्यय ।	२५८,	५३
गुरु धोबी सिप कापडा, निकसै जोति अपार(४)गुरु०।		४,	१३
" " " निकसै रंग अपार(४)प्रश्नोत्तर ।		४४१,	१६
गुरु नहीं चेला नहीं,	मध्य ।	३१५,	१८
गुरु नारायन रूप है,	गुरुदेव ।	६,	२४
गुरु पसु नर पसु नारि पसु,	विवेक ।	४२०,	४
गुरु पारस को अन्तरो,	गुरुदेव ।	४,	११
गुरु पारस गुरु पुरुष है,	"	"	१०
गुरु बिन अहिनिस नाम ले,	निगुरा ।	४६,	२
" " माला फेरते,	"	"	३
" " ज्ञान न ऊपजे, गुरु बिन मिलै न मेय ।	गुरु० ।	५,	२२
" " " " " " मोष ।	"	६,	२३

गुरु बेचारा क्या करे, हिरदा मया कठोर ।	गुरुपारख ।	३८,	६४
" " " सद्ग न लगा अंग ।	"	"	६५
" भक्ता मम भक्त है,	गुरुदेव ।	७,	३०
" भक्ति अति कठिन है,	भक्ति ।	११०,	३३
" महिमा गावत सदा,	गुरुदेव ।	६,	२६
" भौरे गुरु झटकरे,	"	७,	३९
" मिला नहि सिध मिला,	गुरुपारख ।	३१,	२
" मुख गुरु आज्ञा चले,	सेवक ।	१०३,	३४
" " " चितवत रहे, जैसे भनी मुयंग ।	"	१०२,	३२
" " " " साह दिवान ।	"	१०३,	३३
" " बानी ऊचै,	गुरुदेव ।	७,	३२
" " सद्ग प्रतीत कर,	उपदेस ।	२०१,	८९
" मूर्ति आगे - खड़ी,	गुरुदेव ।	८,	३६
" " गति चंद्रमा,	"	"	३३
" मर्याद न भक्ति पन,	विभिचारिन ।	२२३,	२
" मुक्ताये जीव को,	गुरुदेव ।	६,	२७
" लोभी सिध लालची,	गुरुपारख ।	३१,	१
" समान दाता नहीं,	गुरुदेव ।	५,	१५
" समर्थ सिर पर खडे,	दासातन ।	१०३,	
" सरनागत छांडिके,	गुरुदेव ।	८,	३५
" सों प्रीति निवाहिये,	"	७,	२८
" सों ज्ञान जु लाजिये,	"	४,	८
गुरु सौंज ले सीध का,	गुरुशिष्यहेरा ।	४४,	४०
गुरु हमारा गंगन में,	प्रश्नोत्तर ।	४४०,	२

गुरु हानिर चहु दिसि खडै,
गुरु ह पूरा सिष हे मूरा,
गुरु है ऋड गोविंद ते,

॥ गुरु में सेद ह,

॥ नाम है गम्य का,

॥ प्रतापै साधको,

॥ विचारा क्या करै, वास न ईधन हाय । गु शि ह ।

॥ भया नहि सिष भया,

॥ मिले सीतल भया,

॥ समाना सोप में,

गैरा आया गेय ते,

गैरी ता गलियों फिरै,

गोता मारा सिधु में,

गाधन गन्धन मानिधन,

गोविंद के गुन गोयता,

गोसा ज्ञान कमान का,

गो को अधी मति कहो,

गो जो पिष्टा भक्षई,

गगा जमुन के बीच में,

गगा जमुना सुरसती,

गाठि हाय सो हाथ कर,

गाठी दाम न बाधई,

गूगा हुआ बाररा,

अथन माहीं अर्थ है,

परिचय । १४९, १२६

गुरु पारख । ३८, ६६

गुरुदेव । ४, ६

गुरु पारख । ३०, १७

॥ ३५, ४२

॥ ३७, ५४

॥ ४४, ४६

॥ ४५, ४७

परिचय । १३९, ३२

गुरुदेव । ८, ३४

मभ्य । ३१६, २४

॥ ३१६, २५

प्रेम । १५३, ३४

सतोष । ४२८, ३

सुभिरन । १०४, ८३

सतगुरु । १९, १६

पारख । ३५८, ६३

नशा । ४१७, ९

लगनी । ३६७, १६

बेहद । ३४१, ३४

उपदेस । १९४, १८

साधु । ६६, १०१

सतगुरु । २६, ७०

लगनी । ३६७, १५

घट का पडदा खोलकर,
 ,, बड़ बड़ न देखिये,
 ,, बिन बड़ न देखिये,
 ,, मैं .. औघट पाइया,
 ,, मैं .. जोति .. अनूप है,
 ,, मैं .. है सुखे .. नहीं,
 ,, समुद्र .. लखि ना पड़े,
 ,, हि नाम की आस करु,
 घटी' बड़ी, जाने .. नहीं,
 घडि जो बाजे .. राजदर,
 घडि ही .. की आधी घडी,
 घन घसिया जोई मिले,
 घर घर हम सब सौ कड़ा,
 घर .. जारे घर ऊबरे,
 घर परमेश्वर .. पाहुना,
 घर में घर दिखलाय दे,
 घर में रहें तो भक्ति करु,
 घर में माकट इस्तरी,
 घर रखवाला वाहिरा,
 घाट जगाती धर्मराय, गुरुमुख ले पहिचान ।
 ,, ,, सुबका झारा लेय ।
 घाट हि पानी सब भरी,
 घायल ऊपर घाय ले,

गुरु पारख । ३८, ६०.
 व्यापक । ३२७, २
 व्यापक । ३३०, ४८
 परिचय । १४४, ७५
 विश्वास । २११, १९
 मेद । ३१९, २०
 समर्थ । ३०२, १०
 सुमिरन । १२०, ४५
 विपर्यय । २५३, ३५
 काल । २९४, १९
 संगति । ९०, १०
 गुरुशिष्यहेरा । ४४, ३८
 बद्ध । २०९, ६५
 विपर्यय । ३४५, ५
 पतिव्रता । २२१, ४३
 गुरु पारख । ३६, ४८
 मेप । ८७, ७९
 निगुरा । ५१, ४७
 चितावनी । १७८, ६६
 काल । २९८, ६१
 काल । २९८, ५९
 सूक्ष्म मार्ग । ३७७, २५
 शील । ४३७, ८

घायल की गति और है,
घायल तो घूमत फिरे,

सूरमा । २३०, ४६
" " ४१

च

चकरी बिछुरी रैन की,
चढ़ी अखाड़े सुदरी,
चतुर त्रिवेको धीर मत,
चतुराई क्या कीजिये,
चतुराई चूल्हें पड़ो,
चतुराई पोपट पड़ो,
चतुराई हरि ना मिले,
चलती चाकी देखि के,
चलते चलते पगु थके,
चलते चलते युग गया,
चलन चलन सब कोइ कहै,
चले गये सो ना मिले,
चलो चलो सत्र कोइ धहै,
चहुँदिस ठाढ़े सूरमा,
चहुँदिस पक्का कोट था,
चाकी चली गोपाल की,
चातक चित हि चुमि गया,
चातक सुत हि पडावई, जान नोर मति लेय ।
" " सुनो बात यह तात ।
चातुर को चिता घनी,

बिरह । १६०, ३
पतिव्रता । २२१, ३८
सेवक । १०२, २८
उपदेस । १९९, ६२
कथनी । ३६२, १८
पंडित । ३८३, ३१
मेघ । ८३, ४०
काल । २९९, ६७
सूक्ष्ममार्ग । ३७७, २६
सतगुरु । २८, ८९
सूक्ष्ममार्ग । ३७६, २०
चितावनी । १८८, १६१
कनककामिनी । २८५, १
फाल । २९७, ४६
काल । २९७, ४५
काल । २९९, ६६
पतिव्रता । २२८, ५२
" " ५०
" " ५१
उपदेस । २००, ७३

चार अठारह नौ पढ़ि,
 चार ईट चौरासि कुवा,
 चार चरन नौ पंख है,
 चार चिन्ह हरि भक्ति के,
 चार भुजा के भजन में,
 चार वेद पढ़्यो कौ,
 चारि खानि में भरमत्ता,
 चाल बकुल की चलत है,
 चाह गई चिन्ता मिटी,
 चिऊँटी चावल ले चली,
 चित कपटी सब सों मिले,
 चित चटकी लागी नहि,
 चित चेतन ताजी करै,
 चित चौखा मन निरमल,
 चितमनि पाई चौहटे,
 चित चैन में गरफि रहा,
 चिडिया प्यासी समुँद गई,
 चौदर जमिया चून का,
 चीर मध्य क्यों तंतु है,
 चूड़ी पटकू पलंग से,
 चेतन चौकी बैठि के,
 चेत सवरे बावरे,
 चोट सतावै विरह की,
 चोट सहै जो सेल की,

पंडित ।	३८२,	२१
भेद ।	३२१,	४३
विपर्यय ।	२५९,	५५
भक्ति ।	११२,	५३
निजकर्ता ।	३७२,	२८
पंडित ।	३८२,	२३
सतगुरु ।	२४,	५१
भेष ।	८०,	१४
संतोष ।	४२८,	४
भर्मविध्वंस ।	३४७,	५१
कपट ।	४०३,	६
चानका ।	३०९,	२७
सूरमा ।	२३०,	४७
सतगुरु ।	२७,	७५
परिचय ।	१४६,	९८
साधु ।	६९,	१४२
समर्थ ।	३०५,	४४
विरह ।	१६६,	५९
व्यापक ।	३२८,	३६
विरह ।	१६९,	९२
सतगुरु ।	२६,	६७
चितावनी ।	१९१,	१९३
विरह ।	१६५,	५०
सूरमा ।	२४१,	१४६

चोर चुराई तुंगरी,	करनी ।	३६३,	१२
चोर भरोसे साहु के, जवलग साह न बांधई(३) विप. ।		२४९,	१९
“ “ पहिले बांधो साहुके(३) “		२४८,	१८
चोरवा भल हम चीन्हिया,	मन ।	२७२,	७८
चौके चिऊँटी चूल्ह घुन,	दया ।	४३३,	१३
चौडै बैठे जाय के,	आसातृत्ना ।	४००,	९
चौदा भुवन भाजि धैरे,	परिचय ।	१४८,	११६
चौपड मांढी चोहटै,	सूरमा ।	२३३,	७२
चौसठ दीवा जोयके,	निगुरा ।	४६,	६
चंचल मन निहचल करै,	मन ।	२७४,	८९
चंचल मनुवा चेतरे,	मन ।	२७१,	६०
चंद सूर घर पवन लौं,	काल ।	२९९,	७०
चंद सूर वा घर नहि,	बेहद ।	३४०,	२८
चंदन काटा जड खनी,	पारख ।	३५५,	३२
चंदन गया विदेसरे,	“	३५४,	३०
चंदन जैसे संत हैं,	संगति ।	९२,	३४
चंदन डर लहसुन धरै,	“	“,	३५
चंदन डरपै सरपसौ,	दासातन ।	१०६,	२७
चंदन परसा बावना,	संगति ।	९२,	३२
चंदन भांगा गुन करै,	मन ।	२७५,	९८
चंदन रोया रात भरि,	पारख ।	३५४,	३१
चंदा सूरज चलत न दोसै,	प्रकृतिगुन ।	३८८,	९
चांद नहीं सूरज नहीं,	परिचय ।	१४४,	४०
चिन्ता ऐसी डाकिनी,	संतोष ।	४२९,	१२

चि चित्त प्रसारिये,
चिन्ता छाडि अचिन्त रह,
चिन्ता ता सतनाम की,
चिन्ता मनि कर निचिन्त रह,
चिन्तामनि चित में प्रसे,
चुम्क वाढै सार कू,

मन ।	२७१,	६१
विश्राम ।	२११,	११
सुमिरन ।	१२९,	१०७
सन्तोष ।	४२९,	११
विश्वास ।	२११,	१०
सारप्राहा ।	३१०,	८

छ

छटै मास नहि करि सक्,
छानन भोनन प्र त सों,
छानन भोनन हव है,
छाडै प्रिन छटै नहीं,
छाया माया रहित ह,
छिन हि चढे छिन ऊतरै,
छिमा खेत भल जानिये,
छिमा साधु का खर है,
छाया रंग सुरग रग,
छार रूप सतनाम है,
छुरा पराई आपना,
छाटी माटी कामिनी,

साधु ।	५४,	१४
साधु ।	१८,	५२
नशा ।	४१७,	८
माया ।	२८४,	६९
बेली ।	३१९,	४
प्रेम ।	१५२,	२३
भक्ति ।	१०९,	२७
प्रश्नात्तर ।	४४४,	४५
गुरुपारम्ब ।	३६,	४९
सारप्राहा ।	३१०,	६
कनक कामिना ।	२८६,	१२
„	२८९,	३०

ज

जग जहदा में राचिया,
जग मौसागर माहि,
जग मूआ विषधर धर,

चितायना ।	१८,	७९
सतगुरु ।	३०,	१०४
सतगुरु ।	२७,	८१

जग सारा दरिद्र भया,
 जग हटगारा स्वाद टग,
 जग में चारों राम हैं,
 जग में डोढी कामिनी,
 जग में बहु परपच,
 जग में बैरी कोई नहि,
 जग में भक्त कहावई,
 जग में युक्ति अनूप है,
 जग सौ आपा राखिके,
 जगत जनायो जिहि सकल,
 जगत माहि धोखा घना,
 जन कैवीर वदन करै,
 जनक रिदेही गुरु किया,
 जनम मरन सैं रहित है,
 जनमै मरन विचारि के,
 जप तप तीरथ सब करै,
 जप तप दीखै थोथरा,
 जप तप सजम साधना,
 जप माला छापा तिलक,
 जप का माई जनमिया,
 जब गुन को गाहक मिलै,
 जब घट मोह समाइया,
 जब जागे तब नाम जप,
 न तू आया जगत में,

सन्तोष ।	४२८,	६
माया ।	२८१,	३२
निजकर्ता ।	३७१,	२३
कनक कामिनी ।	२९१,	५४
सब्द ।	२०८,	६२
उपदेस ।	१९५,	२७
कनक कामिनी ।	२९०,	४१
सतगुरु ।	२८,	८४
संगति ।	९४,	५३
गुरुदेव ।	१३,	६६
क्रोध ।	३९१,	३
प्रियती ।	४३८,	२५
निगुरा ।	४६,	५
निजकर्ता ।	३७०,	१३
चितावनी ।	१७९,	६८
भर्मप्रियस ।	३४८,	६५
„	३४४,	२५
सुमिरन ।	१२७,	१०८
भेष ।	८३,	४१
प्रियती ।	४३८,	२१
पारख ।	३५३,	१४
मोह ।	३९३,	४
सुमिरन ।	१३३,	१६१
करनी ।	३६५,	२६

नम दिड मिला दयाउ सों,	परिचय ।	१४५,	८७
मित्र मन लगा लोभ सों,	लोभ ।	३०२,	१
नम भ था तन गुरु नहि, नमोर नगराण्व में(३)	परिचय ।	१४१,	४७
,, भ था तन गुरु नहि, प्रेम गला अति साधरी(३) प्रेम ।		१५४,	३९
नम रग था तन ना रगा,	चित्तदर्शी ।	१८७,	१५२
नमलग आस मरीर कौ,	जातमृतक ।	३३२,	२१
जन्म कथना हम कथा,	लगना ।	३६७,	१४
जन्म घड पर सास है, सूर कहारै कोय ।	मूरमा ।	२३१,	५३
,, ,, ,, मूरा कहिये नाहि ।	मूरमा ।	२३७,	११०
नमग नाता नातिना,	भक्ति ।	१०९,	२६
नमलग दिय परिचय नहीं,	परिचय ।	१४६,	९३
जन्म भक्ति मराम है,	भक्ति ।	११०,	३६
नमलग लग समुद्र में,	पारम ।	३५८,	६५
जन्मगि आमा टह का,	भक्ति ।	११२,	५२
नमगि मन सें टरै,	प्रेम ।	१५६,	६०
अरि नाम हिरदै धरा,	सुमिरन ।	११८,	२७
नम हा मारा मैचि क,	मतगुरु ।	२६,	६८
नम गरज रठ राव क,	गुरुदेव ।	११,	५८
नम जौरा तो है नहीं,	सनावन ।	३३७,	१३
जम द्वार में दूत मर,	मतगुरु ।	२४,	५०
नमन जाय पुकारिया,	काल ।	२९९,	६४
नम आय नारा किया, पिय अपना पहिचान ।	काल ।	२९३,	१०
नम आय नारा किया, नैनन दीन्हा पीठ ।	काल ।	,,	११
नम कुना नोपन मसा,	काल ।	२९४,	१७

जरा मौल्य व्याप नहीं,
 नर यो प्यारा माछर,
 जड़ थड़ जाय निते निते,
 जड़ दादा चांगर नग,
 जड़ कमान माछर
 जड़ में येन ना ना चुरे,
 जड़ में वसे कमोदिनी,
 जगे हमारा जीवना,
 नहर पराया आपना,
 नहें यह जियरा पगु धरे,
 जहें लग अमर हराम सत्र,
 जहों आपा तहा आपदा,
 जहा काम तहा नाम नहि,
 जहों चतुर की गम नहीं,
 „ जराई सुदरी,
 „ जैसी मगनि करे,
 „ दया वहे धर्म है,
 „ न चिऊटी चटि सकै,
 „ न जाको गुन लहै,
 „ पुरष सत भाव है,
 „ प्रेम तह नम नहीं,
 „ बाज गसा करे,
 „ भक्ति तह भेष नहि,
 „ लगि सत्र ससार है,

मजोरन ।	३३५,	१
भक्ति ।	११०,	२८
दाजता ।	४३४,	६
प्रियय ।	२४६,	१०
गुरदेव ।	१०,	५३
प्रियय ।	२५०,	२३
प्रेम ।	१५७,	६७
विरह ।	१७०,	०८
कनक कामिनी ।	२८६,	१०
कर्म ।	४०८,	१४
नशा ।	४१०,	२७
मद ।	३९५,	२
काम ।	३००,	१३
सूक्ष्ममार्ग ।	३७७,	२७
कनककामिनी ।	२९१,	५०
संगति ।	९५,	५९
दया ।	४३३,	१५
सूक्ष्ममार्ग ।	३७७,	२२
उपदेश ।	२००,	८०
वेहद ।	३३९,	२३
प्रेम ।	१५३,	३०
मन ।	२७३,	८१
भक्ति ।	११०,	३१
मोह ।	३९३,	५

जहा साक व्याप नहा,	बेहद ।	३३०,	१०
जा कारन जग दूँडिया,	व्यापक ।	३२६,	१५
॥ ॥ मैं जाय आ, सो तो मिलिया आय ।	परिचय ।	१४४,	७६
॥ ॥ ॥ ॥ ॥ पाया ठौर ।	॥	॥	७७
॥ ॥ हम जाय शे,	॥	१४९,	१२७
जा कारन हम दूँटते,	भेद ।	३२०,	३३
॥ गुरु को तो गम नहीं,	गुरुपारख ।	३४,	२९
॥ ॥ ते भ्रम ना भिटै,	॥	३३,	२५
॥ घट प्रीति न प्रेम रस,	सुमिरन ।	१२८,	४६
॥ ॥ प्रेम न संचरै,	प्रेम ।	१५३,	२९
॥ ॥ मैं संसे बसै,	साक्षीभूत ।	३२२,	३
॥ ॥ ॥ साई बसै,	॥	॥	१
॥ घर गुरु की भक्ति नहिं,	संगति ।	९०,	१३
॥ ॥ माधु न सेवही,	साधु ।	६०,	६२
जा तन में विरहा बसै,	विरह ।	१७१,	१०४
॥ दिन निरतम ना हता,	परिचय ।	१४४,	७८
॥ ॥ ते जिय जनमिया,	दुख ।	४०५,	१
॥ पल दरसन माधुका,	संगति ।	९०,	११
॥ वन सिंघ न संचरै, रहा कबीर समाय(४)परि० ।	जीवतमृतक ।	१४३,	७२
जा मरना सो जग डरै,	साधु ।	६१,	७५
जा सुख को मुनियर रटे,	गुरुपारख ।	३१,	३
जाकत गुरु है आंधरा,	॥	३६,	४५
॥ ॥ ॥ गोरही,	॥	३२,	११
॥ ॥ ॥ लालचो,	॥	३२,	११

जाका^३, ताकूँ दाजिये,
 जाकी गाठी नाम है,
 " थापी माड है,
 " धोती अधर तपै,
 " पूजी सास है,
 " साचो सुरति "
 जाके आगे इक कहूँ,
 जाके चित अनुराग है,
 जाके दिल में हरि बसै,
 " मन विश्वास है,
 " मुँह माया नहीं,
 " हिय साहिव नहीं,
 " सिर गुरु ज्ञान है,
 जाको आडा अन्तरा,
 " जितना निर्मान किया,
 " राखै साइया,
 जागन में सोवन करै,
 जागो लोगो मत सुबो,
 जागृत^१ जागृत साच है,
 जाता है जिस जान दे,
 जाति जाति के पाहुने,
 " न पूछो साधु की,
 " बरन कुल खायक,
 " हमारी आत्मा,

सूरमा ।	२३६,	१०१
सुमिरन ।	१२१,	५०
निजकर्ता ।	३७२,	२६
साधु ।	७५,	१९३
सुमिरन ।	१३०,	१३८
साच ।	४३०,	११
दुख ।	४०५,	४
प्रेम ।	१५९,	८९
विश्वास ।	२१२,	२२
"	२१०,	१
निजकर्ता ।	३७,	१०
गुरुपारम्ब ।	३२,	१४
गुरुदेव ।	१३,	६८
परम्ब ।	३५७,	५७
कर्म ।	४०८,	१५
समर्थ ।	३०६,	४७
सुमिरन ।	१३४,	१७५
चितावनी ।	१८९,	१७५
आत्मानुभव ।	३११,	१९
काल ।	२९९,	६५
व्यापक ।	३२५,	३
साधु ।	५९,	५७
भक्ति ।	११०,	३१
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	१५

जान भक्त का नित मरन,
 जानिके अनजान हुआ,
 जानि वृक्षि मांची तर्ज,
 जानीता जय वृक्षिया,
 जानीता वृक्षा नहीं,
 जाने की तो गम नहीं,
 जाय मर अजपा मरै,
 जाय झरोखे सोवता,
 जाय पूछो उस धायलों,
 जाय मरै सो जीव है,
 जाय मिल्यों परिवार में,
 जाया जाया सब कहैं,
 जारन हारा भी मुआ,
 जारि वारि मिस्सी करे,
 जाहि रोग उत्पन्न भया,
 जाहु वैद घर आपने,
 जितना अवगुन मैं किया,
 जिन म्याया सोई मुआ,
 जिन गुरु को चोरी करी,
 जिन गुरु जैसा जानिया,
 जिन घर नीवत बाजनी,
 जिन जेता प्रमु पाइया,

भक्ति । १११, ३७
 भेद । ३१९, १६
 संगति । ९४, ४८
 गुरुपारख । ३१, ५

, , ,
 सूक्ष्ममार्ग । ३७६, ३१

सुमिरने । १३१, १५२

काल । ३००, ७७

सूरमा । २३०, ४०

चितावनी । १९०, १८२

सतगुरु । २७, ८०

काल । २९८, ५२

काल । २९५, ३१

काल । २९८, ५५

निजकर्ता । ३७२, ३१

विरह । १६४, ३८

विरह । १७१, १०६

कलक कामिनी । २८८, २६

चितावनी । १७९, ६९

उपदेस । १९८, ६०

चितावनी । १८९, १७३

परिचय । १५०, १२९

” हूँदा तिन पाइया, जो वपुरा डूवन डरा (३) उपदेस । १९९, ६१

” हूँदा तिन पाइया, मैं वपुरा डूवन डरा (३) गु.शि.हं. । ४१, १९

।जन नर साच ।पुछानथा,	सांच ।	८३०,	१२
” पाया तिन सुगह गहा.	भेद ।	३२१,	४१
” पावन भुँइ बहु फिरा. तिन पावन थिति पकडिया(३)जी.मृ.३३४,६८			
” ” ” पिया मिलन जब होइया(३)परि. ।	१३५,	३	
” के नाम निसान है,	काल ।	२९८,	६०
” के नौबत बाजतो,	चितावनी ।	१७६,	३९
” को साईं रंग दिया,	माया ।	२८२,	४८
जिनमें जितनी बुद्धि है,	उपदेस ।	१९९,	६९
जिस कारन मै जाय था ,	मूक्षमार्ग ।	३७५,	११
” नही कोई तिस हि तूं,	समरथ ।	३०२,	१८
जिसका गुरु है लालची,	गुरुपारम्भ ।	३२,	३२
जिसके कोई संग नहीं,	समरथ ।	३०३,	१९
जिसको रहना उत घरा,	चितावनी ।	१८२,	१००
जिहि. जिवरी ते जग बंधा,	उपदेस ।	१९८,	१५९
” बन सिध न संचै,	लगनी ।	३६७,	१७
जिहि धिरिया साहिव मिले,	साक्षोभूल ।	३२२,	७
” विधि सिपको मन बसै,	गुरुदेव ।	१४,	७८
” सर घड़ा न बूडता,	विपर्यय ।	२४८,	१७
” साईं का सोच है,	विरह ।	१७०,	९९
” सव्दे दुख ना लगे,	सद्ग ।	२०९,	७९
” जिम्या कर्म कछोयरी, जो तीनों बस होय ।	स्वाद ।	४११,	१२
” ” ” तीनों गृह में त्याग ।	” ”	”	११
जिम्यो जिन बस में करी,	मद्व ।	२०९,	७३
” सकर जीभ दुध,	”	२०७,	४५

जिम्मा में अमृत प्रेम,
 जीना मोटा हो भला,
 जीभ स्वाद के कृप में,
 जीव अधम अति दुग्लि हं,
 जाय कर्म में जलि गया,
 " जीव मय एक हैं,
 " जन्तु जलहर वसे,
 " दया चित राखि के,
 " ब्रह्म व्योरा नहीं,
 " मिलना जीवसा, अलख लग्यो नहि जाय । त्रिरह ।
 " " " पिय जो लिया मिलाय । "
 " हर्ने हिमा कर, निगम सुनी अस पापते(३)मा० ।
 " " " पाप सवन जो देखिया(३) ' '
 जीवन कोय समुझै नहीं,
 " जीव कहाँ वसे,
 " " हिरद वसे,
 " मिरतन हो रही,
 " " है रहै,
 " में मरना भग,
 जीवन जीवन रानमद
 जूआ चोरी मुखरिा,
 जूझन चाले नूरमा
 जूझगे तन कहेंगे,
 जूझी ते नर झुपिया,
 " " भागिया,
 " "

सम्ब ।	२०६,	४४
सुमिरन ।	११८,	१६८
स्वाद ।	४१०,	३
सतगुरु ।	२७,	७७
कर्म ।	४०७,	५
मासाहार ।	४१६,	४६
निर्वेक ।	४२१,	६
उपदेस ।	१९३,	१
पक्ता ।	३०५,	१८
त्रिरह ।	१६८,	८१
" " " पिय जो लिया मिलाय । "	१६८,	८२
" हर्ने हिमा कर, निगम सुनी अस पापते(३)मा० ।	४१३,	१५
" " " पाप सवन जो देखिया(३) ' "	'	१४
उपदेस ।	१०८,	५७
प्रश्नोत्तर ।	४४५,	५२
"	४४५,	५३
पतिव्रता ।	२२१,	४७
जीवनमृतक ।	३३०,	१
"	"	२
संगति ।	९४,	५४
साधु ।	७१,	१५१
गूग्मा ।	२३९,	१३२
"	२३१,	१
"	२४१,	१४०
"	२४०,	१४४

जे मूआ हरि - हेत सं,	सूरमा ।	२४०,	१३५
जे राते सतनाम सों,	सुमिरन ।	१३१,	१४४
जेता घट तेना मता, घट घट और सुभाव ।	उपदेस ।	१९६,	३८
“ “ बहु बानी बसु भेष ।	व्यापक ।	३२५,	१
जेता नारा रैन का,	सूरमा ।	२३१,	५६
“ मीठा बोलया,	भेष ।	८०,	१६
जेती लहरि समुद्र की,	मन ।	२७०,	५५
जेहि खोजत ब्रह्मा यके,	सतगुरु ।	२७,	७८
“ घट जान विजान,	अविहड ।	३४१,	४
जैसा हूँदत मैं फिरुं,	गुरुशिष्यहेरा ।	४१,	१५
“ भोजन खाइये,	उपदेस ।	१९६,	३९
जैसा मीठा घृत पकै,	भेष ।	८४,	५६
जैसि तिलक उनहार है,	“	७९,	९
जैसी करनी आपनी,	करनी ।	३६४,	२०
“ “ जासुकी,	“	३६३,	१३
“ कथनी में कथी,	“	३६५,	२७
“ प्रीति कुटुम्ब की,	गुरुदेव ।	१०,	५४
“ मुख ते नीकसे, तैसी चाले चाल ।	करनी ।	३६३,	१०
“ “ “ “ “ नाहि ।	“	“	९
“ लकड़ी ढाक की,	व्यापक ।	३२६,	१०
“ ली पहिले लगी,	लगनी ।	३६६,	४
“ “ प्रथम हि लगे,	“	“	६
“ सेवा सिप करे,	गुरुशिष्यहेरा ।	४३,	३९
जैमे तमवर बीज में,	व्यापक ।	३२८,	२०

जैसे फनिपति मत्र सुनो,	सुमिरन ।	१२१,	५१
.. माया मन रैन,	"	१२०,	४७
.. सती पिय संग जेर,	गुरुशिष्यहेरा ।	४३,	३३
जैसे मूरज घुष मधि,	व्यापक ।	३२८,	३०
' स्याही अक मधि,	व्यापक ।	"	३१
जो आरे तो जाय नहि, जैसे बूझो जाय(४) मूढमार्ग ।		३७६,	१२
जो आरे तो जाय नहि. समुझि छेहु मनमाहि(४) "		"	१३
" उगं. तो ब्रह्म में,	वेग ।	३५९,	९
" उगे मो आयमें,	काग ।	२९५,	३२
" औजार निधय विषा,	निवक्ता ।	३७१,	१८
" कटु आरे सहन में,	सहन ।	३१३,	८
" कटु नित्या मो तुम नित्या,	समर्थ ।	३०१,	६
" कटु करे निचारि के,	विचार ।	४२३,	१८
" कटु होय नह कटु,	पारम ।	३५४,	२५
' कलहैं के देमिये,	कलक कामिना ।	२८९,	४१
" कर्मा अन्तर बधे,	कर्मा ।	३६३,	११
" काटे तो टहटहा,	वेग ।	३६०,	१२
" कामिनी परदे रहै,	मिगुरा ।	४७,	१०
" कोइ निन्दै माधु को,	निन्दा ।	३८५,	१४
" कोइ समुझै सैन में, तासों कहिये नैन । उपदेस ।		१९८,	५८
" कोइ समुझै सैनमें, तासों कहिये धार्य । परिचय ।		१३७,	२२
' कोइ सुमिरन अंग को, निमिदासर वरै पाठ । सुमिरन ।		१३४,	१७९
" कोइ सुमिरन अंग को, पाठ करै मन लाय । ..		"	१७८
" कोय करे मो स्वारथी,	परमारथ ।	२४३,	

जो कल्पे तो दूरि हे,	सहज ।	३१३,	७
” गाँवे सो गायना,	पतिव्रता ।	२२१,	४२
” गुरु पूरा हाय	गुरुदेव ।	१३,	५९
” छोट ता जाधरा,	भगति ।	०६,	६८
” जन प्रिहो नाम क,	प्रिह ।	१६८,	७८
” जन होइ है, नौहरि,	सुभिरन ।	११८,	२५
” नल बाढ़े नाय में,	उपदेस ।	२०१,	८६
” जाका सन गहें,	समरथ ।	३०५,	४२
” जाकी वाही लगो,	समरथ ।	३०६,	५१
” जाको काटे,	मासाहार ।	४१६,	४७
” जाको गुन जानता,	प्रवृत्तिगुन ।	३८८,	१०
” जागत सो सपन में,	प्रेम ।	१५५,	४८
” जेसा उनमान का,	पारख ।	३५३,	१३
” तू पडा है पदमें,	चिन्तावनी ।	१८९,	१६७
” तू पित्रका प्यारनी,	लगनी ।	३६७,	११
” तू ध्यासा प्रेम का,	प्रेम ।	१५३,	३२
” तू सेवक गुरुन का,	निन्दा ।	३८५,	१५
” तोको काटा बुने,	उपदेस ।	१९३,	५
” दिल दिल ही में रहे,	प्रेम ।	१५६,	५८
” दोसे सो त्रिनमिहै,	सतगुरु ।	२६,	७२
” देखा सो तीन म,	भेद ।	३२१,	३४
” देखे सो कहे नहीं,	”	३१८,	१३
” निगुरा सुभिरन करै,	निगुरा ।	४६,	१
” पकरे सो चले नहीं, करपद को तुम कहत हो(३) भे.	१३१९,	१५	
” ” ” कहैं कविर या साखिको (३)भेद ।	”	१४	

जो बोले तो राम कहू,	सुमिरन ।	१२८,	१२०
,, भावों तो भय नहीं,	सार्क्षीमृत ।	३२२,	४
,, मन लगा एक सा, न्याय तमाचा, स्थाय (४) चानक ।		३०८,	२०
,, मन लगै एक सौ, धना तमाचा स्थाय (४) पति ।		२२०,	३१
,, मन समुझै ज्ञान में,	भेद ।	३२०,	२९
,, मन में तो त्रह में,	वैली ।	३६०,	१०
,, मैं मूल प्रिगारिया,	समरथ ।	३०४,	३१
,, मानुष गृहि धर्म युत,	भेष ।	८४,	४९
,, मूआ हरि हत में,	मरमा ।	२४०,	१३६
,, यह एक न जानिया,	पतिव्रता ।	२२०,	२७
,, यह एक जानिया,	,,	२७०,	२८
,, या घाटी लग्ही,	कनककामिनी ।	२८६,	६
,, यह एक न जानिया,	भेद ।	३२१,	३५
,, विभूति माधुन तनी,	माधु ।	७०,	१४७
,, साचा विश्वास है,	विश्वास ।	२१३,	३०
,, मिर मौपा साड को,	सूरमा ।	२३६,	१००
,, सत्तनाम समाय,	सतगुरु ।	२९,	१०२
,, है जाका भावना,	प्रेम ।	१५७,	६६
,, हारों तो सेव गुरु,	मूरमा ।	२३३,	७३
,, हसा मोता चुर्ग,	पारख ।	३५३,	१९
जोड़ गहे निज नाम को,	सुमिरन ।	१३४,	१७६
जोड़ मिले सौ प्रीति में,	प्रेम ।	१५६,	५७
जोग से तो जौहर भट्टा,	सूरमा ।	२३२,	५९
जोगी जगम सेण्डा, सन्यासी दरवेस ।	प्रेम ।	१५३,	३१
,, ज्ञानी गुनी अपार ।	लोभ ।	३९२,	

जोगी हुआ झक लगी,
 ,, है जग जोतता,
 जोवन मित्रदारी तजी,
 जोर करी जिवह है,
 ,, किये ते जुन्म हैं,
 जाह्न जठन जगत की,
 जोन चाल समार की,
 ,, भार ऊपर रहै,
 ,, मिला सों गुर मिला,
 जगल ढेरी राख की,
 जत्र भत्र सन झूठ है,
 ज्यों आप त्यों ही कहै,
 ज्यों कोरी रेजा बुनै,
 ज्यों गूगा के सन को,
 ज्यों नल में मच्छी रहै,
 ज्यों ज्यों गुरु सामलें, लागे पन भागे नहीं(३) भूमा ।
 ज्यों गुरु गुन सामलों, साटी साटी झडि पडि (३) ,,
 ज्यों तिल मोहीं तेल है,
 ज्यों नेनों में पूतली,
 ,, पय मध्ये घीन है,
 ,, पथर में आगि है,
 ,, बधूरा वाय मध्य,
 ,, प्रतिका घट फेन जल,
 ,, मृतिका घट मध्य में,

परिचय ।	१३५,	५
आसातृस्ना ।	४०१,	१३
काल ।	२९३,	१२
मासाहार ।	४१५,	३१
,,	,,	३२
कनककामिनी ।	२९०	४७
साधु ।	६६,	१२०
,,	६८,	१३४
मान ।	३९९,	३१
चिन्तामना ।	१८१,	९७
सब्द ।	२०७,	५०
विचार ।	४२३,	१२
चिन्तामना ।	१८२,	१०२
आमानुभव ।	३१०,	४
साधु ।	७६,	२०२
भूमा ।	२३३,	७१
,,	,,	७०
व्यापक ।	३२५,	५
,,	,,	४
साधु ।	५८,	४३
व्यापक ।	३३०,	५०
,,	३२८,	२७
,,	,,	२८
,,	३२७,	२६

ज्यों मेरा मन तुझ सों,
 ,, ही एकै महल में,

प्रेम । १५५, ४६
 व्यापक । ३२७, २४

श

शल वोंये शल दाहिन,
 शारी फाँसी कृप में,
 झालि उठी झोली जला,
 शिरमिर शिरमिर बरषिया,
 झीनी माया जिन तना,
 अठ बात नहि गोरिये,
 झूठा सप ससार है,
 ,, सुख को सुख कह,
 झूठे को झूठा मिलै,
 झूठे गुरु के पक्ष को,

दुख । ४०५, ६
 आत्मानुभव । ३११, १५
 विपर्यय । २४६, ७
 निगुरा । ४८, १५
 माया । २८१, ३५
 साच । ४३१, १८
 चितानना । १८५, १३४
 काल । २९३, ४
 साच । ४३१, १९
 गुरपारख । ३४, २६

ट

टोला टोली बाहि क,
 टूका माँही टूक दे,
 टेक करै सो गारा,
 टेक न कीनै बाररे,

सद्व । २०६, ३७
 साधु । ५६, २६
 निगुरा । ४९, ३१
 ,, ,, ३०

ड

डग डग पै जो डर करे,
 डर करनी डर परम गुरु,

दासातन । १०६, २५
 चिताननी । १८४, १२६

ढाल जाँ दूँट मूल को,
 डाल भई है मूल ते,
 डुबकी मारी समुद्र में,
 हुआ औघट ना तरे,
 डारा लागी भय मिटा,

गुरुशिष्य० । ४२, २५
 " " २६
 जी०मृतक । ३३१, ८
 सनगुरु । २९, ९४
 प्रिद्यास । २१०, २७

४

ढाले दूँट दिन गया,
 ढाल दमामा गडगड़ी,
 " " दुरगरी,
 " " प्राजिया,
 टिकली का नमना कहा,

काल । २९३, ७
 साधु । ६८, १३०
 चितायना । १७३, ४०
 सती । २१४, २
 कपट । ४०३, ८

५

तकन तयायत रहि गया,
 तज काग की देह,
 तत दरसा जो होय,
 तन पाया तन बीसरा,
 तस्त तले की सो कहे,
 तत्त समाना तत्त में,
 तत्त तिलक का खानि है,
 तत्त तिलक तिहुँ लोक में,
 तत्त तिलक माथे दिया,
 तत्त हि फल मन तिलक ह,
 तन तुरग असवार मन,
 तन थिर मन थिर नचन थिर,
 तन दिखलाये आपना,

भर्मनि अस । ३४७, ५४
 सुमिरन । १२५, ८८
 सतगुरु । २९, १०३
 परिचय । १३९, ३४
 गुरु पारम्ब । ३७, ५६
 विपर्यय । २६१, ६३
 भेष । ७९, ४
 भेष । " ३
 भेष । ७९, ६
 भेष । " ६
 मन । २७३, ८०
 सुमिरन । १३१, १५१
 प्रेम । १५७, ६८

तन माहा, नो मन जरे,
 तन समुद्र, मन सरजीया,
 तन सराय मन पाहण,
 तन मदूक मन रतन हे,
 तन का इन्द्रा मेल है,
 तन का पैरा कोद नहि,
 तन का मनन नीर है,
 तन की नानि मन की जाने,
 तन कृ मन मिठना नहा,
 तन को जोगी सत्र वर,
 तन में सात सन्द है,
 तन हि नाप निनको नहीं,
 तन मन जीवन जरि गया,
 तन मन नोमन जारि कर,
 तन मन जोगन नारिके,
 तन मन जीवन यो नला,
 तन मन ताको दीनिये,
 तन मन दिया जु आपना,
 तन मन दिया जु कथा हुआ,
 तन मन दिया तो भक्त किया,
 तन मन लज्जा ना रहे,
 तन मन सीम निठारै,
 तनही गुरु प्रिय नेन कही,
 तम मय भान न पाइये,

मन ।	२७१,	६२
जीवतमृत्तक ।	३३१,	१२
चिन्तामना ।	१८३,	१०९,
पाग्व ।	३५३,	१२,
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३१,
मन ।	२७६,	११४
प्रश्नोत्तर ।	४४३,	३०,
समग्र ।	३०६,	५०
मन ।	२७६,	११४
भय ।	८२,	३७
साधु ।	६८,	१३५
साधु ।	७३,	१७२
गिरह ।	१६९,	८६
गिरह ।	,,	८८
गिरह ।	१६८,	८९
गिरह ।	१६५,	४९
गुरुदेव ।	१०,	५१
सनगुरु ।	२५	५९
सतगुरु ।	,,	५८
गुरुदेव ।	१०,	७०
, काम ।	३९१,	२१
गुरुदेव ।	१४,	७५
गुरुदेव ।	१४,	७६
व्यापक ।	३९९,	३८,

तरुवर जड सँ काटिया,
तरुवर तासु पिलविया,
तरुवर पात सों यों कहै,
ताको लच्छन को कहै,
ताजी छटा सहर ते,
ताते सब्द निवेक वर,
तारा मटल वैठि के,
तिनका वगुह न निन्दिये,
तिमिर गया रनि देखते,
तिल के ओटै राम ह,
तिल भर मछली खाय के,
तिल समान तो गाय है,
तीखा सुरति कभीर की,
तीजै चौथै नहि करै,
तीन गुनन की गदरी,
तीन गुनन की भक्ति में,
तीन ताप में ताप है,
तीन देव का सत्र कोइ ध्यायै,
तीन लोक उनमान में,
तान लोक चोरी भई,
तान लोक नी खड में,
तीन लोक सब राम जपत,
तीन गेय हैं देह में,
तीन सनहो गहु मिले,

- सगति ।	९८,	७९
सजीवन ।	३३७,	१४
काल ।	२९५,	२६
आत्मानुभन ।	३१०,	६
काल ।	२९७,	५०
गुरुदेव ।	१४,	७३
चानक ।	३०७,	१०
निन्दा ।	३८५,	११
भक्ति ।	११२,	४८
व्यापक ।	३२७,	१८
मासाहार ।	४१३,	१७
प्रियय ।	२४५,	६
परिचय ।	१५०,	१३१
साधु ।	५४,	१०
प्रियय ।	२५०,	२४
निजकर्ता ।	३६९,	३
उपदेस ।	२००,	७८
निजकर्ता ।	३७१,	१७
साधु ।	६८,	१३६
मन ।	२७२,	७७
गुरुदेव ।	१३,	६३
निजकर्ता ।	३७१,	२१
सतगुरु ।	२८,	८७
गु शि. हे.	४१,	१४

तीर तुपक सौ जो लट्टे, सो तो सूर न होय । सूरमा । २२८, २३	
तीर तुपक सौ जो लट्टे, सो तो सूर नाहि । " २४	
तीरथ कांटे घर कौरे,	भर्मविध्वंस । ३४५, ३०
तीरथ चाले दुइ जना,	भर्मविध्वंस । ३४४, २७
तीरथ न्हाये एक फल,	साधु । ६१, ६८
तीरथ व्रत करि जग मुआ,	भर्मविध्वंस । ३४४, २६
तुम गुरु दोन दयाल हो,	विनती । ४३८, १८
तुम तो समरथ साइया,	समरथ । ३०३, २२
तुम मति जानो बाहुरे,	प्रेम । १५८, ७७
तुम्हें विसारि क्या बने,	समरथ । ३०४, २९
तुरक मसीने देहर हिन्दू,	भर्मविध्वंस । ३४४, २२
तूटै बरत अकास सौ,	साधु । ६८, १३१
तू तू करता तू भया, तुझ में रहा समाय । सुमिरन । १२९, १३३	
" " " तुझमें रही न हूँय । सुमिरन । " १३०	
तू तू करु तो निकट है,	सेवक । १००, ८
तू मति जानै बाबरे,	चितावनो । १८३, ११६
तू मति जानै बीसरो,	विरह । १६७, ६७
तूस्ना सींचो ना / बुझै,	आसातृस्ना । ४०२, २४
ते दिन गये अकारथी,	संगति । ९१, १२
ते मन निरमल सत खरा,	गुरुदेव । १५, ८६
तेजपुंज का देहरा,	परिचय । १४७, १०६
तेरा तुझ में कछु नहीं,	विनती । ४३७, १६
तेरा बैरी कोइ नहीं,	कर्म । ४१०, २९
तेरा साई तुझ में,	व्यापक । ३२६, ११

तेरि ज्योति में मन धरा,	मन ।	२७६,	२१६
तेरे अदर साच जो,	साच ।	४३०,	१४
तेरे निम जोर जुन्म है,	समरथ ।	३०२,	१५
तेरे हिरदे राम है,	भर्मप्रिभ्वस ।	३४८,	५८
तेल तिली सों ऊपजै,	सगति ।	९९,	८८
तोटे में भक्ति कर,	भक्ति ।	११२,	४९
तोळ वरार धूधची,	कसोटो ।	३७४,	६
तोहि पोर जो प्रेम की,	सगति ।	९४,	९०
त्रिबुटो हि निजमूल है,	भेष ।	७९,	७
प्रिया कृतघ्नी पापिनी,	कनक कामिनी ।	२९२,	६३
त्यों ही एकै ब्रह्म ते,	एकता ।	३२५,	१७

थ

थलि जो चला मिरगला,	चिनायनी ।	१८२,	९९
थापन पाई थिर भया,	सतगुरु ।	२५,	६२
थिति पाई मन थिर भया,	मतगुरु ।	"	६५
थोडा सुमिरन बहुत सुख,	सुमिरन ।	१२७,	१०९
थोड़े ही सों छानिया,	रस ।	२६३,	११

द

दया का लच्छन भक्ति है,	दया ।	४३३,	१८
" , क्षीन पर कीनिये, हम तो भये तमासगी(३) "		४३२,	२
" , गल्ले " सोई के सव जीव हैं(३) "		"	३
" , गरीबी बदगी,	साधु ।	७२,	१६७
" , दीनता, सुमता सोळ वरार ।	भक्ति ।	११४,	६९

दया दया मम कोइ नहै	दया ।	४३३	१९
धर्म का मूल है,	'	५३४,	२२
॥ भाव हिरदै नहीं	॥	४३१,	१
॥ सत्र द्वि पर कानिये,	॥ ॥	४३३,	२०
दयाप्रत धरमक म्यना, माधु परम सुजान(४) साधु ।		६५,	११०
॥ ॥ ॥ सत्र परम सुजान(४) सत्रक ।		१०२,	२७
दरद न लेय जात का,	चिन्तामना ।	१८९,	१७१
दरसन कीज माधु का,	माधु ।	५३,	५
॥ का तो माधु है,	दानता ।	४०५,	१४
दरिया मये लहर यौं,	व्यापक ।	३२८,	३३
॥ माहा सोप ह,	परिचय ।	१४८,	११५
दय लागी दरियाय में, उठा अपर बल आग ।	त्रिपर्यय ।	२६०,	५९
॥ ॥ नदिया मोइला होय ।	॥	१८	
दर्मा टिमा स क्रोध का,	नाथ ।	३०१,	४
दाग जु लागे नाथ का,	मगति ।	९४,	५२
दाही मल मुंडाय के,	भय ।	८१,	२०
दाना क ता धन घना,	पतिव्रता ।	३२१,	४०
॥ दाना चरि मये,	दया ।	४३३,	१७
॥ नदिया एक सम, ।	करना ।	३६४,	२३
॥ नरक सम नैकुटे,	त्रिपर्यय ।	२५१,	२७
दाघ कल्याण मम दुर्गा, का पुत्र का बाधना(३) दया ।		४३२,	६
॥ ॥ , जेह जेह भक्ति बबोरका(३)	॥	१	७
दाया द्वि में राखिये,	॥	१	४
दाह मय, यौं प्रतरी,	व्यापक ।	३३७,	२५

दारुक म पावक वसै,	निगुरा ।	४७,
दारु के पावक करै,	”	४९,
” तो सब कोइ ”	सद्व ।	२०४,
दावै दासन होत है,	रस ।	२६४,
दास कविर काढी भली,	मध्य ।	३१४,
” कहावन कठिन है, जबलग दूजी आन । दा० ।		१०६,
” ” ” मैं दासन का दास । ”	”	”
” दुखी तो मैं दुखी,	”	१०५,
” ” हरि ”	”	”
दासातन हिरदै नहों,	”	१०४,
” ” वसै,	”	१०५,
दामी केरा पूत जो,	निगुरा ।	५२,
दिल लागु जु दयाल सों,	परिचय ।	१४९,
” हि पर जो दिल मिले,	कपट ।	४०३,
” ही में दोदार है,	सतगुरु ।	१७,
दीठा है तो कस कहूं,	भेद ।	३१८,
दीन गरीबी दीन को,	दीनता ।	४३४,
” ” वंदगी, सब सों आदरै भाव । ”	”	”
” ” साधुन सों आधीन । दीनता ।		४३४,
दीन गँवायो दुनो संग,	चितावनी ।	१८३,
” लखै मुख सवन को,	दीनता ।	४३४,
दोन्ही खांड पट्टकि कर,	माया ।	२८२,
दीप कुं झोला पवन है,	मद ।	३९५,
दोपक जोया ज्ञान का,	परिचय ।	१४३,
” झोला पवन का,	कलकामिनी ।	२९१,

दीपक दीन्हा तेल भरि,
 " पायक आनिया,
 " सुदर देखि कै,
 दुख खडन भय मैदना,
 " नहि था सप्पार में,
 " में सुमिरन सत्र करै,
 " लैन जायै नहीं
 " सुख एक समान है,
 " फिर ऊपर सहै,
 दया देऊ ता दोजम जाऊ,
 दुनिया क धोखे मुआ,
 के मैं बलु नहीं,
 " बचन पडि गई,
 भाडा दस का,
 " सेवा दामता,
 दना कहै मैं दो रगा,
 दुमिधा नाक मन यस,
 दुर्जन की करुणा बुरी,
 दुर्जल को न सताइये,
 दुक्ख महल को दाहन,
 दूजा होय तो बोलिये,
 दूजे ऋषि मुनिर फेमे,
 दुर्ज दिन नहि करि मकै,
 दूध त्यागि रक्त हि गहे,

मतगुरु ।	२४,	५३
गिरह ।	१६९,	२०
काम ।	३९०,	१०
भक्ति ।	११४,	६५
दुख ।	१२८,	१२२
सुमिरन ।	४०७,	१९
कर्म ।	४०,	२४
साधु ।	६५,	१०४
दामतन ।	१०३,	२
मय ।	३१५,	१६
चिन्तामनी ।	१८०,	८६
चिन्तामनी ।	१८०,	८४
साधु ।	७०,	१४८
चिन्तामनी ।	१८०,	८३
	१८०,	८५
कर्म ।	४१०,	२८
भर्मिप्रियस ।	३४७,	४९
प्रकृतिगुन ।	३८८,	७
उपदेश ।	१९३,	६
प्रकृतिगुन ।	३८८,	५
आमानुभव ।	३१२,	२४
मोह ।	३९३,	८
साधु ।	५४,	९
असारमाही ।	३५१,	६

दूध दूध सत्र एक है,	भेष ।	८६,	७४
दूध फाटि घृत कर्हो गया,	प्रश्नात्तर ।	४४२,	२०
दूध फाटि घृत दूध मित्र,	"	"	३१
दूर भया तो क्या भया सतगुरु मेला होय । मूरमा ।		२३७,	१०८
दूर भया तो क्या भया, सिर दे नियरा होय । "		"	१०७
दृष्टि मुष्टि जाय नहीं,	साधु ।	७८,	२१८
देखा देखा पकड़िया,	भक्ति ।	१११,	४४
देखा देखा भक्ति का,	"	४११,	४३
देखा देखी सत्र कहै,	मुमिरन ।	१३२,	१५५
देखा देखा सुर चढ़े,	मूरमा ।	२३६,	१०३
देखो करम वजार का,	परिचय ।	१४७,	१०८
देखत देखत दिन गया,	विरह ।	१६६,	६२
देखत ही दह में पड़े,	कलकलामिनी ।	२८९,	४०
देखन का सत्र कोड भला,	चानक ।	३०७,	११
देखन सरिणी रात है,	निनमता ।	३७३,	४१
देखन ही की बात है,	एकता ।	३२४,	११
दनहारा राम है,	सतोष ।	४२८,	७
देख माहि देहली,	परिचय ।	१३९,	३७
देवि देव मानै मरी,	प्रिभिचारिन ।	२२५,	२३
देवि देव ठाढ़े भये,	"	"	२४
देवी बडा न देखना,	गुरुदेव ।	१३,	६९
देम दिसतर में फिर,	गुरुशिष्यहरा ।	४४,	४२
देह गेह हो नायगी,	उपदेम ।	१०४,	१६
दह धर का गुन देखी,	"	१९४,	१३

का टड है,
 देह निरतर देहरा,
 देह मय जौं अग हैं,
 देही भौलि विदेह हैं,
 दोनम्य हमही जगेनिया,
 दोष बसन नहि करि सकै,
 दोष पाया देखि करि,
 दोड़ आय सो दोड़मो,
 दोट धूप छोड़ो समी,
 दोड़त दोड़न दोड़िया,
 दण्डन गोविंद गुर,
 हादम निष्क बनावही,
 द्वार धनी के पडि रह,

दुग्ध ।	४०६,	१२
भर्मनिष्कम ।	३४८,	५९
व्यापक ।	३२८,	३४
नेहद ।	३४०,	२०
पतिव्रता ।	२२२,	५३
साधु ।	५४,	७
निन्दा ।	३८५,	१०
सतगुरु ।	२७,	८३
भेद ।	३२१,	३६
मन ।	२७०,	५६
गुरुदेव ।	३,	२
मेघ ।	८०,	११
सेवक ।	१०१,	१७

ध

घड मे मांस उतारि के,
 धन धन मिष की सुरनिर्कु,
 धन धन साई त बडा,
 धन रहै न चोपन रहे,
 धन सो माता सुदरो,
 धनुक वान की चोट हे,
 धरति गगन पवनै नही,
 धरति समानी अघर में,
 धरति हती नहि पग धर,
 धरती और अकास में,

मूरमा ।	२३१,	४९
गुरुशिष्यहेरा ।	४४,	४५
समर्थ ।	३०२,	११
परमार्थ ।	२४३,	८
साधु ।	६२,	८४
मूरमा ।	२४०,	१४०
परिचय ।	१४४,	८१
निषेध ।	२५५,	४५
परिचय ।	१४४,	८२
मय ।	३१५,	१०

धरती अगर जायगे,
 धरती अगर ना हता,
 धरती करते एक पग,
 धरती तो राटा भई,
 धरती फाट मघ मिलै,
 धरन अकासा थरहरै,
 धरि गिरिबर करता विया,
 धरिया कू धीजू नहा,
 धर्म किये धन ना घट,
 धर्मराय दरबार में,
 धारा तो दोनों भली,
 धीर पवन धरती पस,
 धीरज तो रोटी भई,
 धीरन बुधि तब जानिये,
 धीरा हू धमका सहै, ज्या अहरन सिर घाय ।
 ,, ,, ज्यो अहरन का घाय । मूरमा ।
 धीर धीरे रे मना, माला सींच केनडा (३) धीरज ।

प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४६
पटित ।	३८१,	१२
काल ।	२९७,	४८
प्रश्नोत्तर ।	४४४,	४२
मन ।	२७४,	९५
मूरमा ।	२३८,	१२३
भर्मविद्यस ।	३४३,	१७
पतिव्रता ।	२१८,	१६
उपदेस ।	१९५,	२०
समर्थ ।	३०५,	४०
भेष ।	८७,	८०
प्रश्नोत्तर ।	४४२,	२७
"	४४४,	४३
धीरज ।	४२५,	९
"	४२४,	३
मूरमा ।	२४०,	१३९
धीरज ।	४२४,	१

न

तगर वैत तत्र जानिये,
 नमन नमन बहु अन्तरा,
 नमन नैरा तो क्या हुआ,
 नर नारायन रूप हैं,
 नर नारायन होत हैं,
 नर नारी के मूल को,
 नर नारी सत्र नरक हैं,
 नर पशु गुरु पशु वेद पशु,
 नर मूरख ते खर भला,
 नरक स्वर्ग ते मैं रहा,
 नदिया जलों कोइला भई,
 नलिनो मायर घर किया,
 नहि कागद नहि लेखिनो,
 ,, देनी ,, देन है,
 ,, सागर संसार ,,
 नहीं दीन नहि दीनता,
 ,, हाट ,, बाट था,
 ना कलु किया न करि सका, ना कलु करने जोग । सम० ।
 ,, ,, ,, नहि करने जोग सरीर । ,,
 ना मूआ ना भरि गया,
 ,, मैं छार्ई छापरी,
 नागिन के तो दीय फन,
 नाचै गावै पद कहै,

भर्षिन्वस ।	३४८,	५७
कपट ।	४०३,	१०
”	”	९
चितावनी ।	१९०,	१८४
चानक ।	३०९,	२८
आत्मानुभव ।	३१०,	५
सुभिरन ।	१२८,	१२१
विचार ।	४२४,	२२
मान ।	३९८,	२८
मध्य ।	३१४,	७
विपर्यय ।	२४७,	१३
”	२५१,	२९
पडित ।	३८१,	११
वेहद ।	३४०,	२५
”	”	२७
दीनता ।	४३४,	७
परिचय ।	१४४,	८९
सम० ।	३०१,	८
”	”	५
चितावनी ।	१९०,	
परिचय ।	१५०;	१३२
कनककामिनी ।	२९१,	५३
चानक ।	३०७,	३

नाद नहीं था त्रिदु नहीं था, सद् कहा ते आया (४) प्र० ।	४४६,	५८
“ “ “ “ सुन्नते आया(४) ”	”	५९
नाद त्रिदु ते अगम अगोचर,	निजकर्ता ।	३६९, २
नादी विदी बहु मिले,	गुरुपारख ।	३७, ५५
नाभि कमल ते उठत है,	प्रश्नोत्तर ।	४४०, ६
नाम अनन्त जो ब्रह्म का,	एकता ।	३२४; ८
“ अमल को छोड़िके,	नशा ।	४२०, ३१
“ करन नाना भये,	मूरमा ।	२४०; १३८
नाम कल्हाडी कुसुधि वन,	“	२२७, ९
“ जपत कन्या भली,	सुमिरन ।	११६, ८
नाम जपत कुष्टी भला,	सुमिरन ।	११६, ७
नाम जपत दरिद्री भला,	“	११६; ९
“ जपे अनुराग	“	१३२, १५९
“ जो रती एक है,	“	११६; ६
“ धराया दास का,	दासातन ।	१०५, १३
“ धरावे “ “	“	“ १४
“ न जानै गँव का, पीछे लगा जाय ।	लगनी ।	३६८, २१
“ “ “ विन जानै कहाँ ”	सूक्ष्ममार्ग ।	३७६, १५
नाम न रटा तो क्या हुआ,	पतिव्रता ।	२१९; १७
नाम नाम सब कोइ कहै,	सुमिरन ।	११५, ३
नाम पियु का छोड़ि के,	सुमिरन ।	११६, ११
नाम मिना बेकाम है,	सुमिरन ।	११५, ४
नाम भजो मन बसि करो,	उपदेस ।	१९९, ६६
नाम रहत अस्थिर भया,	सुमिरन ।	१३२, १५६

नाम रतन धन पाय कर,	सुमिरन ।	११५,	१
नाम रतन धन संत पहुँ,	सुमिरन ।	"	२
नाम रतन सो पाइ हैं,	सुमिरन ।	'	५
नाम रसायन प्रेम रस,	ग्रम ।	१५५,	५०
नाम लिया निन सत्र श्रिया,	सुमिरन ।	११६,	१०
नाम सांच गुरु साच है,	सुमिरन ।	१३३,	१६९
नाम हिरा धन पाव्या,	पारम ।	३५८,	६७
नारद सरिखा सीष द्वे,	गुरुदेव ।	१६,	९०
नारि कहानै पीन की,	विभिचारिन ।	७२३,	६
नारि नमाने तीन गुन,	कनक कामिनी ।	२८७,	१४
नारि पराई आपना,	कनक कामिनी ।	२८६,	९
नारि पुरुष की इस्तरी,	कनक कामिनी ।	२८७,	२१
नारि पुरुष मत्र ही सुनो,	कनक कामिनी ।	२८८,	२५
नारी कह कि नाहरी,	कनक कामिनी ।	२८७,	१६
नारा काली ऊनला,	कनक कामिनी ।	२९१,	५८
नारी का झाई पडत,	कनक कामिनी ।	२८६,	८
नारी बुडो नरक का,	कनक कामिनी ।	२८७,	२३
नारी केरे राचने,	कनक कामिनी ।	२८८,	२४
नारी ननरि न जोरिये,	कनक कामिनी ।	२८७,	२२
नारी नदिया मारखी, ओ जो प्रगटे काल । क० का० ।		'	२०
नारा नदिया मारखा, वही अवरवल पूर । क० का० ।		'	१९
' नदी अथाह झल,		'	१५
नारी नरक न जानिये,		२९२,	६०
नाहीं जम अहै,		२८७,	१८
" नाहीं नाहरी,		'	१७

नारी निरखि न देखिये,
 " मदन तलावडी,
 " सेती नेह,
 नान्हा काती चित दे,
 निगुनै गोंय न प्रासिये,
 निगुरा ब्राह्मन नहि भला,
 निज आसन सन्तोष में,
 " मत सतगुरु पास,
 " मन तो नीचा किया,
 " " माना नाम सों,
 " सुख आत्म राम है,
 " स्वारथ के कारन,
 निझर झरे अनहद प्रजे,
 निघटक बेठा नाम प्रियु,
 निमल सप्रल जो जानिके,
 निरजानी सों कहिये कहा,
 निरबधन बधा रहै,
 निरमल गुरु के नाम सों,
 " छडै मल गहे,
 " भया तो क्या भया,
 निरतर वासी निरमला,
 निराकार तिजरूप है,
 निराळम की खोज में,
 निरपेन्द्र की भक्ति है,

कनककामिनी ।	२८७,	१३
"	२९१;	५९
"	२८८,	२७
चितावनी ।	१८३,	१०८
सगति ।	९६,	७२
निगुरा ।	५१,	६०
सतोष ।	४२८,	५
सतगुरु ।	३०,	१०५
गुरुदेव ।	१०,	४९
"	"	४८
सुमिरन ।	१२८,	११९
त्यारथ ।	२४२,	२
सद्व ।	२०४,	१६
चितावनी ।	१७६,	४८
निजकर्ता ।	३७०;	१२
आत्मानुभव ।	३१२,	२५
दासावन ।	१०४,	१०
भर्मनिघ्नस ।	३४५;	३१
असारगार्ही ।	३५१;	१०
जीवतमृतक ।	३३४,	३७
बेहद ।	३३९;	१५
साधु ।	५६,	२८
बेहद ।	३४१;	३६
भक्ति ।	११२,	४९

निर्वैरी निह कामता,	साधु ।	६५, १०७
निश्चय निर्धी मिलाय तत,	सतगुरु ।	२५, ६४
” काल गरासही,	काल ।	२९६, ३३
निस दिन एकै पटक हा,	सुमिरन ।	१३३, १६७
” ” दासै त्रिहिनी,	त्रिह ।	१६५, ४८
निसरा पै विसरा नहीं,	साधु ।	७०, १४६
निसि अधियारी कारनै,	निगुरा ।	४६, ७
निसक द्वे रन में रहे,	मूरमा ।	२३०, ४४
निहकामी निरमल दसा, नित चरनों की आस । दा० ।	दा० ।	१०६, २६
” ” एकडे चारों खूट । साधु ।	साधु ।	७५, १८७
निहचल भल अरु दृढ मता,	”	६५, १११
निहचिन्त ह्वे करि गुरु भने,	मन ।	२७१, ६८
नीचै नीचे सय निरे, निहि तिहि प्रहुत अधीन । दी० ।	दी० ।	४५, ११
” ” सत चरन लीलीन । दीनता ।	”	१०
नीर कबीर अलेख मिलि,	परिचय ।	१४७, १०३
” भया तो क्या भया,	जीवनमृतन ।	३३४, ३६
” मध्य यौ बुद बुदा,	व्यापक ।	३२८, ३५
नीलकण्ठ काडा भखे,	साधु ।	६१, ७२
नय त्रिहना देहरा,	परिचय ।	१३९, ३६
नेह निगोहै ही प्रनै,	प्रेम ।	१५७, ७३
” निभावन कठिन है,	”	१५८, ८३
नेन समान दैन में,	आत्मानुभव ।	३११, १४
” हमारे बागरे,	त्रिह ।	१६७, ६५
ननन तो बडि लाव्या	,	१६५, ५२

नैनो अतर आय तू, निसदिन निखू तोहि । प्रिह ।	१६६;	६४
“ “ “ नैन सापि तुहि लेय । पतिव्रता ।	२१८,	१२
“ काजल देयके, कनक कामिनी ।	२८८;	३१
“ को करि कौठडी, प्रेम ।	१५६;	५९
“ माहीं मन प्रेम, प्रश्नोत्तर ।	४४२;	१९
नौ मन मूत अरशिया, विचार ।	४२२;	११
“ सत सान सुदरो, विभिचारिन ।	२२४,	१३
नौन गला पानी मिला, परिचय ।	१६७;	१८
निन्द निसानी मीचमी, सुमिरन ।	१२३;	७७
निन्दक एकहु मति मिले, निन्दा ।	३८४;	१
“ ते कृता भला, “ “	“ “	२
“ नो हं नाक त्रिनु, निमदिन मिष्टा खाहि । “	“ “	४
“ “ “ सोहै नक्तो मँहि । “	“ “	३
निन्दक दूर न कोनिये, निन्दा ।	३८४;	६
“ नियर राखिये, “ “	“ “	५
“ हमरा जनि मरो, “	३८५;	७
“ न्हाइ गगन कुररोत, “	३८६;	२२
निन्दा कीजे आपनी, “	“ “	१८
“ हमरो जो करै, “	“ “	२४
न्हाये धोये कश भया, मर्मप्रियस ।	३४५;	२८

प

पच्छी उडानी गगन को, विपर्यय ।	२४७,	१३
पटा पर्वाहा सुरसरी, पतिव्रता ।	२२२;	४७

पडत गुनन रोगी भये,	पडित ।	३८३,	२६
पडते गुनते जनम गयो,	पडित ।	"	२९
पटना गुनना चातुरी,	उपदेस ।	१९९,	६४
पटा गुना सौम्बा सभी,	भर्मनि-पस ।	३४७,	५६
पडि पडि और समुझाउड,	पडित ।	३८३,	३०
पटि पडि केपय्यर भये, लिखि २ भये जो ईट । उप० ।		१४९,	६५
पटि पटि के समुझाउडे,	वरनी ।	३६२,	१६
पडि पडि तो पय्यर भया, लिखिरभया जा चोरा प० ।		३८१;	५
पडो गुनी पाठ्य भये,	पडित ।	३८२,	२४
पडो गुनी ब्राह्मन भये,	पडित ।	३८३,	२५
पडै गुनै सत्र वद का,	पडित ।	"	२७
पडै गुनै सीम्बे सुनै,	पडित ।	३८१,	६
पड पडानै कहु नहा,	पडित ।	३८२,	१९
पतिबरता ऐसी रहै,	पतिव्रता ।	२१८,	८
पतिबरता क एक तू,	पतिव्रता ।	"	१०
पतिबरता क एक है,	पतिव्रता ।	२१७,	१
पतिबरता को मुख घना,	पतिव्रता ।	'	२
पतिबरता तन जानिये,	पतिव्रता ।	२१८,	७
पतिबरता तो पिन भजे,	पतिव्रता ।	'	११
पतिबरता पतिको भजे, और न आन सुहाय । "		२१७,	६
पतिबरता पति को नभै, पति भनि घरि निश्वास । "		"	५
पतिबरता मैनी मली, कालो कुचठ कुरूप । "		२१७,	३
पतिबरता मैला भली, गले काच की पोत । पतिव्रता ।		'	४
पतिबरता व्यभिचारिनी,	पतिव्रता ।	२१८,	९

पद गावै मन हरपि के,	चानक ।	३०७;	१२
पद गावै लौलोन है,	विश्वास ।	२११;	१६
पद जोरै साखी कहै,	कथनी ।	३६१;	१४
पन छूटै छूटा फिरै,	बिभिचारिनि ।	२२५;	२५
पपिहा को पन देखि कर;	पतिव्रता ।	२२२;	४९
पपिहा तो पिय पिय करै,	प्रेम ।	१५९;	८७
पपिहा पन को ना तजै,	पतिव्रता ।	२२२;	४८
पप्पा सों परिचय नहों,	पारख ।	३५६;	४८
परगट कहूं तो मारिया,	गुरुशिष्यहेरा ।	४३;	३२
परदे रहती पदमिनी,	चितामनी ।	१८६;	१४०
पय पानी की प्रीतडी,	मन ।	२७१;	६३
परदेसों खोजन गया,	पारख ।	३५७;	५५
परनारी का राचना,	कनककामिनी ।	२८९;	३६
” के राचने,	”	”	३५
” पर सुंदरा,	”	”	३८
” पैनी छुरी, कन्हू छेडि न देखिये(३)	”	”	३३
” ” ना वह पेट सचारिये(३)	”	”	३४
” ” मति कोइ करो प्रसंग ।	”	२८८;	३२
” राता रहै,	”	२८९;	३७
परवत परवत में फिरा,	साधु ।	६२;	७७
परमारथ पाको रतन,	परमारथ ।	२४३;	१
परमेश्वर ते सत बड,	साधु ।	६१;	७१
परारब्ध पहिले बना,	कर्ष ।	४०८;	१६
परन नहों पानी नहों,	परिचय ।	१४०;	३८

पहु को होतो पनहिया,	धरनी ।	३६५;	२८
पसुवा सौ पानी पयो,	निगुरा ।	४८;	१८
पहिले माका खसम भया,	निपर्येय ।	२५६;	४९
पहिले अगनि विरह की,	विरह ।	१७१;	१०५
॥ दाता निष भया,	गुरुदेव ।	५;	१६
॥ पट पासै बिना,	संगति ।	९५;	६४
॥ प्रेम न चाखिया, चाखि न लीया स्वाद । प्रेम ।		१५३;	२७
॥ ॥ मुक्ति निरासी आय । ॥ ॥			२८
पहिले फटके छाज के,	भारग्राही ।	३४९,	३
॥ बुरा कमाय के,	गुरुदेव ।	१३,	६५
॥ नूटी पिरयरी,	भेष ।	८३,	३९
॥ यह मन काग था,	मन ।	२७०,	५८
॥ राखि न जानिया,	॥	२७६,	१०७
॥ सेर पर्चास का,	प्रकृतिगुन ।	३८७,	१
॥ मद्ध विठानिये,	पारस ।	३५२,	३
पहुँचेंगे नत्र कहेंगे, अत्र कलु कहा न जाय । मूढम० ।		३७७,	३०
॥ ॥ चाहौ देस की सीच । ॥ ॥			२८
॥ तो ॥ मोलेंगे उस ठाय । ॥ ॥		३७९,	३९
पाकी को मन पानरे,	दया ।	४३३,	१२
॥ खेतो देखिके,	चिन्तामनी ।	१७८,	६४
॥ ते लाकी भला,	दया ।	४३२,	११
पाख पाख नहि करि सकै,	माधु ।	५४,	१२
पाँटे लगा जाय था,	सतगुरु ।	२४,	५२
पात जो तरुनर सौ कहै,	काल ।	२९५;	२५

पात झरता या कहूँ,
 पान झरता देखिके,
 पावर मुख ना बोलहा,
 पानी का सा बुदबुदा,
 पानी केरा पूतला,
 पाना करा बुदबुदा,
 पाना चारि तलाव का,
 पानी निरमल अति घना,
 पाना पिरयी के हते,
 पानी माहों परजला
 पाना मिले न आपनो,
 पाना म का माछली, चनि सो परत गई ।
 पाना मे का माछरा, क्यों ते पक्यों तीर ।
 पाना 'मय्य' लाक ज्यो,
 पाना हा त हिम भया,
 पाना हू ते पातला,
 पापी का दाजख नहा,
 पापी पुन्य न भागई,
 पाया कहै ते आरै,
 पाया ना सो गहि रहा,
 पायो पर पायो नहीं,
 पारख कीन साधु का,
 पारय सूर गै सुना,
 पारधिया नन लाव्या,

काल ।	२९५,	२७
काल ।	३००,	७३
भर्मि-वस ।	३४८,	६०
चितामनी ।	१८१;	९१
प्रिचार ।	४२२,	४
चितामनी ।	१७६,	४५
चितामनी ।	१९१,	१८९
सगति ।	९६,	७१
नगा ।	४१७,	७
प्रिपर्यय ।	२४७,	१२
कथनी ।	३६२,	१३
प्रिपर्यय ।	२५७,	५१
चितामनी ।	१८६,	१४२
व्यापक ।	३२९;	४३
परिचय ।	१३८,	२८
प्रिपर्यय ।	२५६,	४७
प्रिपर्यय ।	२४४,	२
असारमाही ।	३५१,	९
मय्य ।	३१५,	१३
परिचय ।	१९०,	३४
पारख ।	३५५,	३८
पारय ।	३५४,	२९
सूरमा ।	२३८,	१२४
बैली ।	३५९,	७

पारजन के तेन का,
 " बूडो मोतिया,
 " सुभर मरा,
 पागस रूपा नाम हे, लोहा रूपी जान ।
 पारस रूपा नाम हे, लोहा रूप समार ।
 पागस लोहा परसते,
 पारा कचन काडि ले,
 पागेसी मू रटना,
 पाव फलक की सुधि नहीं,
 पाव पलक तो दूर है,
 पायक एक अनेक जा,
 पायक रूपा नाम हैं,
 पायक रूपा मान्या,
 पासा परुडा प्रेम का,
 पाहन करी पुतरा,
 पाहन का क्या पूजिये,
 पाहन पानि न पूजिये,
 पाहन पानो पुनि क,
 पाहन पूजे हरि मिले,
 पाहन ले देवल चुना,
 पाहन हा का दहरा,
 प्रिय का मारग कठिन ह,
 प्रिय का मारग सुगम ह,
 प्रिय प्रिय निय तरसत है,

परिचय ।	१४०,	४०
निगुरा ।	७२,	५६
व्यापक ।	३२२,	२
सुमिरन ।	१२२,	६१
"	'	६२
सतगुरु ।	२५,	६०
साग्रही ।	३५०,	७
पडित ।	३८२,	२०
चिन्तायना ।	१७७,	५४
चिन्तायनी ।	"	५५
व्यापक ।	३२९,	४५
प्रिह ।	१६९,	९३
व्यापक ।	३२६	८
प्रेम ।	१५७,	७०
भर्मविषय ।	३४२	१
भर्मविषय ।	"	२
भर्मविषय ।	"	४
भर्मविषय ।	"	६
"	"	३
"	"	७
"	"	५
प्रेम ।	१५६,	६१
प्रेम ।	"	६२
प्रिह ।	१६८,	७७

पूरा मतगुरु ना मिला, स्वांग जतीका पहिरिके(३) गु०पा०	३३,	१९
पूरा सतगुरु सेवना, अंतर प्रगटे आप ।	सतगुरु । २४,	५४
” ” ” सरनै पायो नाम ।	” २४,	५६
” ” ” सेव तूं,	” ”	५५
” सहजै गुन करै,	गुरुपारख । ३३,	२३
पूरे कां पूरा मिलै,	निगुरा । ४७,	९
” मतगुरु के बिना,	गुरुपारख । ३३,	१८
” से परिचय भया, जमसों बाकी कटी गई(३) परि०	१४३,	७०
” मो ” ” निरमल कोन्ही आत्मा(३) ” ।	१२६,	२५
पृथिवी अपहु तेज नहीं,	सद्ग । २०८;	५७
पौथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ,	पंडित । ३८१,	७
पौ फाटी पगरा भया,	विश्वाम । २११,	१३
पंख होत परबस पयो,	भर्मविध्यस । ३४६,	४४
पेन अममाना जव लिया,	सूरमा । २३२,	६०
पंडित और समालची,	पंडित । ३८०,	१
” केरी पौथियाँ,	” ”	२
” पढते वेद को,	” ३८३,	२८
” पढ़ि गुनि पचि मुये,	गुरुदेव । ११;	६०
” पौथी बांधि के,	पंडित । ३८०;	३
” बाँडी पातरा,	” ”	४
” मूल विनासिया,	मन । २७३;	८३
” सेली कहि रहा, कहा न मानै कोय ।	भेद । ३१९;	१८
” ” ” भीतर वेधा नाहि । भ०वि० ।	३४७;	४८
पंथी उभा पंथ सिर,	काल । २९६;	४१

पाच तरंग का पूतरा, रज निरज की बुद । भर्मनिधिस ।	३४६,	४०
“ “ पूतला, मानुस धरिया नाम । चिताननी ।	१७८,	६३
“ “ गुन तीन के, परिचय ।	१४५,	८४
“ धातु का पिनरा, चिताननी ।	१८८,	१५९
‘ पचीमी मारिया, विपर्यय ।	२४४,	३
पाच सहाई जीय क, मन ।	२७२,	७०
“ सात सुमता मरी, भेष ।	८५,	५७
“ सगि पित्र पित्र करे, सुमिरन ।	१२९,	१२८
पाचौ इन्दी उठा मन, जीवतमृतक ।	३३५,	४७
“ बैरी जीव के, मन ।	२७१,	६९
“ में फला फिरे, भेष ।	८६,	७१
पाडर पिजर मन भँवर, निश्वास ।	२११,	१५
पॉय पदारथ पेलिया, पारख ।	३५५,	३३
पॉय पुजाये बौठ के, मांसाहार ।	४१३,	११
पिजर प्रम प्रकासिया, अन्तर भया लजास । परिचय ।	१४०,	४२
‘ “ “ जागो जोति अनत । ’	१३८,	२३
पिंड प्रान नहि तासु के, निजकर्ता ।	३७३,	३७
पूजी मेरी नाम है, सुमिरन ।	११८,	२९
पैडा भौहीं पडि रहा, जीवतमृतक ।	३३३,	२९
पैडे मोती मोखरा, पारख ।	३५६,	४९
प्रगट गुप्त की सधि में, मध्य ।	३१५,	१२
प्रगटे प्रेम विवेक दल, विवेक ।	४२०,	३
प्रथम फदे सय देयता, मोह ।	३९३,	७
प्रभुता को सय कौड भजे, मान ।	३९८,	३१

ध्यात काल के जाल म,	विषेक ।	४२१,	७
प्रान पिंड को तजि चला, छूटि गया जंजाल । सू०मा० ।	३७८:	३२	
” ” ” मुआ कहै मव कोय । ”	,	३१	
प्रीत अटी है तुझ सों,	पनिव्रता ।	२१९,	२०
” करो सुख लेन को,	सगति ।	९६;	६७
” रीत सन अर्थ की,	परमारथ ।	२४३;	३
प्रीतम को पतियौ लिखूं,	भेद ।	३१९;	२२
” प्रीति बढाय के,	प्रेम ।	१५९;	८५
प्रीति जु तासो कीजिये,	प्रेम ।	१५८;	८०
” जु लागी घुल गई,	”	१५५,	४७
” ताहि सों कीजिये,	”	”	४९
” पुरानि न होत है,	”	१५८;	७६
” बहुत ससार में,	”	१५६,	६३
प्रेम छिपाया ना छिपै,	प्रेम ।	१५२;	१७
” तो ऐसा कीजिये,	”	”	२१
” न बाढी ऊपजै,	”	१५१;	६
” पिछौरी तानि के,	”	१५८,	७५
” पियारे लाल सों,	”	१५१,	११
” पियाला भरि पिया, जरा न किया जतन । रस ।	२६३;	१०	
” पियाला भरि पिया, राचि रहा गुरु ज्ञान । प्रेम ।	१५१;	८	
” पियाला सो पिये,	”	”	७
” पथ में पग धरै,	प्रेम ।	१५९;	९०
” पांखरी पहिरि के,	”	१५२;	१६
” प्रीति सो जो मिले,	”	१५८,	८४

प्रेम प्रेम सब काइ कहै, आठ पहर भीना रहै(३) प्रेम	१५१,	९
„ , काइ कहै, जा मारग साहिब मिलै(३) „	„	१०
„ अनिन नहि करि सके,	„	१३
„ पिनाता मैं सुना,	„	१२
„ पिना जा भक्ति है,	भक्ति ।	११०, २९
„ पिना नहि भेष कलु, नाहक करै सुनाद । प्रेम ।	१५२	१८
„ पिना नहि भेष कलु, नाहक का सुनाद । „	„	१९
„ पिना धीरज नहि,	„	१५१, १४
„ भाव इका चाहिये,	„	१५२, २०
„ भक्ति में रचि रहे,	„	१५
प्रेमी दूटत मैं फिर, मिष से अमृत होय (४) „	„	२२
„ दूडत मैं फिर, गुरु भक्ति दूढ होय(४)गु०शि०हे० ।	४१;	१८

फ

फटरे हिया फाट नहि,	विरह ।	१७०, १०१
फल कारन सेवा करे,	सेवक ।	१००, ९
फागुन आवत देखि के, बन रोता मन माहि । काल ।	२९५,	२४
फागुन आवत देखि के, मन झूरे बनराय । काल ।	३००;	७२
फाटे कानों बाधिनी,	कनक कामिनी ।	२९०, ४७
फाटे दीदै मैं फिर,	विरह ।	१७१, १०२
फारि पयरा धज करु,	विरह ।	१६७, ६८
फाली फूली गाडरी,	भेष ।	८६; ७०
फिकिर तो सब को खा गड,	धीरज ।	४२५, ११
फटा मन बदलाय दे,	साधु ।	७२, १६०

फूटी आगि त्रिवेक का,
फूले थे सो गिरि पड़े,
फेर पड़ा नहि अग में,

व

बकरी पाती खान है,
बक्का जानी जगत में,
बगवन कहो या बरम कह,

बखन बले भोजल तरें,
बग ध्यानी जानी घने,
बगुला हम मनाय ले
बगुली नीर मिटारिया,

बचन वेद अनुभव जुगति,

बड़ा बड़ाई ना करै, छोटा बटु इतराय ।

बड़ा बड़ाई ना करे, बड़ा न बोलै बोल ।

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, ज़ोर बड मति नाहि । "

बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जेसे पेड खजूर । मान ।

बड़ी बड़ाई ऊट की,

बड़ी विपति बड़ाई है,

बढहो आनत पेखि के,

बनबारी विनती करे,

बनजारे के बेल ज्यों, टोंडो उतर्यो आय ।

बनजारे के बेल ज्यों, भरमि फिर्यो चहुदेस । उपदेस ।

बरस बरस नहि करि सकै,

बरमि अमृत निपज हिरा,

बलिहारी गुरु आपकी,

विबक । ४२०, १

जीवनमृतक । ३३५, ४६

परिचय । १४८, १११

मासाहार । ४१३, १०

पारम्ब । ३५७, ५५

कर्म । ४०९, १९

कर्म । ४०९, २१

मान । ३९९, ३३

पारम्ब । ३५५, ३६

विपर्यय । २४९, २२

आत्मानुभव । ३१२, २६

मान । ३९९, ३२

मान । ३९७, १४

" १७

" १६

" १३

" १५

काल । ३९५, २३

विनती । ४३६, ३

उपदेस । १९८, ५४

" ५६

साधु । ५४, १५

परिचय । १९६, ९९

गुरुदेस । ९, ४३

बलिहारी उस फूल की,
 वसुधा नन बहु भानि है,
 वस अपिण्डी पिण्ड में,
 वस्तु कहीं दृष्टै कहीं,
 वहता पानी निरमल,
 वहत का वहि नान दे,
 वहते को मति वहन दे,
 वहन वहता थल वरै,
 वहन वहता थिर करै,
 वहनी सैं बेटी भई,
 बहु सग्रह विषयान को,
 बहुत गई थोड़ी रही,
 " गुरु मै जगन मे,
 " नतन करि कीजिये,
 दान जो देत है,
 पुन दिनन का नोहती,
 ' पमारा जनि करा,
 आप विछटा मिरगाठा,
 पाठरिया दूभर भई,
 पाठ चढती बेलरी,
 पाटी के पिच भैर था,
 पात बनाई जग रग्यो,
 पाद करै सो जानिये,
 " प्रक दम जात है,

प्रेम ।	१५८,	८२
सारग्राही ।	३५०,	१०
भेद ।	३१९	१९
गुरुपारख ।	३८,	९८
साधु ।	६७	१०८
उपदेस ।	१९७,	५०
उपदेस ।	१९८,	५१
समरथ ।	३०१	३
समरथ ।	"	४
विपर्यय ।	२१८	५४
भेष ।	८४,	५२
धारज ।	४२५	८
गुरुदेव ।	१४,	७१
लोभ ।	३९२	५
'भर्मविश्वस ।	३८५	३७
प्रिह ।	१६०,	५
आसातृत्ना ।	४०१,	१४
मन ।	२७५,	१०३
समरथ ।	३०२,	१६
आसातृत्ना ।	४०१,	१७
चितारना ।	१८४,	११९
मन ।	२७५,	१००
गुमिरन ।	१३८,	१७२
पारख ।	३५६,	४३

वाद विवादां मति करै, करु नित अपना काम । उप० ।	२०१;	८३
,, विवादां मति करो, ,, ,, एक विचार । सुमि० ।	१३४;	१७२
,, विवादे विष घना, मौन गहो हरि सुमरिये(३) भेद ।	३१९,	१७
,, ,, ,, गहै सबकी सहै(३) क्षमा ।	४२६,	८
वान तीरछा भेदिया, सुरमा ।	२४२;	१५५
वाना पहिरै सिध का, मेघ ।	८२;	३५
वानी तो पानी भरे, किया चाकरी दूर(४) भाषा ।	३८०,	५
,, ,, ,, रहनी का घर दूर(४) करनी ।	३६३;	१४
वार वार क्या आखिये, पतिव्रता ।	२१९,	२६
,, ,, तोसों कहा, उपदेस ।	१९८,	५३
,, ,, नहि करि सकै, साधु ।	५४,	११
वारी वारी आपने, चितावनी ।	१८६,	१३८
वाल्का रूपी सांझा, समरथ ।	३०३,	२३
वाल्पना भोले गया, काल ।	२९८,	५२
वाहू जैसी करकरी, उपदेस ।	२०१,	८४
वास सुरति छे आवई, प्रश्नोत्तर ।	४४४,	३९
वासर गम नहि रैन गम, मध्य ।	३१४,	६
,, सुख नहि रैन सुख, ना सुख सपना माहि । वि० ।	१६०,	४
,, ,, ,, धूप न छाह । दृश्य ।	४०६,	१४
बाहिर क्या दिखलाइये, सुमिरन ।	१२४,	८२
,, घाव दिसै नहीं, मूरमा ।	२४१,	१५४
,, भीतर राम है, व्यापक ।	३३०,	४०
,, सुख दुख देन को, कर्म ।	४०९,	२०
बिन पौवन का पंथ है, बिन बस्ती का देस । परिचय ।	१३७,	१७

जिन पैरान की राह है,	मूढमार्ग ।	३७७.
११, भर और कमान बिन,	सब्द ।	२०१
११, मतगुरु उपदेस,	मतगुरु ।	२०,
११, वाचे नहीं,	११	२७,
जिनप्रत इ कर जारिके,	जिनता ।	४३६,
जिना पौत्र का पथ है, मक्ष सह्र अस्थान ।	निर्पर्यय ।	२५४,
११, प्रसीले चाकरी,	भर्मनिग्रस ।	३४६,
११, राज का वृक्ष है,	बेली ।	३६०,
११, मोस का मिरग हों,	मन ।	२७२,
११, मोच सुमिरन नहीं,	सुमिरन ।	१३२,
जिप्रति भला हरि नाम लेत,	प्रसीटी ।	३७४,
जिभिचारिन के बस नहीं,	जिभिचारिन ।	२२३,
जिभिचारिना जिभिचार में,	११	११
जिगळा पूछ बोज को,	गुरुशिष्यहेरा ।	४२,
११ ११ ११ सों,	११	११
११, कबहु न फल भाव,	साधु ।	५९,
जिरह अगनि तनमन जला,	जिरह ।	१६२,
११, कसडल धर लिये,	११	१६१,
११, कुल्हाडा तन बहे,	११	१६२,
११, जगायै ब्रह्म को,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,
११, जलाई मैं जट्ट,	जिरह ।	१६२,
११, जरती मैं फिर,	११	१६१,
११, तेज तन में तपै,	११	११
११, प्रमल दल साजिके,	११	११

विरह बड़ो चरो मयो,	विरह । १६१, १८
॥ मिया बैराग को,	॥ ॥ १७
विरहा जाया दरद सों,	॥ १६२, २३
॥ कहै कमीर को,	॥ १६३, २१
॥ पीन पठाइया,	विरह । १६२, २४
॥ पूत छुहार का,	, ॥ २३
॥ विरहा मति कहो,	॥ ॥ २८
॥ वूरा जनि	, १७१, १०३
॥ मयो विछानना,	॥ १६३, ३०
॥ मोसों यह कह,	॥ ॥ २०
॥ सेता मति अट,	, १६०, २६
विरहो प्राणा विरह को,	विरह । १६०, २७
विरहिनी उठि उठि भुँड पटै,	विरह । १६१, १०
विरहिना उभी पय मिर,	॥ १६०, ६
विरहिना जगता देखि के,	॥ १६१, १०
विरहिनी थी तो क्या रही,	, ॥ ११
॥ देय सदेसरा, सुनहु राम सुजान ।	, १६०, ८
विरहिना देय भदसरा, सुनो हमार पान ।	॥ ॥ ७
विरहिनी विरह जलाइया,	, ०
विरहिना मरि नायगा,	विरह । १७१, १०७
विरिया जानौ प्रल घटा, जीगें बुरा कमाय ।	वाग । २०४, १६
विरिया जाना प्रल घटा, कल पगति भये जीग/ ।	वाड । १५
विष का मत तु मणिग,	दुस्त । ४०५, ५
विष्य यग प्रगग है,	भक्ति । ११२, ५०

त्रिपय त्याग वैराग रत,	भक्ति ।	११२,	५१
बुरा जो देखन में चग,	दीनता ।	४३५,	१२
बूझ सरीखी ज्ञान है,	आमानुभव ।	३१२,	२७
बूझो करता अपना,	निनक्रता ।	३७०;	११
बूटी बाटी पानि करि,	असारग्राही ।	३५१,	८
बूटा था पर ऊबरा,	गुरुदेव ।	११,	५६
बैकामा का सिरजि निर्गन,	निगुरा ।	५२,	५७
बैशा मारे फिर रहै,	भर्मनि प्रस ।	३४७,	५५
बैठा जाये क्या हुआ,	काल ।	२९७,	५१
बैठा बैठा इस्तरी,	माधु ।	५५,	२२
बैठी को भाटी ले गइ,	त्रिपर्यय ।	२५४;	४१
बैद कहै म कछ न जानू,	भाषा ।	३८०,	६
" हमारा भेद है,	भाषा ।	"	७
बैहद अगार्धी पीम है,	बैहद ।	३३९;	१६
" बिचारो हट तजो,	बैहद ।	३३८,	१४
बैद मुआ रोगी मुआ,	जीवतमृतक ।	३३१,	४
बैरागी त्रिपुन भला, गिरा पडा फल खाय ।	भेष ।	८३;	४६
" " " गिरही चित्त उदार ।	भेष ।	८७,	७८
" है घर तजा, अपना राधा खाय ।	दया ।	४३२,	०
" है घर तजा, पग पहिरे पैनार ।	दया ।	४३३,	८
बैसदर जाडै मरै,	त्रिपर्यय ।	२५१,	२८
बोलत हो त्रिप प्राद है,	भेद ।	३२१;	३९
बोलता यह कह प्रसे,	ग्रन्थोत्तर ।	४४६;	६०
" मय हि में बसे,	"	"	६१

बोली ठोली मसकरी,
 बोली हमरी पलटिया,
 बोले पुरुष कबीर में,
 " बोल विचारिके,
 बंदे तूं कर बंदगी,
 बंधा मि पानी निरमला,
 बंधे को बंधा मिला,
 बांका गढ़ बांका मता,
 बांकी तैग कबीर की,
 बांकी कूटे बावरा,
 बुंद खिरी नर नारी की,
 " पड़ो जा पलक में,
 ब्राह्मन केरी चेटिया,
 " गहदा जगन का,
 " गुरु है जगन का,
 " ते गहदा भला,
 " राजा बरन का,

भप ।	८६;	७२
विचार ।	४२३;	१४
समर्थ ।	३०५;	४१
सब्द ।	२०७;	४८
उपदेस ।	१९८;	१२
साधु ।	६८;	१२९
गुरुपारम्ब ।	३८;	६३
मूरमा ।	२३३;	६७
"	२३२,	६६
भेष ।	८०,	१८
काम ।	३९१;	१९
कर्म ।	४ ८;	१३
संगति ।	९४;	५५
पंडित ।	३८२;	१६
"	"	१५
"	"	१७
"	"	९
मांसाहार ।	४१२;	

भ

भग भोगी भग उपजै,
 भजन भरोसे आप के,
 भजु ता को है भजन को,
 भटक मुआ भेदी बिना,

काम ।	३९१,	२०
विद्याम ।	२१४;	४०
मध्य ।	३९५;	१४
भेद ।	३२०;	३२

भय विनु भाव न ऊपजै,	चितावनी ।	१८४; १२४
” से भक्ति कौं सबै,	”	१२५
भरम करम की जेनरी,	कर्म ।	४०७, ६
,, न भागै जीव का,	भेष ।	८२, ३६
भरा होय तो रीतई,	आत्मानुभव ।	३११, १६
भलका हे गजबेल का,	सूरमा ।	२३९, १३३
भला सुहेला ऊतरा,	लगनी ।	३६८, २८
भली भई जो गुरु मिले, नातर होती हान । गुरुदेन ।	९,	४५
” ” ” जाते पाया ज्ञान । ”	”	४६
” ” पित्र मुआ,	निरह ।	१६७, ७२
” ” भय षडी,	परिचय ।	१४६, ९७
भली भई जो भय मिटा,	दासासन ।	१०५, १९
” ” हरिजन मिले,	साधु ।	६२, ७९
” मली सब कोइ कहै, भली छिमाका रूप । क्षमा ।	४२६,	४
” ” रही छिमा ठहराय । ”	”	३
भक्त जरु भगवत एक हे,	मान ।	३९९, ३४
” आप भगवान हे,	भक्ति ।	११३, ५७
” उलटि पोछै फिरै,	”	११४, ६२
’ भरोसे राम के,	निश्वास ।	२१२, २४
भक्तन की यह रीत हे,	भक्ति ।	११३, ६०
भक्ति कठिन अति दुरलभ,	”	१०७, ६
” गैद चौगान की,	”	१०९, १९
” जु सीढी मुक्ति की चढे भक्त हरषाय । ”	”	१०८, १३
” दुनारा मोकला,	भक्ति ।	” १७

भक्ति दुवारा सांझा,	भक्ति ।	१०८;	१६
॥ दुहिली गुरुन की,	"	"	१०
॥ दुहिली नामकी,	"	"	१२
॥ दुहिली राम की,	"	"	११
॥ द्राविड ऊपजी,	"	१०७;	१
॥ निसनी मुक्ति की, कुचल पड़े के खाय (३) "		११४;	६२
॥ निसै नौ मुक्ति की, जनम जनम पड़िताय (४) "		१०८;	१४
॥ पदारथ तब मिले,	भक्ति ।	"	०
॥ प्रान सों होन है;	"	१०७;	३
॥ पिगाडी कामिया,	काम ।	३०.०;	११
॥ बिना नहि निसनरै,	भक्ति ।	१०८;	१५
॥ बिनारै नाम विन,	भक्ति ।	१००;	२१
॥ बीज पलटै नहि,	"	१०७;	५
॥ ॥ विनसै नहि,	भक्ति ।	"	४
॥ ॥ है प्रेम का,	"	११४;	६६
॥ भजन हरि नाम ह,	सुमिरन ।	१३४;	१७४
॥ भाव भादौ नदी,	भक्ति ।	१०७;	२
॥ भेष बहु अन्तरा,	भक्ति ।	"	७
॥ भक्ति बहु कठिन है,	"	११३;	६१
॥ भक्ति सब कोइ कहै भक्ति न आई काज । "		११३;	५५
॥ भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति न जानै भेद । "		११४;	६३
॥ भक्ति सब कोइ कहै, भक्ति भक्ति में फेर । "		"	६७
॥ महल बहु ऊंच है,	"	११३;	५०
॥ रूप भगवंत का,	"	१०७;	८

भक्ति मरत्र	हि ऊपर,	भक्ति ।	१०९,	२०
,, माड जो भात्र सों,		,,	१०८,	१८
भाई वीर बटाउना,		चितावनी ।	१८७,	१४९
भाग विना नहि पाइय,		भक्ति ।	११०,	३०
भागि कहा का जाइये,		सूरमा ।	२३५,	९२
भागे भग्न न हायगा, बहुत मूरतन सार ।		'	२३०,	३८
" ' मुडि चाल्यै घसि दूर ।		"		३९
' ' मुँह मोड़े घर दूर ।		'	२२९,	३७
" भली न होयगी,			२३५,	९३
भारा कहूँ ता बहुत डहूँ,		भेद ।	३१८,	१०
भात्र विना नहि भक्ति लग,		भक्ति ।	११०,	३२
' भालका सुरति सर,		सूरमा ।	२३३,	७५
' मुआ ता मरन दे,		उपदेस ।	२०२,	९१
भावै जाओ नादरी,		दया ।	४३२,	५
भीख तान परवार की		भीख ।	८८,	१२
भीतर तो भदा नहि,		आत्मानुभव ।	३१,	१३
" मनुष्य मानिया,		परिचय ।	१४९,	१२८
मुत्रगम वास न वेधई,		संगति ।	९२,	३१
मुक्ति मुक्ति भागों नहा,		सेवक ।	१०१,	२०
भूख गई भोजन मिले,		उपदेस ।	४००,	७५
भूखा भूखा क्या करै,		विश्वास ।	२१०,	५
भूप दुखी अनधूत दुखी,		दुख ।	४०६,	१३
भूला भसम रमाय क,		भेष ।	८१,	२६
' भूला क्या फिरै,		व्यापक ।	३२६,	७

भूले ये ससार में,	माया ।	२८२;	४५
भूषन मयें वलन ज्यों,	व्यापक ।	३२८,	३२
भेद ज्ञान तब लौं भलो,	भेद ।	३६७,	३
“ “ साजुन मया,	“	“	४
भेटी जानै मरन गुन,	“	“	२
‘ लोया साव करि,	गुरुप्राप्ति ।	३८,	५९
मेरे चडिया शाही,	“	३६,	४४
“ “ सरप के,	निर्णय ।	२६२;	६५
“ तमि सायर तरी,	“	२६१,	६२
मेघ देवि मनि मूलिये,	भय ।	८६,	६९
भै भारन सत्र ज्ञानिया,	पारम ।	३५७,	५२
भोग मोक्ष मार्गो नहि,	सेवक ।	१०१,	२६
भारे भृंगे स्वसम का,	पतिप्रता ।	२२१;	४१
भीमागर कौ त्राम ते,	गुरुदेव ।	१५,	८७
“ जल त्रिष भरा,	लगना ।	३६८,	२७
“ ते यौ रहा.	सर्वांगन ।	३३५,	०
“ भारा नया,	समर्थ ।	३०५;	३५
भेतर भोख मयम कडा,	भोग ।	८८,	१४
भेग बाडो परिहरा,	निर्णय ।	२४९,	२०
भाग भग्न बल बुद्धि को,	नशा ।	४१७,	४
‘ तमान्यु गाहका,	“	४१८;	१९
“ “ हतरा, वही करीर इनको तन(३) ’	“	“	१७
“ “ “ “ “ ता जीव को(३) “	“	“	१५
“ “ “ “ “ सो जीयरा (३) “	“	“	१६

भाग तमाखू छूतरा, कौन करेगा बदगो (३) नशा ।	४१७,	२
” ” ” योग यज्ञ जप तप किये (३) ”	४१८,	१४
भाग तमाखू फीम को, नशा ।	४१८,	१८
भाइ भगाई खेचरी, भेष ।	८६,	७३
भौंडी आवै वास मुग्ध, नशा ।	४१९,	२८

म

मकरतार सों नेहरा,	परिचय ।	१४७,	१००
मक्के मदीने में गया,	भर्मविघ्नस ।	३४८,	६२
मच्छी मल्लको गहत है,	असारग्राही ।	३५०,	२
मठरी दह ठाडो नहीं,	चितावनी ।	१८६,	१४१
मठली लुरक पकड़िया,	भर्मविघ्नस ।	३४५,	२९
” फिरि फिरि बाटुरी,	चितावनी ।	१८७,	१४६
मत बाडा में पड़ि गये,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७९,	४१
मतवाला मूत फिरे,	रस ।	२६४,	१४
मता हमारा मन है,	सद्व ।	२०४,	२०
मथुरा कासा दारका,	सगनि ।	९१,	२०
मद अभिमान न कोजिये,	मद ।	३९५,	१०
” तो बहुतक भाति का,	नशा ।	४१८,	११
मभ्य अग लगा रहै,	मभ्य ।	३१४६,	१
” गुफा नहीं सुरति हे,	भेष ।	८०,	१०
मन अपना समझाय ले,	मन ।	२७५,	१०२
मन उलटी दरिया मिला, तू पूरा रहिमान । जा०मृ० ।		३३४,	३९
” ” ” सो ” ”	लगनी ।	३६८,	२०

मन का मस्तक मूडि ले,	भय ।	८५,	६२
„ को घाली हू गई,	मन ।	२६८,	३७
„ की मनसा मिटी गई, अह गई सब छूट । जी०मृ० ।		३३१,	१६
„ की „ दुरमति सब भई दूर । भक्ति ।		१११,	३८
„ की सका सेटि करि,	कर्म ।	४१०,	२७
मन कृपार महमत था,	मन ।	२६७,	२९
„ के बहुतव रग हैं,	„	„	२६
मन के मते न चलिये, छाडि जाव की वानि ।	„	२६६,	१६
„ „ „ मन के मते अनेक ।	„	„	१५
„ के मारे बन गये,	„	„	१८
„ के हारे हार हैं,	„	२६७,	३०
मन का माख पटकि के, टूटे पीछे फिर जुटे(३) „	„	„	२१
„ „ „ प्रिय की क्यारी बोयके(३) „	„	२६६,	२०
„ का मिलक देखिके,	भर्मप्रियम ।	३४५,	३२
„ गोरख मन गोविदा,	मन ।	२६७,	२३
मन चरतों तन भी चले,	मन ।	२६८,	३८
„ चाले तो चलन दे,	„	२७६,	११०
„ जो गण तो जान दे,	„	२६८,	३४
„ जो सुमिर राम को,	सुमिरन ।	१२०,	१२९
„ जानै सब बात,	मन ।	२६९,	४२
„ लखस तन तोपसी,	मूरमा ।	२४१,	१४९
„ ते माया ऊपनै,	माया ।	२८५,	७६
„ दाना मन छाल्चा,	मन ।	२६७,	२७
मन दीज मन पाइये,	मन ।	३६८,	२३

मन दीया कहूँ और ही,
 ,, नहि छोड़े विषय रस,
 ,, ,, मारा मन करी,
 ,, निरमल गुरु नाम मो,
 ,, पंखी विन पंख का,
 ,, पंछी तबलगी उड़ै,
 ,, पाँची के बस पडा,
 मन फाटे चित ऊचटै,
 ,, ,, वायक बुरे,
 ,, मते भाया तर्जो,
 ,, मथुरा दिल दारका,
 ,, मनसा को मारि करि,
 ,, ,, ,, ले,
 ,, ,, जब जायगी,
 ,, मानिक जब ऊचटै,
 मन मारी मैदा करुं,
 ,, माला तन मेखला,
 ,, ,, तन सुभिरनी,
 ,, मुरीद संसार है,
 ,, मूया माया मुद्दे,
 ,, मेवासी मारि करि,
 ,, ,, मुंडिये,
 ,, मैदा तन ऊजला,
 मन मोटा मन पानरा,

संगति । ९२; ३८
 मन । २६८; ३१
 ,, ,, ३६
 ,, २६९; ४१
 ,, २७५, १०५
 ,, २६७; २८
 ,, २६६; १८
 मन । २७४; ९३
 ,, ,, ९५
 माया । २८४; ६८
 भर्मविध्वंस । ३४४; १०
 मन । २६९; ४०
 ,, ,, ४१
 ,, ,, ४६
 ,, २७४; ९६
 मन । २७६; ११२
 मैदा । ८२; २९
 ,, ,, २८
 मन । २६६; १०
 चितावनो । १९०, १७०
 मन । २७७, १२१
 मैदा । ८१; २३
 ,, ८६; ६७
 मन । २६७; २४

१) राजा नायक भया,	उपदस ।	१९८, ५५
२) रजन परदुख हरन,	साधु ।	६६, ११२
३) सत्र पर असत्रार ह,	मन ।	२७६, १०८
४) सै मत मिगता नहीं,	॥	२६८, ३२
मन हि दिया निन सत्र दिया,	सतगुरु ।	२४, ५७
५) ही को परमोधिये,	मन ।	२६७, २२
६) ही में फला फिरै,	भर्मप्रियस ।	३४५, ३०
मना मतोरप छडि दे,	मन ।	२६८, ३९
मनुया छू क्यों वावरा,	मन ।	२७५, १०१
मनुया ता अन्तर बसा,	मन ।	२६८, ४०
गनुया तौ गाफिल भया,	सुमिरन ।	१३३, १७०
मनुया पक्षी भया, जहा तहा उडि नाय ।	मन ।	२७५, १०४
मनुया तौ पछी भया, उडि के चला अवास ।	मन ।	२६७, २७
मनुया तौ फला फिरै,	मन ।	२६८, ५५
मनुया भया दिसन्तरा,	सनीयन ।	३३६, ७
मनुस जम तोक दिया, भजिय को हरिनाम ।	चिन्तायनी ।	१८८, १६३
१ जम तोकु दिया, भनिरे को गार्दि ।	चिन्तायनी ।	॥ १६४
मनुषा जनम हि पायक, जत्रगि भया न राम		१८० १७२
मनुषा जम हि पाय के, भया न छुपति राय ।		१८९, १६६
ममता मरा क्या कर,	परिचय ।	१४५, ८८
मरती प्रिया दान द,	भर्मप्रियम ।	३४५ ३८
मरती प्रिया पुन करे,	चिन्तायना ।	१८७, १५०
मरते मरत नग सुआ, औसर सुमा न काया जा० म० ।		३३०, ३

मरते मरते जग मुआ, सुत बित दारा जोया चितावनी ।	१९०,
मरना भला त्रिदेस का,	जीवतमृतक । ३३३,
मरुं पर मांगूं नहीं,	परमार्थ । २४३,
मरुं मरुं सब कोइ कहै,	चितावनी । १९०,
मरेगे मरि जायंगे,	चितावनी । १७५,
मल मल खासा पहिरते,	चितावनी । १८१,
मल्यागिरि के पेड़ सों,	संगति । ८९,
महमंतां अविगत रता,	रस । २६४,
महमंता नहि भिन चरै,	रस । "
" मन मारि छै,	मन । २६९,
महलन मांहीं पोडते, छत्रपती की छारमें (३) चिता० ।	१८१,
" मांहीं पोडते, ते सपने दीसैं नहों (३) चितावनी ।	"
महन्त तो माया- गला,	चानक । ३०८,
मा मारै धी घर करै,	विपर्यय । २५३;
माइ मसानी सीढी सीतला,	विभिचारिन । २२५;
माई मुंइ उस गुरु की,	गुरुपारख । ३२,
माखी गहि कुवास को,	निन्दा । ३८५;
" गुडमें गडि रही,	स्वाद । ४११;
" चंदन परिहौ,	संगति । ९५,
माटी कहै कुम्हार को,	चितावनी । १७९;
" केरा पूतला,	" १८९;
मात पिता सुत इस्तरी,	साधु । ५४;
" माता का सिर मूडिये,	विपर्यय । २५९,

माया चार प्रकार की,	माया ।	२८५;	७२
„ जोगवै कौन गुन,	„	„	७४
„ छाया एकसी,	„	२८०;	२४
„ छोरन सब कहै,	„	२८४;	६६
„ शोला मारिया,	„	२७९;	१८
„ डोलै मोहती,	गुरुशिष्यहेरा ।	४१;	१८
„ तजी तो क्या भया,	मान ।	३९६;	०
माया तरुवर त्रिविधि का,	माया ।	२८०;	३१
„ तौ ठगनी भई,	„	„	२८
„ दासी साधु की, ऊमो देइ असीस ।	„	„	२६
„ संत की, साकुट को सिरताज ।	„	२८४;	६३
„ दीपक नर पंतग,	„	२७९;	२८
„ दोय प्रकार की,	„	२७०;	२१
„ बड़ है डाकिनी,	„	२८४;	७
„ मन की मोहिनी,	„	२८०;	२८
माया मरि मन मारिया,	माया ।	२८०;	२८
„ माथे सौगाँडा,	„	२८३;	५८
„ माया सब कहै,	„	२८४;	६८
„ मुई न मन मुआ,	„	२८०;	२८
„ मेरे राम की,	„	„	२८
„ सम नहि मोहिनी	„	२८४;	६८
माया सेती मति मिलो,	माया ।	२७९;	१८
„ संख पदम लौ,	„	२८५;	७

मिरतक को धीजों नहीं, मेरो मन वह बाज जी०मृ० ।	३३३,	२६
” ” ” ” ” वीर । मन ।	२७७,	११९
” तो तब जानिये, जीवनमृतक ।	३३५,	४४
मिलता सेती मिलि रह,	साधु ।	७६; २०४
मिलना जग में कठिन है,	प्रेम ।	१५६; ५६
मिलि गय नीर कपीर सों,	परिचय ।	१४७, १०२
मोठा सब कोड स्वात है,	माया ।	२८१; ३८
मोठ बोल जु बोलिये,	भेष ।	८०, १७
मुख आप सोई कहै,	सद्व ।	२०७; ४७
” में थूकन दे नहीं,	नशा ।	४१९; २९
मुख से नाम रटा करें,	विभिचारिन ।	२२३, ८
” से रहै सो मान्यो,	भेद ।	३२१, ३८
मुख म इतनी शक्ति क्या,	विनती ।	४३८, २०
” औगुन तुझहि गुन,	समर्थ ।	३०४, २७
” गुन एकी नहीं,	” ”	३३
मुखगानी को देखि कर,	साधु ।	७०; १५०
मुखग मुखना सों कहै,	मासाहार ।	४१४; २७
मुखदे को भी देत हैं,	विश्वास ।	२१३; ३८
मुखना तुझै करीम का,	मासाहार ।	४१४; २३
मुखलिम मारै करद सों,	”	४१६; ४३
मुक्ता पैडा जत्र भया,	सजीवन ।	३३७, १६
” बाये दाहिने,	”	१५
मुफ्त दान जो देत हैं,	भर्मविध्वंस ।	३४६, ३८

मेरी मिटि मुक्ता भया,
 मेरे मन होरो जै,
 मेरे मन में पडि गई,
 ,, संसय कोय नहों,
 मेरो चित्यौ हरि ना करै,
 मेवासा मोही किया,
 मो चित तिल नहि वीसहं,
 ,, ,, पलहु न ,,
 मो बिरहिनी का पिय मुआ,
 मो में तो में सर्व में,
 मोटी माया सब तजे,
 मोती उपजे सीप में,
 ,, निपजै ,,
 ,, ,, सुन ,,
 ,, भांग्यो बेधर्ता,
 ,, है विन सीप का,
 मोर तोर की जेवरी, गल बंधा संसार ।
 ,, ,, बल ,, ,,
 मोह कुटी में जलि मुआ,
 ,, नदी विकराल है,
 ,, फंद सब फंदिया,
 ,, मगन संसार है,
 ,, सलिल को धार में,
 मोहर रुपैया पैसा,

परिचय ।	१३८;	२९
विरह ।	१७०;	१००
मन ।	२७४;	९६
सूरमा ।	२३१;	५२
विश्वास ।	२१३;	३४
भक्ति ।	१११;	३९
विरह ।	१७१;	१११
पतिव्रता ।	२१९;	२३
विरह ।	१६७;	७१
व्यापक ।	३२९;	४६
माया ।	२८१;	३४
,,	२८२;	४४
जीवतमृतक ।	३३१;	१३
परिचय ।	१४८;	११३
मन ।	२७५;	९९
गारख ।	३५३;	२०
चिन्तावनी ।	१८२;	१०७
,,	,,	१०६
कर्म ।	४०७;	२
मोह ।	३९४;	१५
,,	३९३;	१
,,	,,	२
,,	,,	३
साधु ।	५५;	२०

मोहि मरन को चात्र है, की तन का धुत्ता कर(३)जो मृ	१३३२;	१८
॥ ॥ ॥ मति गुरु बूझे प्रातरी(३) ॥ ॥	॥ ॥	१७
मौत विसारी वायरी,	चितायनी ।	१७८, ६७
मडि रहना मैदान में,	मय ।	३१५, १७
मदिन मोहो झलकती,	चितायनी ।	१८५, १३७
मांगन को भल प्रोल्नो,	उपदेग ।	२००, ७६
॥ गये सो मरि रहे,	सीख ।	८८, ४
॥ मरन समान है, तोहि दर्द में सीख । ॥	॥	८७, ३
मांगन मरन समान हैं मति कोइ मांगो भीख । भीख ।	८७,	१
॥ ॥ ॥ सीख दर्द में तोहि । ॥	॥	२
माय महल की गुरु कहि	गुरपारख ।	३७, ५७
मांस अहार मानया, परतच्छ राउस अग । मासाहार ।	४१२,	१
॥ ॥ ॥ ॥ राउस जान । ॥	॥	२
॥ खाव ते डेड सत्र,	॥	३
॥ गया पिनर रहा,	मिह ।	१६८, ७४
॥ भवै मदिरा पिरी,	मासाहार ।	४१२, ६
॥ मछटिया खात है, त नर जडसे जाहिगे (३) ॥	॥	५
॥ ॥ ॥ ॥ नरके ॥ ॥	॥	४
॥ मांस सत्र एक है आखि देखि नर खात है (३) ॥	॥	७
॥ ॥ ॥ नारि नारि सब एक ॥ (३) ५ का । २९२	॥	६२
मृद मुँडाया मुक्ति को,	स्वाद ।	४११; ६
॥ मुँडाये हरि मिले,	मेघ ।	८१, २४
॥ मुडावत दिन गया,	॥	२३

मैं अकेल वह दो जना,	काल ।	२९३;	९
” अपराधी जन्म का,	विनती ।	४३७;	७
” अवल पिय पिय करूं,	पतिव्रता ।	२२०;	३३
” उपकारी ठेठ का,	गुरुपारख ।	३७;	५०
” कधि कहि कहि कहि गये,	उपदेस ।	१९९;	६८
” कवीर विचलूं नहीं,	सह ।	२०९;	६६
” कलिका कोतवाल हूं,	”	२०५;	३३
” मोटा साईं खरा,	विनती ।	४३६;	६
” जाना मैं और था,	परिचय ।	१४१;	४८
” जानूं पड़ना भला,	पंडित ।	३८१;	१०
” ” मन मरि गया,	जीवनमृतक ।	३३२;	१७
” ” हरि दूर है, हरि हिरदे भरपूर ।	व्यापक ।	३२७;	१७
” ” ” ” है ” माँहि ।	पारख ।	३५७;	५६
” ” ” ” सूं मिलूं,	माया ।	२८१;	३:
” तुमको हृदय फिहूं,	विरह ।	१६८;	७९
” तोही पूछें हे सखी,	सती ।	२१५;	१:
” तोहि सो कब कब्या,	निगुरा ।	५१;	४:
” था तब हरि नाहि जय,	परिचय ।	१४७;	१०९
” दीवान्नी नाम की,	विरह ।	१७१;	१०८
” भेवरा तोहि बरजिया,	चिन्तावनी ।	१८३;	११८
” मतवाला नाम का,	नशा ।	४१८;	१:
” मरजीया समुँद का, दुबकी मारो एक । जीवनमृतक ।		३३१;	१
” पेड़ सात पत्ताल ।	”	”	३:

मैं मांगूँ यह मांगना,	सगति ।	९५, ६२
॥ मेरा घर जालिया,	जीवतमृतक ।	३३४, ४२
॥ मेरी तु जनि करै,	चितावनी ।	१८२, १०४
॥ ॥ सत्र आयगो,	घोरज ।	४२५, ७
॥ मैं बड़ी बलाय है,	चितावनी ।	१८२, १०५
॥ रोवूँ मसार कू,	दुख ।	४०६, ७
॥ लागा उस एक सा,	परिचय ।	१४६, ९६
॥ मोचो हित जानिके	सगति ।	९७, ७७
॥ सैनक समरथ-का, कबहु न होय अकाज । पति० ।		२२०, ३४
॥ ॥ ॥ कोइ पुरवला भाग । ॥		॥ ३५

य

यदपि हम कायर कुटिल,	समरथ ।	३०६, ४६
यह अनसर चैन्यो नहीं, चूक्यो मोटी घात ।	चिता० ।	१८९, १७०
॥ औसर - ॥ ॥ पसु ज्यों पाली देह । ॥		१७७, ४०
॥ औषधि अगहि लगी,	सुमिरन ।	११७, १७
॥ कलियुग आयो अत्रै,	साधु ।	७३, ११७
कृकर को भक्ष है,	मासाहार ।	४१२, ८
जग कोठी काठ की,	क्रोध ।	३९२, ५
जिन आया दूर ते,	काल ।	२९७, ४२
तत यह तत एक हं,	प्रेम ।	१५४, ४३
नेन काचा कुभ है निया फिरै था साथ ।	चिता० ।	१८०, ८०
॥ ॥ ॥ चोट चहुँदिसि खाय । ॥		॥ ८१
॥ ॥ ॥ मोहि किया रहिरास । ॥		॥ ८२

यह तन त्रिष की बेलरी,	गुरुपारख ।	३७; ५३
„ तो घर है प्रेम का, खाला का घर नाहि । प्रेम ।		१५०; १
„ „ „ मारग अगम अग्राध । „		„ २
„ „ „ ऊँचा अधिक इकंत । „		„ ३
„ तो गति है अटपटी,	मन ।	२७४; ८८
यह नर गर्व भुलाइया,	चितावनी ।	१९२; १९६
„ पद है जो अगम का,	परिचय ।	१४८; ११९
„ विरिया तो फिर नहीं,	चितावनी ।	१८४; १२८
यह मन अटक्यो वावरो,	मन ।	२७६; १११
„ मन को विसमिष्ट करूं,	„	२६९; ४८
„ मृत ताको दोजिये, सांचा सेवक होय । सेवक ।		१०१; २२
„ „ तो मिरगा भया,	मन ।	२६९; ४९
„ „ „ मैला भया,	„	२७०; ५१
„ मन थाकी धिर „	„	२७७; ११७
„ „ नीचा मूल ह,	„	२७०; ५४
„ „ फटकि पछोरिले,	„	२६९; ४७
यह मनु फूला विषय बन,	चितावनी ।	१८५; १३०
„ „ बीकारे पडा,	मन ।	२७०; ५२
„ „ मैवासी भया,	„	„ ५१
„ मन साधू ले मिलो,	„	„ ५३
यह „ हरि चरन चला,	„	२७७ ११८
„ रत्न माँहीं पैठि कर;	सूरमा ।	२३७; १०९
„ रस महुँगा सो पियै,	प्रेम ।	१५५; ५६
„ सतगुरु उपदेस है,	सतगुरु ।	२०; १०६

यह सब झूठा बंदगी,
 " " लच्छन चित धरे,
 यहाँ विसाहन करि चले,
 यहा प्रेम निरवाहिये,
 " बडाई सद्ध की,
 " " मत का,
 या तन का दिखला करु,
 " " जाळ मसि करु, धूँवा जाय सुरग ।
 " " " " लिखु गुरु को नाँव ।
 या दुनिया दो रोज की,
 या " में आय के,
 या देखा वा देखिया,
 " मन गहि जो धिर रहे,
 " माया के कारनै,
 " " जग भरमिया,
 " मोतो कलु और हे,
 यार बुलाये भाव मों,
 ये तीनों उलटे बुरे,

मासाहार ।	४१५,	३६
मेनक ।	१०२,	३१
उपदेस ।	१९४,	१९
प्रेम ।	१५३,	२६
सद्ध ।	२०४,	२४
साधु ।	६१,	७०
मिह ।	१६५,	५८
"	१६४,	४१
"	"	४२
उपदेश ।	१९५,	२३
"	१९३,	८
निर्णय ।	२५१,	४६
चिन्तामनी ।	१८३,	११५
माया ।	२८१,	४१
"	२८३,	५५
पञ्चिय ।	१४८,	११४
सूक्ष्ममार्ग ।	३७१,	१०
सती ।	२१७,	२७

२

रक्त वह रोहा झी,
 रग बग टोपी सब कसी,
 रग रग बोली रामनी,
 रगत माम मर भवि गया,

मामा ।	२३३,	६८
"	२३८,	११६
सुमिरन ।	१२९,	१३२
मिह ।	१५८,	७६

रचनहार को चीन्हि ले,	विश्वास ।	२१०;	४
रज वीरज का कोठरी,	कनककामिनी ।	२९०,	५१
रति एक धूँया सत का,	साधु ।	७५,	१८८
रन चटि सद्ध पुकारही,	मूरमा ।	२४१,	१४७
„ जग वाजा वाजिया,	„	२३७,	११४
„ रहै सूर भये,	„	२४०,	१४१
„ रोही अति ही हुआ,	„	२३४,	८०
„ हि धसा जो ऊवरा,	„	२३१,	५४
रनयो राम छिपाइया,	भिरह ।	१५७,	६६
रपट भैस पीपल चढी,	निपर्यय ।	२६१;	६१
रपि को तेज घटे नहीं,	साधु ।	६६;	११९
रस ठाडै छही गहै, कोल्ह परगट येख । असारग्राही ।		३५१,	४
„ „ „ मो „ का दे काम ।	„	„	५
रहनी के मैदान में,	करनी ।	३६४,	१९
रहै निरला मांड तै,	निजकर्ता ।	३७२	२७
रक्त छौडि पय का गहै, ऐसा साधु लच्छ(४) साधु ।		६७,	१२३
„ „ „ सारगिराही „ „ सारग्राही ।		३५०,	९
राई वाना बीसयो,	प्रेम ।	१५७,	७४
राखन हारा राम हे,	विश्वास ।	२१२,	२६
राखै वरत एकादसी,	नशा ।	४१९,	२२
रान दुवार न जाइये, काटिक मिले जु हम । साधु ।		७२,	१६१
„ दुवार बाधिया,	चिन्तामना ।	१८३,	११३
„ „ रामनन,	चानन ।	३०७,	८

गन्ध पाट धन पाय कर,	जिनायनी ।	१९१; १९५
राजा का चोरी, कर,	गुरुदेव ।	१६; ९१
॥ राजा राव रंक,	सुमिरन ।	१२७; १०६
रान अंधेरा रैन में,	गुरुपारख ।	३२, ९
॥ गंगारो सोय करि,	चिनायनी ।	१७६; ४६
॥ जगधि रौंड़िया,	विभिचारिनि ।	२२४; १०
राता माता नामका, पोया प्रेम अयाय ।	रस ।	२६३; १२
॥ ॥ ॥ मटका माता नैहि ।	॥ ॥	१३
रता . राता मय कहे,	सेवक ।	१०२; २४
॥ रक्त न निकमै,	॥ ॥	२५
रायूं रानी विरहिनी,	विरह ।	१५९; १
राम कबोरा एक है, दूजा कबहु न होय ।	एकता ।	३२३; ५
॥ ॥ ॥ कहन सुनन को दोय ।	॥ ॥	६
॥ कछा जिन कहि लिया,	काल ।	२९४; १४
॥ कहै ते भिज मरै,	चितायनी ।	१८३; ११०
॥ कछो तो मरि रहो,	जीवनमृतक ।	३३२, २३
राम किया मोह हुआ,	विश्वास ।	२१३; ३५
॥ कृष्ण औतार है,	निजकतो ।	३७०; ६
॥ ॥ को जिन किया,	॥ ॥	७
॥ शरोक्षे बैठिके,	करनी ।	३६४; २१
॥ नाम को गुमिरता, उधरे पतित अनेक ।	सुमिरन ।	११७; २१
॥ ॥ ॥ हँसी कर भावै सीझ ।	॥ ॥	२२
॥ ॥ गुन ॥ गायते,	॥ ॥	१२८; ११७

रामनाम जाना नहीं, ता मुख आन धरम ।	चिता० ।	१७९;	७२
॥ ॥ ॥ पाला सकल कुटुब ।	॥ ॥	॥	७०
॥ ॥ ॥ हुआ बहुत अकाज ।	॥ ॥	॥	७१
॥ ॥ ॥ मेला मना निसर ।	॥ ॥	॥	७३
॥ ॥ ॥ बात विनूठी मूल ।	॥ ॥	॥	७४
॥ ॥ ॥ चूके अक्की घात ।	॥ ॥	॥	७५
॥ ॥ नहीं, जपा न अजपा जाप ।	चानक ।	३०८;	१५
॥ ॥ ॥ डागो मोटी खोर ।	सुभिरन ।	११७;	२३
रामनाम तिहुँ लोक में,	व्यापक ।	३२७;	२२
राम त्रियोगा विफल तन,	विरह ।	१७०;	९६
॥ विसारी वापरा,	चितावनी ।	१८८;	१६२
॥ बुझाया मेजिया,	सगनि ।	९१,	२८
॥ भजो तो अत्र भजो,	चितावनी ।	१८४;	१२३
॥ मेरे तो हम मेरे,	सजीवन ।	३३६;	१०
॥ मिटन के कारनै,	साधु ।	७१;	१५६
राम रतन धन मोटरी,	पारख ।	३५२,	१०
राम रमन अस्थिर भया,	सर्जानन ।	३३६;	९
राम रसायन प्रेम रस,	पारख ।	३२२;	११
॥ रहिमा एक है,	एकता ।	३२३;	२
॥ राम जिन ऊचरा,	साक्षीभूत ।	३२२;	५
॥ ॥ तुम करत हो,	निजधर्ता ।	३७३;	३८
॥ ॥ रटियो की,	सगनि ।	९२;	२९
॥ ॥ मय कोड कौ, कहने माँहि विवेक ।	विश्वक ।	४२१;	९
॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ ॥ विचार ।	विचार ।	॥	२

नाम हि ठोंटा नानि के,
 " हि थोरा "
 रिखु वसत याचक भया,
 रिद्धि सिद्धि मागू नहीं,
 खुसा सुखा खाय के,
 रे मन भाग्य हि भूल मत.
 रेन तिमिर नासत भयो,
 " पुँर बासर घटे,
 " समानी भानु में,
 रोडा भया तो क्या भया,
 " हँ रहु बाटन,
 रोवत रोवत में फिरु,
 रक कनक चुनता फिरे,
 " जोर जोई सोई,
 " तु धनको ना चहै,
 रग तो वुरग हुआ,

आसातुस्ना ।	४०२,	२२
माया ।	२८१;	३९
उपदेस ।	२०१,	८५
सगति ।	९०,	१४
स्वाद ।	४११,	७
धर्म ।	४००;	२६
सन्द ।	२०७,	४०
निपर्यय ।	२५१,	३०
सन्द ।	२०४,	१७
जीवतप्रतक ।	३३४,	३३
"	३३३,	३२
प्रिह ।	१६६,	६३
पारख ।	३५८,	६४
माया ।	२८५,	७७
"	"	७८
"	२८२,	४७

ल

लफाडी कहे लोहार सों,
 " जल दूवै नहीं,
 " जलि कुडला भई, कुडला जलि भइ राख ।
 " " भये, मोतन अनहू आगि ।
 लघुता में प्रभुता वसे,
 लच्छु कोस जो गुर उमै,

चितापनो ।	१८०,	७७
सगति ।	९७,	७६
प्रिह ।	१६९,	१८९
"	१६४,	४७
मान ।	३९०;	३०
गुरदेव ।	७,	१८

लछमी कहै मैं नित नई,	दुख ।	४०७,	१८
लगा रहै सतनाम सों,	दासातन ।	१०६,	२३:
लगी लगन छूटै नहीं,	लगनी ।	३६७,	१०
लडने को सब ही चले,	मूरमा ।	२३१,	५०
लाखों में दिसै नहीं,	पारख ।	३५८,	६८
लागा भलका नामका,	सूरमा ।	२४२,	१५६
लागी लागी क्या करै, लागी बुरी बलाय ।	लगनी ।	३६६,	७
“ “ “ “ नार्ही एक ।	“ “	“	८
“ “ “ “ सोइ सराह ।	“ “	“	९
“ “ “ “ रही लगार ।	सब्द ।	२०५,	३१
लालच लोभ न मोह मद,	सूरमा ।	२३४,	७९
लाली मेरे लाल की,	परिचय ।	१३५,	२
लिखना पढ़ना चातुरी,	पंडित ।	३८२,	२२
लिखा मिटै नहि करम का,	कर्म ।	४१०,	३१
लिखापदी में सब पड़े,	भर्मविध्वंस ।	३४९,	६७
लिखा लिखी की है नहीं,	आत्मानुभव ।	३१०,	८
लूटि सकैं तो लूटि ले, नाम जु निरगुन को गहो(३)सुमि० ।		१२२,	६६
“ “ “ “ फिर पाछे पछिताहुगे(३) ”		“	६५
लेऊं तो महा प्रनिग्रह,	मध्य ।	३१५,	१५
लेना देना मोहरा,	चितावनी ।	१७५,	३५
लेना होय सो जित्दले,	उपदेस ।	१९४,	१०
लेने को सतनाम है, तरने को आधीनता(३)सुमिरन ।		१२२,	६६
“ “ “ “ है दीनता (३) मान ।		३९९,	३५
ले पाऊं तो ले रहूं,	लगनी ।	३६६,	७

जग विचारा निन्दही,
 छाहू गहि दूधे तन,
 लो गमा तन जानिये,
 " " तन डर किमा,
 " " लो लू,
 " " निर्भय भया,
 " " विष भागिया,
 लम्बा मारग दूर घर,
 जैन गग पानी मिश्र,

निन्दा ।	३८६,	२१
असारग्राहा ।	३०१,	७
लगना ।	२,	१
"		२
"		३
"	३२०	३२
गुरुद्वारा ।	१६,	८८
सुगिन्न ।	१२०	१३
परिचय ।	१२७	९१

व

रह तो मोला जानिये,
 " मारग बिन को गया,
 गरी हरि क नाम पर,
 विद्या मद औ गुन हु मद,
 विषय पियारे प्राति सा,
 विषय रामना उरशि कर,
 विष्ठा का चीका दिया,
 विश्वासो हे गुरु भन,
 यद एक नला धक,
 वेद पुराना साधु गुरु,
 वेम्नय भया तो क्या भया,
 ज्योम मध्य ज्यो घट मठ,

सद ।	३०७,	३२
मृन्ममार्ग ।	३७७,	३३
गमरय ।	३०७,	३०
नडा ।	४१८,	१२
जात्र ।	४२७,	१०
चिन्तावर्ती ।	१८७,	१५७
मासाहार ।	४१३,	१३
विश्वास ।	२१३,	३१
माधु ।	२२,	८३
गुरुदेव ।	१४,	७७
निगुरा ।	५२,	२८
व्यापक ।	३००,	४१

प

घट दरसन को प्रेम करि,
घड विकार या देह क,

सेवक । १०२, ३०
साधु । ६६, ११६

म

सकल जगत नाने नहा,

मतगुरु । २८, ८८

, , पसारा पपन का, कौन नाम उस पपन का(२)प्रश्नो० । ४४२, २४

, , , माह नाम उस , का(३) , , २५

, , , रन एकत्र ह, मासाहार । ४१३, १२

मङ्गल्य स्वामी स कहो, चानक । ३०८, १८

मगा हमारा रामजा, चितापनी । १८८, १६०

सचु पाया सुख ऊपजा, सतगुरु । २९, ९५

सनन सनेही बहुत है, प्रेम । १५८, ८१

मज्जन सों सज्जन मिले, सगति । ९५, ६१

सत को दृढत मे फिरू, गुरुशिष्यहेरा । ४४, ४३

मनजुग प्रेना दापरा सव्य । २०८, ५६

मत्त जा तामा कीनिये, सती । २१६, १७

मत भगति सत्र सों पड़ी, सगति । ९८, ८६

, , है मूष ज्यों, सारमाही । ३४९, २

मत हा में मत मांटिये, उपदेश । १९४, १२

मतगुरु अवम उवारना, भय । ८५, ६०

, अमृत मोइया, सतगुरु । २३, ४६

, आत्म दृष्टि है, , , ४३

, , ऐसा काजिये, यों भोगी मत हाय । गुरुपा० । ३४, ३३

सतगुरु ऐसा कीजिये, लोभ मोह भ्रम नाहि । गु० पा० । ३५, ३४	
" " " जाका पुरन मन । " " ३५	
" कहि नो सिष करै, सेवक । १००, १३	
" का उपदेस, सुमिरन । २२५, ८५	
" का सारा नहा, गुरुपारख । ३४, ३१	
" किरपा फेरिया, सतगुरु । २३, ४४	
" की किरपा बिना, भक्ति । ११४, ६४	
" की दाया भई, सतगुरु । २२, १९	
" की महिमा अनत, सतगुरु । १७, ५	
" का मानै नहीं " २३, ४५	
" के उपदेस का, २४, ४९	
" के परताप तें, " १७, २	
" के भुज दीय हैं, " २२, ३८	
" के सदेके किया, " २१; २८	
" केरा मानता, साधु । ७६, २०१	
" मोजो सत, सतगुरु । २९, १००	
" नो ऐसा मिला, सतगुरु । २३; ४८	
" तो सत भाव है, " २१; ३३	
" दाता नीच के, २०; २२	
" दोन दयाल हैं, सूक्ष्ममार्ग । ३७६; १६	
" ने तो गम कही, गुरुपारख । ३४; ३०	
" पारम का सिद्धा, सतगुरु । २१; ३१	
" गड़े जहान हैं, " २०, २६	
" " दयाल हैं, भगवत । ३०५, ३६	

सतगुरु जुड़े मरार ह	सतगुरु ।	२०	२५
' सुनार है	"	२१,	२७
" ब्रजें मिथ कर	मरार ।	१००,	१०
' पादल प्रेम क	सतगुरु ।	२२,	३१
" महार प्रनाइया	'	२३,	४७
" गारा तानि कर,	"	१९,	१७
गान भगि, निरखि निरखि निज ठोर । "		१८	११
' वर कर धारी गूढ ।	'	"	१२
" " " टटि गई सन जेव ।	"	१९,	१३
" " " डाला नौहि मरार ।	"	"	१४
" " " रहा कलेजे भाठ ।	"	"	१५
" मारी प्रेम वा,	"	१९,	१८
" मिला जु जानिये,	"	२३,	४२
' मिलि निरभय भया,	"	२१,	२९
' मिले जु खत्र मिले,	"	२३,	४१
" मिले तो क्या भया,	गुरुपारख ।	३४,	३२
" मरा मूरमा, पेधा ममल मरार	सतगुरु ।	१८,	९
" " " तकि तकि मारै तार ।	"	"	१०
माहि नियानिया,	'	२१,	३०
" सत का मद्र है,	"	२०,	२०
" सम कांडे नहा.	"	१८,	४
" सम को है मगा,	"	"	३
" मरन न आनहा,	"	२१,	३२
" मोचा मूरमा, नख सिख मारा पूर ।	'	१७,	७

सतगुरु साँचा सूरमा, मट्ट जु बाह्या एक ।	सतगुरु ।	१७,	८
" सैं सूधा भया,	सतगुरु ।	२०;	२३
" " मट्ट उधापही,	भक्ति ।	११५;	७२
" " उलंघि कर,	संयक्त ।	१००;	११
" " कमान करि,	सतगुरु ।	२०;	१९
" " प्रमान,	मट्ट ।	२०८;	५८
" सट्ट सब घट बरमे,	सतगुरु ।	२०;	२१
" हम मो भल कही,	"	२२;	४०
" " रीझि के, कब्यो एक परसंग ।	"	"	३४
" " " एक दिया. उपदेस ।	गु०शि०हे० ।	४६;	२०
सती जु डरपै अगनिते,	सूरमा ।	२२५;	०४
मतिया का सुख देखना,	सती ।	२१६;	२१
" सोई अस लिया,	"	"	३९
सती चमाकै अगनि में,	"	२१७;	२६
" जल को नीकसी, चिन धरि एक विवेक ।	"	२१४;	३
" " " पिवका सुमिरि मनेह ।	"	"	४
" डिगै लो नोच घर,	"	२१५;	८
" न पोसै पीसना,	"	"	९
" पुकारै सर चढ़ी,	"	"	७
" विचारी मत किय़ा, काटौं सेज बिछाय ।	"	२१४;	६
" " " ले अपना वे भेव ।	"	२१६;	२३
" भई है सत्त कं,	"	"	२२
" मूर नन पाइया,	"	२१४,	५
" " " साहिया,	"	२१६;	२४

सत्तनाम	कड़ुवा लगे,	भर्मविध्वंस ।	३४७;	५०
”	की लों लगी,	विश्वास ।	२१०;	२
”	के पट्टरै,	गुरुदेव ।	१०;	४७.
”	को छांडिकर, करै और की आस ।	वि०चा० ।	२२४;	१२
”	को छांडि कै, ” आन को जाप ।	”	”	१६
”	” कै, राखै करवा चौथि ।	”	”	१७.
”	” ” राति जगावन जाय ।	”	२२५;	१८
”	” ” करै और को जाप ।	”	२२४;	१५
सत्तनाम	छांडी नहीं,	सतगुरु ।	२६;	७४
”	जाना नहीं, माना नहीं विचार ।	विचार ।	४२२;	८
”	तिरलोक में,	परिचय ।	१४९,	१२४
”	निज औषधि, कोटिक कटै विकार ।	सुमिरन ।	११७;	१७
”	” ” सतगुरु दर्ई बताय ।	”	’	१९
”	” मूल है,	भर्मविध्वंस ।	३४९;	६८
”	” सोय,	सतगुरु ।	२९;	१०१
”	” विश्वास,	सुमिरन ।	११७,	२०
”	” सुमिरन करै,	उपदेस ।	२००;	७२
”	” सें मन मिळा,	विश्वास ।	२१०;	३
”	” है मोतिया,	निगुरा ।	४९;	२४
”	सत्त भक्ति तलवार है,	भक्ति ।	११३;	५८
”	” मील दाया सहित,	भेष ।	८४;	५१
”	सद कृपालु दस परिहरन,	माधु ।	६५;	१०३
”	” पानी पानाल का,	लगनी ।	३६८;	२४
”	सदा मोन जल में रहे,	सानु ।	७८;	२१९

सदा रहै सतोष में,	साधु ।	६५	१०५
सपने में नरराई के,	सुमिरन ।	१११,	५८
सत्र आये उस एक में,	पतिव्रता ।	२००,	२९
„ आसन आसा तनै,	आसातृत्ना ।	४०१	१६
„ कछु गुरु के पास है, निसदिन चरनो लाग । गु० ।	१८,	७०	
„ „ „ रहै चरन में लाग ।	सवक ।	१००,	१०
„ काहू का लीजिये,	एकता ।	३२४,	९
„ „ „	विचार ।	४२३,	१३
सत्र कोइ त्रिदिनी पीयरी,	विरह ।	१६८,	८३
„ „ सूर कहाई,	मूरमा ।	२३८,	११५
„ कोई मरि जात है,	चितायनी ।	१९०,	१७६
„ को नाम सुनायहु,	सुमिरन ।	१२१,	५२
„ „ पूछत मैं फिरा,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७६,	१९
„ „ सुख दे सद्र का,	सद्र ।	२०५,	३४
„ घट भीतर राम है,	चितायनी ।	१८८,	१५८
„ „ मेरा साइया,	साक्षाभूत ।	३२२,	२
„ जग तो भरमत फिरै,	सतगुरु ।	२८,	८६
„ „ भरमा यों फिरै,	„	२५,	६१
„ „ डरै काल सा,	वाल ।	२९९,	६९
„ „ मूला निद्र भरि,	„	१९३,	६
„ ते भयो मधूकरा,	प्रियास ।	२१२,	२१
„ घरनी रागत कब,	गुरदेव ।	११,	५५
„ वन तो चढ़न नहा,	साधु ।	६०,	१३७
„ „ तुलसा भई,	भर्मप्रियस ।	३४६,	३९

सब मंत्रन का बीज है,	सुमिरन ।	१३२; १६०
॥ रंग तांति रवाव तन,	विरह ।	१६५; ५३
॥ रंग पानी ते मया, सब रंग पानी सोय ।	माया ।	२८२; ४९
॥ " " " " " होय ।	"	" ५०
॥ से हिलिये सब से मिलिये,	उपदेश ।	२०१; ८२
॥ मो कहां पुकारिके,	भक्ति ।	१११; ४२
॥ हि रसायन हम करी,	सुमिरन ।	११८; २६
॥ हो तरु तर जाय के,	विरह ।	१७०; ९४
॥ हो भूमि बनारसी,	मध्य ।	३१७; २९
॥ ही मार्यो कल्यतरो,	सूरमा ।	२३४; ८१
सबल क्षमी निर्गर्व धनी,	क्षमा ।	४२६; ९
सबै कहावै लस्करी,	सूरमा ।	२४०; १४३
॥ खिलौने खांड के,	व्यापक ।	३२७, २३
॥ रसायन हम किया,	प्रेम ।	१५५; ५२
॥ हमारे एक है,	एकता ।	३२४; १२
सब्द उपदेश जु मैं कहूं,	सब्द ।	२०३; १०
॥ कहौ ते उलत है,	प्रश्नोत्तर ।	४४०; ५
॥ " से आइया,	"	" ७
॥ कहै सो कीजिये,	सब्द ।	२०३; ९
॥ खोजि मन बसि करै,	"	" १२
॥ गहै सो मरद है,	"	२०९, ७४
॥ गुरु का सब्द है,	"	२०३; १३
॥ जु ऐसा बोलिये,	"	२०९; ३९
॥ दुगादा ना दुरै,	"	२०३; ८

सब्द न कौ सुलालिना,	सद्व ।	२०३,	२
॥ पाय सुरति राखहि,	,	॥	९
॥ बराबर घन नहा,	॥	२०२,	४
॥ विचारी जो चळ,	जीवतमृतम ।	३१५,	४८
॥ निचारे पय चळ,	भष ।	८४,	५५
॥ ब्रम्ह ते आइया,	प्रश्नोत्तर ।	४४१,	८
॥ भेद तय जानिय,	सद्व ।	२०३,	११
॥ सुरति का तार है,	मूरमा ।	२३०,	१३१
॥ सुरति के अन्तरे,	निष्कर्ता ।	३६९,	५
॥ सद्व बहु अन्तरा, सार सद्व चित देहु ।	सद्व ।	२०२	२
॥ ॥ ॥ ॥ सद्व सार का सौर ।	॥	॥	३
॥ ॥ सत्र जोइ बहै,	॥	२०३,	१४
॥ महारे प्राणिय,	॥	२००,	६७
॥ हमार हम सद्व क,	॥	२०३,	७
॥ हमारा आदि का,	॥	२०८,	६४
॥ भज्ये मारा खचि क,	सतगुरु ।	२०,	२४
समझा समझा एक ह, अन समझे भय एव ।	भेद ।	३१७,	६
॥ ॥ ॥ ॥ ॥ सौ सौन ।	,	३१८,	७
॥ सोई जानिये,	॥	॥	८
समझाये समझ नहीं,	चिन्ता ।	१९७,	१०७
समझे को सरी धनी,	सद्व ।	३१७,	५
॥ गट कु गृ जे,	साधु ।	७६,	२०
समझे का घर अंगरे ह,	भेद ।	३२०,	३८

समझें का मत और है,	भेद ।	३२०;	३१
॥ तो धर्म रहे,	व्यापक ।	३२६;	१६
समदसों तब जानिये,	भेद ।	३२०;	२८
॥ सतगुरु किया, भरम भया सब दूर । ॥		३१९;	२३
॥ ॥ ॥ ॥ किया ॥ ॥ ॥		३२०;	२४
॥ ॥ ॥ दीया अविचल ज्ञान । ॥		॥	२५
॥ ॥ ॥ भेदा भरम विकार । ॥		॥	२६
॥ ॥ ॥ पाया मन विश्वास । ॥		॥	२७
समरथ धोरी कंध दे,	समरथ ।	३०३;	२५
समुद्र लहरि जो थोरिया,	मन ।	२७३;	८७
समुँद पाटि लंका गयो,	निजकर्ता ।	३७०;	१४
सरगुन की सेवा करो,	बेहद ।	३४१;	३५
सरने राखों साइया,	साधु ।	७१,	१५७
सरप हि दूध पिलाइये,	गुरुशिष्यहेरा ।	४०;	१३
सब सोने की सुंदरी,	कनककामिनी ।	२९०;	४२
सबस सीस चढाइये,	गुरुशिष्यहेरा ।	४३;	३४
सबर तरुवर संतजन,	साधु ।	५९;	५३
सरस सखा ऊजल वरन,	कपट ।	४०५;	२२
सलिल भक्त कहु ना तरै,	भक्ति ।	११४;	७०
ससा सिंघ के धनुस का,	बेली ।	३५९;	५
सह कामी दीपक दसा,	काम ।	३९०;	९
॥ कामी सुमिरन करे,	सुमिरन ।	१२७;	१०७
सहज जलना सतिया तना,	सती ।	२१६;	२०
॥ ताजु आनि के,	सत्य ।	२७७;	४६

साकट संग न बैठिये, अपनो अंग लगाय ।	निगुरा ।	४९;	३
॥ संग न बैठिये, कान कुचेर समान ।	निगुरा ।	॥	३
॥ हमरे कोऊ नहि,	निगुरा ।	५०;	३
साकुट हित कुं जाय के,	आनदेव ।	३८७;	
साकुट भले हि मरजिया,	निगुरा ।	५२;	५
साकुट साकुट कहाँ करो,	निगुरा ।	५२;	५
साखि सख्द बहुते सुना, मिटा न मनका दाग ।	संगति ।	९१;	२
साखि सख्द बहुतहि सुना, मिटा न मनका मोह ।	॥	९४;	५
साखी लाय बनाय के,	कयली ।	३६२;	१
॥ सैन मही करो,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७८;	३
॥ सख्दी काव कहो,	प्रश्नोत्तर ।	४४६;	६
॥ ॥ जव कहो,	॥ - ॥	॥	६
मागर उमडा प्रेम का,	प्रेम ।	१५३;	२
॥ मे मानिक बसे,	पारख ।	३५६;	५
सात गांठ कीपीन की,	संतोष ।	४२९;	१
॥ दीप नो गंड मे, तीन लोक ब्रह्मंड ।	दुख ।	४०६;	१
॥ दीप नो गंड मे, सब से फगुवा लीन ।	का० का० ।	२९२;	६
॥ समुंद की इका लहर,	मन ।	२७५;	१०
मातों सायर मे फिरा	निन्दा ।	३८५;	
॥ मन्द जु बाजते,	चितावनी ।	१७८;	६
साथी हमरे चलि गये,	विपर्यय ।	२६२;	६
साध सता औ मूरमा, राखा रहे न ओट ।	सूरमा ।	२३०;	४
साध सती-औ सूरमा, इनका मता अगाध ।	सती ।	२१५;	१
इन पटतर कोइ नाहि ।	॥	॥	१

साधु सती औ सिध को,	साधु	६४; ९७
साधु सब एक है,	"	९९
" " मुख से कहै,	"	७२; १७५
" " सब ही बड़े,	"	६४; १०१
" सिद्ध बड़ अन्तरा, जैसे आम बबूल ।	"	६३; ८९
" " बहु साधु मता परचंड ।	"	६१; ६९
साधु साहिब समुँद,	"	५७; ३७
सेव जा घर नहि,	"	५७; ३६
संग अन्तर पड़े,	संगति ।	९१; २४
संगति गुरु भक्ति जु,	"	९८; ८०
" " " " रु,	"	८४
संतोषी सर्वदा,	संतोष ।	४२८; ३
सिध का इक मता,	साधु ।	६४; ९८
हजारी कापडा,	"	६३; ८७
हमारी आत्मा, हम साधुन के देह ।	"	५७; ४०
" " " " के सौंस ।	"	४१
" " " " के जीव ।	"	४२
साधुन का कुतिया भली,	"	६०; ६७
" की छुपड़ी भली,	"	६३
" के मैं संग हूँ,	"	५८; ४७
" के सत संग ते,	संगति ।	९१; २७
साधु आया पाहुना,	साधु ।	५६; ३२
आवत देखि करि, हँसी हमारी देह ।	"	५६; ३०
आवत देखि के, चरनों लागी धाय ।	"	२०

साधू आवत देखि के, मन में करै मरोर ।	साधु ।	५६, ३१
॥ ऐसा चाहिये, आई देय चलाय ।	माया ।	२८३, ५२
॥ ॥ ॥ जैसा फौफल भग ।	साधु ।	७३, १७१
॥ ॥ ॥ जाके ज्ञान विवेक ।	॥	६५, १०२
॥ ॥ ॥ जहाँ रहै तहँ गेन ।	॥	७६, १९८
॥ ॥ ॥ जाका पूरन मन ।	॥	७७, २०७
साधू ऐसा चाहिये, नामें लठन बतौस ।	साधु ।	७७, २०९
॥ ॥ ॥ दुखे दखावै नाहि ।	॥	६३, ८५
॥ ॥ ॥ जैसे सूप सुभाय ।	सायाही ।	३४९, १
॥ कौ लठि भेटिये,	साधु ।	५८, ४६
॥ के घर जाय के,	॥	७४, १८३
॥ खारा यौ तन,	॥	७४, १८०
॥ खोजा राम के,	॥	६०, ६१
॥ चाले छु चालई,	॥	६३, ९३
॥ जन सत्र में रमै,	साधु ।	६३, ८६
॥ तो हीरा भया,	साधु ।	६४, १००
॥ दरसन महाफल,	साधु ।	७५, १९१
॥ भूखा भात्र का,	॥	५८, ४८
॥ मोरा जग कली	॥	६३, ८८
॥ मेरे सत्र बड़े,	विवेक ।	४२१, १०
॥ सत्र ही मूरमा,	सूरमा ।	२३९, १२६
॥ सरजन मामरी,	साधु ।	७५, १८९
॥ सीप ममुद्र के,	प्रेम ।	१५६, ५५
॥ सोई जानिये,	साधु ।	६४, ०४

साधू सोई सराहिये, कनक कामिनी त्याग ।	साधु ।	७३; १७०
॥ सोई सराहिये, पाँची रामे चूर ।	साधु ।	७४; १८६
॥ संगति परिहरे	संगति ।	०७; ७४
॥ मन्द सुन्दरुना.	॥	७८
॥ सन्द मसुद्र है,	साधु ।	५७; ३४
साप छुंदर दोयकुं.	संगति ।	९६; ६९
साधु विचारा क्या करे,	गुरुदेव ।	१६; ८९
सायर मांही सर गया,	विपर्यय ।	२५२; ३३
सार ब्रह्म लोहा झरै,	सूरमा ।	२३३; ६९
॥ सन्द निज जानि के,	सन्द ।	२०७; ५१
॥ सन्द जानि विना.	मन्द ।	५२
॥ ॥ को खोजिये,	॥	५३
॥ हि मन्द विचारिये,	॥	५४
सारा बहुत पुकारिया,	॥	२०५; ३०
॥ लस्कर हँदिया,	निगुरा ।	४८; २२
॥ मूग बहु मिले,	गु० शि० हे० ।	४१; १६
सावधान औ मालना,	माधु ।	६५; १०६
साहिव का बाना सही,	॥	७५; १९१
॥ को गति अगम है,	धीरज ।	४२५; १०
॥ के दरवार में, कमी काहु की नाहि ।	सेवक ।	१०१; १६
॥ के दरवार में, सौचै को सिरपाव ।	सांच ।	४३१; २०
॥ को भावे नहीं,	सेवक ।	१०१; १६
॥ जासों ना रुचै,	॥	१८
॥ तुम जनि वीसरो,	समरथ ।	३०४; २८

माहिब तुमहि दयाल हो,
 " तेरी माहिनी,
 माहिब दरसन कारन,
 " पास रूप है,
 " मिला तब जानिये,
 " मेरा एक है,
 " मेरे मुस्त को,
 " मन का बाप है,
 " सम समर्थ नहीं,
 " सग राचे भँवर,
 " मों सत्र होत है,
 साहेब नाम सँभारता,
 सिद्ध सगरी ब्राह्मि,
 सिद्ध सहज ही सिर पड़ी,
 सिरगुन आया जीव यह,
 सिरजन हारे सिरजिया,
 सिर दीये जो पाइये,
 " राखै सिर जात है,
 " घाटे का खेल है, सो सूरन का काम ।
 " " " छोड़ि देय सब वान ।
 " " " सिद्ध शक्ति मुख को जुनै,
 सिध किरपिन गुरु स्वारथी,
 " मँडा गुरु मस्तक्य,
 " पूजे गुरु आपना,
 १०

समर्थ ।	३०५;	३७
माओभूत ।	३२३,	८
मगति ।	९९,	८७
परिचय ।	१४८,	११२
माधु ।	७२,	१६५
निजकता ।	३७०,	९
सतोष ।	४२९,	०
निजकता ।	३७३,	३६
ममर्थ ।	३०१,	२
माधु ।	७४,	१८२
ममर्थ ।	३०१,	१
सुमिरन ।	११९,	३४
भर्मगिध्वस ।	३४८,	६३
पेली ।	३६५,	११
प्रश्नोत्तर ।	४४३;	३७
विश्वास ।	२१०;	६
रस ।	२६३,	८
नूरमा ।	२३१;	४८
	२३६;	१०४
	२४०;	१३७
निपर्यय ।	२४८;	१६
गुरुशिष्यहेरा ।	४४,	४१
गुरुदेव ।	९,	४४
गुरुशिष्यहेरा ।	४४,	३९

मिथ मासा चाना भया,
 , , नहुत किया,
 , , समार गनि,
 सोम नई ममार सा,
 माग सुने विचारि ले,
 सातठ कोमठ दीनता,
 ' नठ पानाठ का,
 ' मद्र उचागिये,
 सीतलना तत्र जानिये
 सीतलना मेजोय ले,
 सोष जु तत्रग उतरता,
 ' नहा सायर नहीं,
 ' समुंदर में तसे,
 सील गहै काइ सावधान,
 ' मिलाये नाम को,
 हि रामि प्रिक्त भये,
 ' क्षमा जव उपजे,
 सालयन दृढ ज्ञान मत,
 ' निरमल दसा,
 ' सत्र सौ वटा,
 ' सुर ज्ञान मन,
 साप हरन गुरु पारधी,
 सास उतरै भुँइ धरे,
 काटि पासग किया,

गुरपारग ।	३२,
• " ॥	३८,
मेघ ।	८४,
लगना ।	३६८,
सद्व ।	२०४,
परिचय ।	१४०, १
मेघ ।	८३,
मद्र ।	२०६, *
सद्व ।	२०६
गूरमा ।	२३२,
सतगुर ।	२८,
परिचय ।	१४३,
सतगुरु ।	२८
सील ।	४२७,
"	"
"	"
"	४२६,
साधु ।	६५ १
सील ।	४२७,
"	"
सेवक ।	१०२, ३
सतगुरु ।	२८, *
प्रेम ।	१५१,
"	१५०,

सीस सिधैं साईं लखे,	मूरमा । २३४, ७८
सुकदेव सरीखा फेरिया,	निगुरा । ४८, २३
सुख का सागर सील है,	साठ । ४७७, ९
के माथे सिल परे,	सुमिरन । १२२, ६३
" के सगी स्वारथी,	परमास्थ । २४३, ४
" को सागर म रचा,	भरीशिवम । ३४९, ६६
" दै दुख को हरे,	साधु । ५९, ५६
" में सुमिरन ना किया,	सुमिरन । १२८ १२३
सुखत मोहों सब गले,	आत्मअनुभव । ३११, १८
सुखिया दृढ़त में फिर,	दुख । ४०५, ३
" सब ससार है,	त्रिह । १६७, ७०
सुखि पाया सुख ऊपजा,	परिचय । १३९, ३३
सुनिये पार जु पाइया,	साधु । ५६, २४
" संतो साधु मिलि,	गुरुदेव । १५ ८२
सुपना में साईं मिटा,	लगनी । ३६९, २९
सुमिरन का ससे रहा,	चितायना । १८७, १५३
" एसो कीनिये,	सुमिरन । १३३, १६२
" को सुधि यों करी, जैसे कामी काम । "	१२५, ९१
" " कहैं कबीर पुकारिके(३) "	" ९३
" " ज्यों गागर पनिहारि । "	" ९२
" " ज्यों सुरभि सुत मोहि । "	" ९४
" " जैसे दाम कगाल । "	१२६, ९५
" " जैसे नाद कुरग । "	" ९६
" " ज्यों मूर्छ में डोर । "	" ९७

सुमिरन तूं घट में करै,	सुमिरन ।	१२७; १०५
„ मन लागै अनर्ही,	„	१२६; १०२
„ मारग सहज का,	„	१२५; ८९
„ माँहि लगाय दे,	„	१२६; १०३;
„ सुरति लगाय के.	„	१०४
„ सैं सुख होत है,	„	१२५; ९०
„ मां मन लाइये, जैसे कोट भिरंग ।	„	१२६; ९८
„ „ „ दीप पतंग ।	„	९९
„ „ „ पानी मीन ।	„	१००
„ सों मन जब लगे,	„	१०१
सुरज किरन रोकी रहै,	सूक्ष्ममार्ग ।	३७९; ३७
„ समाना चाँद में,	परिचय ।	१४०; ४१
सुरति उडानी गगन को,	„	१४३; ७१
„ करो मम साइया,	विनती ।	४३७; ८
„ ढोंकली नेज लौ,	लगनी ।	३६८; १०
„ निरति दो तूबरी,	मध्य ।	३१५; ११
„ फसी संसार में,	सुमिरन ।	१३३; १६८
„ समानी नाम में,	पतिव्रता ।	२१९; १८
„ „ निरति में, अजपा माँहीं जाप ।	परिचय ।	१३९; ३०
„ „ निरति रहो निरधार ।	परिचय ।	१३९; ३१
„ समावे नाम में,	सुमिरन ।	१२१; ५४
„ सुहागिन सोइ सहि,	सेवक ।	१०३; ३६
सुर नर थाके मुनिजना, तहाँ न कोई जाय ।	सू०मा० ।	३७४; २
„ „ थाके विस्तु महेस ।	„	

सुरनर मुनिजन औलिया,	परिचय ।	१४५;	८५
“ मुनिजन देवता,	परिचय ।	१४५;	८६
“ मुनि सब को ठगे,	मन ।	२७४,	९१
“ रिधि मुनि सब फसे,	मोह ।	३९३;	९
सुरा पान अचयन करे, ताम्र डंग कुडंग (५)	नशा ।	४१९;	२०
“ “ “ ताको करो न सग(४)	“	४१९;	२१
सुप्रमन डिव्यो पोत करि,	प्रवृत्तिगुन ।	३८७,	२
मूखन लागे केवडा,	चिन्तामनो ।	१८७,	१४८
सूता साधु जगाडये,	निगुरा ।	५१,	४५
सूने मंदिर पैठलो,	निगुरा ।	५२	५५
सूम थैलि अरु स्वानमग,	लोभ ।	३९२;	७
“ सदा हो उडरै,	निपर्यय ।	२५०,	२६
सूर चढे सग्राम को, जाना पतिन अनेक ।	सरमा ।	२३६,	९६
“ “ “ कृ, अरिदल मोहि धसाय ।	“	२३६;	९७
“ “ “ पीछे पाप न देह ।	“	“	९८
“ “ “ पाप न पीछा देह ।	“	“	९९
“ “ “ पाँधे तरुन चार ।	माधु ।	७८	२२०
“ चडा सग्राम को,	सरमा ।	२३९,	३०
“ न सेरी तावडे,	“	“	३३
“ निसाना गाहिया,	“	२३८,	१२२
“ रडे गुर दान से,	“	२४१,	१५२
“ सती का सहल है,	जायतमृतक ।	३३७	७०
“ “ स्वर्ग पार है,	मती ।	१६,	२२५
“ सनाह न पहिरडे मरतो नहीं शराव ।	नृगमा ।	२२९	३२

सूर सिलाह न पहिरई, जव रन बाजा तूर ।	सूरमा ।	२२९, - ३१
सूरत मे मूरत वसै,	परिचय ।	१४८; ११०
सूरा कायर दुइ भला,	सूरमा ।	२३८; ११९
” के तो सिर नहीं,	पतिव्रता ।	२२१, ३९
” के मैदान में, कायर फंदा आय ।	सूरमा ।	२२८; १९
” ” ” मूरा सों सूरा मिलै(३)	”	” २०
” ” ” कायर भाजै पीठ दे(३)	”	” २१
” ” ” तीर तुपक बरछी बहै(३)	”	” २२
” थोडा जो गहै,	सूरमा ।	२४०; १४८
” जूझै गिरद सों,	”	२२७; १५
” सो बहुतक मिले,	”	२४१; १५३
” सो सँचै मते,	”	२२८; २८
” थोडा हो भला,	”	२२९; २९
” नाम धराय करि,	”	२२८; २६
” लडै कामंद है,	”	” २७
” सनमुख स्वाहता,	”	” २५
” सब हि निकसिया,	”	२३९; १२५
” मोस उतारिया,	”	२२७; १८
” सो सनमुख लडै,	”	२३९, १२५
” सोई जानिये, पाँच न पीछै पेख ।	”	२३६; १०२
” सोई सराहिये, लडै धनी के हेत ।	”	२२७. १५
” ” ” अंग न पहिरै लोह ।	”	२२७; १६
सूर सार संवाहिया,	”	२२९; ३४
सूरजी उपर पर करै,	सुद्धीभागी ।	३७५; ८

रूप सुरति का मर्म है,
 उख सवूरी बाहिरा,
 तज विछावै सुंदरी,
 सेनै सुती रंग रम्हा,
 सर दुई को ग्वाय करि,
 " पांच को ग्वाय करि,
 सल्ल जु जाहों मारिये,
 सेवक अपना करि लिया,
 " कुत्ता राम का,
 " मुखे कहानई,
 " फल मागे नहीं,
 " भाव सदा रहे,
 " सेवा में रहै, अन्त कहूं नहि जाय ।
 " " " सेवक कहिये सोय ।
 " " " सेव करै दिनरात ।
 सेवक स्वामी, एक मत,
 सेवै सालिग राम को,
 सेस नाग के महस फन,
 सो गुरु निमदिन बंदिये,
 " दिन गया अकाज में,
 " मन सोनो सो विषय,
 " सर मो मन बस्या,
 " साहिव तन में बसै,
 " सो सरी हं तक्रं,

मूढमार्ग ।	३७८;	३३
मांसाहार ।	४१५;	३८
विभिचारिन ।	२२३;	६
परिचय ।	१४६;	९४
प्रकृतिगुन ।	३८८;	४
"	"	३
सूरमा ।	२३०;	४३
कनककामिनी ।	२९०;	४६
सेवक ।	१००;	७
"	९१;	३
"	९१;	५
भेष ।	८४;	५०
सेवक ।	९१;	१
"	"	२
"	"	४
"	१००;	६
भर्मविध्वंस ।	३४३;	१३
चितावनी ।	१८६;	१३९
गुरुपारख ।	३१;	७
साधु ।	७२;	१६३
मन ।	२७३;	८४
विरह ।	१७१;	११०
व्यापक ।	३२६;	१४
मन ।	२७३;	८५

सोइ अक्षर सोई भनै,
 " सोइ नाच नचाइये,
 " सह निज सार है,
 सोई लॉसुं साजना,
 " साधु पतिव्रतजु,
 सोऊँ तो सपने मिलें,
 सोने रूपे घाह दई,
 सोया सो निष्फल गया,
 सोरा रति भर सुरति है,
 सो जोजन साजन वसै,
 " पापन को मूल है,
 " वरपौ भक्ति करै,
 सोदा कीजै राम सो,
 संख समुद्रौ वीछुरा,
 संगत कीजै साधु को, कटी न निष्फल होय ।
 संगति अधम असाधु की,

विचार ।	४२३;	२०
गुरुदेव ।	१४;	७४
सह ।	२०४;	२१
विरह ।	१६६;	५६
साधु ।	७२;	१६६
लगनी ।	३६७;	१२
कसौटी ।	३७४;	५
सुमिरन ।	१२३;	७८
प्रश्नोत्तर ।	४४५;	४९
प्रेम ।	१५४;	४२
माया ।	२८२;	५१
विभिचारिन ।	२२४;	१४
विश्वास ।	२१२;	२५
दुख ।	४०६;	९
साधु ।	७२;	१६२
संगति ।	९३;	४५

सन्त मता गजराज का,	साधु ।	७६, १९९
सन्त मिले जनि ब्रीहुरो,	साधु ।	६२; ८०
“ तत्र हरि मिले, कहिये आदि रु अत । ”		७१; १५५
“ मिले तत्र हरि मिले, यू सुख मिले न कोय । ”		७२; १६४
“ मिले सुख ऊपने,	“	७१, १५३
“ समागम परम सुख,	“	“ १५३
“ सुरसुरी गगनल,	सगति ।	९८, ८१
“ सुहागी सुरमा-	भक्ति ।	११५, ७१
सत सेवा गुरु बदगी,	साधु ।	७८, २२१
सन्त सन्त सब कोइ कहै,	,	७३; १७८
मंत संतोषी सर्पदा,	सद्ग ।	२०५; २८
“ होन है हेत के,	माधु ।	७८, २१७
मंतन के मन भय रहै,	“	७३ १७३
सतों सरप दे मिले,	कसोटो ।	३७३, १
सुनो खाई रहत है,	माया ।	२८३, ५०
संतोष हि सहिदान है,	संतोष ।	४२८, १
सगति तो हरि मिलन है,	दुख ।	४०७; १७
“ देखि न हरपिये,	“	४०६ १६
मंफुट माहि समाइया-	निजकतां ।	३७०; ८
मंसारी साफ्ट मला,	मेघ ।	८३, ४५
“ सैं प्रीनडी,	स्वारय ।	२४२; ६
ससैं करों न भैं डरों,	परिचय ।	१३७; १६
“ -काल मरीर में, विषम काल है दूर ।	काल ।	२९८; ५४
“ “ “ चारि करे सब दूर । ”	“	“ ५८

संभे खाया मकल जग,	काल ।	२९८; ५७
„ नहि साधू मिले,	पारख ।	३५४; २८
संस्कृत हि पंडित कहे,	भाषा ।	३७९; २
„ हि संसार में,	भाषा ।	३७९; ३
„ हैं कूप जल,	„	१
माँई सुमिर मति डोल कर,	सुमिरन ।	१२८; १२
माँई इतना दोजिये,	विश्वास ।	२१०; १
„ केरा बहुत गुन, ओगुन कोई नाहि ।	समर्थ ।	३०२; ११
साँई केरे बहुत गुन, लिखे जु हिरदे माहि ।	समर्थ ।	३०६; ४८
„ को सुमिरन करे,	सुमिरन ।	१२९; १२६
„ तेरा तुझ हि में,	व्यापक ।	३३०; ५१
„ दीया सहज में,	विश्वास ।	२१२; २०
„ मेरा एक तू, दूजा, साँई क्या कहं (३)	पतिव्रता ।	२१९; २१
„ मेरा एक तू, दूजा, साँई जो कहं (३)	„	२२
„ मेरा बानिया,	समर्थ ।	३०२; १३
„ मेरा सावधान,	विनती ।	४३७; १११
„ मैं तुझ बाहिरा,	समर्थ ।	३०२; १२
„ मोर सुलच्छना,	पतिव्रता ।	२१९; १९
„ यों मति जानियो,	सुमिरन ।	१२९; १२५
„ सेति न पाइये,	सूरमा ।	२३१; ५५
„ सेवन जरि गई,	विरह ।	१६४; ४३
„ सौ सांचा रक्षो,	सांच ।	४३०; १०
सांवर हूते मवल हे,	माया ।	२८१; ४०
सांच वझं तो मारि हैं,	सांच ।	४३०; ६

साँच उन्हें तो मारि हैं,	साँच । ४३०, ५
॥ बरानर तप नहीं,	॥ ४३१, २७
॥ बिना सुमिरन नहा,	॥ ४२९, २
॥ पुनै गुर सच कहै,	॥ ४३०, ८
॥ स्रब्द कौ नारसी,	प्रश्नोत्तर । ४४१, १०
॥ स्रब्द न्वाली करै,	भक्ति । ११५, ७३
॥ स्रब्द हिरदै गहा,	साँच । ४२९, १
॥ हुआ ता क्या हुआ,	॥ ४३०, ९
साँच को साचा मिलै,	॥ " ७
॥ कोई न पतानई, पाच टका की धापटा (३) "	४७९, ३
॥ " " गली गरी गारस फिरै (३) "	" ४
॥ कोई न मानई,	मय । ३१६, २७
साँचै गुरु क पक्षमें,	गुरुपारख । ३४, २७
साँच पडी दिन डल गया,	विपर्यय । ७४४, १
साह मयै प्रबत दो,	उपदेस । २०२, ९३
मान माय का नाम ले,	सुमिरन । १३०, १३५
सास सुफर मा नानिये,	' १३०, १३६
सिधन क लहडा नहा,	साधु । ६०, १३८
सुन्दरि ता साई भजै,	पतिव्रता । ७२१, ३७
सुन्दरी ते मूत्री मजी,	कलकामिनी । २९०, ५०
सुन मन्त्र में धर किया,	परिचय । १४३, ६०
' सराग गीन मन, नार निरनन देव । '	१४५, ८०
' ' ' नार तीर सत्र दय । '	' ९०,
सुन सिख चटि धर किया,	सुमिरन । १२०, ८७

स्नेह प्रेम गुरुचरण मों,
 स्याम सब्ज विधि पच जे,
 स्वामी के सहमी पड़ी,
 " सेनक से कहे,
 " सेनक होय के,
 " होना सेत का,
 " होना सोहरा,
 " ह सग्रह करै,
 स्वारय का मन को सगा,
 " कु स्वारय मिले,
 ' सूका छाकडो,
 स्वास सुरति के मध्य ही,
 स्वाग पहिरि सोहरा भया,
 स्वांगी सब ससार है,
 स्वर्ग मृत्यु पाताल में,
 धम ही ते सत्र कछु ननं,
 धम ही त सत्र होत है,
 सोता तो घर ही नहीं,
 श्रोता यत्ता कौन घर,

गुरुदेव ।	१४,	७७
आत्मानुभव ।	३१०,	९
चानक ।	३०८,	१६
चितावनी ।	१९२,	२००
गु०शि०हे० ।	४४;	४४
चानक ।	३०८;	१४
दासातन ।	१०५,	१५
उपदेस ।	१९५;	२२
स्वारथ ।	२४२,	१
"	"	३
परमारथ ।	२४३,	७
साक्षीभूत ।	३२३,	९
भेष ।	८१;	२७
साधु ।	६९;	१३९
दुख ।	४०६;	१५
करनी ।	३६५,	२९
करनी ।	"	३१
करनी ।	३६४;	१६
प्रश्नोत्तर ।	४४६,	५६

६

दृष्टि मारि हीरा लहा,
 दूतो मो सत्र सुन लड़े,
 हथियारों म लोह ज्यों,

पारख ।	३५४,	२७
सूक्ष्ममार्ग ।	३७८,	३६
व्यापक ।	३२९,	४२

हृद जोड़ा बेहद गया,	। बेहद ।	३३७,	१
हृद छाड़ी बेहद गया, अबरन किया मिलाप ।	"	"	३
हृद छाड़ी बेहद गया, सुन्न किया अस्थान ।	"	"	४
हृद छाड़ी बेहद गया, रहा निरतर होय ।	"	३३८,	५
हृद छाड़ी बेहद गया, तासा राम हजूर ।	"	"	६
॥ बेहद दोऊ तजी,	बेहद ।	३३७,	२
॥ बधा बेहद रमै,	बेहद ।	३३८,	८
॥ माहीं हृदका घना,	बेहद ।	"	११
॥ में पीव न पाइये,	बेहद ।	"	७
॥ में बैठा कथत है,	बेहद ।	"	९
॥ में रहै सो मानग,	बेहद ।	"	१०
हृदिया सैती हृद रहो	बेहद ।	"	१२
हृनिया सोई हन्न सी,	मासाहार ।	४१३,	१६
हम करता सत्र सृष्टि के,	निजकर्ता ।	३७२;	३४
॥ कु स्वामी मति कही, हम हैं गरोव अधारा परिचय		१४८;	११७
॥ कु स्वामी मति कही, बाग है बलियार । परिचय ।		"	११८
॥ घर जारा आपना,	गु०नि०ह० ।	४०,	११
॥ जाना तुम मगत हो,	भेष ।	८३,	४२
॥ जाने थे खाहिगे,	काल ।	२९७,	४४
॥ जाये तेमो मुआ,	त्रियर्यय ।	२६२;	६६
॥ तुम्हरो सुमिरन करै,	प्रेम ।	१५५;	४४
॥ तौ जोगो मन हि के,	भेष ।	८३;	३८
॥ देखन जग जात है,	गु०शि०ह० ।	४०;	१३
॥ मा पाहन पूजते,	भर्मवि० ।	३४३,	१५

हम वासी वा देस के, जहा पुरुष की आन । परिचय ।	१३५;	
„ वासी वा देस के, जहां बारह मास वसंत । „	„	
„ वासी वा देस के, गगन धरन दोउ नाहि । „	१३६;	
„ वासी वा देस के, जहां ब्रह्म का कूप । „	„	
„ वासी वा देस के, आदि पुरुष का खेल । „	„	१०
हम वासी वा देस के, बारह मास विलास । परिचय ।	१३६;	११
„ „ „ जाति वरन कुल नाहि । „	„	१२
„ „ „ रूप वरन कुलु „	१३७;	१३
„ „ „ पिंड ब्रह्मंड कह्यु „	„	१४
„ „ „ गाज रहा ब्रह्मंड । „	„	१५
हय वर गय वर सघन घन, छत्रपती की नारि । साधु ।	६०;	६५
„ „ „ „ छत्र धुजा पहराय । सुमिरन ।	१२२;	६०
हरप सोक वा घर नहीं, -	बेहद ।	३४०; २४
हरा होय मूर्ख सही,	निजकर्ता ।	३६९; ४
हरि का गुन अति कठिन है,	मूर्खा ।	२३७; १०५
हरि का बना सरूप सब,	एकता ।	३२४; १०
„ किरपा तब जानिये,	गुरुदेव ।	१३; ६७
„ गुन गात्रे हराष के,	पंडित ।	३८३; ३२
„ घोड़ा ब्रह्मा कड़ी,	विपर्यय ।	२५२; ३४
हरि जन आवत देखिके,	निगुरा ।	६२; ५८
„ „ ऐमा चाहिये,	विवेक ।	४२१; ८
„ „ को छाँटा मली,	निगुरा ।	५२, ५०
„ „ को ऊँचा नये,	मान ।	३९७; १८
„ „ को सोई नही,	नशा ।	४१९; २३

हे जन केवल होत हैं,
 " गाँठि न बांधहीं,
 " तो हारा भला,
 " मिले तो हरि मिले,
 " सेतो रूठना,
 रि जन मोई जानिये,
 " हरि तो एक है,
 रि दरबारी साधु है,
 " दरिया सूभर भरा,
 " मरि है तो हमहूँ मरि है,
 " मोनियन की माल है,
 " रस पीया जानिये,
 " रस मेंगा जन पिये,
 " " " पीजिये,
 हरि रूठै गति एक है,
 " सुभिरन साची कथा,
 " सेतो हरिजन बडे,
 " सेवा जुग चार है,
 " सौं तू मनि हेत करु,
 " होरा क्यों पाइये,
 " " जन जौहरी,
 " " मन जौहरी,
 " " सन मेहटा,
 हरिया जाने रूखड़ा,

मंगति ।	९९;	८९
विश्राम ।	२१०;	८
उपदेस ।	१९६;	३७
साधु ।	७१;	१५४
मंगति ।	९३;	४१
मद ।	२०६;	३६
मद ।	३९५;	४
साधु ।	५९;	५८
"	६७;	१२७
चितावनी ।	१९०;	१८३
पारस ।	३५२;	९
रस ।	२६३;	६
"	"	५
"	"	७
"	"	४१
गुरुदेव ।	९;	९
चानक ।	३०७;	९
साधु ।	७६;	१९६
गुरुदेव ।	१५;	८५
साधु ।	६०;	६०
जीवनमृतक ।	३३१;	९
पारस ।	३५२;	६
"	"	७
"	"	८
"	"	१६
निगुरा ।	४८;	१६

हँसा तो महारान का,	पारख ।	३५५;
„ देस सुदेस का,	„	३५३;
„ पय को काडि ले,	सारग्राही ।	३४९;
„ बगुला एक सा,	पारख ।	३५४;
हँसै न बोलै उनमुनी,	सतगुरु ।	२६;
हौंसी खेल हराम है,	साधु ।	६८;
„ खेलां पिय मिले,	विरह ।	१६६,
हिन्दू कहं तो मैं नहीं,	मध्य ।	३१६,
„ के दाया नहीं,	मांसाहार ।	४१६,
हिन्दू तुर्क के बीच में, मेरा नाम कबीर ।	मध्य ।	३१६,
„ „ „ „ सद्ग कहं निरवान ।	„	„
„ ध्यावै देहरा,	„	„
„ मूआ राम कहि,	„	„
हूँ जो विरह की लाकड़ी,	विरह ।	१६४,
हौं साधुन के सँग रहूँ,	साधु ।	७३,

३५५

क्ष

क्षमा क्रोध को क्षय करै,
क्षमा बडन को चाहिये.

ज्ञान नीच का वर्म है,
 ज्ञान दाप परकास करि,
 ज्ञान "यान मन धनुष गहि,
 ज्ञान प्रकासा गुरु मिला,
 ज्ञान भक्ति प्रेम सुख,
 ज्ञान समागम प्रेम सुख,
 ज्ञान सपूरन ना भिदा,
 " " ना प्रिधा,
 जानी अभिमाना नहीं,
 " का ज्ञाना मिले,
 " नन है चोहरी,
 " जुक्ति सुनाव्या,
 जानी ता निरभय भया,
 जानी प्यानी सयमा,
 जानी नमि गुरुमुख नमै,
 " भूले ज्ञान करि,
 " मूल गेनाइया,
 ज्ञाना गुनहु मदेस,
 जानी होय सा मानही,
 जानी जाता चहु मिले

पारख ।	३२७,	६०
सुमिरन ।	१२७,	४८
साधु ।	७२,	१९७
गुरुदेव ।	८,	६७
आमानुभव ।	३१०,	१०
गुरुदेव ।	८,	३८
भक्ति ।	११२,	४६
भय ।	८२,	३४
सत्त्व ।	१०२,	२९
सगति ।	९५,	६०
पारख ।	३५३,	१६
आमानुभव ।	३१०,	११
"	३१२,	२८
सीर ।	४०७,	७
कपट ।	४०५,	३३
आमानुभव ।	३१०,	१०
"	३१२,	२०
सद्ध ।	२०८,	५०
चिनाग्रनी ।	१९२,	१९८
पडित ।	४८३,	३३

- २० श्रीमान् महंत श्री रामदासजी माहेव, कबीरकुटीर-ओल्हा, सी पी. १
- २१ ,, ,, ,, श्रीवदासजी माहेव, सरस्पुर-अहमदाबाद १
- २२ ,, साधु श्री रूपदासजी माहेव, ,, ,, १
- २३ श्रीयुक्त अमरचंद पोस्टल पेन्शनर, वुजवाडा-पंजाब १
- २४ ,, डा. शांछाल रामजी परमार हेडमास्तर, रोड वामगामा-काठि १
- २५ ,, पा. माधवलाल रंगदास, लावणज-गुजरात १
- २६ ,, मोदी प्रभुदासजी रामजीभाईक चि. भगवानदास जोजवाडा १
- २७ श्रीमान् साधुश्री चेतनदासजी गुरु श्री गोपालदा. सा. तवडी गु. १
- २८ श्रीयुक्त भगत गंगाराम लंजमभाई, तवडी-गुजरात १
- २९ ,, कर्वा जेमंगभाई ईश्वरभाई, कबीर पंथी, अविधा-गुजरात १
- ३० ,, धनजीभाई जीताभाई, दोहद-गुजरात १
- ३१ ,, मंगललाल मोतीराम, सुरत-गुजरात १
- ३२ ,, पुरुषोत्तम मीठामाई, पटेल् पेन्शनर मास्तर कोथमडी-गुज. १
- ३३ ,, भक्त बापरभाई गवामाई कबीर पंथी, तवडी-गुजरात १
- ३४ ,, मोदी जगजीवनदास नरानमदास, बटसाड-गुजरात १
- ३५ श्रीमान् महंतश्री भगवानदास गुरुभवानदासजी, बडीदा-गुजरात १
- ३६ ,, साधुश्री जेठोदास हरिदासजी, भूज-कच्छ १
- ३७ श्रीयुक्त भगत छीताभाई बावळामाई, जुनारांगुवाडिया-गुजरात १
- ३८ ,, गोवरभाई कालादास, अहमदाबाद-गुजरात १
- ३९ ,, मीठामाई मोतीभाई, ,, ,, १
- ४० ,, इच्छामाई लकाभाई, ,, ,, १
- ४१ ,, भगत जीर्जाभाई जोडतभाई, हेलंबी-गुजरात १
- ४२ ,, आतमदास ठेकेदार, लखन-बालियरस्टेट १
- ४३ ,, दयालजीभाई मोगरजीभाई पटेल्, आसिका १